हमारे राष्ट्रनिर्माता



मोतीलाल नेहरू

मोतीलाल नेहरू

['त्यागमूर्ति' : 'राजपुरुष']

जन्म — ६ मई १८६१ ई०

मृत्यु — ६ फरवरी १९३१ ई०

त्यागमूर्ति

"The Patriot who gave his all to India"

—*St. Nihal Singh*

"इस देशभक्त ने अपना सर्वस्व भारत को अर्पण कर दिया।"

—संत निहालसिंह।

'राजपुरुष'

"... *his features instinct with the spirit of combat, a figure emblematic of*

Thrones, dominations, princedoms, powers"

—*Al Kafir*

"उसकी आकृति पर संघर्ष की—मल्लता की छाप है,—एक पुरुष जो सिंहासनों का, शासन का, राज्य का, शक्ति का प्रतीक है।"

—अल-काफिर।

'A taut, stockily built man, his mighty head set square and challenging, erect with just a suspicion of defiance his sparse well groomed white hair brushed close to the crown,

With Atlantean shoulders fit to bear
The weight of mightiest monarchies

and a terrible jaw which has never yielded to any body and is not going, at this time of life, to yield to such a thing as old age, he stands like a block of granite foresquare to all the winds that blow—as if the sweet scented manuscript of his youth would never close—his features instinct with the spirit of combat a figure emblematic of—

*Thrones, dominations, princedoms, Virtues, powers *'*

—Al-Kafir

—एक—

तूफान और आँधी के वे दिन !

आँधी उठ चुकी थी। देश के हृदय में लुटने का—मर मिटने का साहस भर रहा था। युवकों की आँखें चमकती थीं। आकाश में घटाएँ घिरती जा रही थीं। बादल—बरसनेवाले बादल गरजते और चिनगारियाँ चमकाते इकट्ठे हो रहे थे। जान पडता था, जल थल एक करके छोडेंगे। पुराने नेताओं के पैर उखड रहे थे, नये मैदान में चमकने लगे थे। राज

* पं० मोतीलाल के जीवित रहते (१९२८ ई० में) लिखा गया था।

नीति के घने जंगल में कुछ सूझता न था पर तूफान ने प्रत्येक वृक्ष को अस्थिर कर दिया था। बहुत दिनों से, बुजुर्ग की तरह उम्र का बोझ उठाये हुए वृक्ष आँधी से जीवन मरण के बीच झोंके खा रहे थे और आँधी लानेवाली शक्तियों को कोस रहे थे कि बुढ़ापे में, शांति से पूरे जीवन की स्मृतियों का गौरव गान करते करते, तथा नवागन्तुकों को सावधानी एवं गंभीरता के उपदेश देते देते, चार दिन की जिंदगी शेष कर देने के वक्त, यह कहाँ का तूफान खड़ा हुआ !

इस आँधी के बीच, अपने उथल-पुथल हो रहे जीवन में, पहली बार मैंने मोतीलालजी को काशी में देखा। कई नेताओं को देख चुका था—लोकमान्य को भी, लालाजी को भी। ये भारतीय राजनीति को व्यक्तित्व से प्रकाशित करनेवाले नेता हुए हैं। पर इनको देखकर दूसरा ही भाव उपजा था। व्यक्तित्व का कोई तात्कालिक असर उनके दर्शन से नहीं होता था। पर मोतीलालजी तो, इस लिहाज से, बेजोड़ थे। उनके सिर को देखते हुए जान पड़ा, एक असाधारण पुरुष को देखा है।

—दो—

अद्भुत व्यक्तित्व

निस्सन्देह मोतीलालजी का व्यक्तित्व सम्पूर्ण भारतीय राजनीतिक नेताओं में अद्वितीय था। उनका ग्रीक (यूनानी) काट का चेहरा, उनकी गठन, उनके दृढ़ जबड़े, ज्योतिर्मयी आँखें और ऊँचे कधों को देखते ही एक अपरिचित के मन पर भी उनके महत्व की छाप पड़ती थी,—जैसे वह साधारण से भिन्न हों। उनके चेहरे से खान्दानी बड़प्पन—(autocratic greatness)—टपकता था। गाधी को न जानने वाला मुसाफिर सिर्फ देखकर यह नहीं समझ सकता कि यह एक महापुरुष हैं,—उनके ढाँचे में कोई ऐसी बात नहीं पर मोतीलाल को साधारण आदमी, प्रथम दर्शन में भी, न जानने पर भी, अपनी श्रेणी का

हमारे राष्ट्र-निर्माता

[जीवन, अध्ययन और झाँकियाँ]



लेखक
श्रीरामनाथ 'सुमन'

प्रकाशक
सस्ता साहित्य-मण्डल, अजमेर।

मूल्य ढाई रुपये : सजिल्द तीन रुपये

सितम्बर १९३३ ई०
प्रथम बार २१५०

पूज्य मालवीयजी की अपील

"सस्ता-साहित्य-मण्डल अजमेर ने उच्चकोटि की पुस्तकें सस्ती निकालकर हिन्दी की बड़ी सेवा की है। सर्वसाधारण को इस संस्था की पुस्तकें लेकर इसकी सहायता करनी चाहिए।"

—मदनमोहन मालवीय

मुद्रक
जीतमल लूणिया
सस्ता-साहित्य-प्रेस, अजमेर।

उन अगणित कंकरियों को—

जिनपर राष्ट्र की नींव उठाई गई है

और अदृश्य रहने में ही जिनका गौरव है

—श्रद्धा सहित—

'सुमन'

निर्देशिका

३. मदनमोहन मालवीय १५५-२१८

४ लाजपतराय २१६-२७६

५. मोहनदास कर्मचद गाधी २७७-४३०

६. चित्तरंजन दास ४३१-५३२

७. जवाहरलाल नेहरू ५३३-५९०

उपसहार

ॐ

सहायक सामग्री

१—'लोकमान्य' तिलक

१—लोकमान्य का जीवनचरित्र—१८९१ तक श्री केलकर।

२—लोकमान्य तिलक यांची गेलीं आठ वर्षे (१९००-१९०८) श्री कुलकर्णी, बम्बई १९०८।

३—Reminiscences of Tilak, पूना

४—तपस्वी तिलक, काव्य (श्री गोकुल चन्द्र शर्मा) अलीगढ़।

५—तिलक दर्शन (श्री सरवटे एवं भण्डारी), इन्दौर।

६—लोकमान्य को श्रद्धाञ्जलि, नवजीवन कार्यालय, अहमदाबाद।

७—'प्रणवीर' तथा 'प्रभा' के विशेषाङ्क।

८—अमृत बाजार पत्रिका, बाम्बे क्रानिकल, हिन्दू युनिवर्सिटी मेगजीन, 'लीडर' (People I have known लेखमाला)

९—Bal Gangadhar Tilak नटेसन, मद्रास

१०—Prophets and Patriots एस० सी० बनर्जी, कलकत्ता।

२—पं० मोतीलाल नेहरू

१—Pt Motilal His Life & Work, कलकत्ता।

२—Pillars of Nation, दिल्ली।

३—नेहरू द्वय, प्रयाग।

४—मोतीलाल नेहरू (इन्द्रजी), दिल्ली।

५—माडर्न रिव्यू, बाम्बे क्रानिकल, सिंध आबजरवर, सर्वेण्ट ऑव् इण्डिया, महरट्टा, लीडर, हिन्दुस्तान टाइम्स, 'हंस' तथा 'आज' के अंक। श्री सच्चिदानन्दसिंह एवं सेण्ट निहालसिंह के लेख।

३—महामना मालवीय जी

१—प० मदन मोहन मालवीय (छोटी जीवनी), १९१८ प्रयाग।

२—Pillars of Nation, दिल्ली।

३—मालवीयजी के व्याख्यान।

४—Malviya Commemoration Volume हिन्दू विश्व विद्यालय काशी।

५—कांग्रेस की रिपोर्टें

६—लीडर, पायोनियर, जन्मभूमि एव हिन्दू यूनि० मेगजीन के अंक।

४—लाला लाजपतराय

१—लाला लाजपतराय नदकुमारदेव शर्मा, कलकत्ता।

२—लाला लाजपतराय बम्बई।

३—लाला लाजपतराय (इन्द्रजी), दिल्ली।

४—Pillars of Nation, दिल्ली।

५—लालाजी की आत्मकथा (अपूर्ण, अंग्रेजी-हिंदी-लाहौर के 'पीपुल' एव 'पजाब-केसरी' में छपी)

६—लालाजी की पुस्तकें (United States of America Young India, Unhappy India, Story of My Deportation)

७—'वदेमातरम्', पीपुल (विशेषाङ्क), माडर्न रिव्यू, हिंदुस्तान टाइम्स, त्यागभूमि इत्यादि के लेख।

५—महात्मा गाधी

१—आत्म-कथा (दो खण्ड) अजमेर।

२—दक्षिण अफ्रिका का सत्याग्रह—दो भाग गाँधीजी अजमेर।

३—सर्वोदय गाँधीजी बम्बई।

४—Gandhi—The Man Millie G Polak लदन।

५ Gandhi The Holy Man Rene Fulop Miller, लदन।

६—Mahatma Gandhi (The World's Greatest Man) बम्बई, १९२२।

७—Mahatma Gandhi The Man & His Mission, मद्रास १९३० ।

८—Mahatma Gandhi (Sketches in Pen, Pencil & Brush), बम्बई १९३१ ।

९—The Conscience of A Nation, G V Mehta कलकत्ता

१०–Prophets & Patriots N C Bannerji, Calcutta

११–'गाँधीजी कौन हैं ? रामनरेश त्रिपाठी, प्रयाग ।

१२–जगमगाते हीरे विद्याभास्कर शुक्ल, प्रयाग ।

१३–महात्मा गाधी (जीवन और व्याख्यान) रामचद्र वर्मा, बम्बई ।

१४–ससार का सर्वश्रेष्ठ महापुरुष कलकत्ता ।

१५–The Dawn of Indian Freedom Winslow & Elwin, लन्दन ।

१६–The Psychology & Strategy of Gandhi's Non-Violent Resistance R B Gregg मद्रास ।

१७–A Word to Gandhi लन्दन ।

१८–Entertaining Gandhi Muriel Lister, लन्दन ।

१९–Political India (1832 1932), आक्सफर्ड यू० प्रेस ।

२०–Gandhi Diamond Jubilee Number (Janmabhumi) मद्रास । १९२९

२१–'हिंदी नवजीवन' का जयन्ति अक । सवत् १९७९ ।

२२—प्रस्थान का मणिमहोत्सव अक ।

२३–प्रताप, गृह सुदरी, विश्वमित्र, जन्मभूमि, सण्डे एडवोकेट, लीडर, पायोनियर, हिंदी यूनिवर्सिटी मेगजीन, हिंदुस्तान टाइम्स, माडर्नरिव्यू, पीपुल इत्यादि के अक ।

२४–हिंदी नवजीवन एव यंग इण्डिया की फाइलें ।

६—देशबधु दास

१—Life & Times of C R Das P C Ray, आक्स० यू० प्रेस ।

२—देशबन्धुदास (हिंदी जीवनी) सम्पूर्णानन्द १९२१।
३—'चित्तरंजन' (बंगला जीवनी) सुकुमाररंजन, कलकत्ता।
४—'देशबंधु चित्तरंजन' (बंगला) नलिनीबाला नैयो, कलकत्ता।
५—Reminiscences of C R Das Bisu
६—मालंच, माला, सागरसंगीत इत्यादि देशबंधु के काव्यग्रंथ एवं अन्य रचनाएँ।
७—'फारवर्ड' का देशबंधु नम्बर।
८—लिबर्टी, बाम्बे क्रानिकल, लीडर, भारत, आज, मतवाला इत्यादि के अंक। मृत्यु के पश्चात् नेताओं के भाषण।
९—देशबंधु के व्याख्यान। फुटकर सामग्री।

७—जवाहरलाल

१—Pt Jawahar Lal The Man & His Message, इलाहाबाद।
२—जवाहरलाल नेहरू इन्द्रविद्यावाचस्पति, दिल्ली।
३—पं० जवाहरलाल, जीवन एवं व्याख्यान प्रयाग।
४—The Life & Speeches of Pt J. Lal Nehru इलाहाबाद।
५—नेहरू द्वय गोपीनाथ दीक्षित, प्रयाग।
६—जवाहरलालजी की लिखी पुस्तकें (सोवियट रशा, लेटर्स आन् ए फादर टु हिज डाटर)
७—लीडर, हिंदुस्तान टाइम्स, माडर्नरिव्यू, जन्मभूमि इत्यादि की फाइलें

८–९–१० मुहम्मद अली एवं पटेल-बंधु

('कामरेड' 'एवं हमदर्द' के अंक माडर्नरिव्यू, लीडर, पिल्से आव् नेशन, करामे जौहर, यगइण्डिया एवं नवजीवन की फाइलें, वीर वल्लभ भाई (गुजराती), त्रिन्यी बारडोली बर्नजीर, वीरना हाकल इत्यादि।

दो शब्द

हिन्दी मे जीवनी-लेखन कलाअपनी निस्कुल प्रारंभिक अवस्था में है। पहले तो हिन्दी मे जीवनियाँ ही बहुत थोड़ी हैं और जो हैं भी, उनमें से अधिकाश बहुत साधारण हैं। फिर किसी महापुरुष की जीवनी लिखने का यह क्रम ठीक नहीं कि उसके जीवन की घटनावलियाँ देदी जायँ। असल बात तो यह है कि लेखक उसके जीवन में प्रच्छन्न उसके विकास को, उसके व्यक्तित्व के रहस्य को पाठक के सामने खोल-कर रख दे। उसके जीवन के परदेमें जो भाव राशि, जो विचार-धाराएँ काम कर रही हों, उनको प्रत्यक्ष करे। ऐसा करके वह मानव-चरित का ज्ञान तो कराता ही है, महापुरुष के जीवन के साथ पाठक के जीवन को गूँथता भी है। मनुष्य की दुरूह एव जटिल प्रकृति के अन्तराल मे जो सत्य प्रकाशित होता है, उसे विविध प्रवृत्तियों एव संस्कारों के बीच डूबकर बाहर निकाल लाना जीवनचरित लेखक का प्रधान कर्तव्य है। ऊपर मे मनुष्य का जो रूप दिखाई पड़ता है, उसे ही दिखा देना और आव-रण के अन्दर पैठकर उसका अन्त रूप न दिखाना निकृष्ट श्रेणी की जीवनी लेखन-प्रणाली है। जहाँ व्यक्ति का अन्त रूप पाठक के सामने प्रत्यक्ष हो जाय वहाँ जीवनी-लेखक की सफलता है।

इसीलिए पाश्चात्य देशों के साहित्य में व्यक्तित्व की समीक्षा एव विश्लेषण की ओर विशेष ध्यान दिया गया है और 'शब्द-चित्र' (sketch) लिखने की कला तो बहुत उन्नत हो चुकी है। फ्रेंच-साहित्य अपनी शक्तिमान जीवनियो से गौरवास्पद है। अंग्रेजी में गार्डिनर, निकोल्सन और हेराल्ड लास्की व्यक्तियों के 'शब्द-चित्र' लिखने में सफल हुए हैं। पर जहाँ तक हम जानते हैं, हिंदी में सिवाय प० बनारसीदास चतुर्वेदी के दूसरे किसी लेखक ने इस ओर ध्यान नहीं दिया और ध्यान दिया भी हो तो वह न देने के समान ही है। चतुर्वेदीजी की एण्डरूज साहब की जीवनी वर्षों पूर्व मैंने पढी थी। यह तब की बात है जब वह अपने नाम से नहीं लिखते थे। पर तभी मुझे उनकी जीवनी लिखने की शक्ति पर विश्वास हो गया था। समय के प्रवाह में बहते-बहते पण्डितजी यद्यपि हिंदी साहित्य-क्षेत्र में प्रत्यक्ष रूप से आगये हैं और उनकी सेवा का लाभ 'विशाल भारत' के रूप में हिंदी को मिल रहा है पर परिस्थिति से भी, और प्रवृत्ति से भी, वह एक साहित्यिक प्राणी हैं। सौभाग्य ने उन्हें राजनीति के दुर्वह एव कुटिल क्षेत्र से अलग रखा है इसलिए उन्होंने प्रधानत साहित्य-कारों की ओर ही ध्यान दिया है। राष्ट्र-पुरुष अब भी वैसा ही पडा है। फिर चतुर्वेदीजी का ध्यान मुख्यत 'शब्द-चित्र' लिखने की ओर ही है और 'शब्द चित्र' से व्यक्ति का एक आभास तो मिल जाता है, एक झलक तो मिल जाती है पर दिल पर उसकी छाप बैठती नहीं। पूर्ण जीवनी वह है जिसमें 'शब्द-चित्र' के साथ ही व्यक्ति का गहरा अध्ययन भी हो—उसकी प्रवृत्तियों, सस्कारों, भावधाराओं और मानसिक निर्माण की समीक्षा भी हो।

बहुत दिनों से मेरा ध्यान इधर जा रहा था। १९२९ में 'त्यागभूमि' में 'जवाहरलाल' पर, एवं राजपूताना के कुछ स्थानीय नेताओं पर, मैंने एक अध्ययन एवं कुछ शब्द-चित्र लिखे। वे पसंद किये गये। उसके बाद १९३२ ई० मे, जब मैं जेल में था, मेरा ध्यान इस ओर विशेष रूप से गया। कुछ लिखने की इच्छा हुई। समय भी था, सुविधा भी थी। पर वहाँ अन्य विषयों का अध्ययन चलता रहा। अध्यात्मवाद जेल का प्राण है। उससे मैं गरीब कैसे छूट सकता था? बाकी समय मनोविनोद में निकल जाता। किन्तु जेल से आते ही मैंने गाँधी जी पर कुछ लेख हिन्दी और अंग्रेजी मे लिखे। पीछे भारत के हित में निकाले जाने वाले एक अमेरिकन मासिक के लिए अंग्रेजी मे भारतीय नेताओं पर कुछ लिखने का निश्चय किया। दो लेख लिखे भी, पर वह पत्र निकल न सका। इसलिए फिर हमने हिन्दी में ही इस विषय पर एक पुस्तक लिखने का निश्चय किया। और अगस्त १९३२ से लेकर सितम्बर १९३३ तक—एक वर्ष से भी अधिक परिश्रम करके इसे लिख डाला। लिखने में तो आधा समय भी न लगा होगा। अध्ययन मे बहुत समय गया। कभी-कभी मुझे ८-८, १०-१० घण्टे प्रति दिन इसके लिए परिश्रम करना पड़ा है। क्योंकि एक तो जिन नेताओं पर मुझे लिखना था उनमें से कई जीवित हैं और जीवित मनुष्य के जीवन पर कोई निर्णय देना उससे कहीं कठिन है जितना मृत पुरुष पर। दूसरे राजनीति के क्षेत्र में काम करने वाले नेताओं के जीवन का ऊहापोह करना साहित्यकार की जीवन-समीक्षा से अधिक जटिल अथच कठिन कार्य है क्योंकि कभी-कभी उनके जीवन की दिशा एवं गति में ऐसे आकस्मिक परिवर्तन हो जाते हैं कि

पिछला सारा 'रेकर्ड' उलट जाता है।

एक पुस्तक मे जीवनी के सब अगो पर ध्यान दिया गया है। (अ) जीवन-कथा, (आ) जीवन का विश्लेषण एव अध्ययन ,(इ) सस्मरण (ई) शब्द-चित्र,—जीवनी की परिपूर्णता के लिए आवश्यक चारों बातें इसमें मिलेंगी। राष्ट्रीयता के विकास एव घटनावलियों के क्रम को स्पष्ट करने के लिए प्रत्येक जीवनी के अन्त में जीवन-तालिका दी गई है।

इस पुस्तक के लिखने में सबसे अधिक प्रेरणा एव सहायता मुझे 'अलकाफिर' की 'पिलर्स ऑव् नेशन' नामक पुस्तक से मिली है। जिसके लिए में उक्त लेखक का आभारी हूँ। इसके आलावा लगभग २८० पुस्तकों एव लेखों (जिनमें से कुछ की सूची अलग दी गई है) से जो सहायता मुझे मिली है उसके लिए भी मैं उनके लेखको एव विचारकों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। इस पुस्तक में जो अच्छाई है वह उनकी प्रेरणा का फल है और जो दोष हैं वे मेरी निजी अपूर्णताओं एव त्रुटियों के परिणाम हैं। उदार पाठक हस की नाई अच्छाइयों का दूध पी लें और दोषों का पानी अलग छोड़ दें।

अजमेर
४-९-३३

श्रीरामनाथ 'सुमन'

भारतीय राष्ट्रीयता का विकास

Stone by stone to raise a sacred fane,
A temple, neither Pagod, Mosque nor Church
But loftier, simpler, always open door'd
To every breath from Heaven

'राष्ट्र' का शुद्ध शाब्दिक अर्थ चाहे जो हो पर आज की दुनिया में जब हम उसका उच्चारण करते हैं तो हमारे मन में किसी देश में रहने वाले निवासियों की सामाजिक एकता का ही भाव नहीं होता वरन् देश का एक अपना व्यक्तित्व है, यह ध्यान भी रहता है। इस दृष्टि से देखें तो आधुनिक काल में १८५७ के भारतीय सैनिक विद्रोह से हमारी राष्ट्रीय भावना का जन्म होता है। यह ठीक है कि इस विद्रोह पर धार्मिकता का परदा पड़ा हुआ था पर वह केवल इसलिए कि भारतीय भावना स्वदेश और स्वधर्म को एक में मिलाकर देखती थी। और थोड़ी बहुत मात्रा में यह क्रम आज तक चला जा रहा है।

राष्ट्रीयता का जन्म

पर भारतीय विद्रोह के बाद जब देश का शासन महारानी विक्टोरिया के हाथ में आया और उनकी घोषणा के फल-स्वरूप धीरे धीरे पश्चिमी ढंग की संस्थाओं से भारतीयों का परिचय बढ़ा तब भारतीयों के मन में भी पाश्चात्य शासन-प्रणालियों के अध्ययन एवं विवेचन की इच्छा उत्पन्न हुई। इस अध्ययन

पश्चिम का प्रभाव

ने आकांक्षाओं को जन्म दिया। इङ्गलैण्ड, अमेरिका इत्यादि के इतिहासों में, देश के लिए जो दर्द, जो वेदना और 'अपना देश, अपना शासन' की जो प्रेरणाएँ छिपी थीं उनको पढ़ सुन और गुनकर भारतीयों के हृदय भी स्वतन्त्रता के स्वप्नों से भरने लगे। सार्वजनिक जीवन का जन्म हुआ और १९ वीं शताब्दी के अन्तिम चतुर्थांश में तो ये भावनाएँ संस्थाओं का रूप भी पकड़ने लगीं।

प्रथम युग

१८८५ ई० में राजनीति को लेकर कांग्रेस का जन्म हुआ। इस संस्था ने भारतीय सार्वजनिक जीवन में सबसे महत्वपूर्ण अभिनय किया है। आरम्भ में तो यह सरकार और (भारतीय) जनता के बीच सहयोग के आधार को लेकर चली थी। इसीलिए गवर्नरों एवं वायसरायों ने इस पौधे में पानी डाला। पर सार्वजनिक मत का प्रतिनिधित्व करने वाली संस्थाएँ शासन तन्त्र की छाया में कभी पनप नहीं सकतीं। शासन संस्था (Executive Government) सदा अपने भौतिक दृष्टिकोण को, अपने सर्वाधिकार को लेकर चलती है, जब सार्वजनिक जीवन नैतिक आधारों पर खड़ा होना चाहता है, फलतः आवेदन निवेदन के मार्ग पर डरती डरती बढ़ने वाली इस संस्था के सम्बन्ध में भी वही बात पैदा हुई। शासकों की निरन्तर उपेक्षा गोरे काले के वर्ण भेद ने आशाओं के वे सुनहरे स्वप्न तोड़ दिये। निराशा आई और पर लगे। अपनी आत्मा की कीमत पर खरीदे हुए पुचकारों एवं चारों से निराश भारतीय जनमत का पक्षी डैनों को फटकारकर उठा और मुक्त गगन में उड़ चलने की आकांक्षा उसके हृदय में पैदा हुई।

कांग्रेस का जन्म

ज्यों ज्यों पक्षी सचेत हुआ, उसके बाहर उड़ जाने की आशंका से पिंजड़े की दीवारें मजबूत होती गईं। इस जीवन और चेतना को कुचल कर मिटा देने पर शासकों ने कमर कसी, पर यह उनकी भूल थी

उनके सम्पर्क और उनके इतिहास ने ही जिस प्रवृत्ति को जगाया, और जो प्रत्येक प्राणी में जन्मजात है, स्वतंत्रता की वह नैतिक एवं प्राकृतिक प्रेरणा दमन के अस्त्रों से रुक न सकी। उसने आग में घी का काम किया। इसी समय जापान रूस युद्ध में जापान की विजय ने एशियाई देश में एक उत्साह भर दिया।

दूसरा युग

धीरे धीरे राष्ट्रीय जीवन का बाल्पन बीता, कैशोर आया। इस समय बंगाल सब से जाग्रत एवं जीवित प्रांत था। उसकी स्वतंत्रता की भावना कुचलने के लिए (लार्ड कर्जन-द्वारा १९०५ में) उसके टुकड़े कर दिये गये। बात बंगाल के मर्मस्थल पर जाकर लगी। वह क्षुब्ध हो उठा। और जैसे उसकी सोई हुई आत्मा युग-युग से संचित गौरव को लेकर उठ खड़ी हुई, जैसे उसके जीवन में एक तूफान फट पड़ा। भारतीय राष्ट्रीयता दृढ़ और संगठित होकर पहली बार अंग्रेजी शासन क्षमता के विरुद्ध तनकर खड़ी हुई। उत्पादक शक्तियों की दृष्टि से लें तो वैसा युग फिर हमारे राष्ट्रीय जीवन मे न आया। बंग भंग में भारत ने साहित्य में, विज्ञान में, कला-कौशल में—प्रत्येक क्षेत्र में जिस अद्भुत भावावेश की अनुभूति की और उसके कारण जो सृजन हुआ वह फिर न हुआ। रवीन्द्रनाथ, अवनीन्द्रनाथ ठाकुर, डी० एल० राय, जगदीशचन्द्र बसु इत्यादि भारत एवं विश्व को उसी युग की देन है। भारतीय राष्ट्रीयता के विकास में बंग भंग का स्थान लगभग 'रिनैंसा'-जैसा है। इसने हमारा दृष्टि-कोण बदल दिया। और वह पहली बार सैनिक वेश में हमारे सामने आकर खड़ी हुई।

बंग-भंग

पर बंग भंग ने शक्ति की जो धारा हमारे जीवन में बहाई उसका उपयोग हम उचित रूप में न कर सके। निरन्तर लगन के साथ चलने वाली ठोस राष्ट्रीयता की जगह वह भाव प्रवाह के रूप में बदल गई। जिन लोगों के हाथ में राष्ट्र का नेतृत्व था वे इस धारा से लाभ न उठा सके, बल्कि

अपनी जीवन हीनता, अपनी अकर्मण्यता अपनी जरूरत से ज्यादा सावधान और शान्ति रहने की प्रवृत्ति के कारण वे तट पर खड़े हो गये, धारा आगे बढ़ गई। वे उसका नेतृत्व न कर सके।

यह हम माडरेट नेताओं—गोखले, फीरोजशाह मेहता, सुरेंद्रनाथ इत्यादि—की बात लिख रहे हैं। देश का नेतृत्व इन लोगों के हाथ में था। दूसरी ओर ज्यादा व्याकुल हृदयों का क्षोभ, अपनी एक अलग की प्रेरणा और अलग की 'फिलासफी' लेकर भारतीय क्रान्तिकारियों के रूप में फूट पड़ा। उनकी नीति जहाँ विस्तृत एवं व्यापक प्रयोग के अनुकूल न थी, क्योंकि उनके पास जनता के सामने रखा जा सके, ऐसा कोई कार्यक्रम न था, तहाँ उनकी ज्वलन्त देश भक्ति, उनका आत्म-बलिदान एवं उनकी भावुकता एक आश्चर्य की भाँति भारतीय वातावरण में चमकी। इस विषय में इनकी प्रशंसा उन अंग्रेज अधिकारियों ने भी की है जिनपर उनके विनाश की जिम्मेवारी डाली गई थी।

क्रान्तिकारी

पर जहाँ माडरेट नेता समय की प्रगति के अनुकूल अपने को न बना सकने के कारण पिछड़ते जा रहे थे तहाँ कार्यक्रम की अव्यावहारिकता एवं अपूर्णता के कारण क्रान्तिकारी भारतीय आकांक्षा की पूर्ति न कर सकते थे। इसलिए इन दोनों के बीच इनके मिश्रण सा एक तीसरा दल भारतीय राजनीति में पैदा हुआ। माडरेटों—नरमों—ने, व्यंग के तौर पर, इसे उग्रदल (Extremists) के नाम से पुकारा, यद्यपि इस व्यंग की कोई आवश्यकता न थी। इस दल की क्रान्तिकारियों के साथ सहानुभूति तो थी पर इसने उनका मार्ग न अपनाया और एक दृढ़ता का स्वर लेकर भारतीय प्रांगण में आया। तिलक, लाजपतराय, शिशिरकुमार घोष, अरविन्द इत्यादि इसके नेता थे। १९०७ की सूरत कांग्रेस में उस नरम और इस गरम दोनों दलों की टक्कर हुई। पर यह गरम या उग्रदल की प्रारंभिक अवस्था थी।

उग्र-दल

भारतीय राष्ट्रीयता का विकास

१९०७ ई० से १९१८ तक हम इस दल को धीरे धीरे विकसित होता देखते हैं। १९१८ के बाद इसमें विशेष दृढ़ता आई क्योंकि तबतक माडरेट नेताओं में से कई—गोखले, मेहता इत्यादि—का देहावसान हो चुका था, कई (भूपेंद्रनाथ वसु इत्यादि) सरकारी नौकरी में चले गये थे और कई सार्वजनिक जीवन से अलग से हो रहे थे। केवल सुरेन्द्रनाथ बचे थे पर उनमें जहाँ महान् बौद्धिक प्रतिभा थी वहाँ नैतिक साहस का अभाव था इसलिए मैदान बहुत करके खाली हो गया था और वह दिन दिन उग्र दल के हाथ में आता गया। महायुद्ध ने जो नई प्रेरणाएँ पैदा कीं, उनसे भी इस दल को सहायता मिली।

नरम गरम दोनों आवश्यक

जब हम नरम गरम दोनों दलों की प्रवृत्तियों का विश्लेषण और अध्ययन करते हैं तो मालूम पड़ता है कि हमारी राष्ट्रीयता के विकास में दोनों एक दूसरे के पूरक हैं और दोनों हमारी राजनीति के स्वाभाविक उपकरण हैं। वस्तुतः ये एक ही आन्दोलन के दो पक्ष हैं। एक ही दीपक के दो परिणाम हैं। पहला प्रकाश (light) का द्योतक है दूसरा गरमी (heat) का। पहला बुद्धि पक्ष है, दूसरा भाव पक्ष। पहला जहाँ कुछ सुविधाएं, कुछ सहूलियतें प्राप्त करना चाहता है वहाँ दूसरे का उद्देश्य राष्ट्र में मानसिक परिवर्तन करना है।

परन्तु शुद्ध राष्ट्रीयता की दृष्टि से किसी दलित राष्ट्र को पहले उन वस्तुओं और भावों की आवश्यकता होती है जिन्हें लेकर चलने का दावा गरम दल करता है। बिलकुल प्रारंभिक अवस्था में तो भूमिका की, मिट्टी में खाद डालने की, जरूरत पड़ती है। नरमदल के प्रारंभिक नेताओं ने यह किया, उन्होंने जमीन तैयार की। पर जब पौधा उगा तो उसे गरमी की जरूरत हुई, प्रकाश भी आवश्यक हुआ। गरम दल की रखवाली का समय आया। स्वाभावतः राष्ट्रीयता के विकास के साथ उसका बीज बोने वाले नरमों का अन्त हो जाता है। आज वे राष्ट्रीय युद्ध में नगण्य से हैं।

बात यह कि स्वतन्त्रता के युद्ध में, दलित राष्ट्र को पराधीनता के अंधकार से निकालकर स्वतन्त्रता के प्रकाश में लाने में गरम दल, अपने प्रकृति के कारण ही, अधिक आवश्यक हो जाता है। स्वतन्त्रता का प्रत्येक आधार वस्तुतः मानसिक परिवर्तन और आत्मावलम्बन का मनोवैज्ञानिक निश्चय है। इस दृष्टि से सार्वजनिक जीवन में भाव प्रवाह लाने वाले आन्दोलन का—मतलब गरमदल वाले का—दर्जा, बुद्धि पक्ष को व्यक्त करने वाले नरम से कहीं बढ़ा चढ़ा है। इसलिए कि यह भावप्रवाह ही जनता को बल देता है, यह पराधीनता की वेदना उत्पन्न करता है, यह उसे आत्म-बलिदान की शक्ति देता है, यह उसमें देश के लिए पागल होने का वह भाव उत्पन्न करता है जो खतरों को नहीं देखता और जो बाधा-बंध विहीन होकर सार्वजनिक जीवन में ताण्डव करता है और राष्ट्रीय व्यक्तित्व के निर्माण में जहां जहां दुर्बलताएं पाता है, काटकर फेंक देता है। इस दृष्टि से हमारे तिलक, दास, लाजपत राय, जवाहरलाल हमारे शास्त्री और सप्रू से अधिक महत्वपूर्ण और अधिक उपयोगी हैं।

गरम दल की उपयोगिता

हां, तो १९१८ के बाद भारतीय राजनीति में गरमदल के स्वर में अधिक दृढ़ता आने लगी। महायुद्ध ने, जो दुर्बल जातियों की रक्षा, स्वतन्त्रता और आत्म निर्णय के अधिकार के नाम पर लड़ा गया था, लोगों की स्वतन्त्रता की प्यास को और प्रबल कर दिया था। देश भक्ति के भाव दिलों में पैठ रहे थे। भारत ने महायुद्ध में ब्रिटेन की जो सेवा की थी उसके कारण एवं उस समय की गई प्रतीक्षाओं के कारण युद्ध की समाप्ति पर उसने आशा के साथ ब्रिटेन की ओर देखा। इसी समय—बंग भंग के ठीक पन्द्रह वर्ष बाद—रौलट ऐक्ट पास हुआ और पंजाब की वे घटनाएँ हुईं जिनसे भारत की आत्मा काँप गई। आशा के समय वज्रपात हुआ। पंजाब हत्या-काण्ड के रूप में भारत ने ब्रिटिश साम्राज्य का नग्न ताण्डव देखा। इंग्लैंड की आत्मा में जो विष एवं

गरम दल का युग

प्रवचना थी वह बाहर आ गई। भारत का स्वप्न भग होगया और इस स्वप्न भग के समय, राष्ट्र के अत्यन्त मनोवैज्ञानिक क्षण में, भारतीय क्षितिज पर गाधीजी अपनी फिलासफी और अपना असहयोग का कार्यक्रम लेकर आये। भारत अपने पैरों खडा हुआ। आवेदन निवेदन का युग बीता। घटनाओं ने माडरेटों के किले को उखाडकर फेंक दिया। यहा से भारतीय राष्ट्रीयता का तीसरा युग आरम्भ हुआ।

तीसरा युग

गाधी जी का प्रयोग भारतीय राजनीति में—क्या विश्व राजनीति में—एक नया प्रयोग था। वह शुद्ध नैतिक आधारों को लेकर खडा हुआ।

गाधी का आगमन

शरीर बल की जगह आत्मबल को प्रतिष्ठित किया गया। यह तो भारत के लिए कोई नई बात नहीं थी। पर इतने व्यापक क्षेत्र में शुद्ध आत्म बल का—नैतिक अस्त्रों का—प्रयोग भारत क्या, दुनिया के लिए एक बिल्कुल नई चीज थी। इसने राष्ट्रीय युद्ध को प्रधानत सास्कृतिक युद्ध बना दिया। भारतीय सस्कृति की 'स्पिरिट' एव उसके व्यक्तित्व की रक्षा और विकास ही उसका उद्देश्य था। शताब्दियों के बाद सार्वजनिक जीवन में दृढता से यह स्वर सुन पडा कि मनुष्य केवल रोटी खाकर नहीं जी सकता। भारतीय व्यक्तित्व अपने को भूल रहा था, गाधी ने उसे फिर जगाया। १९२० के बाद की हमारी राष्ट्रीय अभिव्यक्ति बहुत करके गांधी के व्यक्तित्व का प्रकाश है। इसमें गाधी का व्यक्तित्व और राष्ट्र का व्यक्तित्व जैसे मिलकर एक हो गया है। यदि ध्यान से देखें तो मालूम होगा कि यह हमारी राष्ट्रीयता के विकास में आश्चर्य-जनक घटना है। राष्ट्र एव युग पुरुष के एक में यों ओत प्रोत हो जाने से जो साधना गाधी की आत्मा में चल रही थी, वहा हमारे सामने व्यक्त हुई। एक अर्थ में राष्ट्र इस महापुरुष की आत्मिक साधना की एक प्रयोगशाला बन गया।

और गांधी के क्षितिज पर अवतीर्ण होते होते ही सार्वजनिक जीवन में जो जागृति आई वह अद्भुत थी और है। १९२० के पहले का कोई आन्दोलन, विस्तृति एवं प्रभाव दोनों दृष्टियों से, उसका मुकाबला नहीं कर सकता। इसके पहले के आन्दोलन शिक्षित वर्ग तक ही सीमित थे। अब जन समूह भी उसमें शामिल हुआ। 'क्लासेस' (वर्ग) से 'मासेस' (सर्व साधारण) तक की यह उत्क्रान्ति अध्ययन की चीज है। इसने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को जहां असीम शक्तियाँ प्रदान कीं जहाँ उसमें जीवन, बल एवं उत्साह का ज्वार आया वहाँ समूह के—'मॉब' के—साथ चलने वाली अंधता एवं पागलपन भी आया।

अद्भुत जागृति पर पागलपन भी

राजनीति में गांधी के धर्म प्रयोग एवं सत्य साधना में जहाँ असीम संभावनाएँ थीं (और है), वहाँ उसमें असीम खतरे भी थे (और हैं)। यह कहा जा सकता है कि खतरों से डरकर दुनिया में कोई महान् कार्य नहीं हुआ और यह भी कहा जा सकता है कि ऐसे महान् प्रयोगों का परिणाम, आगे चलकर, अच्छा ही होता है। पर हम जब खतरे की बात कह रहे हैं तब हमारा मतलब उन बलिदानों से नहीं है जो प्रत्येक महान् कार्य की सफलता के लिए आवश्यक होते हैं। हमारा ध्यान दूसरी तरफ है और उसका जिक्र हम जरा विस्तार से करेंगे। इसी तरह दूसरी बात का जवाब यह दिया जा सकता है कि राजनीति 'सुदूर' को लेकर कभी नहीं चलती, वह 'तुरत' को, निकट—इमीजियेट को लेकर चलती है।

इस धर्म प्रयोग में खतरा भी है

जब हम खतरे की बात कह रहे हैं तो जन समूह को लेकर चल रहे हैं जो १९२० के बाद हमारे आन्दोलन का एक दृढ़ स्तंभ बन गया है।

बात यह कि राजनीति में इस प्रकार का धर्म प्रयोग जहाँ हमारे हृदयों को विशाल और उन्नत करने का दावा करता है वहाँ वह हमें एक ऐसी खाई में भी गिरा सकता है जहाँ से निकलना अत्यन्त कष्ट-साध्य हो

जाय। यह सब वस्तुतः इस बात पर निर्भर है कि जन समूह कैसा है और जिस जन समूह को लेकर हम प्रयोग करते हैं वह उसे किस रूप में ग्रहण करता है। ऐसे समय यह बात भूल न जानी चाहिए कि किसी भी देश और काल में जन-समूह मुख्यतः पुरातन समय से चली आई हुई रूढ़ियों एवं संस्कारों को लेकर ही चलता है। वह तात्त्विक विवेचनाओं से सम्बन्ध नहीं रखता, वह दुनिया की सतह पर होने वाली विविधताओं को सीधे सीधे ढंग से ग्रहण करता है। वह एक भिक्षुक को दुःखी देखकर उसे दो पैसे दे देता है और एक विधवा को दिल की आग में जन्म भर तिल-तिल जलने के लिए छोड़ देता है। एक दिन वह जिस नेता को सिर पर चढ़ाता है और उसके चरणों में श्रद्धाञ्जलियाँ अर्पण करता है उसे ही कुछ दिन बाद फाँसी के योग्य समझता है। एक ओर वह साधु सन्तों की सेवा करके सुखी होता है और दूसरी ओर साधु का खून पी जाने को [illegible]। परस्पर विरोधी सिद्धान्तों एवं तत्वों को जन समूह मानव जीवन के सत्य के रूप में ग्रहण कर लेता है और इस विवेचना में पड़ना नहीं चाहता कि यह रास्ता आत्मोन्नति की किस अवस्था तक ले जाता है। बुद्धि नहीं, विश्वास उसका अस्त्र है। विवेचन नहीं, परम्परा उसका [illegible] है। उसके धार्मिक इतिहास में उसके मार्ग का समर्थन करने वाले [illegible] उदाहरण भरे पड़े हैं। हिन्दू हो या मुसलमान [illegible] इन्हीं से पथ-प्रदर्शन—प्रकाश—ग्रहण करता है। औसत दर्जे का हिन्दू (जिससे हिन्दू जन समूह बनता है) उपनिषद् की [illegible] विचारों का [illegible] नहीं [illegible]। वह गोसाईं तुलसीदास एवं उन पुराणों [illegible] ग्रन्थों को लेकर चलता है जिनमें उसके योग्य सब [illegible]—[illegible] विश्वास भी—[illegible] मिल जाते हैं। वह रामायण [illegible] तात्त्विक विवेचना करके [illegible] समन्वय या सामञ्जस्य करने नहीं बैठता। वह तो रामायण के [illegible] तम्बाकू की फूँक [illegible] [illegible] ही [illegible] है [illegible]

> *Margin note:* जन समूह का मानसिक निर्माण

चरित की दुर्बोधता पर घृणा से मुँह भी फेर लेता है। विवेचक कहेगा कि गोस्वामीजी के लिखने का यह अर्थ नहीं, वह अर्थ नहीं पर यहाँ प्रश्न यह नहीं है कि गोस्वामीजी के लिखने का क्या अर्थ था। प्रश्न यह है कि समूह उसे किस अर्थ में लेता है क्योंकि उसी अर्थ का अनर्थ करने वाले समूह को लेकर हम राजनीति में चलना है।

इस दृष्टि से जब हम विचार करते है तब हमें मालूम होता है कि महान् उद्देश्यों की दृष्टि से जहाँ राजनीति में यह धर्म प्रयोग असीम सम्भावनाओं से भरा हुआ है वहाँ वह खतरे से खाली नहीं। जन-समूह के लिए हिंसा-अहिंसा सुविधा का प्रश्न मात्र है आत्मोपयोग का साधन नहीं। यह ठीक है कि मनुष्य जान-बूझकर झगड़ा नहीं चाहता पर जब उसमें जोश आता है और वह पागल हो जाता है तब वह इसे भूल जाता है। उसकी शान्ति और उसका प्रमाद दोनों उसके जीवन में साथ साथ चलते हैं। और भीड़ से बढ़कर मनुष्य के दिमाग पर असर डालने वाली—उसे पागल करने वाली दूसरी चीज नहीं। साधारण मनुष्य के लिए यही—सख्याबल—उसके उत्साह का स्रोत है। इसी को देखकर वह अपने कर्तव्य का निश्चय करता है।

ऐसा जन-समूह धर्म की उस तात्विक महानता को नहीं समझ सकता जो गांधी की आत्मा में आज प्रत्यक्ष हो रही है—बोल रही है। भावावश के दो पक्ष सच पूछें तो हममें से (जिन्होंने गाँधी को बिल्कुल अपना लिया है), भी बहुत ही थोड़े ऐसे निकलेंगे जो इन बातों को समझने का दावा कर सकें। इसलिए इस महान् प्रयोग के भावावेश में, जहाँ हम १९२१ में हिंदू मुसलमान को यों मिलते देखते हैं जैसे दो बिछुड़े भाई या किसी संगम पर मिलने वाली दो धाराएँ जहाँ हम मुसलमान को हिन्दू त्योहारों पर पान इलायची बाँटते और हिन्दू को मुसलमानों उत्सवों पर शर्बत पिलाते देखते हैं तहाँ तीन वर्ष बाद ही एक-दूसरे के गल पर दुधारी चलाते भी देखते हैं। यह एक ही भावावेश

के दो पक्ष हैं। और दोनों ही सत्य हैं। ठीक वैसे, जैसे अंधकार और प्रकाश, रात दिन, बुराई भलाई, युद्ध और शान्ति दोनों जीवन की दो दिशाओं को प्रकट करने वाले सत्य हैं। मानव-जीवन में चिर-काल से जो संघर्ष चल रहा है उसके यही दो पक्ष हैं। विवेकवान इनमें से श्रेष्ठतर को—प्रकाश के मार्ग को चुन लेता है पर समष्टि में—जनसमूह में, मात्रा की कमी-ज्यादती के साथ दोनों व्याप्त रहता है।

इसलिए जिस अर्थ में जन-समूह धर्म को लेकर चलता है उस अर्थ में वह राष्ट्रीयता का विघातक है। इस मिट्टी में राष्ट्रीयता का पौधा पनप नहीं सकता। राष्ट्रीयता का जन्म ही तब होता है जब विविध जातियाँ अपनी सत्ता को, अपनी विविध प्रवृत्तियों को राष्ट्र के महान् व्यक्तित्व में निमज्जित कर देती हैं। जबतक हिन्दू हिन्दू है और मुसल्मान मुसल्मान (उस अर्थ में जिसमें औसत दर्जे का आदमी अपने को लेता है) तबतक भारतीयता का दृढ़ आधार नहीं बन सकता। वह तब बनेगा जब हम न हिन्दू रहेंगे, न मुसल्मान, भारतीय रहेंगे। इस भारतीय में वह सदाचार का भाव अपने-आप आ जाता है जो हिन्दू धर्म या इस्लाम की प्रेरक भावना है। राष्ट्रीयता तो समष्टि में व्यष्टि—समाज में व्यक्ति—के निमज्जन की एक सीढ़ी है—एक 'प्रासेस' है। इस दृष्टि से देखें तो आज हम दो पाटों के बीच पिस रहे हैं। एक विदेशी शासन का पाट है और दूसरा धर्म (के बाह्याचार) से उत्पन्न अगणित रूढ़ियों का। और सच कहें तो दूसरे की गुलामी पहले से कहीं भयानक है। वह जीवन का सारा रस और रक्त पी जाती है,—जो राष्ट्रीयता एवं विश्व-कल्याण के पौधे को सींचने में लगता। धर्म (के इस बाह्याचार) ने हममें से स्वतन्त्रता की भावनाएँ और वृत्तियाँ ही हर ली हैं। वह विदेशी और यह देशी गुलामी—दोनों मानसिक शक्तियों को दुर्बल करती हैं और स्वतन्त्र विवेक के विकास को रोकती हैं। आज का हिन्दू धर्म या इस्लाम शुद्ध हवा में हमारे साँस लेने में भी बाधक है।

हमारी गुलामी हमारी इस प्रकार की धार्मिकता के विस्तार के समानान्तर चलती है। धर्मान्ध व्यक्तियों—फिर चाहे वे शास्त्री हों या

धर्मान्धता बनाम राष्ट्रीयता

मुल्ला—का सार्वजनिक जीवन पर जितना ही प्रभाव रहेगा उतना ही हमारी गुलामी गहरी होगी। जिस धर्म में स्वतन्त्रता की जितनी 'स्पिरिट' होगी वह उतना ही राष्ट्रीयता के अनुकूल पड़ेगा। जैसे आर्य समाज, अपनी सारी दुर्बलताओं और अपूर्णताओं के साथ भी, राष्ट्रीयता का वातावरण उत्पन्न करने में सनातनधर्म (सारी अच्छाइयों के साथ भी) से कहीं अधिक सहायक हुआ है। ब्रह्म समाज आर्य समाज से भी अधिक अनुकूल पड़ता है। इसी प्रकार कमाल पाशा का नया इस्लाम मुल्ला शासित समाज के इस्लाम से कहीं अधिक स्वतन्त्रता के अनुकूल होगा। यह हो नहीं सकता कि एक ओर हिन्दू राष्ट्रीयता का स्वप्न लेते और दूसरी ओर अपने अधिकार पर खड़ा होने को उत्सुक 'अछूत' को क्रोध से, उपेक्षा से ललकारे और दुरदुराये। वह राष्ट्रीयता, जो ऐसी अवस्था चलने देती है और उसमें हस्तक्षेप नहीं करती, बालू की भीत है। वह धर्म जो नारी को परदे में बन्द करने के शास्त्रीय प्रमाण ढूँढता है और इस प्रकार राष्ट्र की असीम शक्ति को कैद करके, कुण्ठित करके रखना चाहता है, राष्ट्रीयता का शत्रु है। वह हमारी गुलामी को दृढ़ करता है हमारी बाढ़ को रोकता है। राष्ट्रीयता और यह धर्मान्धता एक दूसरे के बिल्कुल प्रतिकूल हैं। इसी लिए इतिहास में हम देखते हैं—और आज भी प्रत्यक्ष देख रहे हैं—कि जो दल धर्म में जितना ही कट्टर होता है वह राजशक्ति का उतना ही कट्टर एवं प्रबल समर्थक होता है। वस्तुतः राज्य एवं इस प्रकार की धर्मान्धता दोनों मानवी आत्मा की अन्तःप्रेरणा और अन्तःस्वीकृति पर नहीं, भौतिक बल पर, 'फोर्स' पर आश्रित हैं और जहाँ धर्म के बाह्याचार की रक्षा करते हैं वहाँ धर्म की आत्मा को, 'स्पिरिट' को (जो सदाचार के अतिरिक्त दूसरी चीज नहीं हो सकती) पंगु एवं कुण्ठित कर डालते हैं।

आज भारतीय मुसल्मान, हिन्दुओं की अपेक्षा, विदेशी सत्ता के अधिक शक्तिमान मित्र हैं और राष्ट्रीयता के उसी मात्रा में कम सहायक हैं। इसका कारण यही है कि वे हिन्दू की अपेक्षा विचार स्वातन्त्र्य में दुर्बल और कट्टरता में बढ़े हुए हैं। हिन्दुओं में लें तो आज वर्णाश्रम-संघ विदेशी शासन का सबसे शक्तिमान मित्र है। इसका एक और भी कारण है। धर्म का जो वर्तमान विस्तार है वह सत्ता को लेकर ही है। राजा रईस, धनी व्यापारी, ताल्लुकेदार के आश्रय में ही वह पलता है। परम्परागत धर्म में अगणित कट्टर ब्राह्मण इनके सहारे पल रहे हैं और उस कट्टरता एवं परम्परा के बीज आसपास के वातावरण में, माताओं में तथा उनके रूप में अगली सन्तति में बोते जा रहे हैं। जबतक यह सत्ता है, तभी तक यह कट्टरता है। उनको आश्रय देने वाली जो सत्ताएँ हैं वे शुद्ध राष्ट्रीय पक्ष के साथ खड़ी नहीं हो सकतीं—और खड़ी भी हों तो ज्यादा दूर तक चल नहीं सकता क्योंकि वे जानती हैं कि जो सर्वग्राही राष्ट्रीयता आज ब्रिटिश शासन का, विदेशी राज का विरोध कर रही है वह सफल होने पर उन्हें भी न छोड़ेगी।

सर्वग्राही राष्ट्रीयता की आवश्यकता

इसलिए हम देखते हैं कि वर्णाश्रम संघ तथा इसी प्रकार की अनेक धार्मिक संस्थाएँ एवं उनसे भी अधिक जन बल रखने वाला असंगठित समूह शुद्ध और सर्वग्राही राष्ट्रीयता को—वह राष्ट्रीयता जो सब क्षेत्रों में ओत प्रोत हो—स्वीकार करने को तैयार नहीं है। अपनी रक्षा की दृष्टि से उनका यह भय ठीक ही है कि यह सब आन्दोलन धर्म की जड़ (जिस रूप में वे धर्म को लेते हैं) पर कुठाराघात करने वाले हैं। किसी देश में क्रान्ति या तीव्र जागृति की लहर तब आती है जब दृष्टिकोण एवं मानसिक संगठन (mental make up) में एक दम परिवर्तन हो जाता है। यह बदला हुआ दृष्टिकोण प्रत्येक वस्तु का नया मूल्य आँकना चाहता है। इसमें पुरानी निधियाँ, पुरानी व्यवस्थाएँ बहुधा चूर चूर हो जाती हैं। वह

प्रत्येक चीज को देखकर प्रश्न करता है—ऐसा क्यों, वैसा क्यों नहीं? और प्रश्न करके ही नहीं रह जाता, उसका उत्तर भी चाहता है। इसलिए जब राष्ट्र में चेतना आती है, जब वह जगता है तो उस जागृति में जो-कुछ जीर्ण शीर्ण या न टिकने—जैसा होता है, धूल में मिल जाता है और इस मिट्टी से नूतन का निर्माण होता है। राष्ट्र का एक निज का व्यक्तित्व होता है, वह एक मनुष्य के समान ही है। इसलिए यह सभव नहीं कि राष्ट्र शरीर के एक अंग में हरकत हो और दूसरा निश्चेष्ट रहे। इस जागृति के हम टुकडे नहीं कर सकते। और वह जागृति बहुत कच्ची एव अस्थायी है जो राजनीतिक क्षेत्र में तो आँधी की तरह आती है पर धार्मिक या सामाजिक क्षेत्र की ओर आँख नहीं उठाती। पूर्ण जागृति वह है जो प्रत्येक क्षेत्र में उथल पुथल करती है।

इस दृष्टि से विचार करते हैं और भारतीय दलों एव उनके नेताओं को देखते हैं तो एक आश्चर्यजनक दृश्य दिखाई पडता है। एक 'लिबरल'—नरम—,जो सामाजिक मामलों में आगे बढ़ा हुआ है, राजनीतिक क्षेत्र में पिछडा हुआ है। एक ही मनुष्य जीवन के एक क्षेत्र में गरम, दूसरे में नरम है। जीवनमें सामञ्जस्य नहीं। इसी प्रकार एक उग्र राजनीति में तो आगे से आगे चलनेवाले दल के साथ है पर सामाजिक या धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप देखकर उफन पडता है। वह राजनीति में गरम है और समाज-सुधार के क्षेत्र में नरम है। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में सामञ्जस्य नहीं। हमारी राष्ट्रीयता की यह एक अत्यन्त विषम समस्या है। राष्ट्रीय जागरण की दृष्टि से जन सेवक के ये दोनों 'टाइप'—प्रकार—अपूर्ण हैं। सच्चे राष्ट्र सेवक की सामाजिक, धार्मिक एव राजनीतिक प्रवृत्तियाँ एक सतह पर होती हैं—सब में सामञ्जस्य होता है क्योंकि उनके जीवन का आधार एक ही, अपने में परिपूर्ण, जागृति है। राष्ट्र निर्माता के लिए यह परम आवश्यक है कि वह परम्पराओं के जाल से बाहर हो और धार्मिक अन्ध विश्वास या कट्टरता

नेताओं के जीवन में असमानता

सि दूर। अपने परिचित एव निकट के नेताओं को लें तो जवाहरलाल एव मोतीलालजी राष्ट्र-सेवक के सच्चे नमूने हैं। इनमें सिवा राष्ट्रीय भावनाओं के दूसरी भावनाएँ नहीं। ऐसा नहीं कि आधा दिल उन्होंने देश को सौंपा हो और आधा धर्म को—धार्मिक रूढ़ियों को। इसलिए भारतीय राष्ट्रीयता के निर्माण में नेहरू द्वय, हमारे तिलक, मालवीय, लाजपतराय इत्यादि से कहीं उज्ज्वल पक्ष लेकर आते हैं। मोपला विद्रोह उन्हें अपने पथ से हटा नहीं सकता, शुद्धि और तब्लीग की आँधी में वे अचल हैं। इनकी राष्ट्रीयता एक लौ से जलनेवाले दीपक की तरह हमारे राष्ट्र के मानस-मन्दिर म जल रही है।

सर्वोत्तम नमूना

इतनी बातें कर लेने के बाद हम निष्कर्ष निकालने बैठें तो इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि अभी हमारी राष्ट्रीयता अपने में परिपूर्ण नहीं हो पाई है। पर उसका विकास प्रत्यक्ष है। और विकास की दृष्टि से उसे तीन युगों में बाँट सकते हैं। १८५७ से १८८० तक का युग तो इस जागृति का भूमिका-पक्ष है। १८८० से १९०७ तक शुद्ध आवेदन निवेदन का युग है। यह राष्ट्रीयता का बचपन है और इसके पालक पोषक शुद्ध 'लिबरल' हैं। १९०५ ई० से कैशोर आता है। इसमें बचपन की ही प्रधानता है और 'लिबरल' ही अब भी इसके अभिभावक हैं पर इसमें उग्रता की—निर्भीकता की एक विशिष्ट भाव धारा भी बह चली है। यहो से जिसे उग्र दल कहा जाता है वह भी, किंचित संक्षेप रूप म, सामने आता है। १९०७ से १९२० तक का काल इस उग्रदल के क्रमिक विकास का काल है,—स्वर में धीरे धीरे दृढ़ता आती है। आवेदन की असफलताएँ एव निराशाएँ राष्ट्रीयता में आत्मावलम्बन की प्रवृत्ति पैदा करती हैं। १९२० से तीसरा—आत्मावलम्बन का युग शुरू होता है जो अभीतक चल रहा है। असहयोग एवं सत्याग्रह इस युग के दो व्यापक एव शक्तिमान आन्दोलन हैं जिनके कारण भारत में व्यापक उद्वेलन हम देखते हैं। इनमें राष्ट्रीयता

विकास-रेखा

अत्यन्त दृढ़ स्वर में बोलती है, वह अपने पाँव पर खड़ा होना चाहती है। इसमें असीम बल और भावावेश है पर अब भी वह विशुद्ध नहीं हो पाई है। अब भी उसमें बहुत मिश्रण और खोट है। चौथा युग वह होगा जिसमें हम हिन्दू और मुसलमान होकर आन्दोलन में शामिल न होंगे, वरन् केवल भारतीय होकर—मनुष्य होकर। कहा नहीं जा सकता, वह युग कब आयेगा। पर जितनी जल्दी वह आये, उतनी जल्द भारत का उद्धार है।

अस्पृश्यता पर जो प्रहार हो रहा है, परदे का जो विनाश हो रहा है वह इस युग को नजदीक लावेगा। ये परिवर्तन और सुधार राष्ट्रीयता का पक्ष मजबूत करते हैं। पर धर्म के नाम पर इन आन्दोलनों को करने में बड़ा खतरा है। आगे जाकर वे फिर नई रूढ़ियाँ पैदा करेंगे और स्वयं भी रूढ़ियों में बदल जायँगे। हमें अस्पृश्यता का पाप इसलिए दूर करना चाहिए कि वह राष्ट्रीयता के विकास में एक बड़ी बाधा है। यदि इस दृष्टि से इस आन्दोलन को चलावें तो आज जो वह केवल हिन्दुओं का प्रश्न बन गया है उसकी जगह वह राष्ट्र का प्रश्न बन जाता। और जब गांधी ने उसे कांग्रेस-कार्यक्रम में स्थान दिया तो निश्चय ही उसका यही तात्पर्य रहा होगा।

× × ×

आंदोलन में व्यक्तित्व

राष्ट्रीयता के विकास का जो खाका हमने ऊपर दिया है वह उन नेताओं के समझे बिना नहीं समझा जा सकता जिन्होंने उसको वर्तमान रूप तक पहुँचाने का काम किया है। विचार धाराएँ उनको लाने वालों से अलग नहीं की जा सकतीं। बिना भगीरथ के व्यक्तित्व को जाने भागीरथी का अर्थ समझना व्यर्थ का प्रयास है। इसलिए, इसी दृष्टिकोण से, इस पुस्तक में राष्ट्र निर्माता नेताओं के जीवन की समीक्षा की गई [illegible] का ठीक तरह से

अध्ययन करने पर हमें मालूम होता है कि कब-कब कौन-कौनसी धाराएँ हमारी राजनीति में—राष्ट्रीय जागरण के भाव-सागर में, आईं।

अब दो शब्द उन नेताओं के सम्बन्ध में भी, जिन्हें इस पुस्तक में रक्खा गया है। राष्ट्र निर्माण का क्रम—'प्रासेस'—इतना जटिल एवं उलझा हुआ (Complex) होता है कि उसके सम्बन्ध में दो दो चार-चार कह देने के समान कोई स्पष्ट एवं दो टूक निर्णय नहीं किया जा सकता। न जाने कितने संस्कार, कितनी विचार धाराएँ, कितनी प्रेरणाएँ उलझी हुई उसके साथ चलती हैं। उसके लिए भावावेश आवश्यक है, उसके लिए विचार विवेक आवश्यक है, उसके लिए पहाड़ को फोड़नेवाला धैर्य एवं उद्देश्य का स्थायित्व (Continuity of purpose) आवश्यक है। इन सब बातों पर विचार करके राष्ट्र निर्माता को भी चार श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है—

राष्ट्र निर्माता के चार प्रकार

१—वे जो आरम्भ में चुप चाप जमीन तैयार करते हैं। बहुधा, उनकी चाल बहुत धीमी होती है। इसलिए वे उस जन-समूह की निगाह में कम आते हैं। वे नींव में कंकरियाँ डालने का काम करते हैं। जैसे स्वामी विवेकानन्द, दादाभाई नौरोजी, शिशिर कुमार घोष, राममोहन घोष आदि।

२—वे जो देश में भावावेश लाते हैं। पराधीनता की वेदना का अनुभव कराने में इनकी अतीव आवश्यकता है और इस दृष्टि से गुलाम देश की राजनीति में उनका स्थान अत्यन्त महत्व-पूर्ण है। वे राष्ट्रीयता का बीज बोते हैं और लोगों में राष्ट्रीय भाव उत्पन्न करते हैं। जैसे तिलक, मालवीय, लाजपतराय, चित्तरंजनदास इत्यादि।

३—वे जो दूसरी श्रेणी में उल्लिखित नेताओं के भावावेश का उचित उपयोग करके राष्ट्रीयता को एक सस्कृत, संगठित एवं

शक्तिमान रूप देते हैं। जिनमें भावावेश भी होता है और साथ ही विशुद्ध राष्ट्रीय विवेक भी। जैसे मोतीलाल, जवाहरलाल इत्यादि।

४—वे जिनके पास कोई लड़ाऊ (militant) कार्यक्रम नहीं होता पर जो अपने वैध प्रयत्नों से राष्ट्र की शासन प्रणाली के गढ़ने में सहायक होते हैं। चूँकि राष्ट्र निर्माण के सीधे क्षेत्र में वे नहीं आते इसलिए हम उन्हें विधायक राजनीतिज्ञ (Statesman) के नाम से पुकारते हैं। जैसे शास्त्री, सप्रू इत्यादि।

इनके अलावा एक प्रकार के राष्ट्र निर्माता और होते हैं जो सीधे राजनीति में न आकर ज्ञान की अन्य शुद्ध धाराओं द्वारा राष्ट्र निर्माण का अदृश्य कार्य करते हैं। जैसे रवीन्द्रनाथ, जगदीशचन्द्र बसु, सी० वी० रमन इत्यादि।

इन परिभाषाओं एवं व्याख्याओं के अनुसार तिलक, मालवीयजी, लाजपतराय, दास भावावेश की दृष्टि से, और मोतीलाल, जवाहरलाल शुद्ध राष्ट्रीयता की दृष्टि से हमारे राष्ट्रनिर्माता हैं। गांधी को हम केवल राष्ट्रनिर्माता नहीं कहते, वह युग पुरुष है। तरतः वह विश्व-पुरुष हैं पर अपनी असाधारण व्यक्तिगत साधना एवं शक्ति के बल पर, और इस लिए कि परिस्थिति ने भारतीय राजनीति को उसकी प्रयोगशाला का रूप दिया, हमारी राष्ट्रीयता के साथ सम्बद्ध हो गये। वह राष्ट्रनिर्माता से कहीं ऊँचे हैं पर भारतीय जागृति में उनका व्यक्तित्व इतना ओतप्रोत है कि उन्हें राष्ट्रनिर्माताओं में सबसे पहला स्थान देना पड़ेगा।

इन सात नेताओं के अलावा तीन और—मुहम्मदअली तथा पटेल बंधु—इसमें आये हैं। इन्हें हम शुद्ध राष्ट्रनिर्माता नहीं मान सकते। पर इनको क्यों लिया? राष्ट्रनिर्माण में इनका अपना महत्वपूर्ण स्थान है। मुहम्मदअली ने मुसलमान को नया रूप देने की कोशिश की—इसमें वह सफल नहीं हुए, कुछ अपने संस्कारों के कारण

कुछ अति भावुकता के कारण और कुछ परिस्थिति के कारण। फिर भी उनका स्थान बिलकुल अलग है। विट्ठलभाई पटेल हमारी राजनीति के चाणक्य हैं। वह अपने ढंग के एक ही नेता हमारे बीच हैं। उन्होंने भारतीय पार्लमेण्टरी संस्था के विकास में बड़ा काम किया है। भारतीय राजनीति की तह में वह एक शक्तिमान व्यक्तित्व हैं। इसी प्रकार वल्लभभाई श्रेष्ठ राष्ट्रीय योद्धा के आदर्श हैं। उनमें राष्ट्रीयता का प्रखर एवं सतेज रूप विकसित हुआ है। विख्यात गांधीवादियों में शुद्ध राष्ट्रीयता के समीप उनसे अधिक और कोई नहीं पहुँचता। ये तीनों हमारे राष्ट्र-निर्माण के शक्तिमान आधार हैं पर राष्ट्रनिर्माता नहीं हैं। इसलिए अभी इन्हें अलग ही—'उपसंहार' में—रखा गया है।

एक प्रश्न किया जायगा—और न किया जाय तो किया जाना चाहिए कि मैं विवेकानन्द, दादाभाई, सुरेन्द्रनाथ को क्या भूल गया?

एक प्रश्न?

उत्तर यह कि मैं इन्हें भूला नहीं हूँ। मेरी आत्मा के निकट वे वन्दनीय हैं पर चूँकि पुस्तक हिंदी में जीवन लेखन का एक बिलकुल नया ढंग लेकर चली थी इसलिए—प्रकाशक की सहमति से—यही व्यावहारिक समझा गया कि पहले प्रयत्न में उन्हें ही लें, जो वर्तमान पाठक के निकट अधिक परिचित हैं। इसका यही एक कारण है—यदि इसे कारण कहा जा सके।

श्री रामनाथ 'सुमन'



लोकमान्य तिलक

We know of no other Indian who has made greater personal sacrifices for his country than Mr Tilak

—SHYAMJI K VARMA

'हम किसी दूसरे भारतीय को नहीं जानते जिसने श्री तिलक की अपेक्षा देश के लिए अधिक व्यक्तिगत त्याग किये हों।'

—श्यामजी कृष्ण वर्मा

He was a man, take him for all in all
I shall not look upon his like again

—एक—

जीवन की कुजी

बहुत वर्षों की बात है, ठीक समय याद नहीं। बम्बई मे ऐतिहासिक गवेषणा करनेवाले विद्वानों की सभा हो रही थी। अपने अपने विषय पर अधिकार रखनेवाले बडे-बडे विद्वान् आये हुए थे। उस सभा मे लोकमान्य ने 'खाल्डियन सस्कृति' तथा 'भारतीय एव ईरानी सभ्यता मे साम्य'—इन विषयों पर अत्यन्त गवेषणापूर्ण व्याख्यान दिया। उस व्याख्यान का विद्वानों पर ऐसा प्रभाव पडा कि अध्यक्ष ने उनसे कहा—"मि० तिलक, आप अपनी बुद्धि का दुरुपयोग कर रहे है। परमात्मा ने आपको ऐसी प्रतिभा दी है कि यदि आप उसे ऐतिहासिक अन्वेषण के कार्य में लगावें तो आपकी कीर्ति ससार में फैल जाय। इसे छोड आप राजनीति के दलदल में क्यों पडे है?"

तिलक का चेहरा एकाएक चमक उठा। बोले—"भारत माता बॉझ नहीं है। स्वराज्य होने पर मुझ जैसे हजारों पडित पैदा हो जायँगे। आज तो देश की पुकार पर दौड पडने की जरूरत है। आज तो प्रत्येक भारतीय का यही कर्तव्य है कि वह अपनी बुद्धि, शक्ति और सर्वस्व स्वराज्य के लिए अर्पण कर दे।"

बात साधारण है, बहुत छोटी। पर साधारण होकर भी यह असाधारण है और छोटी होकर भी महान् है। असाधारण इसलिए कहा कि

इसमें व्यक्तिगत महत्वाकाक्षाओं के त्याग का आभास है और महान इसलिए नहीं कि वह महानता की ओर ले जाती है। असाधारण और महान् स्वयं तिलक के सम्पूर्ण जीवन की दृष्टि से। इस छोटी-सी बात में उनके सम्पूर्ण विविधतामय जीवन का प्रतिबिम्ब है। यहीं हम उस जीवन को खोज पाते हैं जो अपनी कर्मण्यता में अनासक्ति का एक उदाहरण भारतीय राजनीति में छोड़ गया है और जो सदा संघर्षों में, कठिनाइयों में फूला फला और जिसने कभी अपने लिए यह फूलने फलने की चाह नहीं और और आगे बढ़कर कहें तो कह लें कि जो फूलने में भी नहीं और फूलकर झड़ जाने में भी खुश! इसीलिए निराशाओं के बीच भी जो निराश नहीं और कठिनाइयों के बीच भी जो रणोन्माद से तेजस्वी है। इस 'छोटी-सी घटना में उसके जीवन की भूमिका, अत्यन्त सतेज होकर हमसे बोलती है। और इसके शब्द खिलाकर कहते हैं—"राजनीति में उसे स्वाद नहीं वह उसका क्षेत्र नहीं, फिर भी उसने अपना क्षेत्र छोड़ दिया और उसे अपना लिया क्योंकि भारत की वर्तमान-दशा में—यही—सबका क्षेत्र है। क्योंकि माता की पीड़ा और गुलामी जबतक है तबतक क्षेत्रों के चुनाव का कोई प्रश्न उठ नहीं सकता। तबतक जो सबका क्षेत्र है, वही मेरा भी है। माता नीरोग और स्वाधीन हुई और मैंने फिर अपना, वही अपने ही अन्दर अपने को पाकर संतुष्ट होजानेवाला, विद्या-सेवन का क्षेत्र अपनाया।"

राजनीति को अपनाकर भी, इसीलिए, वह जीवन राजनीति में बह नहीं गया। उसने उसपर शासन किया और जो कुछ किया मोह रहित होकर, निर्लिप्त-सा, किया और जब समय आया तो प्रभु के चरणों में बिना किसी शिकायत के उसी शान्ति के साथ, अपना चोला उतारकर रख दिया।

यह थे तिलक!—१९२० तक हमारे राष्ट्र के कर्णधार और अपने समय में शायद सबसे अधिक लोक प्रिय नायक हमारे 'लोकमान्य'!

—दो—

पहली झाँकी

पंजाब की लज्जाजनक घटनाएँ घट चुकी थीं। लज्जाजनक उधर भी, इधर भी—दोनों के लिए, नाक रगड़वाने और नाक रगड़ने वाले—दोनों पक्षों के लिए।—यूरोप के भीषण रोमांचकारी इतिहास में जिसके उदाहरण मिलते हैं पर एशियाई इतिहास में जो अलभ्य सा है!, यही दृश्य अभी-अभी राष्ट्र देख चुका था,—सदा से राज-भक्ति और सहन शीलता के लिए प्रसिद्ध राष्ट्र। उसकी कुंभकर्णी नींद में १८५७ के बाद—६२ वर्ष बाद यह एक व्याघात उपस्थित हुआ था। वह करवटें ले रहा था। इस बार चोट सीधे कलेजे पर लगी थी। इस बार उसकी सोई, कुचली, मनुष्य होने की भावना पर प्रबल आघात हुआ था, इसीलिए इस बार वह तिलमिलाया। शायद उसकी कला की चरम सीमा तक पहुँची हुई सहिष्णुता के सागर में चट्टान का यह टुकड़ा भी डूब जाता पर इस बार आक्रमण अनपेक्षित था और उस समय हुआ जब लोग उसके लिए बिलकुल तैयार न थे, जब उसकी सब से कम आशा थी। जब हम बहुत अधिक आशा करके किसी के मुँह की ओर देख रहे हों तब उसकी ओर से सूखा जवाब मिलने पर भी चोट लगती है। फिर यहाँ तो जवाब में पत्थर मिला था। यह वह चोट थी जो चमड़े के आवरणों को पार कर गई और मनुष्य में जो सबसे मूल्यवान और कोमल चीज होती है उसे उसने बेध दिया! इस समय भारत की आत्मा छटपटा रही थी।

× × ×

गरमी के दिन थे। हवा के नाम पर उस दिन लू भी न थी। जान पड़ता था शरीर उबल जायगा। बनारस में, यों भी, गरमी ज़्यादा पड़ती है—उस दिन तो सदा से ज्यादा थी। १९२० का साल था और, भूलता नहीं तो शायद, २९ मई थी। उन दिनों आलइण्डिया

कांग्रेस कमिटी की बैठक बनारस में हो रही थी और इस सिलसिले में लोकमान्य (तिलक), लालाजी (लाजपतराय) तथा और कई नेता एकत्र थे। उस दिन शाम को टाउनहाल में लोकमान्य के व्याख्यान का प्रबन्ध किया गया था। लोकमान्य का युवकों के दिलों पर जो असर था, उससे बेचैनी और भी बढ़ गई थी, इसलिए दिन और भी न कटता था। खैर, राम राम करके शाम हुई, सभा हुई। श्री भगवान्दासजी सभापति थे। लोकमान्य बोलने उठे, चौड़ा ललाट, घनी मूछें, दृढ़ता व्यंजक ठुड्डी और क्या कह रहे हैं मानो उसे अच्छी तरह जानने-समझने वाले ओठ। मुँह पर कठिनाइयों से भरे उनके जीवन का सारा इतिहास झलक रहा था। किसी बात की तह तक घुस जाने वाली आँखों के भाव एवं ललाट पर की रेखाओं में स्पष्ट था कि राजनीति को अथ से इति तक इस व्यक्ति ने उघार उघार कर देखा है।

लोकमान्य जब बोलने खड़े हुए तो उसी समय उन्होंने सभापति से पूछा कि मुझे किस विषय पर बोलना है। भगवान्दासजी ने राजधर्म (राजनीति) पर कुछ कहने का अनुरोध किया। उस दिन पहली बार मैंने लोकमान्य का भाषण सुना। वह हिन्दी में बोले थे, इसलिए भाषा तो वैसी न थी पर विषय पर उनका असाधारण अधिकार वहाँ देखा। अमृतसर कांग्रेस में प्रतिसहयोगी नीति की जो चर्चा उन्होंने चलाई था, उसपर भी उन्होंने वहाँ प्रकाश डाला और प्राचीन भारतीय राजनीतिक सिद्धान्तों के प्रकाश में उसका विवेचन किया। उनके भाषण में सुरेन्द्रनाथ की वाग्मिता न थी, न विपिनचन्द्र पाल की, वह सघन जलद पटल से कड़कनेवाली, बिजली की कड़कड़ाहट थी। पर उनके शब्द चुने, सीधे, सरल और विषय-बोधक थे। भावना का तीव्र प्रवाह उनमें न था, पर उसपर शुष्क तार्किकता एवं गंभीर बौद्धिकता का बोझ भी न था। कहने का सीधा सादा और प्रभावशाली ढंग था—फिर भी व्यक्ति के व्यक्तित्व एवं उसके साथ ही भाषण के ढंग में कुछ ऐसी बात जरूर थी जो दिल

को खींचती थी और हमारे सिर उसके चरणों में झुक जाते थे !

राजनीति से मेरे परिचय का यह आरम था, और इस समय लोकमान्य, केलकर, खापर्डे इत्यादि एकत्र थे। इसलिए मैंने इसे अपने श्री गणेश का सौभाग्य माना कि एक ही जगह इतने देशभक्तों के दर्शन होगये।

पर इन सब के बीच लोकमान्य मेरे स्मृति पट पर जैसे चमके वैसा दूसरा कोइ नहीं चमका था। निराशा की अँधियारी और जीवन के इस परिवर्तन काल में उनसे जो प्रकाश मिला वह बापू—गाँधी जी—के अतिरिक्त दूसरे किसी से न मिला !

जीवन में मैं एक ही बार उनके चरणों के पास बैठा, एक ही बार उनका व्याख्यान सुना। कभी उनके घनिष्ट सम्पर्क में आने का मौका भी न मिला फिर भी नेताओं में उनके प्रति मेरी जो आत्मीयता—निकटता थी वह शायद ही किसी के प्रति हुई हो। जिस दिन उनके देहावसान का समाचार सुना, कलेजा धक होगया। एक बार तो रोना भी न आया—बाद में खूब रोया। गणेश जी के अतिरिक्त और किसी की मृत्यु पर मुझे इतना अभाव अनुभव नहीं हुआ।

इसी से मैंने समझा कि लोकमान्य का जीवन उनके व्यावहारिक एवं लौकिक इतिवृत्त से भी ऊँचा था,—उसमें कुछ ऐसी बात अवश्य थी जो युवकों के हृदय को छूती और उसके अन्दर अत्यन्त शक्तिमान देश प्रेम को जगाती थी।

मेरा यह अभाग्य भी है और सौभाग्य भी कि मेरे लिए उनका यह प्रथम दर्शन ही अन्तिम दर्शन था !

—७—

—तीन—

जीवन-कथा

बलवन्तराव गंगाधर तिलक का जन्म कोंकण प्रांत के रत्नागिरि में, सदोबा गोरे के घर पर, २३ जुलाई १८५६ (आषाढ़ कृष्ण ६ सोमवार शक १७७८) को माता पार्वती बाई के पेट से

जन्म

हुआ था। बलवन्तराव अपने माता पिता की चौथी सन्तान थे। इसके पूर्व तीन लड़कियाँ होचुकी थीं। उनके पिता श्री गंगाधर रामचन्द्र तिलक पहले वहीं एक स्कूल में अध्यापक थे, बाद में थाना और पूना में स्कूलों के असिस्टेन्ट डिपुटी-इन्सपेक्टर रहे। वह एक मान्य अध्यापक थे और छात्र उन्हें बहुत मानते थे। उन्होंने व्याकरण और त्रिकोणमिति पर एकाध पुस्तकें भी लिखीं और प्रकाशित की थीं। गणित और प्राच्य शास्त्रों के अध्ययन की प्रवृत्ति बलवन्तराव में पैतृक संस्कारों से ही पैदा हुई थी। इनके पिता बड़े ही कर्मनिष्ठ पुरुष थे।

तिलक का नाम यद्यपि बलवन्तराव था, तथापि उनका जन्म नाम, प्रपितामह एवं कुलदेव के नाम पर, 'केशव' रखा गया था। किन्तु बचपन में घर में पुकारने का जो छोटा 'बाल' नाम पड़ा वह सबसे अधिक प्रचलित हुआ और उनके नाम के साथ मिलकर स्थायी हो गया।

बचपन से ही पिता इन्हें संस्कृत के श्लोक याद कराते थे। प्रत्येक श्लोक याद करने पर एक पाई पुरस्कार दिया करते थे। १८६१ की विजयादशमी को, ५ वर्ष की अवस्था में, ये

शिक्षा-दीक्षा

पाठशाला में बिठाये गये। इनके आरंभिक गुरु भिकाजी कृष्ण पटवर्द्धन थे, पर पाठशाला की अपेक्षा घर पर ही इनकी पढ़ाई विशेष रूप से होती रही। १८६४ में यज्ञोपवीत हुआ। इसके पहले ही (८ वर्ष की अवस्था में) भिन्न सब

गणित, रूपावली, समासचक्र, आधा अमरकोश और ब्रह्मकर्म का बहुत-सा भाग यह सीख तथा कण्ठस्थ कर चुके थे।

दस वर्ष की आयु में 'बाल' पिता के साथ पूना आये और सिटी स्कूल में भरती हुए। इसी साल इनकी माता का स्वर्गवास हो गया। सिटी स्कूल में दो वर्ष में तीन कक्षाओं की पढ़ाई समाप्त की। बाल्यकाल से ही तीव्रबुद्धि थे। पर इसके साथ ही इनमें हठीलापन भी था,—इससे इनमें विनय का अभाव था और अध्यापकों से प्रायः चख-चख होती रहती थी।*

हठी एवं चतुर

---

* इस विषय में श्री कृष्णाजी आबाजी गुरुजी लिखते हैं—

"उस (शिक्षक की) ओर से गणित का प्रश्न लिखाया जाने पर ये (बलवंतराव) उसे जबानी हल करने लगते थे। इसपर जब वह इन्हें स्लेट पर लिखने को कहता तो ये तत्काल उत्तर दे उठते कि "इसमें स्लेट की क्या आवश्यकता है ?" उसकी ओर से स्मरण-पुस्तिका (नोटबुक) लाने की आज्ञा होने पर ये तत्काल उसकी अनावश्यकता सिद्ध करने लग जाते थे। यदि उसने काले तख्ते पर हिसाब करके दिखाने को कहा तो चाक से हाथ खराब न करने की इच्छा से ये जबानी ही उसे सुनाने लग जाते थे। इस प्रकार प्रत्येक बार कुछ-न कुछ झगड़ा गुरु शिष्य में होता ही रहता था। एक बार शुद्ध लेखन लिखाते समय 'सत' शब्द इबारत में तीन चार बार आया। इस शब्द को बलवन्तराव ने एक सा न लिखकर एक जगह 'सत' तो दूसरी जगह 'सन्त' और तीसरी जगह 'सन्त' इस तरह तीन प्रकार से लिखा। किन्तु अध्यापक ने प्रथम शब्द को ठीक मान कर शेष दो को गलत कर दिया। इसपर गुरु शिष्य में विवाद उठ खड़ा हुआ और वह मामला यहाँ तक बढ़ा कि अन्त में हेडमास्टर के सामने पेशी हुई और जबतक उसका निर्णय अपने मनोनुकूल न हो गया तब

१८६९ ई० में पूना हाई-स्कूल की पाँचवी कक्षा में भरती हुए। इस समय मि० जैकब हेडमास्टर थे। यह अनुशासन के कट्टर पक्षपाती थे। यहाँ भी मास्टरों से वही धमा-चौकड़ी चलती थी। एक दिन तिलक का संस्कृत शिक्षक का किसी पुस्तक पर विवाद हुआ। हेडमास्टर ने शिक्षक का पक्ष लिया अत इन्होंने स्कूल छोड़ दिया और बाबा गोखले की पाठशाला में पढ़ने लगे। किन्तु कुछ दिन बाद जैकब साहब बदल गये और श्री कुँटे हेडमास्टर हुए, तब यह फिर इसी स्कूल में आ गये।

जब बलवन्तराव सोलह वर्ष के थे तो उनके पिता का भी देहावसान हो गया। इसी वर्ष (१८७२ ई० में) उन्होंने मैट्रिक परीक्षा पास की और पूना के डेकन कालेज में भरती हुए। वहीं से १८७६ में 'आनर्स' (सम्मान) के साथ प्रथम श्रेणी में बी० ए० पास किया। १८७७ में गणित लेकर एम० ए० में बैठे पर फेल हो गये। इनके बाद १८७९ में बम्बई विश्वविद्यालय की कानून की परीक्षा पास की। कालेज में ही स्व० श्री आगरकर से उनकी जान पहचान हुई।

बाल-विवाह

जब यह अंग्रेजी स्कूल में पढ़ रहे थे तभी, १५ वर्ष की अवस्था में, १८७१ ई० के बैशाख में इनका विवाह हो गया। विवाह इनके आदि ग्राम चिखलगाँव (कोंकण) में ही हुआ था। इनकी पत्नी का मायके का नाम तापीबाई था। ससुराल आने पर, नाम बदल कर, सत्यभामा बाई रखा गया। वर वधू दोनों विवाह के समय मातृहीन थे। अत ऐसे समय दोनों को जो मातृ प्रेम, दोनों पक्षों में मिलता है, न मिला। एक चरित्रकार

तक इन्हें चैन न पड़ी। बड़ों से झगड़ा करने के कारण इनकी गिनती चतुर किन्तु झगड़ालू अथवा बुद्धिमान होते हुए भी हठी स्वभाव वाले मनुष्यों में होने लगी।"

इससे तिलक के अविनयी स्वभाव किन्तु तीव्र प्रतिभा का पता चलता है।

कहना है कि विवाह के समय निरर्थक वस्तुओं के बदले उतने ही मूल्य की पुस्तक तिलक ने माँगी। इसमें भी उनकी विद्याभिरुचि का पता चलता है।

सौ० सत्यभामा बाई के भाग्य में सास का सुख तो था ही नहीं, पर ससुर का सुख भी न था। विवाह के एक ही वर्ष बाद, १८७२ ई० में—३१ अगस्त को—ससुर श्री गंगाधर पन्त भी स्वर्ग सिधार गये।

जब यह डेक्कन कालेज में, १८७३ ई० में, भरती हुए तब इनका स्वास्थ्य अच्छा न था। इसलिए पहले वर्ष पढ़ाई की अपेक्षा यह व्यायाम इत्यादि पर ज्यादा ध्यान देते थे। सुबह का समय अखाड़े में या तैरने में जाता था और सन्ध्याकाल टहलने एवं खेल-कूद में बीतता था। रात विनोद एवं गप शप

कालेज-जीवन

में बीतती थी। उन्होंने शरीर सुधार का निश्चय कर लिया था और उस वर्ष परीक्षा न देने की बात भी सोच ली थी। हाजरी देकर बाहर चले जाते और कोई बहुत उपयोगी एवं आवश्यक व्याख्यान होने पर उसमें उपस्थित हो जाते थे। एक बार प्रिंसपल ने हाजिरी देकर जाते देख इनसे पूछा तो इन्होंने स्पष्ट कह भी दिया कि मुझे इस साल परीक्षा नहीं देनी है। इसका परिणाम यह हुआ कि यह पहली बार एफ० ए० में फेल हुए।

छात्रावस्था में भी बाल तिलक की संस्कृत में अच्छी गति हो चली थी। इस विषय पर एक बार वह अपने अध्यापक श्री जिंसीवाला से झगड़ भी गये। पर पीछे जब इन अध्यापक महाशय ने विद्यार्थियों को 'मातृ-विलाप' पर संस्कृत में कविता बनाने को दी तो श्री आपटे-जैसे प्रतिस्पर्द्धी के मुकाबले में भी प्रो० जिंसीवाला ने बाल की कविता को तरजीह दी। उस समय तिलक प्रायः संस्कृत में पद्य लिखा करते थे।

कालेज में प्रथम वर्ष उन्होंने केवल शरीर सुधारने में लगाया। पहले पतले दुबले थे पर व्यायाम के फल-स्वरूप हृष्ट पुष्ट हो गये। जहाँ पहले इन्हें खुलकर भूख न लगती थी वहाँ अब जब खाने बैठ जाते तो रसोई बनाने वाला महाराज तंग आ जाता। आरम्भ से ही उन्हें, छात्रमता,

'डेविल' और 'ब्लफट'

दुर्बलता इत्यादि से घृणा थी। यदि कोई विद्यार्थी अपने शरीर को बहुत सुकुमार बनाता हो तो आदत छोड़ देने तक वह उसे तंग करते रहते। यदि कोई विद्यार्थी अपनी ताकत बढ़ाने के लिए पटण्ट औषधियाँ सेवन करता तो ये शीशा देख उसकी शीशियाँ खिड़की के बाहर फेंक देते और कहते—"तुम मेरे साथ अखाड़े में चला करो, मैं बिना किसी औषधि के तुम्हारे सब रोग दूर कर दूँगा।" इनका एक सहकारी बड़ा शौकीन था। वह गर्मी के दिनों में फूल लाकर रोज शय्या पर उन्हें बिखराता और पुष्प शय्या तैयार करता। तिलक उसे सदा फटकारा करते—"क्या तुम स्त्री हो जो इस तरह नखरे किया करते हो?" उसकी शय्या को उलट पलट भी देते थे। ऐसे विद्यार्थियों की टोह में प्रायः वे रात बिरात घूमा करते। किसी के दरवाजे के काँच तोड़कर, किसी की साँकल खोलकर, किसी की पिछवाड़े की खिड़की खोलकर घुस जाते। उनकी इन आदतों के कारण ही उनके बहुतेरे सहपाठी उन्हें 'डेविल' (शैतान) और तात्कालिक पाठ्य पुस्तक 'केनिलवर्थ' उपन्यास के एक पात्र 'ब्लफट' के नाम से सम्बोधित किया करते थे।

प्राचीनता के प्रति झुकाव

इनके समय में होस्टल के भोजनालय में अधिकांश विद्यार्थी पीताम्बर पहनकर भोजन करते थे। कुछ उसके विरोधी भी हो चले थे। तिलक तो इस प्रथा के कट्टर पक्षपाती थे। यहाँ तक कि यदि कोई जान-बूझकर इसका भंग करता तो वह उससे बहस एवं झगड़ा करने को भी तैयार हो जाते थे। प्राचीनता का यह संस्कार इनमें अन्त तक रहा।

महाराष्ट्र की अवस्था

जिस समय तिलक का जन्म हुआ उसके बहुत पहले महाराष्ट्र की राजशक्ति का लोप हो गया था। फिर भी बहुत-से लोगों को अपने पूर्व गौरव का यह स्वप्न भूला न था। उनके जन्म काल में ही भारत में जो विद्रोह पैदा हुआ, उसके संस्कार तिलक के जीवन में शुरू से ही मिलते हैं।

एक दृष्टि से देखें तो गदर के बाद भी महाराष्ट्र में ऐसे व्यक्ति सदैव पाये जाते रहे हैं जो बंगालियों की भाँति, क्रान्ति करके या हिंसात्मक उपायों द्वारा स्वतंत्र भारतीय राजशक्ति स्थापित करने का स्वप्न देखते रहे हैं। बीसवीं शताब्दी के प्रथम चतुर्थांश में तो ऐसे अनेक क्रान्तिकारियों को फाँसी हुई ही पर उन्नीसवीं शताब्दी में भी ऐसे व्यक्तियों के होने का उल्लेख महाराष्ट्र के आधुनिक इतिहास में मिलता है। वासुदेव बलवन्त फडके—ऐसे ही एक व्यक्ति थे। सरकारी नौकरी में रहते हुए भी फडके ने विद्रोह का संगठन करने का प्रयत्न किया था। उन्होंने निजी तौर पर सैनिक शिक्षा प्राप्त की थी। १८७६-७७ में जब अकाल पड़ा तब डाकुओं को उन्होंने अपना साथी बनाया। धीरे धीरे उनका इतना आतंक जम गया कि अधिकारी उनके नाम से काँपते थे परन्तु डाकुओं को वह वश में न रख सके। दोनों के उद्देश्य भिन्न थे। डाकू रुपये के लोभ एवं बुरे स्वभाव के कारण डाका डालते थे और फडके उन्हें अपने उद्देश्य में नियोजित करना चाहते थे। इसका फल वही हुआ जो होना था, वह फाँसी पर चढ़ा दिये गये।

फडके

× × ×

इस समय महाराष्ट्र क्या, समस्त भारत की स्थिति में उथल पुथल हो रही थी। पश्चिम के संसर्ग एवं अंग्रेजों के राजनीतिक प्रभुत्व ने प्रत्येक क्षेत्र में परिवर्तन के बीज बोने शुरू किये। एक ओर जहाँ जन समूह में अंध विश्वास के भाव थे, वहाँ नई शिक्षा के संसर्ग से एक ऐसी पीढ़ी पैदा होने लगी थी जिसमें अपनी वेशभूषा, अपनी संस्कृति, अपने धर्म और अपनी रीति-नीति में अविश्वास और अश्रद्धा का भाव पैदा हो रहा था। दो धाराएँ एक-दूसरे से टकरा रही थीं। ईसाई मिशनरी अपने धर्म का, शिक्षा, समाज-सेवा तथा अन्य अनेक मोहक एवं उपयोगी रूपों में प्रचार

भारतव्यापी उथल पुथल

कर रहे थे। इससे भी विश्वास में शिथिल *नवीन* हिन्दू युवक पैदा होने लगे थे।

पर एक ओर जहाँ नई धारा दुर्बल एवं क्षीण विवेक के युवकों को बहा ले गई वहाँ जिनमें कुछ तत्त्व था, उन्हें उसने समाज एवं राष्ट्र के विषय में नये विचार भी दिये। पश्चिमी शासन-तन्त्रों, स्वतन्त्रता के इतिहासों एवं समाज-सेवा की संस्थाओं के परिचय में आने से उनमें भी स्वदेश में उनका प्रयोग करने की भावना प्रबल हुई। इस समय जिन लोगों में जन-सेवा का भाव था, उन्हें दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। एक वे जो दृढ़ता पूर्वक अपनी पुरानी सभ्यता एवं संस्कृति को अपनाना चाहते थे और युरोप के संसर्ग, अंग्रेजी शासन तथा मिशनरियों के कारण उस पर जो आपत्तियाँ आ रही थी उनसे उसकी रक्षा करना चाहते थे। उनमें स्वधर्म और स्वदेश दोनों की रक्षा का भाव एक साथ, और एक में मिल कर, जाग्रत हुआ। इस दल की राय में विदेशियों के आगमन से सब से बड़ी जो हानि हुई थी वह यह थी कि हमारा अपना राष्ट्रीय व्यक्तित्व छिन्न भिन्न हो रहा था। जातीय संस्कृति की जो एक जीवित आत्मा होती है, उसके दम घुट रहे थे। इसीलिए १८५७ का विद्रोह धर्म को लेकर स्वदेश के लिए हुआ था और इसीलिए हम देखते हैं कि १९१० तक के बंगाली एवं महाराष्ट्र क्रान्तिकारियों की 'फिलासफी' अपने धर्म एवं अपनी संस्कृति की मर्यादा की रक्षा के लिए अत्यन्त उद्बुद्ध हो उठी थी। वे अपने आन्दोलन को हिन्दूधर्म की कसौटी पर कसते थे।

जन सेवा की दो प्रवृत्तियां

दूसरा दल उन लोगों का था, जो यह मानते थे कि ज्ञान सार्वदेशिक वस्तु है और युरोप में कोई अच्छी चीज हो तो उसे लेने में क्या हर्ज है? ये लोग युरोपीय सामाजिक एवं राजनीतिक संस्थाओं के इतिहास से प्रभावित हुए थे और उन्हें अपने पतन का कारण अपनी सामाजिक कमजोरियों में ही दिखाई दे रहा था। इन्हें अपने पतन पर दुःख था

और ये चाहते थे कि शासक जाति ने जिन बातों का अनुकरण कर इतनी प्रधानता प्राप्त कर ली है उन्हें हम भी अपनावें और अपना उद्धार करें। इन लोगों ने उदारतापूर्वक अपनी सामाजिक रीति-नीति में समयानुकूल परिवर्तन करना आरम्भ किया। इनमें भी दो श्रेणियाँ थीं। एक तो सामाजिक आचार विचार में बिल्कुल पश्चिमी थी और दूसरी अपने में समयानुकूल परिवर्तन करके भी अपने निर्माण का आधार अपनी ही संस्कृति को बनाना चाहती थी। इस दल में राजनीतिक कार्यकर्ता की अपेक्षा समाज-सेवक या सुधारक अधिक हुए।

महाराष्ट्र पर प्रभाव

तिलक के पूर्व महाराष्ट्र की समष्टि आत्मा पर जिन दो महानुभावों का विशेष प्रभाव हुआ वे श्री महादेव गोविंद रानडे और श्री विष्णु शास्त्री चिपलूणकर थे। रानडे राजनीतिक एवं बौद्धिक नेता थे और चिपलूणकर मुख्यतः सामाजिक एवं धार्मिक। प्रतिभा, स्वदेश प्रेम तथा राजनीतिक ज्ञान की दृष्टि से रानडे उस समय के प्रांतीय नहीं, एक सर्व भारतीय नेता थे। महाराष्ट्र के सोये हुए तेज में चैतन्य लाने वालों में रानडे का प्रधान हाथ है। रानडे ने न केवल राजनीतिक जागृति के लिए आन्दोलन किया वरन् सामाजिक कुरीतियों के निवारण पर भी जोर दिया। वह पहले भारतीय नेता थे जिन्होंने इसका अनुभव किया कि भारत की उन्नति किसी एक क्षेत्र में बाँधकर रखी नहीं जा सकती, वह सर्वाङ्गीण होनी चाहिए। उनकी उदारता एवं दृष्टि की विशालता प्रशंसनीय थी। विधवा विवाह, प्रार्थना समाज एवं धार्मिक सहिष्णुता के वह कट्टर समर्थक थे। उस समय बहुत थोड़े लोगों में इतना आगे बढ़ने की हिम्मत थी। इसलिए बहुत-से लोग उनके विरोधी भी थे। पर वह जो-कुछ करते गुप्त रूप से ही करते थे। उधर सरकारी नौकरी में रहते हुए देश-सेवा की वृत्ति के कारण सरकार भी इनसे नाराज रहती थी। रानडे राष्ट्रीय महासभा के संस्थापकों में थे। वक्तृत्वोत्सव, वसन्त व्याख्यान-माला,

औद्योगिक परिषद्, प्रदर्शनियाँ, महिला हाईस्कूल, प्रार्थना-समाज, सार्वजनिक सभा, पुस्तकालय इत्यादि पूना की शायद ही कोई ऐसी संस्था रही हो जिसके संचालन में उनका गुप्त या प्रकट हाथ न रहा हो। लोकमान्य तिलक, विरोधी होते हुए भी, रानडे की उपमा हेमाद्रि या माधवाचार्य से दिया करते थे।

इसी प्रकार श्रीचिपलूणकर ने अपनी 'निबन्धमाला' से विशेष कार्य किया। विद्यार्थी—समाज पर उनका बड़ा प्रभाव था। वह एक अत्यन्त तेजस्वी और निर्भीक व्यक्ति थे। सरकारी नौकरी पर भी उन्होंने लात मार दी थी और उसकी 'रुपहली बेडियों' को तोडकर स्वतन्त्र रूप से स्वतन्त्र शिक्षा के प्रसार में लग गये थे।

इन दो पुरुषों के अलावा सर्वश्री दादाभाई नौरोजी, फीरोजशाह मेहता, तैलंग और भण्डारकर इत्यादि का भी महाराष्ट्र की युवक पीढ़ी पर बडा प्रभाव पड़ा था। तिलक पर तो रानडे का बड़ा प्रभाव पड़ा। इन महापुरुषों के कारण ही महाराष्ट्र में जागृति हुई और युवकों में देश-सेवा, समाज-सेवा एवं जन-सेवा के भाव आये।

सार्वजनिक क्षेत्र में प्रवेश

जन सेवा की प्रेरणा

तिलक जब एल० एल० बी० में पढ रहे थे ओर जब कॉलेज की शिक्षा समाप्ति पर आ रही थी तभी से उनके सामने यह प्रश्न था कि आगे जीवन का क्या कार्य क्रम निश्चित किया जाय। इनके साथियों में आगरकर मुख्य थे। यद्यपि आगरकर के विचार धार्मिक एवं सामाजिक मामलों में तिलक से भिन्न थे किन्तु दोनों में देश तथा समाज सेवा की लगन थी। दोनों सरकारी नौकरी करने के विरुद्ध थे और सार्वजनिक कार्यों में लगना चाहते थे। एक दिन तिलक और आगरकर में इस बात पर विवाद हुआ कि राजनीतिक सुधार की पहले आवश्यकता

है या सामाजिक? आगरकर का कहना था कि समाज की नींव जबतक पक्की न होगी तबतक राजनीतिक जाग्रति स्थायी नहीं हो सकती। तिलक का कहना था कि बिना राजनीतिक सुधार एवं सुविधा के हमारे देश की गरीबी का प्रश्न हल नहीं हो सकता और न समाज सुधार का काम ही उचित रूप में किया जा सकता है। बहुत वाद विवाद के बाद दोनों में यह समझौता हुआ कि सर्वांगीण शिक्षा का कार्य हाथ में लिया जाय। यह दोनों के लिए मध्य मार्ग था। इसलिए दोनों ने इसे पसन्द किया।

जिन दिनों आगरकर और तिलक ने यह निश्चय किया उन्हीं दिनों श्री चिपलूणकर सरकारी नौकरी छोड़कर पूना आये थे और एक स्वतंत्र पाठशाला स्थापित करने के उद्योग में थे। जब इन लोगों को यह बात मालूम हुई तो वे शास्त्री जी से उनके घर पर जाकर मिले (सितम्बर १८७९ ई०) और वचन दिया कि पाठशाला खुलने पर हम लोग सब तरह आपका साथ देंगे। उन दिनों तिलक कानून में और आगरकर एम०-ए० में पढ़ रहे थे। इनके साथ बी० ए० के दो छात्र और भी थे पर बाद में उनके विचार बदल गये। अस्तु, इस भेंट में सब बात तै हो गई और पाठशाला के स्थापन का निश्चय कर लिया गया।

फलस्वरूप १ जनवरी १८८० ई० को, १९ लड़कों के साथ, स्कूल की स्थापना हुई। इसका नाम 'न्यू इंग्लिश स्कूल' रखा गया। शास्त्रीजी (चिपलूणकर) और तिलक ने कार्यारंभ किया। आगरकर एम० ए० की परीक्षा में फेल हो गये थे इसलिए वह साल भर बाद दूसरी बार परीक्षा देकर पास हो जाने पर पाठशाला के कार्य में सम्मिलित हुए। इनके अलावा श्री माधव राव एन० जोशी जैसे कर्मठ एवं जन-सेवी शिक्षक का सहयोग भी स्कूल को प्राप्त हुआ तथा और भी शिक्षक मिल गये। इससे स्कूल जोरों से चला और केवल तीन महीनों में विद्यार्थियों की संख्या ५०० हो गई। मजा तो यह है कि स्कूल में

'न्यू इंग्लिश स्कूल' की स्थापना

केवल सातवीं कक्षा तक पढ़ाई होती थी।

आरम्भ में यह स्कूल स्वतन्त्र रीति पर चलाया गया था; थी तिल
क-आगरकर को इसके स्वतन्त्र संचालन पर गर्व भी था पर जब विद्यार्थियों की
संख्या व साथ व्यय भी बढ़ा तब सरकारी सहायता ली जाने लगी।
इस स्कूल ने ४-५ वर्षों में ही बड़ी उन्नति कर ली और फिर तो मैट्रि
तक की पढ़ाई होने लगी। १८८४ ई० में इसमें १००९ छात्र थे और
उस साल मैट्रिक में ८१ प्रतिशत विद्यार्थी पास हुए थे। महाराष्ट्र
विद्या द्वारा जागृति लाने में इस स्कूल ने बड़ा काम किया।

दक्षिण शिक्षा समिति तथा फर्गुसन कालेज की स्थापना

ऊपर हम यह कह ही चुके हैं कि शिक्षा द्वारा जनता में जागृति
लाने के उद्देश्य से ही तिलक ने स्कूल का कार्य आरम्भ किया था। उनकी
इच्छा तो कालेज खोलने की थी पर आरम्भ
में वैसा संयोग प्राप्त नहीं हुआ। स्कूल की
उत्तरोत्तर उन्नति तथा बीच की अन्य घटनाओं
(जिसका वर्णन आगे यथास्थान किया
जायगा) के कारण स्कूल में अध्यापन-कार्य करनेवाले कई अध्यापकों
ने एकत्र होकर २४ अक्तूबर १८८४ को 'डेक्कन एजूकेशन सोसायटी'
(दक्षिण शिक्षा समिति) की स्थापना की और इसके आजीवन सदस्य
बन गये। २ जनवरी १८८५ को सोसायटी की ओर से फर्गुसन कालेज
की स्थापना हुई। ५ मार्च १८८५ को नई इमारत की नींव रखी गई
पर सात वर्ष बाद (११ जनवरी १८९२ को) बम्बई के गवर्नर लार्ड हैरिस
द्वारा फिर दूसरी जगह नींव डाली गई। इस कालेज में पढ़कर महाराष्ट्र
के न जाने कितने समाज-सेवक उत्पन्न हुए हैं।

तिलक और आगरकर आरम्भ में जिस उद्देश्य को लेकर चले थे
कालेज बढ़ जाने एवं सरकार से सम्बन्ध हो जाने पर, उसकी पूर्ति में
बाधाएँ आने लगीं। आजीवन सदस्यों में भी कार्यशैली एवं सदस्यों
को मिलनेवाली सुविधाओं के विषय में मतभेद होने लगा। इ

दल (जिसमें तिलक थे) कहता था कि आजीवन सदस्यों को अपना सारा समय, शक्ति और बुद्धि इसी संस्था में लगानी चाहिए और निर्वाह भर के लिए वृत्ति लेनी चाहिए। उन्हें बाहर से यदि कुछ मिले तो वह संस्था का। पर दूसरा दल कहता कि संस्था के कार्य का जो समय है उसके बाद अन्यत्र काम करने की छूट होनी चाहिए। फल-स्वरूप १४ अक्तूबर १८९० ई० को, जब मतभेद बहुत बढ़ गया तो, तिलक उससे अलग हो गये और १५ दिसम्बर को आजीवन सदस्यता से निस्पृह त्यागपत्र भेज दिया।

सोसायटी से सम्बन्ध-त्याग

'केसरी' और 'मराठा'

जब तिलक और आगरकर ने जन शिक्षा के लिए जीवन अर्पित किया तभी उन्होंने विचार किया था कि इसके दो साधन, मुख और लेखनी—पाठशाला और समाचारपत्र हैं। अत स्कूल खुलने के बाद ही समाचार-पत्र निकालने का भी निश्चय हुआ। १८८१ ई० से 'केसरी' मराठी में और 'मराठा' अंग्रेज़ी में निकलने लगे। इन दोनों पत्रों पर स्कूल के मुख्य-मुख्य कार्यकर्ताओं का सम्मिलित स्वामित्व समझा जाता था। 'केसरी' के सम्पादक श्री आगरकर हुए, 'मराठा' के श्री तिलक। 'केसरी' में साहित्य विषयक लेख शास्त्रीजी (चिपलूणकर) लिखते, इतिहास, अर्थ-शास्त्र और सामाजिक विषयों पर आगरकर और धर्मशास्त्र, राजनीति एवं कानून-सम्बन्धी लेख तिलक लिखते थे। आगरकर के लेखों में सुधारक की सामाजिक विषयों में उदारभाव से सोचने की प्रवृत्ति, विनोद, निस्पृहता एवं भावुकता स्पष्ट दिखाई देती है। तेजस्विता, जोश, प्राचीनता के प्रति आकर्षण, राजनीतिक सुधार की आकांक्षा तिलक की विशेषता है।

१८८१ के अन्त में कोल्हापुर के सम्बन्ध में 'केसरी' और 'मराठा' में कुछ लेख छपे। इस पर वहाँ के दीवान श्री बर्वे ने उनपर मान हानि

का मुकदमा चलाया । ८ फरवरी १८८२ ई० से बम्बई के प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट श्री वेन के सामने मामले की जाँच शुरू हुई । २९ फरवरी को अंतिम पेशी हुई और मामला सेशन सुपुर्द कर दिया गया । २०००) के मुचलके एवं एक एक हजार की दो जमानतों पर तिलक और आगरकर छोड़ गये । इस मामले में बड़े प्रतिष्ठित मित्रों के जोर डालने पर यद्यपि तिलक और आगरकर ने बर्वे से लिखित माफी माँगी, फिर भी बर्वे ने मुकदमा न उठाया । १७ जुलाई को दोनों को चार मास महीने की सादी कैद की सजा हुई । अच्छे व्यवहार के कारण १९ दिन की छूट मिली और दोनों डोंगरी जेल से १०१ दिन में ही छोड़ दिये गये । 'डोंगरी जेल में १०१ दिन' नामक अपनी पुस्तिका में आगरकर ने जेल-जीवन का वर्णन किया है । इस अवधि में तिलक का २१ और आगरकर का १६ पौण्ड वजन कम हो गया ।

कोल्हापुर का मुकदमा

पर इस सजा से तिलक और आगरकर के प्रति लोगों में आदर और श्रद्धा का भाव बढ़ गया । इस दृष्टि से ये सजाएँ उनके सार्वजनिक जीवन की उन्नति में सहायक हुईं । २६ अक्तूबर (१८८२ ई०) को जब दोनों जेल से छूटे तो जेल पर उनके स्वागतार्थ दो हजार आदमी एकत्र थे । दोनों गाड़ी में बिठाकर शहर में लाये गये, स्थान स्थान पर उनका सत्कार किया गया । जुलूस सारे शहर में घुमाया गया और सार्वजनिक सभा में सम्मान किया गया । इनके छूटने के पूर्व भी मि० वर्डस्वर्थ इत्यादि प्रतिष्ठित पुरुषों ने सरकार पर सजा रद्द कर देने के लिए जोर डाला था ।

आगरकर का केसरी से सम्बन्ध विच्छेद

यह पहले ही लिखा जा चुका है कि यद्यपि तिलक और आगरकर घनिष्ट मित्र थे और दोनों ने एक साथ ही सार्वजनिक जीवन में आने का निश्चय किया था किन्तु दोनों की विचार धारा में बड़ा अन्तर था । आगरकर के सामाजिक विचार आजकल के सच्चे समाज सुधारक के

समान थे। वह बाल विवाह, वृद्ध विवाह के कट्टर विरोधी थे और अस्पृश्यता निवारण एवं विधवा विवाह के भी पक्षपाती थे। यहां तक कि इनके लिए आन्दोलन करने और सरकार पर जोर डालकर कानून बनाने की आवश्यकता भी वह अनुभव करते थे। तिलक इन विषयों में स्वयं सुधार की चेष्टा करते हुए भी जल्दबाजी नहीं करना चाहते थे और उनका यह भी कहना था कि इस प्रकार की धर्म से प्रगाढ़ सम्बन्ध रखनेवाली विवाह इत्यादि प्रथाओं के सम्बन्ध में सरकारी कानून बनाकर व्याघात डालना अनुचित है। आगरकर आधुनिक विचार प्रवाह की ओर झुके हुए थे और तिलक प्राचीनता की ओर। इसलिए इन लोगों में प्रायः वाद विवाद हुआ करता था। उस समय समाज आजकल से बहुत पीछे था इसलिए अधिकांश लोग तिलक के विचार के ही थे। यद्यपि सोसायटी की कार्य-समिति में रानडे इत्यादि का प्रवेश हो चुका था फिर भी सामाजिक विषयों में बहुमत तिलक के पक्ष में था। इसका परिणाम यह होता था कि आगरकर पूर्णतः अपने विचार सम्पादकीय लेखों में प्रकट न कर सकते थे क्योंकि उस समय सम्पादक का नाम पत्र पर नहीं छपता था और 'केसरी' की सम्मति सोसायटी के सदस्यों की सम्मिलित सम्मति समझी जाती थी। इसलिए प्रायः 'केसरी' में वही छपता जो बहुमत के विरुद्ध न पड़ता था। किसी विषय पर यदि आगरकर का विशेष मत भेद होता तो उसे वह प्राप्त पत्र के रूप में छापते थे। मतलब यह कि आगरकर जैसे समाज-सुधारक के लिए यह अवस्था असह्य हो उठी थी और कभी कभी मत भेद की तीव्रता से एक दुःखद वातावरण बन जाता था। फिर भी किसी तरह काम चलता रहा पर १८८४ इ०-में कुछ बातों को लेकर मत-भेद बहुत तीव्र हो गया और स्कूल के कार्यकर्ताओं में झगड़ा शुरू हो गये। बात यह थी कि बम्बई के सेठ मलाबारी ने बाल विवाह के विरुद्ध आवाज उठाई थी और प्रस्ताव किया था कि इस विषय में सरकार से कानून बनाने की सहायता लेनी चाहिए। इसी बात को लेकर बड़ा तूफान खड़ा

हो गया था। जैसे अस्पृश्यता निवारण बिल का विरोध यह कहकर किया गया कि सरकार को धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए वैसे ही इस समय भी हुआ। आगरकर, रानडे इत्यादि सरकारी सहायता तथा कानून द्वारा यह बुराई रोकने के पक्ष में थे और तिलक, तेलंग इत्यादि विपक्ष में। जो दलीलें आज भी जाती हैं, ठीक वे ही उस समय भी दी जाती थीं। आगरकर सम्पादक थे, इसलिए उनकी स्थिति इस समय बड़ी बुरी हो रही थी। इधर बहुमत उनके विचारों के विरुद्ध था। बहुत हल्ले के बाद १६ दिसम्बर १८८४ के अङ्क में निजी हस्ताक्षर से आगरकर ने अपना व्यक्तिगत मत प्रकट किया। पर इससे कुछ नहीं हुआ, दिन दिन परस्पर कलह बढ़ता ही गया। अन्त में यह निश्चय हुआ कि जो सदस्य चाहे अपने ऊपर जिम्मेदारी लेकर इन पत्रों को चला सकता है। उस समय आगरकर ही सम्पादक थे इसलिए पहला मौका उन्हें ही दिया गया पर उनके पास इतने पैसे कहाँ थे इसलिए २५ अक्तूबर १८८७ को तिलक 'केसरी' के प्रकाशक हुए और उनपर ही जिम्मेदारी भी आ गई। आगरकर अलग हो गये। आगे चलकर जब 'केसरी' और 'मराठा' ('मराठा' के सम्पादक श्री वासुदेवराव केलकर हो गये थे) का मतभेद बहुत बढ़ा और पत्र पर ७०००) का कर्ज भी हो गया तो सोसायटी ने पत्र का स्वामित्व बेच देने का निश्चय किया। फलतः १८९१ ई० में तिलक ने सारे कर्ज की जिम्मेदारी के साथ दोनों पत्रों को ले लिया।

'सुधारक'

अक्तूबर १८८८ से, श्री गोखले की सहायता से आगरकर ने 'सुधारक' नाम का दूसरा पत्र निकाला। यह अंग्रेजी-मराठी में निकलता था। आगरकर मराठी में और गोखले अंग्रेजी में लिखा करते थे। गोखले यद्यपि अवस्था में छोटे थे पर अंग्रेजी भाषा पर उनका असाधारण अधिकार था। इसलिए पत्र बहुत अच्छा निकला। गोखले अधिकतर राजनीतिक विषयों पर ही लिखते थे। इन लोगों ने केवल ४) मासिक लेकर प्रथम

ार्य पत्र चलाया। आगरकर ने कभी धन की इच्छा न की और अपना ारा जीवन समाज-सेवा में लगा दिया।।

पर इन मत भेदा और झगड़ा के बीच भी तिलक और आगरकर एक दूसरे को बहुत चाहते थे और मृत्यु के समय आगरकर ने तिलक को बुलाया था और तिलक उनकी मृत्यु के बाद बहुत रोये थे।

इधर आगरकर ने सुधारक निकाला, इधर डेकन एजूकेशन सोसायटी से अलग होने के बाद अन्य सार्वजनिक कार्यों में भाग लेने का समय और अवसर तिलक को मिल गया। इसमें जहाँ सोसायटी की हानि हुई तहाँ देश का लाभ हुआ। न तिलक सोसायटी छोड़ते, न देश के विस्तृत सार्वजनिक क्षेत्र में आते।

क्राफर्ड-प्रकरण

१८८५ ई० से कांग्रेस का नियमित वार्षिक अधिवेशन होने लगा था। पहला अधिवेशन पूना में ही होने वाला था पर कई असुविधाओं के कारण बम्बई में हुआ। १८८९ ई० में कांग्रेस का पाचवाँ अधिवेशन जब फिर बम्बई में करने का विचार हुआ तब पूना-वासियों की ओर से तिलक यह निवेदन पत्र लेकर बम्बई गये कि यह कांग्रेस पूना में ही होनी चाहिए। यद्यपि इस विषय में सफलता नहीं हुई पर इससे यह मालूम पड़ता है कि धीरे धीरे पूना की जनता पर तिलक का अधिकार होता जा रहा था। इसी समय एक ऐसी घटना हुई जिसके कारण तिलक की लोक-प्रियता और बढ़ गई।

क्राफर्ड साहब नामक एक सिविलियन रत्नागिरि के कमिश्नर थे। ये भारतीयों से बहुत हेल मेल रखते थे, रत्नागिरि को अपनी जन्मभूमि की तरह मानते थे। कोंकणी मराठी ऐसी बोलते जैसे कोई किसान बोल रहा हो पर इसके साथ ही वे बड़े खर्चीले और अनियमित थे। बंगले पर हा-हा, हू-हू होता रहता, शराब उड़ा करती और तरह-तरह के भोजन बनते और पार्टियाँ हुआ करती थीं। जिले के अन्य अंग्रेजों की स्त्रियाँ भी आतीं। उन्हें यह छोटे बड़े तरह तरह के उपहार दिया करते।

इस प्रकार उनका खर्च वेतन से कहीं अधिक था। इसलिए उन्हें रिश्वत लेने का अभ्यास पड गया। तहसीलदारों के द्वारा यह काम होता था। धीरे धीरे सरकार को भी इसका पता चला। कुछ दिन पता लगाने के बाद पुलिस इन्स्पक्टर जनरल श्री ओमनी को इस कार्य पर नियुक्ति हुई। उन्होंने खोज शुरू की। तै यह हुआ कि पहले कुछ तहसीलदारों पर मामला चलाया जाय और धीरे धीरे सब मामला प्रकाश में लाया जाय। तहसीलदारों को यह आश्वासन दिया गया कि सच्ची बातें प्रकट करने पर उनकी कोई क्षति न होगी।

क्राफर्ड साहब पर जब इस प्रकार का दोषारोपण किया गया तो जनता इस मामले में रस लेने लगी। उस समय गोरों की ईमानदारी की डींग हाँकने और हिंदुस्तानियों को बेइमान और झूठा कहने का चाव अंग्रेजों में पड गई थी इसलिए जब यह भेद खुला तो भारतीयों ने समझा कि अंग्रेज भी हमारी ही तरह आदमी है और अपने बारे में जो डींग की हाँकते हैं और शान बघारते हैं वह गलत है।—इस समय उनके लिए एजिन होने का मौका आया है। जनता के रस लेने का यही कारण था। 'केसरी' इस मामले में शुरू से आन्दोलन कर रहा था।

१६ जुलाइ १८८८ को हनुमन्तराव जागीरदार की गिरफ्तारी हुई। अभी तक क्राफर्ड साहब पर मामला चला न था, वह मुअत्तल कर दिये गये थे। क्राफर्ड साहब के पक्ष के जिन तहसीलदारों ने अपराध स्वीकार नहीं किया, वे भी मुअत्तल कर दिये गये। इधर उन गोरों ने भी, जो क्राफर्ड साहब के विरुद्ध थे, जाति का अपमान समझकर इस मामले में सहायता करने से इन्कार कर दिया। मामले को जातीय रूप द दिया गया। इसलिए क्राफर्ड साहब पर मामला न चलाया जाकर कमीशन द्वारा जाँच की बात मंजूर हुई। २३ अक्तूबर १८८८ को कमीशन ने काम शुरू किया। सरकारी वकील एडवोकेट-जेनरल लेथम और बैरिस्टर जार्डिन थे। पर मामले में न्याय की अपेक्षा वर्ण-पक्षपात का भाव इतना

तीय कर दिया गया कि सरकारी वकील श्री ऐथम ने बहस के अन्त में न्याय कहा—"इस जाँच से सभी को बुरा लगा है। हमने जहाँ तक हो सका क्राफर्ड साहब के प्रति रियायत की किन्तु आखिर हमें भी अपना पक्ष सँभालना था। आपने (न्यायकर्ता से) यदि क्राफर्ड साहब को निर्दोष ठहराया तो हमें सन्तोष ही होगा और आपने यदि कहा कि क्राफर्ड साहब अपनी निर्दोषता सिद्ध न कर सके तो इससे हमें बहुत दुःख होगा। इसमें अकेले क्राफर्ड की ही बदनामी नहीं है वरन् सारी अंग्रेज जाति का इसस कलंक का टीका लग जायगा।"*

सरकारी वकील के भाषण से यह स्पष्ट है कि इस मामले को जातीय रूप देकर दबाया जा रहा था। इससे इसमें न्याय की तो आशा ही क्या की जा सकती थी। अन्त में वही हुआ जो होना था। कमीशन ने रिश्वत का अपराध झूठा ठहराया और सिर्फ अपने मातहतों से ऋण लेने की बात मंजूर की। पेंशन देकर क्राफर्ड साहब विलायत भेज दिये गये।

मजा तो यह कि एक ओर जहाँ क्राफर्ड साहब रिश्वत के इल्जाम से बरी कर दिये गये वहाँ हनुमन्तराव को दो वर्ष की सजा और दो हजार जुर्माना हुआ तथा अन्य तहसीलदार भी दण्डित हुए। इस मामले में एक तो न्याय न हुआ, दूसरे एक ही जुर्म में एक आदमी निर्दोष और दूसरा अपराधी करार दिया गया। 'तहसीलदारों को कोई हानि न पहुँचने दी जायगी', यह वचन देकर उसका भंग किया गया। इस बात—विशेषतः अंतिम—को लेकर तिलक ने खूब आन्दोलन किया और 'केसरी'—द्वारा भी इसपर खूब प्रकाश डाला। इस सम्बन्ध में १ सितम्बर १८८९ को बहुत बड़ी सार्वजनिक सभा हुई जिसमें अनेक प्रतिष्ठित लोग उपस्थित थे। इसमें तिलक ने बड़ा ओजस्वी भाषण किया जिसका जनता पर बड़ा असर पड़ा। इस मामले को पार्लमेण्ट में उठाने के लिए भी तिलक ने श्री डिगबी और श्री ब्रेडला से बहुत पत्र-व्यवहार किया,

* इटैलिक लेखक के हैं।

उन लोगों ने सहायता का वचन भी दिया था पर सरकारी कर्म बहुमत्ता के कारण दिलचस्पी लेने पर भी, श्री मैडला इसे पार्लमेंट उठा न सके। मतलब यह कि यद्यपि उन आठ तहसीलदारों का विशेष लाभ नहीं हुआ पर इससे जनता का विशिष्ट ध्यान में जो विषय था उसका पता लगा और फलत महाराष्ट्र में जागृति का सिलसिला शुरू हुआ, तिलक जनता के साथ सम्पर्क में आये और उनमें उनकी लोकप्रियता भी बढ़ गई।

× × ×

१८९१ ई० में जब 'केसरी' और 'मराठा' का स्वामित्व पूरी तरह तिलक के अधिकार में आया तब से वह इन पत्रों के सम्पादन की ओर विशेष रूप से ध्यान देने लगे। उनकी सारी प्र 'केसरी और मराठा' की ओजस्विनी भाषा, विषय के प्रतिपादन की सर्व गम्य स्पष्ट पद्धति, विद्वत्तापूर्ण एवं तर्क-शुद्ध विवेच और कड़ी किन्तु मार्मिक आलोचना के कारण 'केसरी' की लोकप्रियता और ग्राहकों की संख्या बढ़ने लगी। बहुत शीघ्र इसकी ग्राहक-संख्या ५००० हो गई और आगे तो वह जमाना भी आया जब बीस-बीस पच्चीस-पच्चीस हजार कापियां छपती थीं। 'केसरी' का महाराष्ट्र की विचार पद्धति एवं राजनीतिक विकास में क्या स्थान है, इसे अन्य प्रान्तों के लोग नहीं समझ सकते। एक समय तो यह था कि ऐसा कोई भी शिक्षित महाराष्ट्र परिवार नहीं था जहाँ 'केसरी' न आता हो। आज वह स्थान ज्यों की त्यों तो नहीं रह गई है पर अब भी मराठी समाचार-पत्रों में उसका आदर और स्थान वही है। अब भी अन्य प्रान्तों में रहने वाले महाराष्ट्रीय उसे मँगाते हैं। मराठी जनता की जागृति, भाषा एवं साहित्य की उन्नति तथा एक विशेष विचार धारा बनाने में 'केसरी' का बड़ा हाथ है।

'केसरी' से जो-कुछ लाभ होता था वह या तो 'मराठा' की घटी में चला जाता था या सात हजार का जो कर्ज था उसकी पूर्ति में। इसलिए सारा

टी छोडने के बाद तिलक के सामने जीविका का भी प्रश्न था। इसके लिए उन्होंने दो उद्योगों की योजना की। एक तो बहुत दूर—गाँव में एक जिनिंग फैक्टरी खोली, दूसरे 'ला—क्लास' (कानूनी कक्षा) लेना आरम्भ किया। फैक्टरी तीन आदमियों के साझे में थी। यह जिनिंग फैक्टरी कभी लाभ, कभी घाटे में चली और उससे कभी जीविका का प्रश्न हल नहीं हुआ। हाँ, ला-क्लास खूब चला। आरम्भ में प्रथम वर्ष का, बाद में दूसरे वर्ष का इस प्रकार दोनों क्लास नियमित रूप से चलते रहे। पढ़ाने के लिए कुछ और भी योग्य साथी मिल गये थे। इससे तिलक को लगभग १५०) मासिक की आय हो जाती थी। यह क्लास १८९६ ई० के अन्त तक चलता रहा। उसके बाद 'केसरी'—'मराठा' का, तथा सार्वजनिक, काम बढ़ जाने से बन्द कर देना पड़ा।

जीविका का प्रश्न

'केसरी' के कारण दिन दिन तिलक जनता के सम्पर्क में आते गये। १८९०-९१ में सम्मतिवय विषयक बिल का झगड़ा जब जोरों पर था और श्री भण्डारकर, रानडे, गोखले इत्यादि बिल का समर्थन कर रहे थे तब तिलक ने शास्त्रों का पक्ष लेकर कानून द्वारा इस प्रकार के धार्मिक सुधार को अनुचित बताया था एवं इस सम्बन्ध में अपनी तर्क शैली एवं विवाद प्रणाली से बहुतों के मुँह बन्द कर दिये थे। जनता तिलक को भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का रक्षक समझने लगी थी। इधर तिलक ने देखा कि जनता में जागृति लाने के लिए अपने त्योहार और मेले सर्वोत्तम उपाय हैं अतः इसका संचालन इस ढंग से करना चाहिए कि उद्देश्य की सिद्धि हो। इसी उद्देश्य से 'केसरी'—द्वारा तथा अन्य प्रकार से आन्दोलन करके उन्होंने गणपति उत्सव और शिवाजी जयन्त्युत्सव की नींव डाली। पहला धार्मिक और दूसरा राजनीतिक था। १८९३ ई० में गणपति उत्सव और १८९४ ई० में शिवाजी-उत्सव का आरम्भ हुआ। धीरे धीरे

दो सार्वजनिक उत्सव

इनका रूप बड़ा व्यापक हो गया। यद्यपि समय ने सर्वत्र फूट के बीज बो दिया है किन्तु ये उत्सव आज भी अनेक जगह मनाये जाते हैं। गणपति उत्सव में धार्मिक चर्चा, पुरातन प्रथाओं एवं संस्कारों का चिन्तन नये ढंग से किया जाता है। शिवाजी उत्सव में ऐतिहासिक घटना स्फूर्तिदायक एवं साहस तथा बल प्रदान करने वाले वीर चरित्रों का गुणगान होता है। शिवाजी उत्सव द्वारा तिलक ने ग्याह हुए विभूति के लिए श्रद्धा पैदा करने और राष्ट्र की उन्नति की लौ जगाने का काम किया। इसको ऐसा राष्ट्रीय रूप दिया गया था कि बहुत-से मुसलमान भी इसमें भाग लेते थे। बंगाल में भी इसका प्रचार हुआ। महाराष्ट्र के युवकों में स्वधर्म एवं स्वराज का प्रेम जगाने में, 'केसरी' के साथ, इन उत्सवों ने बड़ा काम किया है। सर वेलण्टाइन शिरोल ने अपनी पुस्तक 'भारतीय अशान्ति' (Indian Unrest) में दाक्षिणात्यों की जागृति का कारण इन उत्सवों को ही बताया है।

इन दिनों तिलक की लोक प्रियता और समाज में उनका प्रभाव दिन दिन बढ़ता जा रहा था। उनके अनुयायियों की संख्या भी बढ़ती जाती थी। महाराष्ट्र में जिस तरुण तेजस्वी और स्वाभिमानी राष्ट्रीय दल का जन्म हुआ, उसके वे नेता माने जाते थे। सरकार के लोकहित विरोधी कार्यों की वह कड़ी आलोचना करते थे और कष्ट के प्रत्येक अवसर पर जनता का साथ देते थे। उनके इन कार्यों की छाप राष्ट्रीय विचार के कार्यकर्ताओं पर पड़ी थी। लोकमान्य, 'केसरी' तथा इसी प्रकार के प्रभावों के कारण महाराष्ट्र का राष्ट्रीयदल अन्य प्रान्तों के राष्ट्रीय दल से एक बिल्कुल ही भिन्न प्रकार का बन गया था। उसका एक विशेष ढंग एवं व्यक्तित्व था। इस दल को हिन्दू धर्म एवं सभ्यता तथा संस्कृति पर बड़ा अभिमान था। देश एवं धर्म के लिए वह सब प्रकार के त्याग करने को तैयार रहता था। तिलक इस दल के नेता थे। श्री शिरोल ने द्वेष भर शब्दों में लोकमान्य का जो वर्णन किया है और उन्हें हिन्दू

कट्टरता का नेता, गणेश का प्रधान पुरोहित, नवीन राष्ट्र धर्म का प्रवक्ता कहा है × उससे उनका प्रभाव व्यक्त होता है।

१८९५ ई० में तिलक बम्बई कौंसिल के सदस्य चुने गये। उसके अन्दर भी उन्होने जन-पक्ष का समर्थन उसी निर्भीकता से किया और सरकार की अनुचित कार्रवाइयों का सदा दृढ़ता पूर्वक विरोध किया।

कौंसिल में

१८९६ ई० में महाराष्ट्र में अकाल पड़ा। उससे लोग त्रस्त हो गये थे। इस समय तक तिलक का प्रभाव जनता में खूब बढ़ गया था। पूना की सार्वजनिक सभा, 'केसरी', कौंसिल तथा म्युनिसिपल्टी द्वारा वह जनता की सेवा कर रहे थे। कांग्रेस में भी शरीक होते और उसके कार्यों में भी हाथ बटाते थे। १८९६ के अकाल मे सार्वजनिक सभा के मंत्री की हैसियत से अकाल पीडित लोगो के लिए उन्होंने आन्दोलन किया था एवं उनकी सहायता की थी। इस समय में 'केसरी' मे भी कितने ही लेख निकाले थे। सार्वजनिक सभा के अनेक प्रतिनिधि और प्रचारक उस समय सम्पूर्ण महाराष्ट्र म फैल गये थे और जनता की सभाएँ करके उन्हें सगठित होकर परस्पर सहायता करने एव दबाव डालकर सरकार से सहायता प्राप्त करने का उपदेश करते थे। कई जगह फसल न होने पर कर्ज लेकर लगान न देने का भी उपदेश किया गया था जिसके सम्बन्ध म तीन प्रचारकों पर मुकदमे भी चलाये गये थ। तिलक 'केसरी' द्वारा बराबर अकाल सम्बन्धी आन्दोलन को उत्साह एव बल देते रहे तथा इस सम्बन्ध म सस्ते अनाज की दुकानें खुलवाना आदि दूसरे कार्य भी करते

अकाल और प्लेग

× 'He (Mr Tilak) was the triumphant champion of Hindu orthodoxy the high priest of Ganesh the inspired prophet of a new Nationalism which in the name of Shivaji would cast out the Mlecchas and restore the glories of the Mahratta history'
Indian Unrest Page 47

रहे। इस समय महाराष्ट्र म होनेवाले लगभग प्रत्येक आन्दोलन तिलक का हाथ था।

कहते है—विपत्ति अकेले नहीं आती। अभी अकाल का सिलसिला भली भाँति टूटा भी न था कि दूसरी विपत्ति आ गई। १८९७ में भयंकर ब्यूबोनिक प्लेग फैला। इस छुतही बीमारी की उस समय की भयकरता का अनुमान नहीं किया जा सकता क्योंकि पहले ही पहल इसका आक्रमण एव आरभ हुआ था। इससे लोग बिल्कुल घबरा गये चूँकि यह छूत की बीमारी थी इसलिए उसका प्रभाव एव प्रसार रोकने के लिए सरकार ने क्वारन्टाइन और घरों की सफाई सम्बन्धी नियमों का कड़ाई के साथ पालन कराना आरभ किया। गलती यह हुई कि इस कार्य में गोरे सैनिकों की मदद ली गई। पुलिसमैन तथा सैनिक लोगों को बहुत तग करते। पुलिसवाले किसी को यह कहते कि तुझे प्लेग हो गया है, अस्पताल चलना पड़ेगा, घूस लेते फिरते थे। प्लेग के कीटाणुओं के नाम पर चीजें जलाने का अधिकार भी अधिकारियों तथा इन गोरे सैनिकों को था। तिलक सफाई एव चिकित्सा तथा उपचार का तो समर्थन करते थे पर उनका यह भी कहना था कि सरकार द्वारा इतनी सख्ती से काम लिया जा रहा है कि लोग भयभीत हो रहे हैं—फलत इस व्यवस्था का उद्देश्य ही विफल हो रहा है। गोरे सिपाही कहीं घर के देवस्थान म, कहीं जनाने मे घुस जाते। जिस चीज को चाहते उलटते पुलटते कभी-कभी जब म भी रख लेते। जिस चीज को चाहते दूषित कहकर जला देते। मतलब यह कि हाहाकार मच गया। इस समय 'सुधारक' म गोखले न बड़े-बड़े लेख लिखे, तिलक इत्यादि न कई बार अधिकारियों के कानों तक अवाज पहुँचाई और व्यवस्थित ढग से काम करने के उपाय भी बताये पर सब कहना-सुनना नक्कारखाने म तूती की आवाज–जैसा हुआ। तिलक ने लिखा—"तुम्हारी सख्ती एव विवेक-शून्यता के कारण रोगियो को उनके सम्बन्धी घर

ए मित्र छिपाकर रखते हैं अथवा अनेक स्थानों में घुमाते फिरते हैं अत सर्ग दोष से बचाने का जो उद्देश्य है वह सिद्ध नहीं होता, उलट ह रहा है।"

जैसा कि लिखा जा चुका है गोरे सैनिक जबर्दस्ती लोगों का घर खते समय नाना प्रकार की सख्ती करते थे। यहाँ तक भी बात फैली क कई जगह स्त्रियों से अनुचित छेड़ छाड़ की गई है। इससे जनता का ष कम होने की जगह और बढ़ गया। नाना प्रकार की झूठी सच्ची फवाहें उड़ने लगी। चाफेकर नामक एक व्यक्ति ने उत्तेजना में प्लेग-मिटी के अध्यक्ष श्री रैण्ड का, २२ जून मंगलवार की रात को, गवर्नमेंट गउस से लौटते समय, खून कर डाला और धीरे से घटना स्थल से ट गया। पीछे जाकर बहुत खोज के बाद वह गिरफ्तार हुआ और फाँसी हुई।

मुकदमा और सजा

इस खून ने सारे हिन्दुस्तान में सनसनी फैला दी। सरकार घबड़ा गई। चूंकि तिलक का जनता पर खूब प्रभाव था और प्राय प्रत्येक सार्वजनिक कार्य में उनका सम्बन्ध था इसलिए सरकार के मन में यह बात बैठ गई कि केसरी के लेखों से ही इस खून को उत्तेजना मिली। अन्त में उनके कुछ लेखों को लेकर उन पर राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया। जस्टिस स्ट्राची जज थे और ५ अंग्रेज, १ यहूदी, १ पारसी, एवं २ दक्षिणी कुल ९ की जूरी थी। अभियुक्त पक्ष की ओर से कहा गया कि लेख मराठी में हैं अत उनकी 'स्पिरिट'—प्रेरक भावना—को समझने के लिए मराठी जाननेवाले जरूर होने चाहिएँ। पर यह आपत्ति नहीं मानी गई। मुकदमे में सब युरोपियन जूरियों ने अभियुक्त को अपराधी एवं सब हिन्दुस्तानी जूरियों ने निरपराध बताया। जस्टिस स्ट्राची ने 'राजद्रोह' का एक बिलकुल नवीन अर्थ किया। राजद्रोह का सामान्य अर्थ सरकार के प्रति असन्तोष फैलाना है पर श्री स्ट्राची ने इस

धारा के 'डिसअफेक्शन' का शाब्दिक अर्थ अ—प्रीति या प्रेम अभाव किया और कहा कि जिस वचन या लेख के द्वारा प्रेम का होता है वह राजद्रोहात्मक है। यह बिल्कुल नया अर्थ था, इसके सार तो फिर सरकार की आलोचना की ही नहीं जा सकती आलोचना करने या दोष दिखाने से उसके प्रति प्रेम में कमी तो ही। पर इस अभूतपूर्व अर्थ के अनुसार ही श्री स्ट्राची ने १८ महीने की सजा दे दी। इस फैसले की अपील करने की चेष्टा की पर हाईकोर्ट से आज्ञा न मिलने के कारण सजा बहाल रही।

इस मुकदमे से लोगों में बड़ी सनसनी फैली। बंगाल ने इस पर तिलक की सब से अधिक सहायता की। कलकत्ता से दो बरिस्टर मुकदमे की पैरवी के लिए भेज गये और उनका सारा खर्च वालों ने अपने ऊपर उठाया। 'अमृतबाजार पत्रिका' ने का समर्थन किया। उसके स्वामी स्व० शिशिर कुमार घोष को अपना राजनीति का गुरु एवं पिता तुल्य मानते थे और उनके स्व० मोती बाबू को अपना बड़ा भाई समझते थे। इस मुकदमे तिलक के कई मित्रों ने उन्हें माफी मांग लेने की सम्मति दी थी तिलक जैसे निर्भीक देशभक्त को यह बात क्यों अपील करती। जनता का कोई हित न हो सकता था। इस सम्बन्ध में उन्होंने के आरम्भ में स्व० मोतीलाल घोष को लिखा था—"मित्र लोग मुझे माँगने को कह रहे हैं पर मैं तो अपने को निर्दोष मानता हूँ।"

बंगाल के तात्कालिक एडवोकेट-जेनरल सर चार्ल्स पाल पस जजों के लिए खतरनाक बरिस्टर कलकत्ता के श्री विलियम जेक्सन इस जस्टिस स्ट्राची के इस अर्थ की हँसी उड़ाया करते थे। श्री जैक्सन ने इस अर्थ का मजाक उड़ाते हुए एक वकील से कहा था—"इसी प्रकार हम dissension का अर्थ absence of tension कर सकते हैं।"

माफी माँगकर अपमानपूर्वक अपने देश-बन्धुओं में रहने की अपेक्षा काला पानी जाना मुझे मजूर है।"

बाद मे तिलक के छुटकारे के लिए बहुत से लोगों ने तरह-तरह से यत्न किया। जब तिलक सोसायटी मे थे तभी उन्होंने गीता और वेदों का गभीर अध्ययन शुरू किया था। १८९२ ई० मे उन्होंने एक निबन्ध लिखकर लन्दन की प्राच्य परिषद् मे भेजा जो वहा के विवरण मे प्रकाशित हुआ। इसमे उन्होंने अग्रहायण से वर्ण-गणन की प्रथा के आधार पर वेद-काल का निर्णय किया था और उसे कम से कम ४ से ५ हजार वर्ष ईसा के पूर्व का सिद्ध किया था। पीछे यही निबन्ध 'ओरायन' के नाम से पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ। इस निबन्ध का पश्चिम के विद्वानों पर बड़ा प्रभाव पड़ा। प्रो० मैक्समूलर तो बहुत ही प्रभावित हुए। उन्होंने, डा० हण्टर ने तथा पार्लमेंट के कई सदस्यों ने अर्जी द्वारा महारानी विक्टोरिया से प्रार्थना की कि ऐसे विद्वान् पुरुष को जेल में सड़ाना उचित नहीं। बम्बई कौंसिल में भी यह मसला पेश हुआ और वहाँ भी छोड़ने का ही निश्चय हुआ, तदनुसार एक वर्ष की सज़ा भोगने के बाद ६ सितम्बर १८९८ को कुछ शर्तों पर वह छोड़ दिये गये।

छुटकारा

इस सजा के कारण जनता में तिलक की लोक प्रियता और बढ़ गई। जब वह कैद में थे तब राष्ट्रीय महासभा के अमरावती अधिवेशन मे एक भाषण मे स्व० सुरेन्द्रनाथ द्वारा तिलक का जिक्र आते ही प्रतिनिधि खड़े हो गये एव बहुतों ने देर तक तिलक का जयघोष किया। बाद में छूटकर जब वह घर पहुँचे तो दो दिन में कम से कम दस हजार आदमी उनसे मिलने एव उनके दर्शन करने आये होंगे। कई देवालयों मे रोशनी की गई। देश विदेश से अभिनन्दनात्मक तार एव पत्रों के ढेर लग गये। इस समय से तिलक का कार्य क्षेत्र महाराष्ट्र मे ही सीमित न रह-

स्वागत

कर समग्र भारत में फैल गया।

ताई महाराज का मुकदमा

तिलक के जेल से छूटने के कुछ ही दिन बाद उनके मित्र सरदार बाबा महाराज मरणासन्न हुए। उनको कोई सन्तान नहीं था। इसी उन्होंने तिलक से बड़ा आग्रह किया कि आप मे इस्टेट के एक ट्रस्टी बन जाइए। तिलक ने मि की इस अन्तिम इच्छा को मान लिया। तदनुसार 'विल' लिखा गया। बाबा महाराज की मृत्यु के कु दिनों बाद ट्रस्टियों ने उनकी युवती विधवा पत्नी ताई महाराज को उनकी इच से एक लड़का गोद दिया। पर बाद में उस स्त्री को, तिलक के बढ़ते ह प्रभाव के कारण उनसे ईर्ष्या करनेवाले कुछ विरोधियों ने, भड़का दिया। उसने कहा कि 'ट्रस्टियों ने जो लड़का मुझे गोद दिया है, वह मुझे पसन्द नहीं है—मेरी राजी से यह काम नहीं हुआ, मेरे साथ इस मामले में जबर्दस्ती की गई है।' सरकार ने दक्षिण के सरदारों के पोलिटिकल एजेण्ट के द्वारा इस मामले की जाँच करवाई और तिलक पर जाली दस्तावेज बनाने और झूठी गवाही देने का इल्जाम लगाकर फौजदारी में दायर कर दिया। मुकदमा आरम्भ हुआ। डेढ़ वर्ष में कोई सवा सौ पेशियाँ पूना, बम्बई, अमरावती इत्यादि में हुईं। सरकार ने इसकार्य में ६० ह हजार रुपये खर्च किये पर हाईकोर्ट से तिलक निर्दोष सिद्ध हुए, यही नहीं उल्टे सरकारी पक्ष ही बनावटी कागज पत्रों के आधार पर खड़ा किया गया सिद्ध हुआ। इस प्रकार तिलक को फँसाने और बदनाम करने का जो जाल सरकार ने फैलाया था वह छिन्न भिन्न हो गया। यों तो इस मुकदमे की जटाएँ १९०२ से १९२० तक किसी न किसी रूप में चलती ही रहीं और उसका अन्तिम फैसला तो तिलक की मृत्यु के कुछ दि पहले, उनके ही पक्ष में, हुआ।

× × ×

व्यापक क्षेत्र में

धीरे धीरे तिलक ने प्रान्तीय क्षेत्र के साथ सर्वभारतीय राजनीति के क्षेत्र में प्रवेश किया। इस समय भारत के वायसराय लार्ड कर्जन थे। उनमें अनेक व्यक्तिगत गुण थे। ऐसा परिश्रमी, तेजस्वी और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को समझने वाला दूसरा वायसराय भारत में नहीं आया। वह समय रात रात तक आफिस के काम करते रहते थे पर उनके हृदय में भारत के साथ कोई सहानुभूति नहीं थी। वह जो कुछ करते साम्राज्य वादी भावों से प्रेरित होकर इंग्लैण्ड की शक्ति बढ़ाने के लिए करते थे। उन्होंने एशिया की समस्याओं का अच्छा अध्ययन किया था, जैसा कि उनकी लिखी 'मध्य एशिया में रूस,' 'सुदूर पूर्व की समस्याएँ' इत्यादि पुस्तकों से प्रकट होता है। वह समझते थे कि ईरान, स्याम, चीन, तिब्बत तथा अन्य एशियायी देशों में ब्रिटन की सत्ता फैलाने की पहिली सीढ़ी है भारत में अंग्रेजी राज्य की नींव दृढ़ करना। अपने परिश्रम एवं कार्य शीलता से उन्होंने भारतीय शासन में जान डाल दी थी। पर यह सब भारतीय आकांक्षाओं को कुचलने के लिए था। गोरेपन का अभिमान उनमें प्रबल था। वह समस्त एशियाई जातियों को असभ्य समझते थे और एक बार उन्होंने उन्हें 'असत्यभाषी' भी कहा था।

लार्ड कर्जन

पर जागृति की लहर कितने भी उत्साही एक अंग्रेज वायसराय द्वारा दबाई नहीं जा सकती थी। एशियायी राष्ट्र जापान ने युरोपीय राष्ट्र रूस को जो जबर्दस्त पटखान दी थी उससे समस्त एशिया आत्मविश्वास के भाव से परिपूर्ण हो रहा था। जागृति की एक लहर सर्वत्र फैल रही थी। भारत में भी उसका प्रभाव स्पष्ट दिखाई देने लगा।

तिलक इस परिस्थिति का उपयोग राष्ट्र की उन्नति में करना चाहते थे। यों तो वह राष्ट्रीय महासभा में पहले से ही शामिल थे और १८९५ की पूना कांग्रेस के सेक्रेटरी भी थे पर अबतक काँग्रेस में उनका विशेष

स्थान न था। १८९८ ई० से कांग्रेस में उनका प्रभाव बढ़ने लगा। १९०३ ४ तक वह कांग्रेस के एक उग्रवादी नेता हो गये थे। इ समय—१९०४ ई० में—लार्ड कर्जन ने विश्वविद्यालयों के लिए कानून बनाकर शिक्षा की बागडोर सरकार के हाथ

बंग भंग आंदोलन

दे दी। इससे भारत के शिक्षित युवकों में असन्तोष फैल गया। लोग समझने लगे कि सरकार काल में निष्पक्ष शिक्षा को उत्तेजन देना नहीं चाहती, वह अपने रंग में रंग अपना मतलब सिद्ध करनेवाली शिक्षा के प्रसार के लिए ऐसा कर रही है। बंगाल में खूब जागृति हो रही थी। उस जागृति का दल तोड़ने के लिए १९०५ में लार्ड कर्जन ने बंगाल को दो टुकड़ों में बाँट देने की घोषणा की। बहाना तो यह किया गया कि बहुत बड़ा प्रान्त होने के कारण शासन की दृष्टि से कठिनाई पड़ती है (उस समय बंगाल में आसाम, बिहार, उड़ीसा इत्यादि भी सम्मिलित थे)। इस बंग-भंग ने तो जैसे बंगाल में आग लगा दी। चोट खाई हुई सर्पिणी के समान बंग भूमि फन काढ़कर खड़ी हो गई। ऐसी लपट उठी कि मालूम होता था जैसे अंग्रेजी राज उस आग में भस्म हो जायगा।—जैसे ईश्वर ने भारत की जागृति के लिए ही लार्ड कर्जन के हाथों ऐसा अवसर उप-स्थित किया हो। सारा बंगाल एक मन प्राण हो रहा था। वैसी एकता फिर कभी देखी न गई। स्वदेशी आन्दोलन इतने जोरों से चला कि बंगालियों के लिए भी वह धर्म सा हो गया। बहिष्कार के अस्त्र का प्रबलता के साथ उपयोग किया गया। सारे बंगाल, और उसके साथ भारत में, विरोध की सभाओं की धूम मच गई। नवीन देशी व्यवसायों को उत्तेजना मिली। चारों ओर हलचल और कर्तृत्व के दृश्य थे। वर्षों के अवरुद्ध शक्ति स्रोत के समान फटकर बह रहे थे।

महाराष्ट्र में स्वदेशी आन्दोलन तो बहुत पहले से ही शुरू हो गया था। १८८२ ई० में, जब राष्ट्रीय महासभा की स्थापना भी न हुई थी,

रा० गणेश वासुदेव जोशी ने (जो 'सार्वजनिक काका' के नाम से प्रसिद्ध थे) उसे चलाया था। लोकमान्य तिलक इस आन्दोलन के प्रबल समर्थकों में थे। बग भग के बाद जब स्वदेशी के उपयोग और विदेशी माल के बहिष्कार का आन्दोलन चला तो तिलक ने उसका समुचित उपयोग किया और उस समय बगाल के नेताओं की उन्होंने बडी सहायता की।

१९०५ ई० में राष्ट्रीय महासभा (काग्रेस) का अधिवेशन गोखले की अध्यक्षता में काशी में हुआ। गोखले ने भी अपने भाषण में बहिष्कार का समर्थन किया। उसके बाद वाली कलकत्ता की काग्रेस में अध्यक्ष दादाभाई नौरोजी ने पहली बार 'स्वराज' शब्द का उपयोग किया और काग्रेस ने स्वराज सिद्धि के लिए स्वदेशी, बहिष्कार और राष्ट्रीय शिक्षा के तीन साधनों का निश्चय किया। इस समय राष्ट्रीय पक्ष—उग्र दल—का जोर बहुत बढ गया था और उन नरम नेताओं के सामने कठिन समस्या उत्पन्न हो गई थी जो सरकार का रुख देखकर काम करना चाहते थे और उसे नाराज होने का मौका नहीं आने देना चाहते थे।

सूरत की तूफानी काग्रेस

इसके पहले राष्ट्रीय महासभा का कार्य बडी सुस्ती से चल रहा था। उसमें नरम दल के नेताओं का प्राधान्य था। वे सरकार के विरुद्ध कोई कडा प्रस्ताव पास करना भी पसन्द न करते थे। उस समय तक सरकारी नौकरियों मे भारतीयों को स्थान दिलाना ही काग्रेस का एक मुख्य कार्य था। वह एक विवाद सभा (डिबेटिंग क्लब) की तरह थी। पर स्वदेशी आन्दोलन ने तथा सरकार की निरन्तर चलनेवाली दमन की तलवार ने बहुत से युवकों के हृदय में मातृभूमि के लिए एक वेदना उत्पन्न कर दी थी—एक दर्द पैदा कर दिया था। चोट खा खाकर उनकी स्वाभिमान वृत्ति जग गई थी। अब काग्रेस नेताओं की सुस्ती उन्हें पसन्द न पडती थी और काग्रेस को अपने हाथ में ले लेने के लिए वे उत्सुक

थे। इस समय कांग्रेस में स्पष्ट दो दल—नरम और गरम—हो रहे थे।

ऐसे ही समय सूरत की कांग्रेस * हुई। यहाँ कांग्रेस के अधिकांश नरम दल के नेताओं ने चतुराई के साथ कलकत्ता कांग्रेस के 'स्वराज' की व्याख्या करके उसका अर्थ औपनिवेशिक स्वराज रखना चाहा। विपक्ष का कहना था कि कुछ अर्थ न करके अभी उसे यों ही छोड़ देना चाहिए। वस्तुतः नरम दल चाहता था कि सरकार नाराज न हो जाय, जब गरम दल को यह सकोचा-सकोची की नीति अनुचित एवं जन पक्ष के लिए अहितकर प्रतीत होती थी। इस पर बड़ा गड़बड़ मचा। लोकमान्य जब बोलने खड़े हुए तो उन्हें बोलने से रोक दिया गया, पर शोरगुल तथा नाना प्रकार के प्रहारों की बीच भी वह अड़े रहे। उस समय किसी ने अध्यक्ष पर जूता फेंक दिया। कुछ लोगों का कहना है कि जूता तिलक पर फेंका गया था पर जाकर लगा अध्यक्ष को। मतलब यह कि तिलक को बोलने नहीं दिया गया। गोलमाल में उस दिन अधिवेशन स्थगित हो गया। फल यह हुआ कि कांग्रेस में सदा के लिए दो दल हो गये। दोनों ने अपनी अलग अलग कान्फ्रेंस की।

यहाँ से भारतीय राजनीति में एक नई धारा पैदा होती है। नरम दल के नेताओं ने कांग्रेस के नियमों में परिवर्तन करके गरमदल वालों के लिए उसका दरवाजा बन्द कर दिया। यह दरवाजा १० वर्ष तक बन्द रहा और अन्त में दोनों दलों में समझौता होने पर १९१६ में खुला। इसमें गरम दल वालों को जनता में आकर काम करने का मौका मिला और दिन दिन उनकी लोकप्रियता बढ़ती गई। इस समय लाल-बाल पाल† के हाथ में राष्ट्र की बागडोर थी।

* इसका वर्णन विस्तार के साथ 'लाला लाजपतराय' की जीवनी में किया गया है। आगे देखिए।

† लाल = लाजपतराय। बाल = बाल गंगाधर तिलक। पाल = विपिनचन्द्र पाल।

बंगाल में जो अनपेक्षित दमन हो रहा था उससे बहुत से युवकों ने, प्रवृत्ति एाने एवं गोरों का आतंक जन हृदय से दूर करने के उद्देश्य से हिंसात्मक उपायों का आश्रय लिया। सूरत कांग्रेस के दो दिन पहले ही ढाका के मजिस्ट्रेट की हत्या का समाचार लोगों को मिला। इस प्रकार की दुर्घटनाओं से नरम गरम दोनों प्रकार के नेता आश्चर्य विमूढ हो रहे थे। सरकार दमन करती जा रही थी। इससे ऐसे क्रान्तिकारियों को और उत्तेजना मिलती थी। तिलक का कहना था कि सरकार को इन दुर्घटनाओं के मूल कारणों की खोज करनी चाहिए और उसे दूर कर देना चाहिए। ऐसे काण्ड सरकार द्वारा जन-मत के विरुद्ध किये गये बंग भंग के परिणाम हैं अतः बंग भंग को ही रद्द कर देना चाहिए। इसी आशय के लेख 'बम गोलों का रहस्य', 'ये उपाय टिकाऊ नहीं', 'देश का दुर्दैव' आदि शीर्षकों से तिलक ने 'केसरी' में लिखे थे। सरकार इस समय घबरा गई थी और दमन के सभी अस्त्रों का उपयोग कर रही थी। अखबारों का मुँह बन्द किया जा रहा था।

मराठी पत्र 'काल' पर सरकार का आक्रमण सब से पहले हुआ। उसके सम्पादक प्रो० परांजपे पर राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया। तिलक उनकी सहायता के लिए बम्बई गये हुए थे। वहीं २४ जून १९०८ को गिरफ्तार कर लिये गये और 'देश का दुर्दैव' तथा 'ये उपाय टिकाऊ नहीं हैं' नामक लेखों के लिए उनपर ताजीरात हिन्द की १२४अ और १५३अ धाराओं के अनुसार मुकदमा चलाया गया। १३ जुलाई से जस्टिस दावर के इजलास में मुकदमा शुरू हुआ। यह दावर वही थे जो १८९७ वाले मुकदमे में तिलक पक्ष के वकील थे। सरकार की तरफ से एडवोकेट जनरल श्री इनवेरेरिटी, श्री ब्रैन्सन एवं बिनिंग—जैसे प्रख्यात बैरिस्टर पैरवी कर रहे थे। तिलक ने अपनी पैरवी खुद की। उस समय उन्होंने अपनी सफाई में जो भाषण किया वह ४ दिन में (६ घण्टे प्रतिदिन के हिसाब से) समाप्त हुआ और

राजद्रोह का मुकदमा

उसे सुनकर, उनके गभीर कानूनी ज्ञान पर, वकील लोग दंग रह गये। १८९७ वाले मुकदमे की तरह इस बार भी तिलक पक्ष की ओर से कहा गया कि जूररों में ऐसे आदमी होने चाहिएँ जो मराठी जानते हों पर उनकी सुनवाई नहीं हुई। नौ जूररों में ७ युरोपियन थे और दो भारतीय, दोनों मराठी जानते थे और दोनों ने तिलक को निर्दोष बताया पर इन युरोपियनों ने उन्हें दोषी करार दिया। उस समय तिलक ने कहा था— "जूरी ने यद्यपि मेरे विरुद्ध राय प्रकट की है पर मेरी अन्तरात्मा कहती है कि मैं पूर्णत निर्दोष हूँ। मानवी शक्ति से दैवी शक्ति अधिक समर्थ है। वह मनुष्य-मात्र तथा राष्ट्रों की भवितव्यता का सचालन करती है और कदाचित् ईश्वरीय संकेत ऐसा ही हो कि मेरे स्वतंत्र रहने की अपेक्षा मेरे कारागृह में रहने और कष्ट भोगने से ही मेरा अभीष्ट कार्य आगे बढ़े"। कैसी अनासक्ति और निस्पृहता है!

२२ जुलाई को मुकदमे का फैसला हो गया। यद्यपि रात का ११ बज गये थे, फिर भी जज ने उसी दिन काम खतम करने के विचार से देर तक काम किया और जूरी के बहुमत से सहमत हो तिलक का ६ वर्ष निवास और १०००) जुर्माने की सजा सुनाई।

उस समय जनता इतनी उत्तेजित हो रही थी कि बम्बई में सरकार को पुलिस और सेना का बन्दोबस्त करना पड़ा था। कई जगह दंगे भी हो गये। जनता अपने हृदय में तिलक को जो स्थान दे चुकी थी उसके कारण उस समय सर्वसाधारण में बडी हल चल मची थी। ×

× वेलेण्टाइन शिरोल ने लिखा है—

There were serious riots after the trial The rioting assumed at times a very threatening character The European Police frequently had to use their revolvers and the troops had several times to fire in self defence the gravity of the disturbances however showed the character of the influence which Tilak had already acquired over the lower classes in Bombay and not merely over the turbulent mill hands —Indian Unrest page

पता नहीं सरकार को पहले से ही कैसे सजा की बात मालूम थी सने तिलक को जेल भेजने का सब बन्दोबस्त पहले से ही कर रखा था। जा का हुक्म होते ही वह एक बन्द गाडी मे बैठाकर स्टेशन ले जाये ये और वहाँ से स्पेशल ट्रेन द्वारा साबरमती जेल पहुँचाये गये।

पर इतनी लम्बी सजा का हुक्म सुनकर भी तिलक जरा भी अस्थिर ा हुए। उनका अपने मन पर कैसा असाधारण अधिकार था, इसका ता इसी मे चलता है कि ट्रेन में सवार होते ही उन्होंने जो लम्बी न। ो साबरमती मे जगाने पर उठे।

पीछे इस मामले की अपील हाईकोर्ट की 'फुल-बेंच' मे हुई पर छ फल नहीं हुआ। तब तिलक मण्डाले के किले म पहुँचा दिये गये।

मण्डाले के किले मे लकडी का एक बड़ा कटघरा बनाया गया था। उसी में वह रहते थे। गरमी की लू से वह जलने लगता था और बरसात

जेल मे भी सेवा

म अनेक बार फर्श पर पानी भर जाता और छत से भी टपकने लगता किन्तु इन सब कठिनाइयों के बीच भी वह निरुद्वेग होकर शान्त चित्त से गम्भीर अध्ययन मे लगे रहते, जल मे उन्होंने चार पाच सौ ग्रन्थों का गम्भीर अध्ययन किया। उनका अधिकाश समय धर्म चिन्तन और अध्ययन में जाता था। वह कभी अशान्त नहीं हुए वरन् जेल म ही उन्होंने अपना अमर ग्रन्थ-रत्न—'गीता रहस्य'—लिखा और उसम कर्मयोग की श्रेष्ठता प्रतिपादित की।

अथात् "फैसला होने के बाद भारी दगे हुए। [illegible] का रूप बडा भयकर हो जाता था। युरोपियन पुलिस को [illegible] काम में लाने पडे और सोनेकों को, [illegible] गोली चलानी पडी। इससे इतना साफ मालूम पड गया कि न केवल बम्बई के तूफानी मिल मजूरों पर ही तिलक का प्रभाव था, बल्कि साधारण [illegible] और लोगों पर भी था।"

उनके मत से गीता यह नहीं कहती कि संसार से विरक्त होकर, सब लेकर जंगलों में चले जाओ वरन् यह कि अपनी शक्ति भर सब संग्रह कर लोक कल्याण के लिए निष्काम भाव से सेवा-कार्य करते रहो। तिलक ने अपने जीवन में सदा इस सिद्धान्त को निभाया। जब वे मण्डाले में थे तभी १९१२ ई० में उनकी पत्नी का देहान्त हुआ पर उन्होंने बड़ी वीरता के साथ इसे सहन किया और अपना अध्ययन जारी रखा।

१९१४ से १९२० तक

सन् १९०८ से १९१४ तक तिलक जेल में रहे। इस अवधि में देश में काफी जागृति हो गई थी और स्थिति भी बहुत-कुछ बदल गई थी। कई अच्छे नेता राष्ट्रीय क्षेत्र में आ गये थे और कार्यकर्ताओं की संख्या बहुत बढ़ गई थी। युरोपीय युद्ध ने लोगों की आँखें खोल दी थीं और 'आत्म निर्णय' के भाव फैल रहे थे। लोकमान्य (तिलक) के छूटने पर सारे देश में आनन्द छा गया।

कुछ दिन तो तिलक को देश की परिस्थिति का अध्ययन करने में लगे पर शीघ्र ही वह फिर अपने काम में लग गये। इस समय राष्ट्रीय पक्ष के सब से बड़े नेता वही थे। महायुद्ध का आरम्भ था। इस समय उन्होंने एक ओर तो युवकों को अंग्रेजी सेना में भरती होने का आदेश

'स्वराज हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है।'

और दूसरी ओर स्वराज्य का झण्डा देश में बुलन्द किया। श्रीमती एनी बेसेण्ट के साथ होमरूल आन्दोलन को अपनाकर उन्होंने उसमें जान डाल दी और सम्पूर्ण महाराष्ट्र में होमरूल लीग (स्वराज्य संघ) की शाखाएँ स्थापित करके उसे एक जोरदार आन्दोलन का रूप दिया। उस समय—१९१६ ई० में—वह दौरा कर करके देश की सोई हुई शक्ति को जगा रहे थे। उनके व्याख्यानों का क्या पूछना? व्यर्थ का शब्दाडम्बर न होते हुए भी उनके व्याख्यान प्रभावशाली और जोशीले होते थे। उनके

मुँह से निकला हुआ यह वाक्य—'स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं उसे ले कर रहूँगा' (Home Rule is my birth right and I will have it) तो भारत के राष्ट्रीय इतिहास मे अमर हो गया है। इस छोटे वाक्य में मानों राष्ट्र की आत्मा अत्यन्त सजीव होकर बोली है।

इसी दौर में बेलगाँव में उन्होंने जो भाषण किया उसको लेकर फिर उनपर राजद्रोह का अभियोग लगाया गया और पूना के जिला मजिस्ट्रेट के इजलास मे २०-२० हजार की दो जमानत दाखिल करने के लिए मुकदमा चलाया गया। यह सब स्वराज आन्दोलन को कुचलने के प्रयत्न थे,—तिलक ही इस समय उसके प्राण थे। जिला मजिस्ट्रेट की अदालत में तो तिलक अपराधी सिद्ध हुए और उनसे जमानतें माँगी गईं पर हाई कोर्ट से नीचे की अदालत का फैसला रद्द हो गया और तिलक निर्दोष सिद्ध हुए। जज ने कहा कि 'तिलक ने अपने भाषणों मे स्वराज माँगा है और कहा है कि भारतीय शासन मे भारतीयों का ही अधिकार होना चाहिए। यह कहना तो कानून के प्रतिकूल नहीं है।' इस निर्णय से स्वराज आन्दोलन वैध सिद्ध हुआ और फलस्वरूप उसे और बल मिला तथा अधिक संख्या में लोग उसमें शामिल होने लगे।

१९१६ ई० मे राष्ट्रीय महासभा की बैठक लखनऊ में हुई। कांग्रेस के इतिहास में इस अधिवेशन का बड़ा महत्व है। १९०८ ई० मे, सूरत

दोनों दलों में समझौता

कांग्रेस से ही, कांग्रेस के दोनों दल अलग हो गये थे, तब से महासभा (कांग्रेस) केवल लिबरलों—नरमों—की हो गई थी। इस बैठक मे दोनों दलों में मेल हो गया और फिर से राष्ट्रीय दल ने इसमे प्रवेश किया। इससे महासभा में जान आ गई! यही नहीं, तिलक की उदारता एवं दूरदर्शिता के कारण मुसलमानों से भी समझौता हो गया और उनका भी सहयोग प्राप्त हुआ।

लोकमान्य जब मण्डाले मे कैद थे तभी सर वेलेण्टाइन शिरोल ने 'भारतीय अशान्ति' (India Unrest) नामकी एक किताब प्रकाशित

की निसम भारतीय जागृति एव जनता के असंतोष क क
तिलक शिरोल क्स की मीमांसा की गई है। इसम उन्होंन तिल्क
दी इस अशान्ति का जनक और जन पक्ष को मु
नेता करार दिया है। यहाँ तक तो कुछ भी बात नहीं पर शिरोल न पुस्त
मे यह भी प्रतिपादित किया कि तिलक, उनका दल और आन्दोलन रा
द्रोहात्मक और अत्याचारमूलक है और उनका उद्देश्य भारत म ब्रिटि
शासन की जड़ को उखाड़ फेंकना है। इन बातों से विदेशों में राष्ट्री
दल के सम्बन्ध म गलतफहमी फैलने की सम्भावना थी। अत उस
निराकरण क लिए तिलक ने शिरोल पर मानहानि का दावा किया।
यह दावा इग्लण्ड में दायर हुआ। शिरोल की ओर से, आयर्लैण्ड
होमरूल आन्दोलन के विरोधी सर (अब लार्ड) एडवर्ड कार्सन पैरवी क
रह थे। बम्बई-सरकार ने भी कागज पत्रों से शिरोल की सहायता की।
भारत-सरकार का, सिविल सरविस का, एक अधिकारी इँग्लैण्ड म श
शिरोल की सहायता कर रहा था। इतने पर भी तिलक का पक्ष इतन
मजबूत था और उन्होंने अपना 'केस' इतनी अच्छी तरह तैयार किया था
कि मुकदम म निर्णय उन्हीं के पक्ष में होने की सम्भावना थी पर न्याय
बुद्धि पर जातीय भावनाओं ने विजय प्राप्त की। सर एडवर्ड कार्सन ने
जूरी को यह सुझाया कि तिलक की मान हानि सिद्ध हो जाने स भारत
सरकार की प्रतिष्ठा में धक्का लगेगा और सर्वसाधारण पर इसका अ
असर न पड़ेगा। इस प्रकार इस मामले में काले-गोरे का प्रश्न खड़ा
किया गया। फल स्वरूप फैसला तिलक के विपरीत हुआ और मानहानि
का मुकदमा खारिज हो गया।

पर इसका फल जनता के लिए बुरा नहीं हुआ। ऐसे फैसलों क
ईंग्लैण्ड में काय कारण न्यायालयों पर से भी लोगों का विश्वास
उठता जा रहा था। मुकदमे के काम से निबटकर
तिलक घूम घूम कर इग्लैण्ड में व्याख्यान देने लगे। उस समय शासन

धार का मसविदा पार्लमेंट के सामने पेश था। तिलक होमरूल लीग प्रतिनिधि मण्डल के नेता की हैसियत से इंग्लेण्ड में सभी बातें प्रकट करके वहाँ की जनता का मत भारत के अनुकूल करने लगे। राष्ट्रीय महासभा की ओर से इंग्लैण्ड में जो कॉंग्रेस कमेटी थी उसका सगठन ठीक न था। महासभा की अनुमति से उसका सङ्गठन किया और उसके पत्र 'इण्डिया' की नीति में परिवर्तन करके उसे इङ्गलेण्ड में महासभा का मुख पत्र बना दिया जिससे वहाँ ठीक ठीक प्रचार होने लगा। यह तिलक के ही व्याख्यानों का फल था कि मजूर दल की सहानुभूति भारत को प्राप्त हुई और वह भारतीय समस्याओं में दिलचस्पी लेने लगा। उस समय तिलक के व्याख्यानों का वहाँ बड़ा असर हुआ था।

इस समय तक युद्ध समाप्त हो चुका था और शान्ति परिषद् होने जा रही थी। इस परिषद् के लिए राष्ट्रीय महासभा ने तिलक को अपना प्रतिनिधि चुना पर सरकार इसे कब मंजूर करने लगी थी। उसने भारत के नाम पर महाराज बीकानेर और लार्ड सिंह को प्रतिनिधि बनाकर भेजा जिनका बड़ा विरोध हुआ। उस समय तिलक ने राष्ट्रपति विल्सन के नाम इस विषय पर एक महत्वपूर्ण पत्र भेजा था जिसमें भारत की स्थिति एवं आकांक्षाएँ स्पष्ट की गई थीं।

जब लोकमान्य इंग्लेण्ड में थे तभी भारत में उनकी साठवीं वर्षगाठ धूम धाम से मनाई गई और एक महीने से भी कम समय में उन्हें

श्रद्धा के तंदुल

थैली भेंट करने के लिए एक लाख रुपये एकत्र किये गये। विलायत से लौटने पर यह रकम उन्हें भेंट की गई। यह राष्ट्र के श्रद्धा के तंदुल थे। लोकमान्य ने उसे ले तो लिया पर राष्ट्र के लिए ही होमरूल लीग को भेंट कर दिया।

१९१९ की अमृतसर कांग्रेस में लोकमान्य शामिल हुए थे। सरकार के विश्वासघातों के कारण उनका विश्वास उसपर से एकदम उठ गया था। इस कांग्रेस में उन्होंने सुधारों को "अपूर्ण, असन्तोषप्रद और

निराश, जनर बताया और 'कांग्रेस प्रजावादी दल' की स्थापना का निश्चय किया। उनका विचार था शिक्षा, आन्दोलन और सगठन द्वारा स्वराज प्राप्त करना। पर भारत के दुर्भाग्य से इस निश्चय में वह विशेष कुछ कर न सके।

सतत कार्यों में लगे रहने और विश्राम न मिलने के कारण लोकमान्य का शरीर क्षीण होता जा रहा था। १९२० के जून के अन्त में, एक मुकदमे के सिलसिले में वह बम्बई आये। उन दिनों

अन्तिम दिन

जब ज्यादा काम करना पड़ता तो थकावट के कारण उन्हें हल्का बुखार आ जाता। कभी-कभी यह बुखार आठ आठ दिन तक बना रहता। मधुमेह से तो वह लगभग १५ साल से पीड़ित थे और यह राजरोग उनके शरीर को दिन दिन निःसत्व बना रहा था। जब बम्बई आये तब भी वही हाल था। बुखार आता, दो दिन रहता। फिर ज्वर शान्त होने पर चलने फिरने लगते, फिर बुखार और कमजोरी—यह क्रम चल रहा था। मुकदमे का फैसला तो उनके अनुकूल हो गया पर मित्रों के अनुरोध से बीमारी का इलाज कराने वह बम्बई रुक गये। २० जुलाई का दिन था। तबियत कुछ खराब थी पर लोकमान्य अपने एक मित्र के आग्रह से उनके साथ मोटर में बहुत दूर तक खुली हवा में घूमे। उसी दिन हवा लग जाने से रात को बुखार आ गया। २५ तारीख तक इस बुखार में कोई खास बात दिखाई न दी। डाक्टरों ने समझा कि मामूली मलेरिया बुखार है। पर तबियत दिन दिन खराब होती गई। उनका ठीक समाचार जानने के लिए अखबारों की प्रतीक्षा में बैठे रहते, सारे देश की धूम मचने लगी। बाहर के भक्त और बम्बई के हजारों आदमी उनकी बीमारी के विषय में ठीक ठीक समाचार जानने के लिए सरदार-गृह (बम्बई में लोकमान्य यहीं ठहरते थे) पहुँचने लगे।

बीमारी बढ़ती ही गई। सोमवार २६ तारीख को न्यूमोनिया के लक्षण स्पष्ट दिखाई देने लगे। डाक्टरी परीक्षा से यह भी मालूम हुआ

लोकमान्य के दाहिने फेफडे के नीचे कुछ वरम आ गया है। अच्छे अच्छे एव इस विषय के विशेषज्ञ डाक्टरों ने प्रयत्न कर इस विकार को रोका तबतक नई नई व्याधिया खडी हो गई। ऐसा मालूम होने लगा कि पेट की सारी आन्तरिक क्रियाएँ बन्द होती जा रही है। थोडी थोडी हिचकी भी आने लगी। ऐसा मालूम हुआ कि पेट पर भी वरम आ गया है और उसका दवाव हृदय पर भी पड रहा है। इसका भी इलाज हुआ। पर पेट का वरम उतरा कि वात शुरू हो गया जो बढता ही गया। इस वात के कारण उनकी शक्ति तेजी से क्षीण होने लगी। बीच-बीच म ऐसा मालूम होता कि नाडी अब डूबी, अब डूबी। २८ तारीख से बेहोशी भी रहने लगी। बीच-बीच म होश आता, अच्छी तरह बातें करते पर फिर बेहोश हो जाते। होश के समय लोगों को चिन्तित देख उन्हें ढाढस बँधाते और कहते कि 'चिंता न करो, मै अपने मनोबल से अभी और जिऊँगा।' धीरे धीरे नेता लोग उनके पास एकत्र होने लगे। २९ को गाधीजी आये तब लोकमान्य होश मे थे। उन्होंने दोनों हाथों से गाधीजी का हाथ पकडकर उनसे दो एक बातें भी कीं। पर इसी दिन तबियत बहुत खराब हो गई। दोपहर से छाती में जबर्दस्त शूल आरम्भ हुआ और यह दिन बडी कठिनाई से बीता। इन सब समाचारों से सारे देश के प्राण बम्बई के समाचारों पर अटके हुए थे। लोग धडकते हृदय से अखबार खोलते थे और बीमारी के समाचार से आखों म आसू भर जाते। भक्तों एव प्रेमियों ने यत्र-मत्र, अनुष्ठान, सहस्राभिषेक, रुद्रपाठ, शान्तिपाठ की हद कर दी। स्थान स्थान से पूजा का प्रसाद, निर्माल्य, अभिमत्रित सूत की लच्छिया, चरणामृत इत्यादि आने लगा। लोग गाव गाव में दान पुण्य करने एव मानताएँ मानने लगे। स्थान स्थान पर प्रार्थनाएँ हुईं। किसी ने लोकमान्य के हाथ से छुआकर रुपयों की थैलियां खैरात कराईं और किसी ने उनके पाव छुआकर कपडे दान कर दिये। ज्यों-ज्यों बीमारी बढती गई, दूर दूर से तार पर तार आने लगे।

३० तारीख को तबियत कुछ सँभली। रात को नींद भी आई। ३१ तारीख—शनिवार—को भी दिन में तबियत ठीक रही। इस को आशा बँधी और लोगों के जी में जी आया। पर होना तो कुछ और था। ३१ तारीख-शनिवार—की शाम से तबियत फिर कुछ खराब हुई। वात का प्रकोप फिर आरम्भ हुआ। सन्निपात के लक्षण फिर प्रकट हुए। कभी होश आता, कभी बेहोशी आती। इस हालत में भी गीता स उनके पास रहती थी। उस समय एक मित्र ने गीता से श्रीकृष्ण। चित्र बताकर लोकमान्य से पूछा—'यह क्या है?' थोड़े समय तक यह टकटकी लगाकर देखते रहे। फिर बोले—"यह श्रीकृष्ण का चित्र है। इनके चरित्र का सबको अनुकरण करना चाहिए।" यही उनका अन्ति सन्देश था।

शनिवार की रात ज्यों-ज्यों बढ़ती गई त्यों-त्यों तबियत ज्या खराब होती गई। ९ बजे के बाद तो छाती में फिर जबर्दस्त शूल उ लगा। अब आशा निराशा में परिणत होने लगी। बारह बजे के लग होश में लोकमान्य ने भगवान् की चिर प्रतिज्ञा और आश्वासन दोहराते हुए गीता के ये श्लोक पढ़—

> यदा यदा हि धर्मस्य, ग्लानिर्भवति भारत।
> अभ्युत्थानम् धर्मस्य, तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
> परित्राणाय साधूनां, विनाशाय च दुष्कृताम्।
> धर्मसंस्थापनार्थाय, सम्भवामि युगे युगे ॥

इसके बाद कृष्ण की तसवीर को प्रणाम किया और आँखें मूँद ली। इस प्रकार ३१ जुलाई १९२० की रात को १२ बजकर ४० मिनट राष्ट्र के इस महान् कर्णधार ने अपना चोला बदल दिया। आशा को सदा के लिए कट गई।

× × × ×

ज्योंही बम्बई में यह समाचार फैला, एक बिजली दौड़ गई। सिनेमा, नाटक सब धड़ाधड़ बन्द हो गये। इस समय, उस कालरात्रि में, जिसे देखो सरदार-गृह की ओर दौड़ा चला जा रहा है। जनता का समुद्र उमड़ पीटता सरदार गृह की तरफ बढ़ा चला जा रहा था। अन्तिम दर्शन करने के लिए लोग इतने उतावले हो रहे थे कि तीन बजे रात तक दरवाजे पर खड़े होकर गाँधी जी सुबह तक लोगों से धीरज रखने को कहते रहे पर इस समय धैर्य लोगों के पास कहा था? उनका तो मानो सर्वस्व कुछ लुट गया था। अन्त में विवश होकर लोगों को चार चार की टोली में दर्शन करने जाने की आज्ञा देनी पड़ी। चार पाँच हजार आदमी दर्शन कर चुके थे पर वहाँ तो अगणित नर मुण्ड दिखाई दे रहे थे। अन्त में ऊपर की मन्जिल की गैलरी में लोकमान्य का शव इस तरह रखा गया कि बाहर सड़क से ही लोग दर्शन कर सकें। जैसा कि स्वामी आनन्दानन्द ने लिखा है—"पुष्प भार से दबी हुई उनकी वह पद्मासनस्थ मृत देह किसी समाधिस्थ महान् योगिराज के जैसी दिखाई दे रही थी। मालूम होता था कि हजारों आदमियों को अपनी सजीव वाणी से सम्बोधन करने वाला व्यक्ति आज मरकर भी लाखों को अपना वही अमोघ और आजीवन प्रिय स्वराज मन्त्र फिर एक बार अपने मौन व्याख्यान द्वारा सुना रहा हो।"

सुबह तक तो समाचार सब जगह फैल गया। रेलगाड़ियों में भर-भर कर यात्री बम्बई पहुँचने लगे। ट्राम का रास्ता बन्द हो गया। दूर तक केवल नर मुण्ड ही दिखाई देते थे। २०० स्वयंसेवक कतार बाँध कर भीड़ को रोक रहे थे पर उनसे इतनी भीड़ सँभलती न थी।

श्मशान-यात्रा का समय १ बजे दिन निश्चित हुआ था पर पूना से आये हुए लोगों ने कहा कि 'पूना स्टेशन पर हजारों आदमी गाड़ी न मिलने के कारण बैठे आँसू बहा रहे हैं। इसलिए अग्नि-संस्कार पूना के ओंकारेश्वर में ही होना चाहिए। लोकमान्य की जन्मभूमि अन्तिम

दर्शन से क्यों वञ्चित रहे ?' उन्हें समझाने में बड़ी देर हुई। अधिकारि॰ की विशेष आज्ञा लेकर चौपाटी के मैदान में अग्नि-संस्कार का निश्च हुआ था। आखिर दो बजे श्मशान-यात्रा आरम्भ हुई। इसमें हिं मुसल्मान सभी शामिल थे। पूनावालों ने बम्बई में ही अग्नि-संस्कार के प्रस्ताव स्वीकृत कर जो त्याग किया था उसके बदले यह निश्चित हुआ था कि रथी को कन्धा देने का अधिकार पूनावालों को ही रह पर हा॰ की श्रद्धा देख उन लोगों ने अपना यह विशेषाधिकार वापस ले लिया। सभी रथी को कन्धा देने के अधिकारी माने गये। जनता ने अश्रु लिप्त आँखों से कहीं गाँधी जी को, कहीं मो॰ शोकतअली को, कहीं स॰ छोटानी को कन्धा लगाते देखा। जीवित लोकमान्य भले ही धार्मिक बन्धनों में बँधे रहे हों पर इस समय तो ऐसा मालूम पड़ता था कि ध॰ धर्म (सम्प्रदाय के अर्थ में) के सकुचित बन्धनों को तोड़कर स॰ धर्मावलम्बियों की श्रद्धा में ओत प्रोत हो रहे [illegible]।

जुलूस को चौपाटी पहुँचने में पाँच घण्टे लग गये। इस जुलूस में लगभग ५ लाख आदमी थे। भारत के इतिहास में पिछले सैकड़ों वर्षों में, देशबन्धु दास की श्मशान-यात्रा के जुलूस को छोड़कर (पर वह भी इतना बड़ा न था) ऐसा कोई दृश्य दिखाई नहीं पड़ा। मकानों, छतों, वृक्षों पर आदमी लदे थे। शव पर फूलों, पैसों, रुपयों की वर्षा हो रही थी। मर कर भी लोकमान्य मानो विजय करते हुए आगे बढ़ चले जा रहे थे। लाला लाजपतराय लाहौर से दौड़े आये और सेण्डहर्स्ट ब्रिज पर उन्होंने भी रथी को कंधा दिया।

चन्दन की मना लकड़ियों पर शव रखा गया और अग्नि संस्कार के मन्त्रों का उच्चार होने लगा पर जनता मानो पागल हो रही थी। हजारों कण्ठों से घोष हुआ—'अब हमें अन्तिम दर्शन करा दो।" लोकमान्य को कन्धे पर उठाकर उनका अन्तिम दर्शन जनता को कराया गया। फिर अग्नि-संस्कार हुआ। चिता पर घी के पीपे लुढ़काये जा रहे थे।

चिता धू धू करके जल रही थी। हजारों कण्ठों से 'जयघोष' हो रहा था। धीरे धीरे अँधेरा छा गया। लोग चिता की परिक्रमा करके घर जाने की तैयारी कर रहे थे—लम्बी साँसें लेकर लौट रहे थे कि इतने में १७-१८ वर्ष का एक मुसलमान युवक यह चिल्लाता हुआ चिता पर कूद पड़ा कि—"अरे तिलक महाराज! तुम तो चले, अब हम कैसे जियेंगे।" पर चिता से उसका शरीर लुढ़ककर नीचे आ गिरा। स्वयं सेवकों ने उसे खींच लिया और उसके जलते शरीर पर बालू डालकर आग बुझा दी। उस शोकातुर युवक को अस्पताल पहुँचाया।

वह स्मरणीय घटना

भारतीय राजनीति के इतिहास में गणेशशंकर विद्यार्थी के मुसलमानों के खून की प्यास बुझाने के लिए किये हुए आत्म-बलिदान को छोड़ इतना पवित्र दूसरा उदाहरण नहीं है। और ये दोनों उदाहरण भी अलग अलग प्रकार के हैं। इस घटना ने तो लोकमान्य की उस विभूति को प्रत्यक्ष किया जिसके कारण वह मुसलमानों के भी प्रिय रहे और हिन्दुओं के भी। यही नहीं उस श्मशान-यात्रा में उनके विरोधी चन्दावरकर और नटराजन इत्यादि भी शामिल हुए थे। 'लोकमान्य' जनता में मिल गये थे। उनके मरने पर हजारों ने कुटुम्बी की भाँति १० दिन का सूतक मनाया था।

—चार—

जीवन का रहस्य विश्लेषण

लोकमान्य का जीवन सदा लड़ाइयों में बीतनेवाला जीवन है।—सैनिक का और सेनापति का एक में। इस ब्राह्मण को जो जीवन के अधिकांश समय में क्षत्रिय रहा, अद्भुत लगन से हम सदा युद्ध क्षेत्र में ही देखते हैं,—कभी लड़ते, कभी व्यूह रचना करते, कभी शत्रु से हाथ मिलाकर सन्धि करते,—

क्षत्रिय का तेज

सन्धि इसलिए कि दम लेकर क्षत्रियत्व की धार पर शान दे दि जाय और फिर युद्धभूमि में नवीन उत्साह से पैंतरे दिखाये जा सकें।

पर इतना ही कहने से गलतफहमी होती दीखती है। ऐसा नहीं है उसम क्षत्रिय ही क्षत्रिय हो। नहीं, उसके क्षत्रियत्व के पीछे ब्राह्मण सादगी और त्याग है—विद्या है। कभी कभी यह जन्मजात ब्राह्मण उन्हें दबा भी लेता पर पीछे प्रयत्न कर वह उसे बदल देते। यह प्रकृति संस्कार से क्षत्रिय न थे, परिस्थिति और अभ्यास से क्षत्रिय थे इसी केवल शुद्ध सैनिक वीरता को लेकर वह न चल सके,—शुद्ध राजन न हो सके, एक राजनीतिज्ञ एवं रण दक्ष सेनापति बन गये। उनका प्रत सहयोग का मध्य मार्ग उनके ब्राह्मणत्व में प्रस्फुटित होनेवाला क्षत्रि वृत्ति का ही परिणाम था।

× × ×

यह तो हुई एक बात। पर उनमें वह कौन सी चीज थी जिस उन्हें इतना लोकप्रिय बना दिया था? जीवन का वह मर्म क्या है जिसके

जीवन का मर्म

कारण उनकी मृत्यु के समय सारी बम्बई पागल हो गई थी,—महाराष्ट्र ने सूतक मनाया था और सम्पूर्ण भारत का हृदय रो पड़ा था? त्याग के तो और भी उदाहरण हमारे स्व न्त्रता—संग्राम में मिलते हैं। पर वहां इतनी लोक प्रियता क्यों नहीं?

इसका उत्तर देना सरल नहीं। क्योंकि लोक प्रियता की भी श्रेणियां होती हैं और लोकप्रियता स्वतः कोई ऐसी महान वस्तु नहीं। पर जब हम 'लोक मान्य' को देखते हैं और उनके जीवन की तह में जाते हैं तब इस निष्कर्ष पर पहुँचने में कठिनाई नहीं होती कि उनकी लोकप्रियता साधारण श्रेणी की नहीं है, वह राष्ट्र की निष्ठा से अभिषिक्त होकर 'लोकमान्यता' में बदल गई है। यह लोक प्रियता का एक सात्विक, पवित्र, दिव्य रूप है।

पर इस लोकप्रियता का, जिसे दिल लोकमान्यता कहना चाहता है और जो स्व॰ लालाजी और महात्माजी की लोकप्रियता से अलग और भिन्न श्रेणी की है, रहस्य क्या ?

इसके लिए यदि हम किसी निष्कर्ष पर पहुँचना चाहें तो हम तिलक के सारे जीवन का ऊहापोह करना पड़ेगा। सबसे पहली बात तो

लोकप्रिय क्यों ?

यह कि वह सदा अपने को जनता की चीज समझते रहे। सदा उसमें मिलकर, उसके होकर रहे। उसके लिए जिये, उसके लिए मरे। उसके कष्ट को अपना कष्ट समझा, उसकी भाषा, रीति नीति, धर्म, साहित्य सब में समान भाव से रस लेते रहे। वह जनता में ओतप्रोत हो गये थे। अपने ही देशवासियों के साथ गिरते पड़ते, उठते, रुकते, आगे बढ़ते थे। वह उनके बिल्कुल सुहृद हो गये थे और सदा जनता की भावनाओं का आदर करते थे। गलत या सही कभी उन्होंने जनता या, उसकी रीति नीति के लिए तिरस्कार नहीं किया। आधुनिक भारतीय नेताओं में लोकमान्य का एक ही उदाहरण ऐसा मिलता है। वही एक ऐसे नेता थे जिन्होंने जनता की संकुचित धार्मिक रीति नीति पर भी कभी आक्रमण नहीं किया वरन् उसके प्रति सदा सम्मान का भाव रखा, उसकी अवमानना नहीं की। इतना ही नहीं यदि कोई उस पर आक्रमण करता तो वह उस आक्रमण को सहन न कर सकते। उनका कहना था कि जिसे तुम सुधारने चले हो उसकी हँसी उड़ाकर, उसका अपमान करके, उसे अपने से छोटा समझकर तुम उसका सुधार नहीं कर सकते, इसके लिए उसीका होकर सुधार करना पड़ेगा। इसीलिए उन्होंने अपने घनिष्ट मित्र आगरकर को छोड़ा। इस विषय में उनकी नीति रवीन्द्रनाथ के 'गोरा' से मिलती जुलती थी। बुरा हो या भला बिना जनता के हृदय में प्रवेश किये, बिना देशवासियों में मिलकर उन्हीं का हुए उनके सुधार का बीड़ा उठानेवाले को वह क्षमा नहीं कर सकते थे क्योंकि वह देश भक्त एवं सुधारकों की एक अलग जाति बनाना नहीं

चाहते थे। वह जनता के साथ, उसके थोड़ा थोड़ा आगे चलते और उसे रास्ता दिखाते पर इतना आगे न बढ़ते कि उससे बिल्कुल अलग हो केवल आदर्श एवं पूजा की चीज बन जायँ। इसीलिए लोग उनके इतने अपनेपन का अनुभव करते थे और इसीलिए वह इतने लोक हो सके।

पर ऐसी लोकप्रियता के साथ कुछ और चाहिए। नहीं तो वह उन्हें इतना महान् न बनने देती। इस लोकप्रियता के

त्याग की श्रेणी। उनमें जो लगन, दृढ़ता और उसके लिए अनेक कष्ट सहन की तैयारी थी, वही उनको इस लोक-प्रियता को 'लोकमान्य' बना सकी। त्याग में भी अनेक रंग होते हैं। एक त्याग वह जो त्यागी में एकाएक बिजली की तरह चमककर आसमान पर छा जाता है और फिर भयंकर उल्का पात की भाँति हमारी दृष्टि से छिप जाता है। भगतसिंह और गोपीमोहन साहा का त्याग इसी श्रेणी का था।* वह एकाएक जलकर उठा और जबतक हम देखें-देखें, अनन्त में अदृश्य हो गया। यह एक प्रकार का त्याग। दूसरा त्याग वह जो अनपेक्षित, अप्रत्याशित, बिना किसी पुरस्कार की आशा के, केवल अपने को लेकर चलता है, जो अपने में, अपनी मातृभूमि में ओतप्रोत है, जिसको किसी उपयोगितावादी कसौटी पर कसा नहीं जा सकता और जिसमें एक प्रकार की साहसिकता (recklessness) एक प्रकार का पागलपन होता है। वह ('Unsung और Unheard') मातृभूमि की सेवा करते करते चुपचाप जगत् के एक कोने में, वन्य पारिजात पुष्प की नाईं चू पड़ता है। बंगाल के पुराने क्रान्तिकारियों में दो एक का त्याग इस श्रेणी में आता है। तीसरा एक और त्याग वह है जो विवेक

---

* यहाँ हम केवल त्याग का उल्लेख कर रहे हैं, उनकी नीति का समर्थन नहीं। नीति की दृष्टि से तो हम उनके विरोधी हैं और शुद्ध अहिंसा के कायल हैं।

—लेखक

गड्डी पर, जनता को लेकर, चलता जाता है और कभी कम नहीं होता। ह एक लौ से जलनेवाले दीपक के समान जलता है। वह इंच इंच रके देश-सेवा की आग में अपना होम कर देता है। वह विधवा के तत अनाग्रह एवं अप्रतिग्रह में व्यक्त होनेवाले त्याग से मिलता-जुलता । यह आँधी में, तूफान में, प्रलोभन में, कठिनाइयों में और सुविधाओं सदा एक रस रहता है और तिल तिल करके अपने को जलाता है। तिलक का त्याग कुछ इसी श्रेणी का था।

जब हम लाला जी के जीवन को देखते और लोकमान्य से उसकी तुलना करते हैं तो यद्यपि यह स्वीकार करना पड़ता है कि राष्ट्रीय जागरण के इतिहास में दोनों का स्थान एक सा महत्वपूर्ण है, दोनों ने ही भारतीय जागृति को एक निश्चित रूप देने में बड़ा काम किया है। और 'लाल—बाल—पाल' की जो ध्वनि एक समय भारत के कोने-कोने में गूँज उठी थी वह सार्थक थी, फिर भी यह कहे बिना नहीं रहा जा सकता कि तिलक में लालाजी की अपेक्षा दो निश्चित विशेषताएँ थीं। एक तो यह कि जीवन भर उनकी राजनीति स्वयंवरा सती की भाँति एक ही सिद्धान्त को लेकर चलती रही। प्रतिसहयोग—जैसे को तैसा—'शठं शाठ्यं'—उनकी राजनीति का निचोड़ था और यह जीवन के अन्तिम दिन तक रहा। उनके लिए यह एक मनोवृत्ति का सवाल था और उनका सारा जीवन इसी सिद्धान्त पर निर्मित हुआ है। समर्थ स्वामी रामदास ने एक दिन जिस सिद्धान्त का उपदेश दिया—

दो विशेषताएँ

स्थायी नीति

घटासी आणावा घट।
उद्धटासी पाहिजे उद्धट।
खटनटासि खटनट।
अगत्य करी॥

[दासबोध १९—९—३०]

पत्तियों में किया था और जिसको लेकर शिवाजी महाराज ने मुर्दा दिल पर महाराष्ट्र की नींव डाली और जो एक औसत महाराष्ट्रीय के खून में ओतप्रोत है। इसी सिद्धान्त पर लोकमान्य ने अपने जीवन की इमारत खड़ी की थी। इस सिद्धान्त को उन्होंने कभी नहीं छोड़ा, सदा निबाहा। अवसर के अनुकूल नीति बदलने की जरूरत उन्हें न पड़ी क्योंकि प्रति सहयोग अपने आप एक काफी विस्तृत नीति है और उसमें प्रतिपक्ष की चाल के अनुसार अपनी चाल में परिवर्तन करने का भाव भी सम्मिलित है। यूरोपीय महायुद्ध जब आरम्भ हुआ तो क्रांतिकारियों को छोड़ प्रायः सभी दल इस पक्ष में थे कि सरकार की सहायता की जाय। लोकमान्य ने गाँधी जी से कहा—"यदि कुछ अधिकार मिल रहा हो तब तो समझा कि इस सरकार की ओर से लड़ने में लाभ भी है, नहीं तो यह सब सहायता साँप को दूध पिलाने के समान होगी।" गाँधीजी ने कहा—"नहीं, इस कठिन अवसर पर हमें सरकार की सहायता अवश्य करना चाहिए। उसके लिए कोई शर्त नहीं करनी चाहिए। हमारे हक हमें अपने आप मिल जायँगे। क्या यह सल्तनत उन लोगों के साथ भी दगा करेगी जो उसे जीवन दान देंगे?" लोकमान्य बोलते—"आप भले आदमी हैं। आपने इस नौकरशाही के असली रूप को नहीं पहचाना है। मैंने अपनी उम्र के तीस साल इसी नौकरशाही के साथ लड़ते हुए बिताये हैं।"

इसी प्रकार अमृतसर कांग्रेस के अवसर पर गाँधी जी ने कहा—"ऐसा नहीं सरकार शासन-सुधार का वचन दे रही है। सम्राट ने हमें सन्देश भेजा है। इसलिए उचित है कि हम पूरी सचाई से उसमें सहयोग करें।" लोकमान्य ने कहा—"इस सरकार की नीयत का भरोसा नहीं। वह जितनी भलाई हमारे साथ दिखावे उतना ही सहयोग हमें उसके साथ करना चाहिए।" यहाँ गाँधी और तिलक का अन्तर स्पष्ट हो गया है। गाँधी से भलाई—सदाशयता की ध्वनि निक

प्ती है, तिलक से उनकी अद्भुत राजनीतिज्ञता और राजनीतिक ज्ञान ा पता चलता है। 'इस सरकार की नीयत का भरोसा नहीं'—यह अनुभव का निचोड़, तथ्य का वर्णन (स्टेटमेण्ट ऑव् फैक्ट) है, और 'जितनी भलाई यह करे उतना ही सहयोग हमें करना चाहिए,' इसमें तिलक की नीति व्यक्त हुई है। तथ्य का जो वर्णन उन्होंने प्रथम वाक्य ('इस सरकार की नीयत का भरोसा नहीं') में किया है उसमे राजनीतिक चालों को समझने एवं परिस्थिति में तथ्य निकालकर भविष्य में होनेवाली बातों का आभास पा लेने की उनकी अपूर्व शक्ति का पता चलता है। इसीलिए हम देखते हैं कि उन्होंने इस वाक्य ('इस सरकार की नीयत का भरोसा नहीं') में जो बात १९१९ में कही उसे ही कुछ दिनों बाद गाँधी जी को भी स्वीकार करना पड़ा। हाँ, उसे स्वीकार करके भी अपनी नीति उन्होंने वही रक्खी।

यह तो हुई एक बात—जीवन में एक राजनीतिक नीति को लेकर चलने की। दूसरी विशेषता जो लोकमान्य में थी और जिसका उल्लेख हम ऊपर कर भी आये हैं, यह है कि जनता के धार्मिक विश्वास एवं सामाजिक संस्कारों का उन्होंने कभी तिरस्कार नहीं किया। अस्पृश्यता के वह समर्थक न थे,—विरोधी ही थे पर इस सम्बन्ध में उन्होंने कोई आन्दोलन न किया। यही नहीं वरन् जो इस क्षेत्र में अग्रसर थे उनसे उनकी विशेष निकटता कभी न रही। सामाजिक सुधारों के मामले में भी हम उन्हें बहुत संकुचित पाते हैं,—यद्यपि हृदय से वह कई सुधारों को मानते और उनमें विश्वास रखते थे। पर इससे तो प्रश्न और जटिल हो जाता है। इसे हम क्या कहें?—उनकी कमजोरी या उनकी विशेषता? वैसे ऊपर ऊपर से देखते हैं तो यह कमजोरी-जैसा ही मालूम पड़ता है। विश्वास होते हुए भी उसे जन भय से न प्रकट करना कमजोरी ही है। पर मैंने तो इसकी गणना भी उनकी विशेषता में की है और वह भी

जनता के भावों का आदर

अपने होश-हवास में, उनकी अन्ध-भक्ति के कारण नहीं। इसका 'रीडिंग' है अतएव हमारे लिए तो इसको सफाई देना जरूरी हो है और इसके लिए हमें जरा और गहराई में उतरना पड़ेगा।

सब से पहली बात तो यह—और हम कह दें कि इसके बिना उनका जीवन समझा ही नहीं जा सकता—कि तिलक इस

एकान्त निष्ठा

आधार को लेकर चले थे कि बिना स्वराज्य के सुधारों एवं अधिकारों के सामाजिक सुधार भी नहीं हो सकते। वह सामाजिक, आर्थिक सब रोगों का कारण गुलामी को समझते थे। —आज तो हम सब इसे मानने लगे हैं।—उनका कहना था कि पराधीनता के कारण हम अपनी शक्ति और अपना भान भूल गये हैं इसलिए पहले उसे ही दूर करना, दूसरी तरफ ध्यान न देना। अन्य क्षेत्रों में पड़ना सूखते पेड़ों की डालियों एवं पत्तों पर पानी छिड़कना है। इससे कुछ होना—जाना नहीं। जब जड़ में पानी पहुँचेगा, पौधा अपने आप हरा हो जायगा। जब मूल में लगे कीड़े निकल जायेंगे, सारा वृक्ष हँसने लगेगा। इसलिए यथासम्भव वह सब प्रकार के कार्यकर्ताओं का ध्यान इसी विशेष कार्य और विशेष क्षेत्र में लगाना चाहते थे। और काम उठाकर वह अपना समय एवं शक्ति बाँट देने के विरोधी थे। वह स्वतन्त्रता-देवी की मूर्ति ही सर्वत्र देखते थे और दूसरों से भी यही चाहते थे। ऋषि बंकिम ने आकुल हृदय से भक्ति का जो शंख एक दिन इस मन्त्र में फूँका था—

तुमि विद्या तुमि धर्म
तुमि हृदि तुमि मर्म ।
त्वं हि प्राणा शरीरे ।
बाहु ते तुमि मा शक्ति,
हृदये तुमि मा भक्ति,
तोमारई प्रतिमा गढ़ि मंदिरे मंदिरे ।

यही लोकमान्य के हृदय में उद्भासित एवं प्रकाशित हुआ था। यही लौ, यही आग उनमें लगी थी और वह उन्हें दूसरी ओर देखने न देती थी। उनका जीवन बाजार में खड़ा होकर पुकारता—'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।'

यह तो निष्ठा की दृष्टि से। पर नीति और व्यवहार की दृष्टि से भी यही उनके लिए अनुकूल और उपयोगी था। वह जमाना और था—यह

व्यवहार की दृष्टि से

और है। उस समय तैलंग, चिमनलाल सीतलवाड, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी जैसे लोग बालविवाह निषेधक कानून बनाने के विरुद्ध सम्मति देते थे। तिलक को जनता को लेकर चलना था और वह वह जनता का होकर—उसकी रीति नीति, भक्ति और श्रद्धा लेकर ही कर सकते थे। अतः वह कोई ऐसा काम न करना चाहते थे जिससे जनता उन्हें अपने से भिन्न, किसी अन्य वर्ग का, समझने लगे। वह उतना ही आगे बढ़ते, उतना ही 'डोज' देते जितना जनता हजम कर सकती थी। एक चतुर सेनानायक की भाँति वह अपनी सेना को—अपने आदमियों को अपने प्रति श्रद्धावान—वफादार (Loyal)—रखना चाहते थे और यह वह उनके विश्वासों एवं संस्कारों पर आघात करके न कर सकते थे। इस दृष्टि से भी वह सामाजिक सुधारों के मामले में ज्यादा न पड़ते।

इन दो विशेषताओं के कारण दो बातें हुईं। एक तो वह कभी, राजनीतिक क्षेत्र में, समय के पीछे न पड़े, सदा अग्रदल में रहे और दूसरी यह कि जनता की भक्ति अन्त तक उनके साथ रही, कभी कम न हुई। ये दो बातें उनके जीवन में हीरे की तरह चमकती हैं।

× × ×

तिलक को—मतलब उनके जीवन को—देखने से एक सवाल मन में और उठता है। जब मैं अच्छी तरह उन्हें समझ न पाया था तो यह

एक सवाल ?

सवाल मेरे मन में भी उठा था और वह यह कि तिलक के जीवन में हम कोई एक ऐसी उथल पुथल-कारी महत्वपूर्ण राजनीतिक घटना नहीं देखते। गांधीजी ने जैसे

असहयोग एव सत्याग्रह के तूफानी सार्वजनिक आन्दोलनों का नेतृ
किया या स्व० देशबधु ने जैसे चन्द महीनों के अन्दर अपना मा
व्यक्तिगत शक्ति के भरोसे, सारे देश म वाणी और लेखनी का प
बहाकर, एक सुसघटित कुशल पार्लमेण्टरी दल—स्वराज पार्टी—खड़ा क
दिया, वैसा उनके जीवन म कुछ नहीं है। न उनमें पाल का वाग्मित
है, न मोतीलालजी की विरोधी का कलेजा बैठा देने वाली मारक बह
की शक्ति—'डिवटिग पावर'—है। जीवन में कहीं प्रकाश का तूफान—भ
नहीं है जो एक ही बार फटकर, चकाचौंध करके उनका महात्म
को हमार सामने स्पष्ट कर दे। इसलिए सहायात्मा पूछ उठता है कि
उनके जीवन म वह क्या है जिससे हम राष्ट्र के निर्माण में उन्हें इतना
महत्त्वपूर्ण स्थान देते ह ?

पर बात यह ह—और उसी में इसका जवाब भी आ जाता है—
कि जीवन मे जितने भी महत्त्वपूर्ण कार्य होते ह उनके दो रूप होते हैं।

जीवन का कगूरा और जीवन की नींव

एक वह जो दूर से ही हमारी आँखों के सामने चमक उठता है।—यह जीवन का कगूरा है जो (जीवन के) नजदीक आये बिना भी दिखाई पड जाता है
और दूसरा जीवन की नींव है जो पास आने पर भी अदृश्य ही रहता
है! राष्ट्रीय जागृति का—स्वतत्रता की मातृमूर्ति का—मन्दिर आज
उठ रहा है इसलिए हम उसे उत्सुक दर्शक की भाँति सहज ही
देख पाते हैं पर जब मन्दिर की दीवारों का नाम निशान न था तब
उन्हा स्पेगारों को उठाने के लिए राष्ट्र मन्दिर की गहरी, सर्वभक्षी, नींव में
जो कंकरियाँ डाली गई उन्हे कितने लोगों ने देखा और देखा भी तो
आज कितनों को उनकी याद आती है? आज तो जो कगूरे उठने लगे हैं
उनपर और उनके बनाने वाले कलाविदों पर लोग मुग्ध ह। इस चका
चौंध म वे लोग भूल जा रहे हैं जिनके बलिदान का यह परिणाम है!

इसीलिए ऐसा सन्देह हमारे मन म पैदा होता है और इसमें आश्चर्य

…े कोई बात नहीं। सृष्टि के आदि से ऐसा ही होता आया है। आज …भी विशाल आंदोलन हो रहा है और जो जागृति हम देखते हैं, उसके …मूल मे जिनका बलिदान उनके जीवन–व्यापी परिश्रम से जोडकर …बैठाया गया है, उनका महत्व यदि हम समझ लें तो संशय क्यों …उठे ? लगभग ५० वर्ष की निरन्तर साधना, तपस्या और कष्ट सहन के द्वारा 'लोकमान्य' (तिलक) ने धीरे धीरे इस मन्दिर की नींव डाली। उसी नींव पर आज यह विशाल भवन खडा है। उनका कार्य बडे धीरज का, निरन्तर परिश्रम का, थका देने वाला—'घोरिंग'—था। उन्होंने जो कुछ किया वह ठोस काम था, वह हमारी राष्ट्रीयता की नींव मे जीवित–जाग्रत है, इसीलिए वह महान् है पर इसीलिए हम उसे इतनी स्पष्टता से नहीं देख पाते है

× × ×

किसी ने ठीक ही कहा है—"ससार ने लोकमान्य को १८८० का भारत सौंपा और लोकमान्य ने ससार को १९२० का भारत दिया।" इस वाक्य में उनके जीवन का सारा इतिहास और सारी सफलता आ जाती है। उनका जीवन भारतीय राष्ट्रीयता के ४० ५० वर्ष के विकास का प्रतिबिम्ब है। १८५७ के सशस्त्र विद्रोह के समय उनका जन्म हुआ और १९२० के शान्त युद्ध के समय उन्होंने शरीर छोडा। उस क्रांति मे इस क्रान्ति तक राष्ट्रीयता की गाडी को पहुँचाकर वह चल दिये। उनका जीवन १८८० के भारत का १९२० का भारत बनाने के प्रयत्नों तथा उसमें आनेवाली कठिनाइयों की एक डायरी है। जिसमें हम कभी उन्हें थक कर, निराश होकर बैठते नहीं देखते। कठिनाइयाँ आती हैं और जीवन की धारा को और चौडा एव तीव्र कर देती हैं। काका कालेलकर ने ठीक ही लिखा है कि 'लोकमान्य तिलक का जीवन गलतफहमी का एक लम्बा ताँता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक उनके भाग्य में युद्ध ही बदा था।' पर आश्चर्य तो यह है कि इतने लम्बे युद्ध में हम

जीवन डायरी है।

उन्हें निराश और विरक्त कभी नहीं पाते। उल्टे हम देखते हैं कि जिस समय—मंडाले के स्फूर्ति का अन्त करदेने वाले वातावरण में निराशा मय से अधिक संभावना थी और जिस अवधि में उनका सहधर्मिणी का भी देहावसान हो गया उस समय उन्होंने अपने भाष्य द्वारा गीता को 'कर्मयोग शास्त्र' का रूप देकर यह सिद्ध किया कि फलासक्ति को छोड़कर निरन्तर कर्म में लगे रहना ही, भगवान् के मत से, गीता का रहस्य है। यही जीवन का ध्रुवतारा 'लोकमान्य' के जीवन का सब से बारीक पर महत्वपूर्ण सूत्र हमारे हाथ में आता है। 'फलाशा छोड़कर निरन्तर कार्य करने का' जो उपदेश अपने गीता—भाष्य में उन्होंने किया वही उनके जीवन का ध्रुवतारा था। इसी नींव पर उन्होंने अपने जीवन का निर्माण किया था। इसीलिए हम देखते हैं कि सफलता में वह पागल नहीं होते और असफलता उनकी दृढ़ इच्छाशक्ति और स्फूर्ति को दबाने में असमर्थ है।

× × ×

एक और बात भी तिलक के जीवन में ओतप्रोत है। वह अपनी संस्कृति का प्रेम और उसकी श्रेष्ठता का विश्वास है। यद्यपि अपना अपना खास रंग साहित्य से उन्होंने बहुत कुछ सीखा और बहुत प्रेरणा एवं स्फूर्ति प्राप्त की पर उसे अपना लिया अपने रंग में रँग लिया—उस रंग में स्वयं नहीं रँग गये। छात्रावस्था से ही उनके जीवन में युरोपीय रीति-नीति और फैशन के प्रति एक अवहेलना चिह्न हम देखते हैं और अन्त तक अपने इस रंग में उन्हें स्थिर पाते हैं। अंग्रेजी शिक्षा को उन्होंने अपनी संस्कृति की श्रेष्ठता सिद्ध करने और जहाँ खराबी आगई हो वहाँ से उसे निकालने का अस्त्र और साधन बनाने के लिए ग्रहण किया। इससे अंग्रेजी रीति नीति के प्रति उनकी अवज्ञा नहीं प्रकट होती, अपनी रीति नीति और आचार के प्रति निष्ठा प्रकट होता है। लोकमान्य के कुछ अंश में गुरु, कुछ अंश में साथी, स्व०

ष्णुशास्त्री चिपलूणकर अंग्रेजी साहित्य को 'शेरनी का दूध' कहा करते थे। लोकमान्य का भी ऐसा ही विश्वास था पर साथ ही वह जानते थे कि हमारे बहुत-से दुर्बल

'शेरनी का दूध'

इ यह शेरनी का दूध हजम नहीं कर पाते। वह उसे हजम करके अपने क्त में बदल देने के कायल थे और अन्त तक उन्होंने इसे निबाहा। सके लिए मातृभाषा और उसके साहित्य को जहाँ तक बन पड़ा उत्ते ना भी दी और सदा अपनी संस्कृति की रक्षा में सचेष्ट रहे।

× × ×

इस प्रकार, लोकमान्य के जीवन के विषय में दो चार बातें कर लेने के बाद अब हम उनका तत्त्व—निचोड़—निकालना चाहते हैं। एक तो यह कि लोकमान्य विद्या-बुद्धि और जन्म से यद्यपि ब्राह्मण थे पर प्रवृत्ति, चेष्टा, अभ्यास और परिस्थिति के कारण उन्होंने जीवन में क्षत्रिय धर्म की प्रतिष्ठा की—या यों कहलें कि ब्राह्मण होकर भी ब्राह्मणत्व की अपेक्षा उनके जीवन में क्षत्रियत्व की प्रधानता है। पर चूँकि ब्राह्मण के संस्कार एवं ब्राह्मण की प्रतिभा उन्हें मिली थी इसलिए इस क्षत्रियत्व में भी सात्विकता की आभा है और दोनों मिलकर उन्हें राजर्षि के तेज से दीप्त करते हैं।

निष्कर्ष

क्षत्रियत्व ने उन्हें तेज प्रदान किया था और ब्राह्मणत्व ने उनमें त्याग के संस्कार डाले थे। जब वह अखाड़े में—मैदान में उतरते तो उनका क्षत्रिय रूप दिखाई पड़ता। उस समय न किसी से वह दया चाहते और न स्वयं उस पर दया करते। उस समय तो विरोधी को पटकान देना—चित कर देना ही उनका लक्ष्य हो जाता था। उस समय उनके अन्दर सैनिक और योद्धा प्रबल हो उठता और युद्ध में वह एक प्रकार की स्फूर्ति का अनुभव करते। पर इसका यह मतलब नहीं कि वह अनुदार या संकुचित हृदय के थे। ऐसा होता तो ताज्जुब न था पर उनके जीवन के पीछे—परदे में—ब्राह्मणत्व का जो संस्कार था वह उन्हें सदा बचा लेता। उसने उन्हें

उदारता दी थी। और जहाँ तक व्यक्तिगत जीवन का सम्बन्ध था तो उनमें 'ब्राह्मण' का 'स्पिरिट' ही प्रधान थी—ऐसा भी वह समझते थे। इसीलिए वह अनुदारता में फँस गये और इसीलिए हम देखते हैं कि आगरकर से इतना तीव्र मतभेद रहा कि दोनों को अपनी घनिष्ट मित्रता छोड़कर अलग होना पड़ा उन्हीं आगरकर की मृत्यु के समय वह रो पड़े थे और उन्हें ऐसा मालूम पड़ा कि हमारा कोई अत्यन्त घनिष्ट उठ गया। इसी प्रकार जिन गोखले से उनकी एक दिन न पटी उन्हीं के कार्यों की प्रशंसा में उनकी जबान न थकती थी और उनके सम्मान के लिए वही सबसे पहले अग्रसर हुए थे। गोखले की मृत्यु के बाद जो भाषण उन्होंने दिया था उससे उनकी सदाशयता प्रकट होती है।* इसी प्रकार जिन भण्डारकर से शास्त्रीय विवाद करते, उनकी युक्तियों का खण्डन करते, उनके प्रति अत्यन्त आदर का—गुरु का—भाव रखते। इससे यह स्पष्ट है कि वह युद्ध के लिए युद्ध में रस नहीं लेते थे, उद्देश्य सिद्धि के लिए, कर्तव्यवश, वैसा करते थे, उनके हृदय में तो ब्राह्मण की उदारता थी।

---

* श्मशान यात्रा के जुलूस के सामने जब लोकमान्य बोलने खड़े हुए तो लोगों ने तालियाँ बजाईं। लोकमान्य बोले—"यह हर्ष का—ताली बजाने का समय नहीं है। यह आँसू बहाने का समय है। श्रीयुक्त गोखले के देहावसान से हमारी जो कभी पूर्ण न होनेवाली हानि हुई है उसके लिए शोक करने का यह समय है। वह भारत का हीरा, वह महाराष्ट्र का रत्न, वह कार्यकर्ताओं का राजकुमार आज इस श्मशान-भूमि पर अनन्त विश्राम ले रहा है। उसकी ओर देखो और उसका अनुसरण करने की कोशिश करो। ... एक विजयी वीर की भाँति अपना नाम अमर करके आज गोखले हमारे बीच से चले गये। ... तुममें से प्रत्येक को उनका उदाहरण अपने सामने रखना चाहिए।"

दूसरा निष्कर्ष, जो अपने आप उनके जीवन से निकल आता है, यह के आदर्श और व्यवहार का ठीक-ठीक समन्वय करके वह युद्ध क्षेत्र मे चलते थे। भावुकता में आदर्श के लिए पागल वह कभी न हुए, न कोरे व्यावहारवादी की भाँति आदर्शों की अवहेलना ही उन्होंने की। गांधी जी-जैसे दर्शवादी वह न थे। इस सम्बन्ध में अपने ढंग को समझाते हुए धी-जी के आदर्श का उन्होंने मनोरंजक वर्णन किया था—"समुद्र में ाज सदा ध्रुव को अपना लक्ष्य मानकर चलता है पर वह कभी ध्रुव नहीं पहुँच पाता;—करांची, बम्बई या दाभोल—जैसा कोई दुनि की बन्दरगाह ही उसका ध्येय होता है। उसी प्रकार व्यवहार की उपेक्षा के केवल धर्म का ही विचार करके निश्चित किया हुआ ध्येय सदा अधूरा ना जाता है। ध्रुवतार की ओर ध्यान तो अवश्य रखना चाहिए; के बिना काम नहीं चल सकता पर यह सदा याद रखिए कि जहाज पको न तो ध्रुव पर ले जाना है और न उसे आप वहाँ ले ही जा कते हैं।"

दृश और व्यव-र का समन्वय

इस व्यवहार-कुशलता के कारण ही राजनीति में उनकी अद्भुत गति और इसी के कारण वह स्वय सैनिक का कार्य करते हुए भी राष्ट्रीय ा के नायक रहे। इस व्यवहार कुशलता के कारण ही सामाजिक सुधार मतभेदों से भरे हुए प्रश्न को उन्होंने नहीं उठाया और इसी व्यवहार शलता का यह परिणाम था कि उनके साथियों में कितने ही मुसलमान थे,—अपने धर्म में कट्टर होते हुए भी उनको हसरत मोहानी और कितअली अपना राजनीति का गुरु मानते थे और, यदि मैं गलत नहीं मझता तो सच या झूठ आज भी वे कहते कुछ ऐसा ही हैं।

तीसरा निष्कर्ष उनके जीवन से यह निकलता है कि वह राजनीतिक धारा में भारतीयता को लोप होते देखना नहीं चाहते थे। बल्कि राजनीति आने और देश को स्वाधीन करने की जो महान् प्रेरणा उनके अन्दर जगी

थी वह इसलिए कि वह मानते थे कि अँग्रेजों की अधीनता में
अधिक अकल्याण जो हुआ है वह यही कि हम अपना मत, अपना
अपनी सभ्यता एवं संस्कृति की विशेषताएँ भूल गये हैं। इसलिए
आन्दोलन का ढंग और उनका उद्देश्य शुद्ध भारतीय था।
की भाँति उसपर युरोप की छाप कहीं नहीं दिखाई दे

चौथी बात यह कि लोकमान्य जिस रूप में हमारे सामने आये
परिस्थितियों का बड़ा हाथ था। उनकी प्रतिभा असल में
उनका दिल वहीं था। इतिहास—शोधन एवं संस्कृति-सेवा
हाँ, यह जरूर कि देश की पराधीनता के लिए
उनमें शुरू से थी और उसे ही वह सब रोगों की जड़ मानते थे। इसी
राजनीति की ओर उनकी प्रवृत्ति तो थी ही। उनके हृदय में जो संस्कार
वह सात्विक ब्राह्मण के थे—जैसा कि ऊपर कहीं कहा भी जा
परिस्थिति एवं देश दशा की अनुभूति ने उन्हें दबा दिया। और
कह सकता है कि यदि मतभेद के कारण उनको 'दक्षिण शिक्षा-सं
(Deccan Education Society) और फर्गुसन कालेज से
न होना पड़ा होता तो उनके जीवन का क्या रूप होता? क्योंकि
अपनी सारी शक्ति एवं सारा समय आजीवन उसके लिए अर्पित
चुके थे और उनके इसी बात पर—कि हमें अपनी सारी शक्ति एवं
संस्था के ही कार्य में लगाना चाहिए—जोर देने से अलग होने
अवस्था पैदा हुई। इसके अलावा भी राजनीति के क्षेत्र में आने
उसे पूरी गहराई के साथ ग्रहण कर लेने पर भी वह उसे अपने जीवन
स्थायी चीज न समझते थे। उनका अपना हृदय जिसमें वाले वह
शिक्षा एवं संस्कृति का ही क्षेत्र था। इसलिए जब उनसे एक मित्र
पूछा कि स्वराज होने पर अपनी सरकार में आप किस विभाग के म
होना पसन्द करेंगे तो उन्होंने शान्तिपूर्वक उत्तर दिया था—
नीति से मेरा मन ऊब जाता है। स्वराज प्राप्त होते ही मैं फिर

त का अध्यापक हो जाऊँगा और शान्तिपूर्वक विद्यानन्द में लीन ा पसन्द करूँगा।" पर जब तक देश में करोड़ों आदमी दाने-दाने को ा रहे हों तब तक वैसा वह न कर सकते थे। तिलक—जैसे प्रतिभा-ाी पण्डित के लिए यह त्याग शायद सबसे बड़ा त्याग था।

इन सब बातों का भी निष्कर्ष निकालकर कहना चाह तो कह सकते कि लोकमान्य एक महान् विद्वान, व्यावहारिक राजनीतिज्ञ और देश की चिन्ता में सदा लगे हुए, राष्ट्रीयता की गाड़ी को सतत आगे बढ़ाने वाले एक महान् देशभक्त और नेता थे। वह मालवीय जी की भाँति शुद्ध भावोद्रेक न थे, न गाँधी जी या जवाहरलाल की ति एक भाव—'आइडिया'—थे, वह मोतीलालजी या पटेल की भाँति सत्था थे। गाँधीजी और मोतीलालजी दोनों को मिलाकर यदि आधा दिया जाय तो जो कुछ निकलेगा वह बहुत करके 'लोकमान्य' से ुलता-जुलता होगा।

तिलक = (मोती लालजी + गाँधीजी) ÷ २

—पाँच—

स्मरण

तिलक की लोकमान्य उपाधि बिल्कुल सार्थक थी। जन हृदय पर ाका अपूर्व अधिकार था। गरीब और अपढ़ किसानों में भी, जो भली भाँति जानते भी न थे कि तिलक हैं क्या चीज़, उनके विषय में अनेक कहानियाँ प्रचलित हो गई थीं, काका ालेलकर अपने अनुभव में आई एक घटना का उल्लेख यों करते हैं—

लोकप्रियता

"मैं जब काश्मीर में साधु के वेश में घूमता था, तब वहाँ मुझे एक ादमी ने पूछा—"स्वामी बादशाह! आप कहाँ के रहने वाले हैं?" ार मिला—"बम्बई।" मैंने सोचा काश्मीर जैसे दूर देश में इससे ाधिक स्पष्ट उत्तर देना व्यर्थ है। पर मैंने सोचने में भूल की। उस

आदमी ने फिर मुझसे दूसरा सवाल पूछा—"बम्बई कहाँ प
नखलो (लखनऊ) के पास ?" इतना बेचारे को भूगोल ज्ञान
उसने सोचा बहुत से बहुत बम्बई लखनऊ के बराबर होगा। फि
दूसरा प्रश्न पूछा—"आप कौन हू ?" मैंने कहा—"महा
ब्राह्मण"। यह उत्तर सुनते ही उस बम्बई को लखनऊ सम
आदमी ने फिर पूछा—"तो तिलक महाराज कब छूटेंगे ?" जिस
का भूगोल ज्ञान इतना 'अगाध' (!) था, उसे भी इतना ज्ञा
था ही कि तिलक महाराज नाम के कोई महाराष्ट्रीय देशभक्त सर
साथ लड़कर जेल गये हैं।"

इसी प्रकार देहली में जब लोकमान्य भारत-सचिव था
से मिलने गये थे तब उनका जुलूस निकालने की सरकार ने मुम
कर दी थी। उस समय अपढ़-कुपढ़ राहगीर
में बातचीत करते थे—"आप पूना का राज
वाला है। सरकार उससे बहुत डरती है।"

'पूना का राजा'

× × ×

लोकमान्य को जीवन भर लोग ऐसा कट्टर ब्राह्मण समझत
छूत छात और जात पाँत को बहुत महत्व देता हो। पर असल
ऐसी न थी। इस भ्रम के कारणों का
विस्तार के साथ ऊपर में कर चुका हूँ।
उनके विचार अनेक सामाजिक विषयों
उदार और उदार थे पर देश-सेवा के कार्य में पड़े हुए लोगों
बातों का तरफ ध्यान देने की आवश्यकता वह न समझते थे। इ
इस में लोकमान्य के शिष्य और उनके घनिष्ट सम्पर्क में
श्री बा० आ० विद्यारम् पिल्लै ने सूरत कांग्रेस के समय (१९
की एक घटना का जिक्र किया है जिसमें इस विषय पर प्रकाश पड़
यह लिखते हैं—

समाज-सुधार के विषय में

"सूरत में जहाँ हम लोग ठहरे हुए थे, वहाँ एक दिन की बात है। हर का भोजन देर से तैयार था पर गुरुदेव उन दर्शनार्थियों को को छोड़कर नहीं आ सकते थे जो हजारों की संख्या में उनका ए छूने को आ रहे थे। जब बहुत देर हो गई—तीन बज गये और नार्थियों का ताँता लगा ही रहा तो सूरत के मित्रों ने उन लोगों को थोड़ी ठहरने के लिए कहा और गुरुदेव को, अरविन्द बाबू को, मुझे तथा कुछ लोगों को भोजन के लिए लिवा ले गये। यह समझकर कि हम लोग जातियों के हैं और मेरे गुरु शायद हम लोगों के साथ बैठना पसन्द न ग, सूरती मित्र ने (लोकमान्य से) पूछा—"क्या आपके भोजन का ध दूसरे कमरे में करूँ?" इस पर गुरुदेव ने उत्तर दिया—"देशभक्तों ा एक ही जाति और एक ही धर्म होता है।" इसके बाद हम गों के साथ बैठकर उन्होंने भोजन किया। यही उनकी 'कट्टरता' थी।"

फरवरी १९१५ की एक और घटना का जिक्र करते हुए श्री पिरले लिखा है—"मैंने समाज-सुधार आन्दोलन के विषय में उनकी (लोकमान्य की) सम्मति माँगी। वह बोले—"यह बड़ा अच्छा आन्दोलन है।" मैंने उनसे पूछा कि "अगर ऐसा समझते हैं तो उसमें क्रियात्मक रूप से भाग क्यों नहीं?" उन्होंने कहा कि "एक आदमी को एक ही लक्ष्य सामने रखना हिए और अपनी सारी शक्ति उसी में लगानी चाहिए। यदि वह एक अधिक लक्ष्य लेकर चलेगा तो उसकी शक्ति बँट जायगी और फल-रूप वह एक उद्देश्य भी सिद्ध न कर सकेगा।" इसके बाद मैंने पूछा "क्या वर्तमान जाति-व्यवस्था राष्ट्रीय ऐक्य में बाधक नहीं है?" होंने कहा—हाँ, है। कुछ आदमी, जिनमें सरकारी नौकरी करने वाले लोग भी शामिल हैं, वर्तमान जाति-व्यवस्था की बुराइयों को करने का प्रयत्न कर ही रहे हैं तो फिर हम उस काम में क्या दखल दें? सकर तब जब दूसरी दिशा में हमारे पास करने के लिए काफी काम है।"

यह है सामाजिक सुधारों के झगड़े में न पड़ने का उनका दृ॰

× × ×

१९०६ की बात है। उस साल 'प्रिंस ऑफ् वेल्स' भारत आ॰ थे। उनका स्वागत किया जाय या नहीं, इस बात को लेकर कांग्रेस और प्रिंस का आदर करने वालों में भारी मत भेद था। लोकमान्य तथा उनके साथी (लालाजी इत्यादि) कांग्रेस के अधिवेशन में इस प्रस्ताव का विरोध करने वाले थे। गोखले, जो॰ वर्ष अध्यक्ष थे, चाहते थे कि सर्वसम्मति से प्रस्ताव पास हो। इसके लिए वह चाहते थे कि लोकमान्य इत्यादि थोड़ी देर बाद, प्रस्ताव पास हो जाने के बाद, कांग्रेस पंडाल में आवें। तिलक म॰ और लालाजी इसे स्वीकार न करते थे। जब गोखले ने देखा कि ति॰ अपने निश्चय से इधर उधर नहीं होंगे तो उन्होंने अपनी पगड़ी उ॰ लोकमान्य के चरणों पर रख दी। इसके बाद कुछ कहने की आवश्य॰ न पड़ी। गोखले जो चाहते थे वही हुआ।

× × ×

जब देश भक्त लाला लाजपतराय प्रथमबार पूना में लोकमान्य के घर गये तब लोकमान्य के घर में कोई अनुचर या नौकर उन्होंने न॰ सादगी और त्याग पाया। उनकी धर्मपत्नी स्वयं रोटी बनाती, पीसती और बर्तन साफ करती थीं। लालाजी इ॰ इस जीवन की सादगी पर मुग्ध हो गये। वस्तुतः लोकमान्य का जीवन ही एक तपस्वी का जीवन था। काका कालेलकर ने भी॰ घटनाओं का जिक्र अपने लेख में किया है। जब १८८० में 'न्यू इं॰ स्कूल' शुरू हुआ तब लोकमान्य को ३०) मासिक वेतन मिलता॰ एक दिन उनके किसी मित्र ने कहा—"इस तरह तो हम उतने पैसे॰ न बचा सकेंगे जिससे मरने पर हमारा अग्नि-संस्कार हो सके।" मान्य ने कहा—"इसकी चिन्ता जितनी समाज को होनी चाहिए,

हे न होनी चाहिए। उसे गरज होगी तो वह हमारी लाश को फूँक गा। यदि सम्मान के खयाल से नहीं तो कम से कम बदबू हटाने के ए तो जरूर वह हमारी लाश जला देगा।' यह थी उनकी त्याग ी भावना।

जब बम्बई का दैनिक 'राष्ट्रमत' शुरू हुआ तब उसके सपादक ी सीताराम पंत दामले कहने लगे—'आफिस के लिए इतनी मेज, तनी कुर्सियाँ चाहिएँ।' लोकमान्य ने कहा—"भाइ, जब हम लोगों ने केसरी' और 'मराठा' पत्र शुरू किये तब हमारे पास यह ठाठ बाट नहीं ा। पत्रों से हम कानी कौड़ी भी नहीं मिलती थी। हम अपने बिछौने ो लपेटकर उसीपर लिखने बैठ जाते। वही हमारी मेज थी। उन र रखकर लिखने के कारण हमारे लेखों में कुछ न्यूनता नहीं आती थी।"

× × ×

लोकमान्य के त्याग के उदाहरण ऊपर दिये जा चुके हैं पर त्याग की भी श्रेणियाँ होती हैं। अपने जीवन का बलिदान कर देना श्रेष्ठ त्याग है पर इस प्रकार के त्याग में यश के यथेष्ट पुरस्कार की आशा की जा सकती है। किन्तु मनुष्य के जीवन में कभी कभी ऐसा अवसर आता है जब निर्दोष होते हुए भी दूसरों को निन्दा से बचाने, या लोक-कल्याण के लिए कोई-कोई अपने सिर अपराध का बोझ ले लेते हैं। दूसरों की दृष्टि में गलत समझे जाने का खतरा उठाकर भी जो ऐसा कर सकते हैं वे महान् हैं। यह त्याग बहुत ही ऊँची श्रेणी का है। स्नेह के सिलसिले में, व्यक्तिगत जीवन में, तो ऐसे त्याग के उदाहरण मिलते हैं पर सार्वजनिक जीवन में ऐसे उदाहरण बहुत कम देखे जाते हैं। सूरत कांग्रेस के समय लोकमान्य ने ऐसा ही महान् त्याग किया था। स्व० मोतीलाल घोष ने इस घटना का जिक्र यों किया था—

महान् त्याग

"दिसम्बर १९०७ की सूरत कांग्रेस के भंग होने का सारा दोष विरोधियों ने लोकमान्य पर लगाया है। पर इस विषय में तिलक मुझसे

कांग्रेस का अधिवेशन जारी रखने को तैयार हों तो मैं अपने ऊपर इस घटना की सारी जिम्मेदारी लेता हूँ।' मुझे ठीक-ठीक शब्द याद नहीं हैं पर आशय यही था। इसे लेकर मैं मित्रों के साथ गरम नेताओं के पास गया पर वे तो कुछ सुनने को ही तैयार न थे। वे क्रोध में उन्मत्त हो रहे थे और उनके साथ विवेक की बात करना सम्भव नहीं था।

इस घटना में तिलक की महान् त्याग वृत्ति का पता लगता है।

× × ×

अनासक्ति

लोकमान्य गीता के परम उपासक और उसके भाष्यकार थे। उन्होंने गीता के कर्मयोग का सन्देश भारत को दिया था। स्वयं अपने जीवन को उन्होंने कर्ममय कर डाला था पर, जैसा कि मैं ऊपर लिख चुका हूँ, वह सब कुछ कर्तव्य समझकर, अनासक्त होकर करते थे। उन्होंने अपना [illegible] इष्ट देवता के चरणों में अर्पण कर दिया था। इसीलिए उनके जीवन में हमें अनासक्ति के अत्युत्कृष्ट दृष्टान्त पाते हैं। मण्डाले जेल में जब उन्हें पत्नी के देहावसान का समाचार मिला तो जरा भी विचलित न हुए। इसी प्रकार एक बार जब शिवाजी के स्मारक के सम्बन्ध में रायगढ़ गये थे तो उनके पुत्र की तबियत बहुत खराब थी। रायगढ़ पहुँचते पहुँचते उसकी खतरनाक अवस्था का तार उन्हें मिला पर उन्होंने तार खोल कर देखा तक नहीं। अपना काम करते रहे। जब वहाँ का काम खतम हो गया तब जेब से तार निकालकर पढ़ा।

× × ×

कानूनी ज्ञान

लोकमान्य ने यद्यपि कभी वकालत नहीं की किन्तु उनका कानूनी ज्ञान अद्भुत था। १८९७ में जब उनपर पहली बार राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया तब अपने कानूनी ज्ञान से उन्होंने अपने अंग्रेज बैरिस्टर की काफी सहायता की थी। और उनपर तिलक की प्रतिभा, तीव्र बुद्धि, योग्यता और कानू

तान का बड़ा अच्छा असर पड़ा था।*

सबसे बड़ी बात यह कि उनका अद्भुत व्यक्तित्व अदालत में भी वैसा ही प्रभावशाली रहता था इसलिए अदालती प्रदर्शनों से उनकी स्वतंत्रता में कभी कमी नहीं आती थी बल्कि कभी कभी वह बडा कड़ा और मुँह-तोड़ जवाब देते थे। जब लोकमान्य ने इङ्गलैण्ड में सर वेलेण्टाइन शिरोल पर मुकदमा चलाया था तब लार्ड कार्सन से उनकी कई बार झड़प हो जाती थी। एक बार कार्सन ने लोकमान्य की ओर घूमकर कहा—"मि० तिलक, क्या आप सचमुच हमें यह विश्वास कराना चाहते हैं कि बंग भंग, सिर्फ एक प्रांत के दो भौगोलिक खण्डों में बँटवारा करने से बमों को बनाने और लोगों पर फेंकने का आन्दोलन चल गया है?" तिलक की आँखें चमक उठीं। वह बोले—"हाँ, अवश्य ही। क्या यही बात आयर्लैण्ड में घटित नहीं हुई?" कार्सन आयरिश थे इसलिए सुनकर जल भुन गये!

---

* बैरिस्टर चौधरी, जो तिलक के मुकदमे में उपस्थित थे, लिखते हैं— 'Mr Pugh and Mr Garth were greatly impressed with the great ability, keenness of intellect strong common sense spirit of independence, and the remarkable knowledge of law that Tilak displayed in course of the consultation × × × both Mr Pugh and Mr (afterwards Sir William) Garth expressed great admiration for Tilak's command over the English language and the close and logical reasoning by which he controverted the charge brought against him and his political activities Mr Garth was a Conservative in politics and his interest in other things seldom went beyond his profession and horses Yet he got so enthusiastic over Mr Tilak's correspondence in the columns of the Times of India that he obtained some extra copies for taking them home so that he might show them to his father Sir Richard Garth the ex Chief Justice of Calcutta High Court. He told me several times that he might not agree with Tilak's politics but there was no question that he was a very remarkable man"



लोकमान्य का जन हृदय पर तो असाधारण अधिकार था ही पर सरकार पर भी उनका अत्यधिक आतंक था। डा० रदरफोर्ड (पार्लमेंट के भूतपूर्व सदस्य) की इस सम्बन्ध में भारत के सर्वश्रेष्ठ ब्रिटिश अधिकारी से बातें हुई थीं। इनसे पता चलता है कि सरकार लोकमान्य से कितना डरती थी—

प्रभाव

अधिकारी—तिलक के बारे में आपके क्या विचार हैं?

डा० रदरफोर्ड—मैं उन्हें एक महान् देश भक्त समझता हूँ जो उचित रीति से अपने देश की स्वतंत्रता के लिए लड़ रहा है।

अधिकारी—हम लोगों को गोखले तथा अन्य माडरेटों से भय नहीं है पर तिलक एवं अन्य उग्रदल वाले भारत में ब्रिटिश राज्य के लिए खतरा हैं और हम तिलक को पकड़ना चाहते हैं।

इस बात चीत के ६ महीने के अन्दर ही लोकमान्य को ६ वर्ष की सजा मिली थी।

× × ×

एक बार की बात है कि सिन्ध के प्रसिद्ध कार्यकर्ता श्री वीरूमल बेगराज ने फूलों की माला लोकमान्य को पहनाई। लोकमान्य ने उसे हाथ में लेकर कहा—"वीरूमल! राष्ट्रीय कार्यकर्ता के लिए यह एक मँहगी चीज है। किसी को जनता से पुष्प माला ग्रहण करने का तबतक हक नहीं है जबतक वह प्रत्येक फूल के लिए अपने रक्त का एक प्याला देने को तैयार न हो।"

सार्वजनिक सम्मान की कीमत

—छः—

कुछ और बातें

ऊपर हम लोकमान्य के राजनीतिक जीवन को लेकर कुछ लिखते रहे हैं। पर उनकी साहित्य सेवा एवं हमारी संस्कृति एवं इतिहास के उद्धार का उनका प्रयत्न कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं, एक दृष्टि से तो उसका अधिक महत्व है। उनके 'ओरायन' (अग्रहायण) और 'आर्कटिक होम इन दि वेदाज' नामक ग्रंथ उनकी अद्‌भुत गवेषणा-शक्ति एवं प्रतिभा के नमूने हैं। आज यद्यपि इस क्षेत्र में और भी खोज हुई है और युरोपियन सभ्यता की खोज करने वाला विद्वानों का एक दल लोकमान्य के सिद्धान्तों का सप्रमाण खंडन कर चुका है किन्तु इससे उनकी प्रतिभा की असाधारणता अन्यथा नहीं होती।

'गीता रहस्य'

पर लोकमान्य का जो ग्रंथ चिर-काल तक हमारे बीच जीवित रहेगा वह तो उनका 'गीता रहस्य' है। यह इस युग का महान् ग्रन्थ है। काका कालेलकर ने ठीक ही लिखा है—"प्रत्येक युग में एक न एक युग प्रवर्तक ग्रन्थ उत्पन्न होता है। यदि यह कहा जाय कि 'गीता रहस्य' भी एक ऐसा ही ग्रन्थ है तो अत्युक्ति न होगी।"

हिन्दू शास्त्र ग्रंथों में गीता सदा ही लोकमान्य रही और उसपर आजतक जितने भाष्य हुए हैं उतने संसार के किसी ग्रंथ पर न हुए होंगे। यह सम्पूर्ण भारतीय तत्त्वज्ञान का निचोड़ है। साधारण आदमी के लिए भी, जो वेदान्त एवं उपनिषद की गहराई में प्रवेश नहीं कर सकते यह एक निर्भ्रान्त मार्ग प्रदर्शक है। यह प्रकाश का पुंज है, यह आत्मा का दिव्य पथ है। व्यावहारिक और तात्विक दोनों दृष्टियों से, दोनों प्रकार के जीवन में, गीता हमारे चिरकल्याणमय मित्र एवं गुरु की भाँति है। स्वयं शुद्ध ज्ञानरूप भगवान् ही सत्‌रूप से इसमें

व्यक्त हुआ है । इसमें कर्म, भक्ति एवं ज्ञान का अपूर्व समन्वय देखकर हम मुग्ध हैं । यही एक पुस्तक है जहाँ ज्ञान व कर्म का निषेध नहीं, केवल फलासक्ति के त्याग का आदेश है । यहाँ ज्ञान के लिए कर्म बाधक नहीं, उल्टे भगवान् ने उसे ज्ञानार्जन का एक अङ्ग बना लिया है।

गीता एक कामधेनु की भाँति जो जो चाहता है उसे वही देती है। किसी ने ज्ञान एवं विराग का निष्कर्ष उससे निकाला, किसी ने उससे भक्ति मार्ग की श्रेष्ठता सिद्ध की । लोकमान्य ने सारी कथा का 'स्पिरिट'—प्रेरक भावना—का ऊहापोह करके यह निष्कर्ष निकाला कि भगवान् ने निराश और पथ से विचलित होते हुए अर्जुन को कर्म में नियोजित होने का ही बारम्बार आदेश किया है और इस कर्म की विभीषिकाओं के मोह जालों में फँसा न पड़े इसलिए उसे फलासक्ति का त्याग करने का उपदेश किया है । वस्तुतः यह जीवन के पुरुषार्थ के विषय में निराश, कठिनाइयों से भरे पथ को छोड़कर क्षणिक वैराग्य से मोहाविष्ट अर्जुन के प्रति, निरन्तर कर्म प्रवाह में पड़कर अनासक्त भाव से जीवन युद्ध में जयी होने का उपदेश है । लोगों का यह ख्याल था कि कर्म-मात्र बंधन प्रद है इसलिए सब कर्मों का त्याग करने में ही कल्याण है। लोकमान्य ने यह सिद्ध किया कि कर्म से भागकर हमारी कहीं गति नहीं है इसलिए उसे करते हुए भी फलासक्ति का त्याग करने से ही तात्पर्य निकलता है ।

'गीता रहस्य' को देखने से यह भी विदित होता है कि लोकमान्य ने उसके लिखने में कितना परिश्रम किया है । स्थान स्थान पर हम उन्हें पश्चिम के तत्त्व ज्ञान की विविध शाखाओं की गम्भीर आलोचना और उनसे भारतीय तत्त्व ज्ञान की बारीकियों की तुलना करते देखते हैं । इसके लिखने के समय उन्हें सैकड़ों ग्रन्थों का गम्भीर अध्ययन करना पड़ा था।

वस्तुतः 'गीता रहस्य' ने लोकमान्य को अमर कर दिया है । उसे आज से हजारों वर्ष पूर्व भगवान् ने मोहाविष्ट हो कर्तव्य के पथ से भागते

ए अर्जुन को इसके द्वारा जीवन का प्रकाश दिया वैसे ही लोकमान्य ने कर्मण्यता एवं आलस्य के अतल जल में डूबते हुए भारत को फिर वीरता पूर्ण जीवन के संघर्ष में भाग लेने का उपदेश किया। यह उनकी भारत को एक बड़ी देन है।

× × ×

जहाँ तिलक युग का अन्त होता है वहीं से गांधी-युग का आरम्भ होता है। इसलिए बहुत से लोगों ने तिलक और गांधी की तुलना की है।

तिलक और गांधी

पर एक तो दो महापुरुषों की तुलना करना ही खतरे से खाली नहीं फिर तिलक और गाँधी तो मानव-जीवन की दो भिन्न प्रवृत्तियों को प्रकाशित करते हैं, इसलिए वे दोनों अपने अपने क्षेत्र में महान् हैं, उनकी तुलना हो नहीं सकती। गाँधी एक पैगम्बर—'प्रॉफेट'—हैं, तिलक एक योद्धा, एक रण दक्ष सेनापति और जनता के नेता थे। तिलक में नेपोलियन की 'स्पिरिट' थी, गाँधी में टाल्सटाय की प्रेरणा है। तिलक प्रत्यक्षवादी (Realist) थे, गांधी आदर्श-वादी (Idealist) हैं। नीत्शे के तीनों रूपक—ऊँट, शेर और शिशु—तिलक के जीवन में व्यक्त हुए हैं। ऊँट सहिष्णुता एवं प्रतिरोध (Resistence) के लिए, शेर साहस एवं दिलेरी के लिए और शिशु दूरदर्शिता—'विज़न'—के लिए।

इस तरह हम देखते हैं कि तिलक का जीवन उस योद्धा सेनापति का जीवन है जो गिरता-पड़ता, अपनी सेना को उत्साहित करता उसे पहाड़ियों एवं खाइयों से पार ले जाता है और फिर एक मैदान में खड़ा करके उसका चार्ज दूसरे कमाण्डर को दे स्वयं वहाँ से चिर विश्राम ग्रहण करता है। इस दृष्टि से हमारी निराशा की अँधेरी घड़ियों में उनका जीवन बिजली की भाँति हमारे सामने सतत् कर्म में लगे रहने की एक प्रकाश-रेखा छोड़ जाता है। वह लोहे का एक ऐसा जलता पिण्ड है जो कभी शीतल नहीं होता और जो हम से दूर होकर भी अपनी गर्मी से हम को बल देता है।

जीवन-तालिका

१८५६ ई०	२३ जुलाई	जन्म, माता पार्वती बाई [illegible] आरम्भ में घर पर सामान्य [illegible]
१८६१ "	विजयादशमी	प्राइवेट पाठशाला में [illegible]
१८६४ "		यज्ञोपवीत।
१८६६ "		पूना के सिटी स्कूल में [illegible] इसी साल माता का स्वर्गवास [illegible]
१८६९ "		पूना हाईस्कूल की पाँचवीं [illegible] भर्ती हुए।
१८७१ "	(वैशाख)	तापी बाई (बाद में सत्यभामा [illegible] के साथ विवाह।
१८७२ "		मैट्रिक परीक्षा पास की। इसी [illegible] (३१ अगस्त को) पिता का [illegible] हो गया। [illegible]

१ जनवरी	श्री चिपळूणकर के साथ 'न्यू इंग्लिश स्कूल' की स्थापना ।
	'केसरी' और 'मराठा' निकले ।
८ फरवरी	कोल्हापुर के मामले में अपमान का मुकदमा तिलक पर चलाया गया ।
१७ जुलाई	आगरकर और तिलक को ('केसरी' और 'मराठा' के सम्पादक की हैसियत से) चार-चार महीने की सजा हुई ।
२६ अक्तूबर	दोनों जेल से छूटे ।
२४ अक्तूबर	'दक्षिण शिक्षा समिति' (डेकन एज्यूकेशन सोसायटी) की स्थापना ।
२ जनवरी	'समिति' की ओर से फर्गुसन कालेज की स्थापना ।
१६ जुलाई	क्राफर्ड प्रकरण का आरम्भ ।
१४ अक्तूबर	मत भेद के कारण अध्यापन से इस्तीफा ।
१५ दिसम्बर	सोसायटी की आजीवन सदस्यता से इस्तीफा ।
,	'केसरी', 'मराठा' का स्वामित्व तिलक ने ख़रीद लिया ।
,	'ओरायन' की रचना ।
,	गणपति उत्सव का आरम्भ किया ।
,	शिवाजी उत्सव का आरम्भ किया ।
,	बम्बई-कौंसिल के सदस्य हुए ।
,,	अकाल में सेवा और आन्दोलन ।
,,	भयकर प्लेग में सेवा और जन-पक्ष का समर्थन ।

जीवन-तालिका

१८५६ ई०	२३ जुलाई	जन्म, माता पार्वती बाई के पेट से। आरंभ में घर पर सामान्य शिक्षा।
१८६१ "	विजयादशमी	प्राइवेट पाठशाला में बिठाये गये।
१८६४ "		यज्ञोपवीत।
१८६६ "		पूना के सिटी स्कूल में भरती हुए। इसी साल माता का स्वर्गवास हो गया।
१८६९ "		पूना हाईस्कूल की पाँचवीं कक्षा में भर्ती हुए।
१८७१ "	(वैशाख)	तापी बाई (बाद में सत्यभामा बाई) के साथ विवाह।
१८७२ "		मेट्रिक परीक्षा पास की। इसी वर्ष (३१ अगस्त को) पिता का देहान्त हो गया।
१८७३ "		डेक्कन कालेज में भर्ती हुए।
१८७६ "		'आनर्स' के साथ प्रथम श्रेणी में बी० ए० किया।
१८७९ "		कानून की परीक्षा पास की। कानून की शिक्षा के समय ही इन्होंने अपने मित्र आगरकर के साथ निश्चय किया कि जन-सेवा में जीवन लगायेंगे, सरकारी नौकरी न करेंगे।

८० ई०	१ जनवरी	श्री चिपलूणकर के साथ 'न्यू इंग्लिश स्कूल' की स्थापना।
८१ "		'केसरी' और 'मराठा' निकले।
८२ "	८ फरवरी	कोल्हापुर के मामले में अपमान का मुकद्दमा तिलक पर चलाया गया।
	१७ जुलाई	आगरकर और तिलक को ('केसरी' और 'मराठा' के सम्पादक की हैसियत से) चार-चार महीने की सजा हुई।
	२६ अक्तूबर	दोनों जेल से छूटे।
८४ "	२४ अक्तूबर	'दक्षिण शिक्षा समिति' (डेकन एज्यूकेशन सोसायटी) की स्थापना।
८५ "	२ जनवरी	'समिति' की ओर से फर्गुसन कालेज की स्थापना।
८८ "	१६ जुलाई	क्राफर्ड प्रकरण का आरम्भ।
९० "	१४ अक्तूबर	मत भेद के कारण अध्यापन से इस्तीफा।
	१५ दिसम्बर	सोसायटी की आजीवन सदस्यता से इस्तीफा।
९१ "		'केसरी', 'मराठा' का स्वामित्व तिलक ने खरीद लिया।
९२ "		'ओरायन' की रचना।
९३ "		गणपति उत्सव का आरम्भ किया।
९४ "		शिवाजी उत्सव का आरम्भ किया।
९५ "		बम्बई-कौंसिल के सदस्य हुए।
९६ "		अकाल में सेवा और आन्दोलन।
९७ "		भयंकर प्लेग में सेवा और जन-पक्ष का समर्थन।

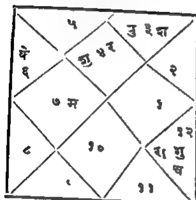
	२२ जून	प्लेग कमिटी के प्रेसीडेण्ट श्री रैण्ड चाफेकर द्वारा खून।
	२७ जुलाई	कुछ लेखों पर राजद्रोह के जुर्म तिलक की गिरफ्तारी।
	४ अगस्त	जमानत पर छुटकारा।
	८ सितम्बर	हाइकोर्ट में जस्टिस स्ट्राची के सामने मुकद्दमे का आरंभ।
	१४ सितम्बर	१८ महीने सपरिश्रम कारावास की सजा।
	१७ सितम्बर	हाईकोर्ट में पुनर्विचार की दरख्वास्त
	२४ सितम्बर	दरख्वास्त खारिज।
	१९ नवम्बर	प्रिवी कौंसिल में अपील की अर्जी। अपील खारिज।
१८९८ ”	६ सितम्बर	जेल से छुटकारा। इसके बाद कांग्रेस में प्रभाव बढ़ने लगा। १९०५ तक तिलक राष्ट्रीय पक्ष के अन्यतम नेताओं में हो गये थे।
१९०७ ”	दिसम्बर	सूरत-कांग्रेस की दुखद घटनाएँ।
१९०८ ”	२४ जून	कुछ लेखों के लिए राजद्रोह के अभियोग में गिरफ्तारी।
	१३ जुलाई	जस्टिस दावर के इजलास में मामले का आरंभ।
	२२ जुलाई	६ वर्ष का निर्वासन एवं १०००) जुर्माना।
१९१२ ”	७ जून	जब मण्डाले जेल में थे तभी घर पर पत्नी की देहान्त।

१९१६ "		होमरूल आन्दोलन में जबर्दस्त भाग लिया।
		राष्ट्रीय महासभा के लखनऊ अधिवेशन में दोनों पक्षों में मेल। मुसलमानों से समझौता।
१९१९ "		अमृतसर कांग्रेस में सम्मिलित हुए एवं 'कांग्रेस प्रजावादी-दल' की योजना बनाई।
१९२० "	२० जुलाई	साधारण ज्वर आया पर बढ़ता ही गया।
	३१ जुलाई	रात को १२ बजकर ४० मिनट पर देहावसान

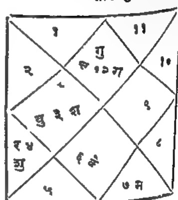
लोकमान्य की जन्म एव राशि-कुण्डली ※

शाके १७७८ आषाढ़ मासे कृष्णपक्षे तिथौ ६ सौम्य वासरे घ० २१ प० २५ उत्तरा भाद्रपदा नक्षत्र घ० ४ प० ३२ सूर्योदयात गत घ० २९०५

जन्म कुण्डली



राशि कुण्डली



जन्मकाल के स्पष्ट ग्रह

र०	च०	म०	बु०	गु०	शु०	श०	रा०	के०	ल०
३	११	६	२	११	३	२	११	५	३
८	१६	४	२४	१७	१०	१७	२७	२७	१९
१९	३	३४	२९	५२	८	१८	३९	३९	२१
५१	४६	३७	१७	१६	२	७	१६	१६	३१

※ कुण्डलियों एव वश-वृक्ष के लिए लेखक, श्री न० चि० केलकर एव 'प्रभात'—राम्प देव का कृतज्ञ है।

तिलक का वंश वृक्ष

केशव
- दामोदर [दादाजी]
  - कृष्णाजी
    - केशव
      - कृष्णाजी [मृत्यु शके १६८७]
        - केशव या केशो पन्त
          - रामचन्द्र पन्त [जन्म सन् १८०२, मृत्यु १८७२]
            - गंगाधर पन्त [जन्म ता० १२-८-१८२०
              मृत्यु ३१-८-१८७२
              पत्नी पार्वतीबाई मृत्यु २४-७-१८६६
              - बलवन्तराव [जन्म २३-७-१८५६
                मृत्यु ३१-७-१९२०
                पत्नी सत्यभामाबाई मृत्यु ७-६-१९१२]
          - अन्य तीन पुत्र
            - गोविंदराव [जन्म १८३५ ई०
              मृत्यु १९०४ ई०]
        - अन्य दो पुत्र
      - अन्य तीन पुत्र

बलवन्तराव की संतान:

सौ० कृष्णाबाई	विश्वनाथ	सौ० दुर्गाबाई	सौ० मथुराबाई	रामचन्द्र	श्रीधर
[जन्म १८८० ई०]	[जन्म १८८३ मृत्यु १९०३]	[जन्म १८८९ ई०]	[जन्म १८९१]	[जन्म १८९४]	[जन्म १८९६]
= [वि० ग० केतकर वकील नासिक]		= [पो० रा० वैद्य सरकारी इंजीनियर]	= [डा० श्री० मो० साने अध्यापक]		

समझ ही न सकता था। यह सुन भी अपने को सामान्य कभी न समझते थे। अनेक बार ऐसी घटनाएँ घटी है जिससे उनके व्यक्तित्व की महानता प्रकट होती है। १९२९ या ३० की बात है। श्री जम्स वान शेर (James Van Shyke) नाम के एक अंग्रेज पत्रकार भारत में यात्रा के लिए आये थे। उन्होंने पहले कभी मोतीलालजी को देखा न था। उन्होंने मोतीलालजी के प्रथम दर्शन का जिक्र किया है जिससे उनके असाधारण व्यक्तित्व का पता चलता है—

"गरमी पड रही थी। रेलगाडी दौडी जा रही थी। कई स्टेशनों पर मैंने भीड देखी। एक बार मेरी निगाह प्लेटफार्म पर खडे, मामूली पोशाक पहने, एक आदमी पर पडी। पता नहीं क्यों मुझे अनुभव हुआ कि यह तो असाधारण आदमी है—ऐसा आदमी जो जनता का होकर भी जनता से भिन्न हो। जसे कोइ युरोपीय हो। × × × पीछे मैंने उस आदमी को 'भोजन के डब्बे'—'डाइनिंग सैलून'—मे बडी बेतकल्लुफी से बैठ देखा। मामूली हिंदुस्तानी कपडा पहने इस बेतकल्लुफी के साथ 'डाइनिंग कार' में बैठने वाला दुर्लभ आदमियों मे से एक मालूम हुआ। × × × अन्त म मुझसे न रहा गया। मैंने उसके पास जाकर पूछा—"क्षमा कीजिएगा, क्या मैं इस सम्बन्ध म आपकी राय जान सकता हूँ कि जिन दगों के बारे में हम विदेशों में पढते हैं, उनका अन्त कब होगा?" × × वह हँसा, ओठ दबाया। मुखपर अद्भुत दृढता थी। बोला—"इनम अधिकाश तो निर्माण किये जाते हैं।" × × × एक मिनट सोचकर म बोला—"वही सही पर आपकी सम्मति में इनका अन्त कब होगा?" उसने कहा—"युवक, यह तबतक चलता रहेगा जबतक अंग्रेज सफलता पूर्वक हमारा प्रतिरोध कर सका।" मैं केवल बात को आगे बढाने के ख्याल से बोला—"पर वे तो काफी मजबूत ह,—क्या ऐसा नहीं है?" उत्तर मिला—"ओह, पर हम ३० करोड भी तो हैं।" कहते कहते विजय की ज्योति

उसकी आँखों में दिखाई पड़ी। × × × बड़े-बड़े स्टेशनों पर देखता कि आदमियों के दल के दल इस व्यक्ति के डिब्बे पर आते। अन्त में बम्बई का 'विक्टोरिया टर्मिनस' आया। प्लेटफार्म पर आदमियों की कतार की कतार खड़ी थी, बैण्ड बज रहे थे, जयकार से आकाश गूँज रहा था, फूल माला लिये लोग खड़े थे। कितने ट्रेन की छत पर चढ़ गए कुछ डिब्बों में घुसे। अन्त में मैंने देखा कि यह सब उसी आदमी के लिए है। मैंने दो एक से पूछा—"यह कौन है?" तब आश्चर्य जनक स्वर में मुझे बताया गया कि "हरएक आदमी इन्हें जानता है—मोतीलाल नेहरू हैं'।"

× × ×

सन् १९१० में प्रसिद्ध अन्तर्राष्ट्रीय पत्रकार सत निहालसिंह अमेरिका से भारत आये। वह श्री (अब सर) सच्चिदानन्दसिंह के यहाँ ठहरनेवाले थे। श्री सिंह ने उन्हें मोतीलाल के यहाँ ठहराने का प्रबंध किया। सेंट निहालसिंह से उनका परिचय न था पर उनके यहाँ युरोपीय ढंग के भोजन तैयार करने वाले अच्छे से अच्छे रसोइये थे अतः सच्चिदानन्द सिंह ने आराम के खयाल से उन्हें वहाँ टिकाया। मोतीलालजी का पहली बार देखकर उनपर जो प्रभाव पड़ा, उसके बारे में वह लिखते हैं—"× × मैं अत्यन्त प्रभावित हुआ। पण्डितजी लम्बे और सुडौल बदन के थे। वह तीर की भाँति सीधे और पहलवान की भाँति सुगठित दिखते थे। × × × उनका ललाट चौड़ा और ऊँचा था। उस पर गहरे विचार ने अस्पष्ट रेखाएँ खींचनी शुरू कर दी थीं। धनुषाकार भौंहों के नीचे से दो काली आँखें चमक रही थीं—जिनके पीछे प्रतिभा की आग होगी। वे दयापूर्ण आँखें थीं। वे दुनिया की ओर अत्यन्त सहिष्णुता पूर्वक देखती थीं। उनमें ससार के प्रति विनोद के भाव भी भरे थे। व रसीली भी हो सकती थीं और आवश्यकता होने पर अमर्ष में जल भी सकती थीं। नाक से शक्ति और उच्च भावना का पता चलता

। × × × ओठ 'अरिस्टोक्रेट' के ओठ थे, पतले और भारतीय चित्रकला में चित्रित धनुष की भाँति। × × ठुड्डी में योद्धा के से दृढ़ता और अन्य अंगों की ग्रीक—यूनानी—पवित्रता से उसका सामञ्जस्य था।"

एक दूसरे लेखक ने लिखा था—

"जब-जब देश के भाग्य निर्माता नेताओं को देखने का अवसर मुझे मिला है, तब-तब उन्हें देखकर मेरे मन में यह जिज्ञासा उठती रही है कि साधारण व्यक्तित्व में इतनी महानता कैसे आ गई। मैं ने अक्सर महात्माजी की ओर लोगों को उँगली उठाकर आश्चर्य एवं कुतूहल के साथ उन्हें देखा—सुना है—"यही महात्माजी हैं?" इसी प्रकार वल्लभभाई को देखकर किसान का भ्रम होने की सम्भावना सदा रहती है किन्तु बहुत-से ऐसे भी हैं जिनके विषय में ऐसा नहीं होता। मोतीलालजी भी उन्हीं में से एक थे। बिना परिचय के उन्हें पहली बार देखने पर भी दर्शक पर यही प्रभाव पड़ता था कि उसने एक महत्वपूर्ण व्यक्ति को देखा है।"

"उनकी दृढ़ता द्योतक ठुड्डी, चौड़ा माथा, प्रकाशमान आँखें आदमी और अंग रक्षकों एवं कीमती लाल कालीनों से अधिक प्रभाव डालती थीं। उनका व्यक्तित्व ऐसा विजयशील (overpowering) था कि अधिकांश व्यक्ति उनके साथ बैठकर अपने को हवाना सिगार की तरह अनुभव करते थे। × × × उनके व्यक्तित्व के आगे बड़े-बड़े अपने को कमजोर पाते थे। केवल उनकी दृष्टि जवाब ('रिटार्ट') के समान था। उनका जवाब ऐसा होता था मानो किसी ने बरछी घुसेड़ दी हो।"

"एक बार की बात है कि एक मूर्ख मनुष्य सभा में बीच-बीच में बोलकर विघ्न डालने की कोशिश करता था—कोशिश शब्द में इसलिए लिख रहा हूँ कि उनके व्याख्यान में विघ्न डालने में कोई सफल न हो सकता था। पण्डितजी ने उसमें कुछ कहा नहीं। सिर्फ एक बार आँखें

तरेर कर उसकी ओर देखा। आँखों ने काम कर दिया। अन्त तक फिर वह आदमी कुछ बोलने की हिम्मत न कर सका।"*

निस्सन्देह उनकी राजनीति उनके व्यक्तित्व में केंद्रित था। भारतीय राजनीति के क्षेत्र में उनका व्यक्तित्व आकर्षण की चीज था। वह जिस वातावरण में पले थे वह राजसिक था इसलिए हुकूमत और अधिकार उनके लिए स्वाभाविक हो गये थे।

—तीन—

वह विलास एवं वैभव !

एक जमाना था जब उनके विलास एवं वैभव की कहानियाँ कही जाती थीं। विलास नाचता था, वैभव गाता था। कभी पार्टियाँ सज रही हैं, कभी गायन हो रहा है, मदिरा के प्याले इस तरह चल रहे हैं, मानों फारसी कवि उमर खय्याम की साधना सिद्ध होकर पृथ्वी पर उतर आई हो। उस समय के 'इलाहाबाद के नवाब' का क्या पूछना था। विलास एवं वैभव का वह जमाना, जो कहावत एवं दृष्टान्त के रूप में प्रचलित था, आज कहानी हो गया है।

सन् १९१० में जब सन्त निहालसिंह पहली बार उनसे मिले थे तब वह वैभव की दोपहरी में था। कपड़े लंदन में सिलते थे, पैरों में पुम्प थे। वह लिखते हैं—"उनके सुन्दर सुगठित मस्तक पर बाल किसी शौकीन एवं चतुर नाई द्वारा काट और बड़ी होशयारी से सँवारे गये थे। उनकी पोशाक ऊपर से नीचे तक अंग्रेज की भाँति थी। उनको देखकर ऐसा मालूम होता था मानों अभी अभी † बाण्ड स्ट्रीट, लंदन के किसी

* श्री बी० डी० धनपाल—'लीडर' ६ फरवरी १९३१।

† लंदन का यह पथ बड़ा ही महगा और फैशनबुल मोहल्ला है जहाँ बड़े बड़े दरबाजे हैं।

निरयात दर्जीखाने से निकलकर आ रहे हों। × × × भजन के साथ मदिरा का प्रवाह जारी था। यद्यपि मैं शुरू से ही मदिरा नहीं पीता पर उसकी विविधता को देखकर कहा जा सकता था कि (उन दिनों के) आनंद भवन का मद्य भाण्डार यूरोप के प्रसिद्ध मदिरालयों से कहीं अच्छा था।"

उनके विलास-वैभव का क्या ठिकाना था। सर रास विहारी घोष ने उनकी तरह लाखों कमाये। वह भारत के चोटी के वकीलों में हुए हैं। मरते समय ४० लाख तो केवल संस्थाओं को ही दान कर गये पर इस सम्बन्ध में वह भी मोतीलाल की बराबरी ना कर सकते थे। एक बार की बात है कि मोतीलाल जी कलकत्ता आने और सर रास बिहारी का आतिथ्य ग्रहण करने वाले थे। सर रास बिहारी ने उनके लिए सब प्रकार की सुविधा कर रखी थी फिर भी उन्हें संकोच ही था। वह बोले—"मेरे मकान में मोतीलाल को वह आराम न मिलेगा।" इस पर जो लोग उपस्थित थे, मजाक समझकर अविश्वास की हँसी हँसने लगे। सर रासबिहारी ने उत्तर दिया—"तुम लोग नहीं जानते कि मोतीलाल इलाहाबाद में किस तरह रहते हैं, इसीलिए तुम हँस रहे हो।"

जिसने ऐसे राजसिक वैभव को तिनके के समान छोड़ दिया उस पुरुष की जीवन कथा जानना हमारे लिए कर्तव्य-सा है। आओ, उधर भी नजर डाल लें।

—चार—

जीवन-कथा

नेहरूओं के पूर्वज प० राजकौल बादशाह फर्रुखसियरके शिक्षक के रूप में दिल्ली आये थे। उसी समय से इनका वंश दिल्ली में बस गया और अब भी कुछ अंशों में वहाँ है। कई पीढ़ियों के बाद गंगाधर जी हुए, वे बहुत दिनों तक दिल्ली के कोतवाल रहे। इनके तीन पुत्र हुए—नंदलाल, वंशीधर, मोतीलाल।

वंश परिचय

फरवरी सन् १८६१ ई० में जब मोतीलाल जी गर्भ में थे, पिता का देहावसान हुआ। इनका जन्म ६ मई १८६१ ई० को दिल्ली में हुआ। इनके बड़े भाई नंदलाल जी ने बड़े प्रेम से इनका पालन किया।

शिक्षा

बारह वर्ष की उम्र तक इनकी शिक्षा इस्लामी मकतब में हुई। इस काल में इन्होंने फारसी—अरबी अच्छी तरह सीख ली जिसकी छाप अंत तक इनके जीवन पर रही। १८७३ ई० में गवर्नमेण्ट हाई स्कूल कानपुर में भरती हुए और १८७९ ई० में प्रथम श्रेणी में इण्ट्रेंस परीक्षा पास की। उन दिनों कानपुर में कोई कालेज न था अतः फिर प्रयाग आकर म्योर सेण्ट्रल कालेज में भरती हुए। यह बड़े तीव्र बुद्धि के विद्यार्थी थे, विद्यार्थियों के नेता माने जाते थे। प्रिंसिपल मि० हरिसन इन्हें बहुत मानते थे, उन्होंने शायद एक बार कहा भी था कि 'मि० नेहरू एक दिन अवश्य ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित होंगे।' यहाँ बी०ए० तक पढ़ा पर बीमार पड़ जाने से बी० ए० की परीक्षा में न बैठ सके। फिर वकालत पढ़ने लगे और सिर्फ तीन महीने में १८८२-८३ की वकीली हाई कोर्ट की परीक्षा ससम्मान सर्वप्रथम पास की।

वकालत

सन् १८८३ ई० (२२ साल की उम्र) में कानपुर में वकालत शुरू की। बहुत जल्द चल निकली। वहाँ के प्रमुख वकील पं० पृथ्वीनाथ से इनका खूब हेल-मेल हो गया। उनकी सलाह से १८८६ ई० में हाईकोर्ट में प्रेक्टिस करने के विचार से प्रयाग आये। प्रयाग में इनके बड़े भाई नंदलाल जी पहले से ही वकालत कर रहे थे। उनके साथ यह भी करने लगे। पहले यह मीरगंज मुहल्ले में रहते थे, वहीं जवाहरलाल का जन्म हुआ पर बाद में लक्ष्मी की कृपा होने पर स्व० सर सुन्दरलाल के एल्गिन रोड वाले बँगले में चले गए। पीछे मुरादाबाद के राजा श्री परमानंद का बँगला खरीदा। यह बँगला पहले सर सैयद अहमद के पुत्र जस्टिस महमूद का था। यह भी इन्हें बच्चे की तरह मानते थे। यही बँगला आगे चलकर

प्रसिद्ध 'आनन्द भवन' (आज का 'स्वराज भवन') हो गया।

इनके प्रयाग आने के कुछ ही दिनों बाद पं० नन्दलाल जी का हैजे देहान्त हो गया। मरते समय उन्होंने सारे कुटुम्ब का भार सौंपते ए इनसे कहा—"मोतीलाल, यह खानदान तुमको सुपुर्द करता हूँ, स बाग के तुम माली हो, इसको सजाना, इसको बढ़ाना, इसकी रक्षा रना, इसके फूल अलग न होने पावें और इसके जाम का शीराजा बेखरने न पावे।" पं० मोतीलालजी ने इस थाती की खूब रक्षा की। क एक बच्चे पर वह जान देते थे।

देहान्त के समय नन्दलाल जी के हाथ में बहुत से मुकदमे थे। उन्होंने उनके मुकदमों को जीतकर उनके मुवक्किलों को भी अपना बना लेया। पहल पहल इनकी प्रसिद्धि एक प्रयागवाल के मुकदमे में हुई, जेसपर ७ जुर्म लगाये गये थे। उन्होंने उसे साफ से बरी करा दिया। जज ने स्वयं फैसले में लिखा—"इस मुकदमे में अभियुक्त को बचाने का सारा श्रेय पं० मोतीलाल जी को है। किसी भी अभियुक्त का, जिस पर ६-७ जुर्म लगाये गये हों, सभी जुर्मों से बरी हो जाना बड़ा कठिन है। इस अभियुक्त को बरी करना पं० मोतीलाल जी ऐसे वकील का ही काम है। नेहरू जी ने जिस विद्वत्ता और खोज के साथ अभियुक्त के पक्ष का समर्थन किया और उसकी पैरवी की वह सर्वथा प्रशंसनीय है।" इस के बाद यह खूब चमके। अंग्रेजी के प्रमुख पत्रों ने इनकी प्रशंसा की और तात्कालिक चीफ जस्टिस सर जॉन एज की इन पर कृपा हो गई। जब सन् १८९६ ई० में हाईकोर्ट के जजों को पहली बार वकीलों में से एडवोकेट बनाने का अधिकार मिला तो जिन चार वकीलों को चुना गया उनमें उम्र के लिहाज से यह सब से छोटे थे। यह विजय पर विजय पाते गये और थोड़े ही दिनों में इनकी गिनती सर्वोच्च वकीलों में होने लगी। सन् १९२१ ई० तक यह वकील असोसिएशन के सभापति रहे। इसके बाद तो वकालत करनी ही छोड़ दी।

प्रतिज्ञाबद्ध होने के कारण लखनाराज का एक मामला बाद में भी इन्हें लेना पड़ा जो प्रिवी कौंसिल तक गया और इन्होंने अपने मुवक्किल को जिताया। असहयोग आंदोलन की समाप्ति के बाद वकालत फिर करने लगे और १९३० का सत्याग्रह आंदोलन आरंभ होने तक करते रहे। सन् १९२८ ई० में प्रसिद्ध 'सर्चलाइट' के मामले में इनका बहस का ढंग देखकर अदालत और वकील विस्मित रह गये। सन् १९११ ई० में कायस्थ पाठशाला और इंदौर के सेठ सर हुकुमचंद के मुकदमों का पैरवी करने गये तो अदालत में भीड़ लगी रहती थी। इसके बाद महाराजा दरभंगा ने खास तौर पर आपको अपने मुकदमे में वकील किया। इन्होंने कांग्रेस कार्यकारिणी की अनुमति से इस मुकदमे को लिया और इसकी तीन चौथाई आय कांग्रेस को दे दी। प्रयाग हाईकोर्ट के सुप्रसिद्ध वकील और भूतपूर्व जज श्री इकबाल अहमद ने कहा था—"मैं एक बिना अतिशयोक्ति के मैं कह सकता हूँ कि अपने सारे जीवन में मैंने उनसे बड़ा एडवोकेट और अद्भुत वकील नहीं देखा। वास्तव में वह वकील पेशे के जिन थे। उन्हीं के समान व्यक्ति इस पेशे के सम्मान और पद की मर्यादा बढ़ाते हैं।" इसी प्रकार उनकी मृत्यु के बाद वकीलों के सामने बोलते हुए चीफ जस्टिस सर ग्रिमउड मियर्स ने कहा था—"आप में से बहुतों को डुमरांव के मुकदमे में उनकी अद्भुत पैरवी याद होगी जिसमें वह रानी किशोरी की तरफ से वकील थे। सारे संसार का कोई वकील उस मुकदमे को उनसे ज्यादा अच्छा नहीं लड़ सकता था।

सन् १८८८ ई० में राष्ट्रीय महासभा का चौथा अधिवेशन जार्ज यूल के सभापतित्व में प्रयाग में हुआ था। तभी से उसमें शामिल होने

सार्वजनिक जीवन

लगे। सन् १८९२ ई० में जब फिर अधिवेशन प्रयाग में हुआ तो वह स्वागत समिति के एक पदाधिकारी थे। इसके बाद प्रायः सभी अधिवेशनों में शामिल होते रहे। १९०१ में जवाहरलाल के साथ बम्बई अधिवेशन में शामिल हुए। सर इनका बम्ब

सभापति थे। यहीं गरम-नरम के भेद की नींव पड़ी। यह पूरे नरम थे। सन् १९०६ ई० में इंग्लैण्ड से लौटकर कलकत्ता कांग्रेस में शामिल हुए। यहाँ दोनों दलों का मतभेद स्पष्ट था। विपिनपाल, अरविन्द घोष और तिलक सदल बल माडरेटों से सत्ता छीनने आये थे। वग भंग के कारण वातावरण और अशान्त हो उठा था। पर मुख्य प्रस्ताव पर मालवीयजी, मोतीलालजी तथा युक्तप्रान्त की सहायता से नरम दल की हार होते होते बची। सन् १९०७ ई० में युक्तप्रांतीय कान्फ्रेंस का प्रथम अधिवेशन प्रयाग में हुआ। मोतीलालजी सभापति हुए। उस समय भी ब्रिटेन की न्यायप्रियता में इनका विश्वास अटल था और बायकाट, कानून-भंग इत्यादि से चिढ़ थी। इनके भाषण से उस समय लोग निराश भी हुए। सन् १९१२ में फिर लखनऊ की प्रांतीय कान्फ्रेंस के सभापति हुए। १९०९ से १९१९ तक बराबर सर्वभारतीय कांग्रेस कमिटी के प्रमुख सदस्यों में इनकी गिनती होती थी। प्रायः सात वर्ष तक युक्तप्रांतीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष भी थे। समाज-सुधार सम्बन्धी अपने उग्र सामाजिक विचारों के कारण सामाजिक सम्मेलन एवं पटेल बिल—कमेटी के अध्यक्ष भी चुने गये। बहुत दिनों तक सेवा-समिति, प्रयाग के उपाध्यक्ष रहे। इन सस्थाओं के अतिरिक्त विद्या मंदिर हाई-स्कूल कमेटी, होमरूल लीग और बार असोसिएशन के सभापति भी रहे।

सन् १९०९ ई० में कई मित्रों के सहयोग से 'लीडर' नामक अंग्रेजी दैनिक निकाला। यह उसके प्रथम मैनेजिंग चेयरमेन हुए। उसके हिस्सेदार भी थे। सन् १९१० ई० में पत्रों का मुँह बन्द कर देने को सरकार तुली थी। उस समय इन्होंने कहा था—"जबतक मेरे मकान में एक ईंट के ऊपर दूसरी ईंट खड़ी है, तबतक मैं 'लीडर' के स्वतन्त्रता के लिए लड़ने के अधिकार की रक्षा करूँगा। पीछे मत भेद के कारण यह 'लीडर' से अलग हो गये।

'लीडर'

सन् १९०९ ई० में मार्ले मिण्टो सुधारों का आरंभ होने पर, यह कौंसिल के सदस्य हो गये। वहाँ भी समय समय पर निर्भीकतापूर्वक सरकार के अनुचित कार्यों की आलोचना करते रहे। सन् १९१७ ई० में रुड़की इंजीनियरिंग कालेज के गोरे प्रिंसपल ने भारतीय विद्यार्थियों के प्रति अनुचित बातें कहीं। उसके घृणित व्यवहार पर इन्होंने कौंसिल में निन्दा का प्रस्ताव पेश किया। सरकार ने मामले को गंभीर होता देखकर इसका उत्तर देने का मौका ही न दिया। इस पर विरोध में कौंसिल-भवन छोड़कर चले आये पर गवर्नर एवं सर सुन्दरलाल के मनाने पर फिर गये। सन् १९१८ ई० में युक्तप्रान्तीय कौंसिल में जब राय-बहादुर आनन्दस्वरूप ने माण्टेगू—चेम्सफर्ड सुधार योजना के समर्थन का प्रस्ताव पेश किया तो इन्होंने उसका विरोध किया। १३ अगस्त १९१८ ई० को इन्होंने कौंसिल के सम्मुख एक और विचारणीय प्रस्ताव उपस्थित किया था। वह यह कि गवर्नर कौंसिल के सदस्यों में से एक प्रधान मंत्री चुन ले। और शेष मंत्रिमण्डल का चुनाव उसकी इच्छा पर छोड़ दे। मंत्रिमण्डल कौंसिल की अनुमति से ही कार्य-संचालन करे। मंत्रियों के वेतन का बजट प्रति वर्ष कौंसिल द्वारा निश्चित हुआ करे। उस समय के लिहाज से ये प्रस्ताव कितना आगे बढ़े हुए थे। १९१४ से १७ तक यह प्रयाग म्युनिसिपल बोर्ड में भी रहे।

व्यवस्थापक के रूप में

महायुद्ध के समय महात्माजी की तरह इन्होंने भी सरकार की बड़ी सहायता की। प्रान्तीय प्रकाशन-विभाग के सदस्य रहे और भारतीय रक्षा-दल ('इण्डियन डिफेंस फोर्स') का संगठन किया तथा अन्य प्रकार से भी सरकार को बड़ी सहायता पहुँचाई।

सरकार की सहायता

प्रयाग में होमरूल लीग की एक शाखा खुली जिसके यह समर्थक थे। सर सप्रू, चिंतामणि एवं जवाहरलाल भी इसमें थे। प्रयाग में इन

लीग ने खूब जोर पकडा। गोरे अखबार 'पायोनियर' ने व्यग करते हुए 'होमरूल लीग के ब्रिगेडियर जेनरल' नाम से इनका जिक्र किया। सन् १९१७ई० में प्रांतीय सम्मेलन के विशेष अधिवेशन के सभापति हुए।

होमरूल लीग और 'इण्डिपेण्डेण्ट'

प्रान्त में स्वतत्रता एव निर्भीकतापूर्वक जनता के अधिकारों के लिए आवाज बुलन्द करने वाले दैनिक का अभाव इन्हें खल रहा था। फल स्वरूप अपने विचारों के प्रचारार्थ, महाराजा साहब महमूदाबाद के सहयोग से, इन्होंने 'इण्डिपेण्डेण्ट' नामक अग्रेजी दैनिक पत्र निकाला। ५ फरवरी १९१८ ई० को वसन्तपचमी के दिन उसका जन्म हुआ। निकलने के पूर्व 'वान गार्ड' और 'इण्डिपेण्डेण्ट' दो नाम सुझाये गये थे। पडित जी ने दूसरे को पसन्द किया। इसी समय की बात है कि एक दिन श्री (बाद में सर) सच्चिदानद सिंह ने मजाक में कहा—"भाई जी, मैं समझता हूँ आपका पत्र हमारे क्षेत्र में 'रक्षेगार्ड' के नाम से पुकारा जायगा।" पडित जी ने तुरन्त जवाब दिया—"तुम माडरेट लोग सदा गलत ही समझते हो। यह सब 'माडरेटों' से 'स्वतत्र' रहेगा।"

'इण्डिपेण्डेण्ट' पर मोतीलाल जी बहुत ध्यान देते थे। उसकी विजय को अपनी विजय समझते थे। पजाब के सैनिक शासन के दिनों में वह सम्पादकीय लेखों को प्रेस में जाने के पूर्व, स्वय देखते थे। उन्हें सैयद हुसेन (जो आजकल अमेरिका में रहते हैं)—जैसे योग्य सम्पादक भी मिल गये थे। एक दिन उन्होंने सैयद हुसेन से एक लेख की भाषा और मुलायम करने को कहा और तीन बार ऐसा करने पर भी जब वह छपा तो इतना कडा था कि पजाब और बर्मा में वह अक जब्त कर लिया गया। इस लेख में सम्पादक ने उर्दू के सुप्रसिद्ध कवि 'आतिश' के इन शेरों को उद्धृत किया था—

छुपेगा कुश्तों का खून क्यों कर,
करीब है यारो रोजे महशर।

जो चुप रहेगी जबान खंजर,
लहू पुकारेगा आस्तां का॥

सैयद हुसेन के सम्पादकत्व में 'इण्डिपण्डेण्ट' खूब चमका। कुछ दिनों तक 'लीडर' इसके आगे धुंधला हो गया था पर आरम्भ से ही इस पर सरकार की कुदृष्टि पड गई। सरकार ने प्रेस जब्त कर लिया, फिर भी बहुत दिनों तक हस्तलिखित निकलता रहा। अन्त में असहयोग आन्दोलन में पिता पुत्र दोनों के जेल चले जाने पर बंद हुआ।

महासमर की समाप्ति हुई। प्रतिहिंसा ने थककर दम लिया। विश्व की त्रस्त आँखें निराशा से भरी थीं। दलित राष्ट्र स्वतन्त्रता की आशा से उद्दीप्त हो रहे थे। भारत ने, अपनी इतिहास प्रसिद्ध उदारता के साथ, अपने बच्चों का इस दिन के लिए उत्सर्ग किया था, पेट काट-काटकर करोड़ों रुपये प्रतिहिंसा की ज्वाला की शान्ति के लिए उसने दे दिये थे। अब मौका आया था, वह आशा के साथ इंग्लैण्ड की ओर देख रहा था। ऐसे समय विप्लववादियों को दबाने के नाम पर रौलट ऐक्ट—काला कानून—सार्वजनिक विरोध पर भी पास हुआ—बिना मुकदमा चलाये, जिसे चाहे उसे जेल में ठूंस देने के लिए। जिस समय चातक स्वाति की आशा से चोंच खोलकर ऊपर देख रहा था, उसी समय बिजली कड़की और उस पर पत्थर आ गिरा। इस अद्भुत पुरस्कार को देखकर भारत पागल हो उठा। जो काम अरविन्द और सुरेन्द्रनाथ, विपिनपाल और तिलक न कर सके थे वह शासकों के गहरे अन्याय ने धक्के देकर कर दिखाया। गांधी ने विरोध का झण्डा बुलन्द किया। जवाहरलाल शामिल हो गये, उनके साथ मोतीलाल जी भी। पंजाब में आन्दोलन ने भीषण रूप धारण किया। कई जगह सरकार ने गोलियाँ चलाईं। कई जगह पशुता का ताण्डव हुआ। उस समय लाजपतराय अमेरिका में थे। पंजाब लावारिस हो रहा था। उस समय श्रद्धानन्द, मोतीलाल एवं मालवीयजी ने उसकी जो सेवा

पंजाब हत्याकाण्ड

को, वह अकथ है। हजारों रुपये तारा में खर्च कर दिये। सारा देश बिगड़ गया, अकड़कर खड़ा हो गया। मोतीलाल जी ने प्रयाग म भाषण देते हुए कहा कि कोई शासन-सुधार भारत को स्वीकार न होगा, जबतक राजबन्दी छोड नहीं दिये जाते और हत्याकाण्ड की जाच नहीं होती। सरकार ने दोनों शर्तें मान लीं। कुछ राजबन्दी छोड दिये और जाँच के लिए हण्टर कमेटी बैठाई गई। सरकारी जाँच म पोल पा ढील देख कांग्रेस ने मोतीलालजी की अध्यक्षता में जाच—कमेटी बैठाइ। दिसम्बर १९१९ ई० में अमृतसर में महासभा का अधिवेशन हुआ। यही सभापति बनाये गये। वस्तुत १९१८ ई० म ही यह इस पद पर दिल्ली अधिवेशन के लिए चुने गये थे। जनता की इच्छा लोकमान्य को बनाने की थी पर वह आन्दोलन के लिए विलायत जा रहे थे। उन्होंने लिखा—"मैं यह जरूरी काम छोड नहीं सकता। हाँ, अपना एक प्रतिनिधि छोडे जाता हूँ। आप मेरा अनुरोध मानें और इस वर्ष उसे ही अध्यक्ष बनावें। वह प्रतिनिधि और कोइ नहीं, युक्तप्रान्त के प्रसिद्ध नेता माननीय (आनरेबुल) प० मोतीलाल है। उनका राजनीतिक ज्ञान असाधारण है। देश की वर्तमान दशा की उन्हें अच्छी जानकारी है। उन सा योग्य सभापति आपको ढूँढे भी न मिलेगा।" तदनुसार पण्डित जी से प्रार्थना की गई पर उन्होंने अस्वस्थ होने तथा कार्य की अधिकता के कारण अस्वीकार कर दिया। तब मालवीय जी अध्यक्ष बनाये गये।

अमृतसर कांग्रेस ने सुधारों को 'अपर्याप्त,असतोषप्रद और निराशाजनक' तो बताया पर सहयोग करने का निश्चय किया। सरकार ने राजबन्दी छोड दिये थे और जाच कमेटी बैठा दी थी। इस कार्य के कारण कांग्रेस के निश्चय म भी नरमी आ गई पर यह नरमी कबतक टिकने वाली थी? अमृतसर के राष्ट्रीय तीर्थ से शहीदों के खून से तर मिट्टी लोग अपने अपने घरों को ले गये और उसने आग जलाने का काम किया।

कांग्रेस और हण्टर कमेटियों की रिपोर्टें प्रकाशित हुईं। हण्टर कमेटी की जाँच से भारतीयों को सन्तोष न हुआ पर हण्टर कमेटी ने जो कुछ

असहयोग

निर्णय किया था वह भी कार्य रूप में परिणत नहीं हुआ। ब्रिटिश जनता ने डायर के गुणगान करके हण्टर कमेटी द्वारा की हुई निन्दा की पूर्ति के लिए उसे तीन लाख रुपया उपहार दिये। इसने जख्म पर नमक छुरक दिया। सहन शक्ति की सीमा हो गई। गांधी ने अपना अस्त्र सम्हाला। असहयोग आन्दोलन आरम्भ हुआ। इधर मोतीलाल का विश्वास भी अंग्रेजों से उठ गया। गांधी के सम्पर्क मे त्याग, सादगी और पवित्रता आई। पंडितजी गांधी के कट्टर समर्थक हो गये थे। यह सच था पर अबतक मोतीलाल जी दिल में माडरेट ही बने थे। इसीलिए १९२० ई० के कांग्रेस के कलकत्ता विशेषाधिवेशन में स्व० देशबन्धु के साथ इन्होंने असहयोग कार्यक्रम का विरोध किया और विपिनचन्द्र पाल के संशोधन का समर्थन किया पर बहुमत से कांग्रेस ने महात्माजी का प्रस्ताव मान लिया। दिसम्बर में महासभा का अधिवेशन नागपुर में हुआ। वहाँ दास बाबू और मोतीलाल जी सदल बल विरोध करने पहुँचे पर अधिवेशन आरम्भ होने के पहले अद्भुत घटना घटी, सबमें मेल हो गया। दोनों नेताओं ने बड़े उत्साह से असहयोग का समर्थन किया। और नागपुर कांग्रेस के बाद देश में जो प्रचण्ड आँधी उठी, उसमें दोनों ने अपनी सारी शक्तियाँ लगा दीं।

इसके फल स्वरूप मोतीलालजी का सारा जीवन बदल गया। कहाँ आनन्द भवन का वह राजकीय विलास, जहाँ नित्य यूरोपीय और भार-

जीवन परिवर्तन

तीय अतिथियों को दावतें दी जातीं, जहाँ राजा महाराजा गवर्नर सभी भोजन कर चुके थे, जहाँ शराब ढला करती थी और सेण्ट निहालसिंह के शब्दों में "आनन्द भवन की मदिरा का भाण्डार यूरोप के अनेक प्रसिद्ध सुरालयों से अच्छा था।" जो फैशन का नेता था, जिसके कपड़े लन्दन में सिलते और

परिस में धुलते थे, उसने अपने को एक दम बदल दिया। आनन्द भवन कल्पना का—परियों के देश का एक महल था। उसके मालिक की हजारों की दैनिक आय थी। अपने हाथ से बनाई इस इमारत को ढहा देना बड़ा भारी त्याग था। पर पण्डितजी तेजस्वी थे। जिस क्षेत्र में रहे, सदा आगे रहे। भोग में, विलास और वैभव में आगे थे; त्याग में भी पीछे न रह सकते थे। यह उनके स्वभाव के विपरीत था। नागपुर से लौटते ही वकालत छोड़ दी और विदेशी वस्त्र की आलमारियों की आलमारियाँ आग में डाल दीं। यह दृश्य अपूर्व था। जो-कुछ अपना न था, विदेशी था वह एक-एक करके जल रहा था। सूनी आँखों से लोग देखते। मोतीलालजी ने अपने जीवन को एकदम बदल दिया। सन् १९२१ ई० के जून या जुलाई में रामगढ़ से उन्होंने महात्माजी को एक पत्र लिखा था। यह बड़ा महत्वपूर्ण पत्र है। इसमें हम त्याग पिपासु और साधक मोतीलालजी के दर्शन करते हैं। इसमें भी अतीत की थोड़ी कसक है, भावीन एकदम सूना नहीं है, वैभव मर कर भी स्मृति में रँगा हुआ है फिर भी यात्री की दिशा स्पष्ट है। वह लिखते हैं—

"आप यह जानकर प्रसन्न होंगे कि मैं यहाँ किस प्रकार का जीवन व्यतीत कर रहा हूँ। पहले मेरे साथ पहाड़ पर दो रसोई भण्डार आया करते थे—एक अंग्रेजी, दूसरा हिन्दुस्तानी। खेमे में छोटी हाजरी खाकर रायफलें, पिस्तौलें और गोली-बारूद से अच्छी तरह सुसज्जित होकर जंगल के लिए चल देता था, कभी-कभी शिकारियों की एक छोटी सी फौज भी साथ ले जाता था, और सामने पड़नेवाले निर्दोष जानवरों को सन्ध्या काल तक मारता था। इस बीच में 'लंच' और चाय जंगल में ही घर की-सी सज धज और सावधानी के साथ ही परोसी जाती थी। चित्ताकर्षक ब्यालू खेमे को हम लोगों के लौटने की प्रतीक्षा करती हुई मिलती थी और उसके साथ पूरा न्याय करके हम लोग 'न्यायी' की नींद सोते थे। जीवन के सम पथ में कोई व्यतिक्रम नहीं होता था। हाँ एक बेवकूफ लड़की के

ऊपर, जो जब तब कुछ गरीब जानवरों के प्राणों की रक्षा कर देता थी, चिढ़ अवश्य होती थी और अब पीतल के कुकर ने (जिसे दिल्ली में उस समय खरीदा था जब हम सब लोग तिब्बी कालेज की स्थापना के सम्बन्ध में वहाँ एकत्र हुए थे) दो घरों का स्थान ले लिया है। नौकरों की फौज के स्थान पर केवल एक नौकर है और वह भी विशेष कुशल नहीं है। गाडियों भरी भोजन सामग्री के स्थानपर तीन छोटे थैले हैं जिनमें दाल, चावल और मसाला है (इन थैलों को कमला ने खादी के स्थान पर विदेशी कपडों का बना दिया है और इसके लिए मैं उसे क्षमा कभी नहीं करूँगा)। अंग्रेजी ठाठ-बाट का जलपान, लंच, ब्यालू, ढेर के ढेर फल, सुबह शाम की चाय और जब तब मिल जाने वाले दो एक अण्डे, इन सब के स्थान पर अब केवल एक ही बार दोपहर में भोजन होता है, जिसमें दाल, चावल, साग और कभी-कभी खीर (एक साथ पका हुआ दूध और चावल) रहती है। शिकार का स्थान टहलने ने ले लिया है और रायफल एवं बदूकों का पुस्तकों, पत्रिकाओं और समाचारपत्रों ने। एडविन आर्नल्ड का 'पवित्र गान' मुझे बहुत प्रिय है और मैं उसे तीसरी बार पढ़ रहा हूँ। जब जोर का पानी बरसता है, जैसा कि इस समय बरस रहा है, तो बेवकूफी से भरे पत्र लिखने के अतिरिक्त और कुछ काम नहीं रहता। किंतु वास्तव में पूछिए तो मैंने जीवन में अबसे ज्यादा आनन्द कभी नहीं पाया। केवल चावल चुक गया है और मैंने ब्राह्मण की तरह जगत् नारायण (जो यहाँ मेरे पास ही है) के मिनिस्ट्रियल भण्डार से भिक्षा की याचना की है।"

असहयोग आन्दोलन ने जोर पकडा। सारा राजकीय वैभव त्याग कर मोतीलाल जी युद्ध क्षेत्र में कूद पडे। उनके आने से आदोलन में जान आ गई। सैकडों ने नौकरियाँ छोड दीं, वकीलों के कमरे मुवक्किलों से खाली हो गये। बहुतों का तो घर लौटने को तागे का केराया भी मुश्किल हो गया। युक्तप्रान्त और

युद्ध में

बंगाल में आंदोलन ने तूफानी रूप पकड़ा। इसी समय युवराज (प्रिंस ऑव् वेल्स) का आगमन हुआ। सरकार ने बड़ा इन्तजाम कर रखा था, धमकी, प्रलोभन एवं खुशामद का बाजार गर्म था। साम, दाम, दण्ड, भेद सब आजमाये जा रहे थे। यह कांग्रेस और सरकार के बीच की रस्सा कशी थी। जिस दिन—१७ नवम्बर को—युवराज ने बम्बई में पदार्पण किया, उस दिन कांग्रेस की आज्ञा से सारे भारत में हड़ताल रही। जन हृदय पर कांग्रेस के अधिकार की यह अपूर्व घोषणा थी। सरकार घबड़ा गई। कई जगह १४४ धारा का प्रयोग करके सभाएँ बंद कर दी गईं, कई जगह कांग्रेस को गैर-कानूनी करार दे दिया गया। फिर क्या था? योद्धा खम ठोंककर मैदान में उतर आये। घमासान मच गया। आसाम, बंगाल युक्तप्रांत और पंजाब में 'वालेण्टियर कोर'—स्वयं सेवक दल—गैर-कानूनी करार दिये गये। प्रतिवाद स्वरूप कांग्रेस कार्य-कारिणी ने निश्चय किया कि प्रत्येक कांग्रेस कमेटी अपना 'वालेण्टियर कोर'—स्वयं-सेवक दल—संगठित करे और कांग्रेस वादी इसमें नाम लिखावें। मोतीलाल जी सब से पहले सपरिवार वालंटियर बने। फलत ६ दिसंबर को जवाहर लाल, भतीजों तथा सहयोगियों के साथ गिरफ्तार कर लिये गये। फिर बीच में गोलमेज कान्फ्रेंस की भी बात चली पर पण्डित जी ने महात्मा जी को पहले की शर्तों पर दृढ़ रहने को लिखा। यद्यपि स्वास्थ्य खराब हो गया था फिर भी छूटते ही महासभा के महामंत्रित्व का काम सम्हाला।

अहमदाबाद कांग्रेस और उसके बाद

१९२१ की अहमदाबाद कांग्रेस अपूर्व थी। स्वच्छ धवल खादी का पण्डाल कितना सादा पर कितना सुन्दर लगता था। कदम-कदम पर कांग्रेस नगर की रचना में महात्माजी के व्यक्तित्व की छाप थी। कुर्सियों का क्रम हटाकर जमीन पर बैठने की प्रथा चलाई गई। मानसिक दृष्टि से भी यह अधिवेशन देश की एकता और उत्साह का नमूना था। उसमें महात्माजी ने कांग्रेस मंच से सरकार को जो जबर्दस्त चुनौती दी थी

यह इतिहास में स्मरणीय रहेगी। 'या तो हमें स्वराज दो अन्यथा हम तुम्हारे साथ असहयोग करेंगे, तुम्हारा शासन तंत्र चलाना असम्भव कर देंगे।' इस अधिवेशन में महात्माजी स्वराज्य-युद्ध के सर्वसर्वा-डिक्टेटर बनाये गये और किसी न किसी रूप में आज तक हैं। महात्माजी ने गुजरात के बारडोली तालुके को सविनय कानून भंग के लिए विशेष रूप से तैयार किया था। सत्याग्रह शुरू ही होनेवाला था कि युक्तप्रान्त के गोरखपुर जिले के चौरीचौरा नामक स्थान पर दंगा हो गया। इसमें पुलिस के बहुत से आदमी मारे गये। महात्माजी के दिल पर इस हिंसात्मक घटना की ऐसी चोट लगी कि इसे उन्होंने परमात्मा का संकेत समझकर कानून भंग की लड़ाई स्थगित कर दी। लड़ाई बन्द हो जाने से देश में सन्नाटा छा गया। जैसे तेज आती हुई गाडी को एकाएक रोक देने से उस गाडी को जबर्दस्त धक्का लगता है वैसे ही स्वराज्य आन्दोलन को भी धक्का लगा। देश में सुस्ती छा गई, उत्साह मन्द पड़ गया। इस प्रतिक्रिया से सरकार ने फायदा उठाया। महात्माजी को गिरफ्तार करके मुकदमा चलाया गया। ससार के इतिहास में यह एक ऐतिहासिक मुकदमा है। इसमें उन्हें ६ वर्ष की सजा हुई। ३० हजार स्त्री पुरुष असहयोग आंदोलन में जेल गये थे। १९२२ ई० में जब नेता जेल से बाहर आये तो देखा कि स्थिति बहुत बिगड गई है, बहिष्कार का मामूली काम चलना भी कठिन हो गया है। ७ जून को लखनऊ में कार्यकारिणी की बैठक हुई। कांग्रेस ने मोतीलालजी के सभापतित्व में 'सत्याग्रह जाँच समिति' कायम की। इसका काम सम्पूर्ण परिस्थिति की जाँच करके समयानुकूल कोई कार्यक्रम बनाना था। पण्डितजी के साथ हकीम अजमलखाँ, मौलाना अबुलकलाम आजाद और श्री राजगोपालाचार्य उसके सदस्य थे।

कमेटी ने सारे देश का दौरा किया, देश की परिस्थिति की भली भांति जांच की। कमेटी की रिपोर्ट १९२२ की कांग्रेस के कुछ दि

पहले प्रकाशित हुई। रिपोर्ट में यह था कि देश सामूहिक रूप से सविनय अवज्ञा के लिए तैयार नहीं है और कांग्रेस को सरकारी कार्यों में अड़गा डालने के विचार से कौंसिलों पर कब्जा करना चाहिए। इस रिपोर्ट के प्रकाशित होते ही एक तहलका मच गया, कांग्रेस वादियों में बड़ा मत भेद था। परिवर्तन वादी और अपरिवर्तन-वादी दो दल बन गये। दिसम्बर में देशबन्धु की अध्यक्षता में गया में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। कमेटी की रिपोर्ट विषय निर्द्धारिणी ने अस्वीकार कर दी। महासभा में केवल एक संशोधित प्रस्ताव पेश हुआ पर महासभा ने कौंसिलों के पूर्ण बायकाट का ही निश्चय किया। इसपर देशबन्धु एवं मोतीलालजी इत्यादि ने मिल कर कांग्रेस के अन्दर एक दल का संगठन किया जिसका सिद्धान्त कौंसिलों में घुसकर उसे तोड़ना था। बीच में दोनों दलों में कई बार समझौते के प्रयत्न हुए पर निष्फल रहे। अन्त में इस समस्या पर विचार करने के लिए १९२३ ई० में दिल्ली में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन हुआ। यहाँ लाला लाजपतराय, मुहम्मदअली और डा० किचलू इत्यादि के जोर डालने से कौंसिल प्रवेश की आज्ञा कांग्रेस ने दे दी।

स्वराज दल का जन्म

देशबंधु के अध्यवसाय एवं मोतीलालजी के दिमाग ने देश में कांग्रेस वादियों की एक जबर्दस्त पार्टी (स्वराज दल) खड़ी कर दी।

बड़ी कौंसिल के रंगमंच पर

सन् १९२३ ई० में असेम्बली एवं कौंसिलों के चुनाव हुए। स्वराजदल ने प्राय सभी स्थानों पर अपने उम्मीदवार खड़े किये थे। मोतीलालजी बड़ी कौंसिल और देशबंधु बंगाल कौंसिल के लिए खड़े हुए। दोनों चुने गये। मोतीलालजी तो बिना विरोध चुने गये। पहली बार असेम्बली में एक सुगठित शक्तिमान दल के दर्शन हुए। अपनी प्रतिभा, अनुशासन, दृढ़ता और राजनीतिज्ञता से उन्होंने स्वराजदल को जो रूप दिया वह देश के इतिहास की एक श्रेष्ठ कहानी है। असल में तो मोतीलालजी के जौहर

बडी कोंसिल (असेम्बली) में ही खुले। सरकार भी उनका लोहा मानती थी। जब वह उठते तो सरकारी सदस्य इधर उधर देखने लगते और भवन में सन्नाटा छा जाता। उनकी मृत्यु के बाद, ९ फरवरी १९३१ को, सरकार की ओर से सर जार्ज रेनी ने उनका वर्णन करते हुए कहा था—

"उनका नेतृत्व प्रत्येक आदमी पर प्रभाव उत्पन्न करता था। वह एक प्रसिद्ध वकील और वक्ता थे और प्रथम कोटि के नेता थे। ऐसी दशा में यह स्वाभाविक ही था कि वह जहाँ जाते, अगली श्रेणी में रहते। उनकी तीव्र प्रतिभा, विवाद में चतुरता और युद्ध-कला में निपुणता ऐसी थी कि सरकार के लिए वह एक खतरनाक विरोधी थे। × ×।"

इस समय सारे देश में धार्मिक एवं साम्प्रदायिक झगडों का तूफान मचा हुआ था। यह मोतीलालजी ही थे कि इस आँधी में निश्चल रहे, स्वराजदल की नीति में साम्प्रदायिकता की आँच न आने दी। कुछ लोग अलग हो गये। सन् १९२६ के चुनाव में मालवीयजी, लाला लाजपतराय तथा अन्य नेताओं ने राष्ट्रीय दल के नाम से एक दल बनाया किंतु इस बार भी अन्य दलों की अपेक्षा स्वराजदल ही संख्या एवं शक्ति दोनों दृष्टियों से असेम्बली में प्रधान रहा। फिर अक्सर पन्ने पर अन्य दलों को मिलाकर भी सरकार को हराने में मोतीलालजी न चूकते थे।

सन् १९२७ ई० में ल्खनाराज के मुकदमे के सम्बन्ध में, इंग्लैण्ड गये। वहाँ से निमन्त्रित होकर सोवियट शासन के दसवें वार्षिकोत्सव में शामिल होने के लिए रूस गये। ८ नवम्बर १९१७ ई० को, जब वह यूरोप में ही थे, साइमन कमीशन की नियुक्ति की घोषणा हुई। इसके सारे सदस्य अंग्रेज थे, एक भी भारतीय न था। इस अपमान ने भारतीय राजनीतिक वातावरण में जादू का असर किया। बरसों की निस्तब्धता

साइमन-कमीशन का बायकाट

हुई शक्तियाँ फिर एक झण्डे के नीचे मिलकर खड़ी हुईं। दिसम्बर में मद्रास कांग्रेस ने साइमन कमीशन के बहिष्कार का प्रस्ताव पास किया और एक दूसरे प्रस्ताव द्वारा कार्य-कारिणी को आज्ञा दी कि वह विभिन्न दलों के प्रतिनिधियों से परामर्श करके एक स्वराजी शासन विधान तैयार करे और मार्च तक सर्वदल सम्मेलन की बैठक दिल्ली में बुलाकर रिपोर्ट को उसके सामने उपस्थित करे।

देश में साइमन-कमीशन का जबर्दस्त बायकाट हुआ। प्राय सभी दल वाले इस मामले में एक थे। मोतीलाल जी ने अपनी सारी शक्ति बायकाट के पक्ष में लगा दी थी। देश में फिर राष्ट्रीय एकता का एक अपूर्व दृश्य दिखाई दिया।

इसके पहले देश को कुछ लोगों ने साम्प्रदायिकता के कीचड़ में ऐसा उलझा रखा था कि ज्यों-ज्यों वह निकलने का प्रयत्न करता त्यों-त्यों और उलझता जाता। सर्वदल सम्मेलन की पहली बैठक १२ फरवरी से २८ फरवरी तक दिल्ली में हुई। मुस्लिम लीग की ओर से अड़गा डाला जाने लगा। उसने ५ शर्तें पश की और किसी भी समझौते के पूर्व उन शर्तों का मानना अनिवार्य करार दे दिया। सफलता की आशा न देख, मुस्लिम मांगों के आधार पर दो उप-समितियाँ सिन्ध विच्छेद और आनुपातिक प्रतिनिधित्व के प्रश्न पर विचार करने के लिए नियुक्त की गई।

नेहरू रिपोर्ट और सर्वदल-सम्मेलन

मई में सम्मेलन की दूसरी बैठक बम्बई में हुई। इस बीच हिन्दू महासभा भी मुस्लिम मांगों के विरोध में कई प्रस्ताव पास कर चुकी थी, परिस्थिति और उलझ गई थी। उपसमितियों की रिपोर्ट भी तैयार न थी। इसलिए सम्मेलन ने भिन्न भिन्न दलों के प्रतिनिधियों की एक कमेटी बना दी और उसे यह काम सौंपा गया कि वह हर तरह की समस्याओं, विशेषत शासन विधान से सम्बन्ध रखनेवाली साम्प्रदायिक समस्याओं, पर विचार करे। इसी कमिटी ने मोतीलाल जी की अध्यक्षता

में महीनों तक कठिन परिश्रम करके जो रिपोर्ट तैयार की वह 'नेहरू रिपोर्ट' के नाम से विख्यात है। यह रिपोर्ट मोतीलाल जी की राजनीतिक दूरदर्शिता एवं रचनात्मक प्रतिभा का उज्ज्वल नमूना है। इसमें भारत के लिए औपनिवेशिक ढंग के शासन की योजना बड़े विस्तार से बनाई गई थी। भारतीय शासन विधान की गूढ़ समस्याओं का हल करने का यह पहला सफल प्रयत्न था। यह लार्ड बर्केनहेड की चुनौती का उत्तर था। रिपोर्ट अगस्त में लखनऊ के सर्वदल सम्मेलन के सामने पेश हुई और मुसलमानों तथा पूर्ण स्वतन्त्रतावादियों के विरोध के बाद भी स्वीकृत हुई। रिपोर्ट को अन्तिम रूप देने के लिए कलकत्ता में कांग्रेस के अवसर पर सर्वदल सम्मेलन का अधिवेशन करना निश्चित हुआ।

कलकत्ता कांग्रेस

पण्डित जी की असाधारण राजनीतिक प्रतिभा पर रीझकर देश ने दुबारा उन्हें राष्ट्रपति निर्वाचित किया। कलकत्ता में उनका जैसा स्वागत हुआ वैसा किसी सम्राट् को भी नसीब न होगा। कुछ ही दिन पूर्व ब्रिटिश शासन के प्रतिनिधि मण्डल—साइमन कमीशन—का जैसा बहिष्कार हुआ था, मोतीलालजी का वैसा ही स्वागत हुआ। वह भी कैसा दृश्य था! राजकीय पुरुष का यह राजकीय स्वागत था। २००० वालण्टियर एक ढंग की वर्दी पहने हुए, ५० घुड़सवार और २०० साइकल सवार राष्ट्रपति की गाड़ी के आगे आगे थे। प्रधान सेनापति (जनरल आफिसर कमाण्डिंग) सुभाष बोस की शान निराली थी। वह बिल्कुल फौजी अफसर मालूम पड़ते थे। राष्ट्रपति की गाड़ी में ३६ घोड़े जुते थे, यह इस बात की सूचना थी कि राष्ट्र दूसरे किसी राजा को नहीं जानता, कांग्रेस का अध्यक्ष ही उसका राजा है। स्थान स्थान पर फाटक बने हुए थे, बैण्ड बज रहा था। फूलों की वर्षा से सड़कें दिखाई न देती थीं। एक अपूर्व दृश्य था!

कलकत्ता में सर्वदल सम्मेलन का अन्त हो गया। कांग्रेस ने नेहरू रिपोर्ट स्वीकार करते हुए सरकार को एक वर्ष का समय दिया कि इस

बीच या तो वह रिपोर्ट में निर्दिष्ट शासन विधान को स्वीकार करे अन्यथा ३१ दिसम्बर १९२९ की आधी रात के बाद कांग्रेस अपना ध्येय पूर्ण स्वतंत्रता घोषित कर देगी।

सन् १९२९ ई०

सन् १९२९ ई० में घोर आन्दोलन हुआ। स्वतंत्रता-वादी अगले वर्ष के लिए तैयारी करने लगे। नेहरू रिपोर्ट राष्ट्रीय माँग (National Demand) के रूप में देश की सैकड़ों सभाओं एवं सम्मेलनों से दोहराई गई। इसी समय साइमन कमीशन ने दूसरी बार भारत भूमि पर पाँव रक्खा। इस बार भी उसका घोर बहिष्कार हुआ। भारत का कोना-कोना जाग उठा। मोतीलाल जी टूटते हुए शरीर और बुढ़ापे को भूल गये। राष्ट्रीय उत्साह ने उन्हें जवान बना दिया था, उन्होंने रात दिन एक कर दिये।

इधर यह हो रहा था, उधर भारतीय स्थिति पर बातचीत करने के लिए तात्कालिक वाइसराय लार्ड इरविन विलायत गये। वहां से वह अक्तूबर में भारत लौटे। पहली नवम्बर को उन्होंने असेम्बली में एक घोषणा की जिसका सारांश यह था कि "ब्रिटिश सरकार भारत को क्रमशः औपनिवेशिक मर्यादा का शासनाधिकार देने का वादा करती है। इसके लिए देशी राज्यों की समस्या का हल करना भी जरूरी है जिससे समस्त भारत की एकता स्थापित रह सके। इसलिए कमीशन तथा भारतीय केंद्रीय समिति की रिपोर्टें मिलने और प्रकाशित हो जाने के बाद तथा सम्राट्-सरकार के भारत सरकार की सलाह से, उपस्थित सम्पूर्ण सामग्री के प्रकाश में भारतीय समस्या पर विचार कर लेने के अनन्तर, ब्रिटिश भारत के विभिन्न दलों तथा देशी राज्य के प्रतिनिधियों को, परिस्थिति के अनुसार अलग-अलग या एकत्र, सलाह मशविरे के लिए निमंत्रित किया जायगा। आशा की जाती है कि इस विचार विनिमय के फल स्वरूप जो बातें पार्लमेण्ट के सामने उपस्थित होंगी उनके सम्बन्ध में आमतौर पर स्वीकृति के भाव प्रकट किये जायँगे।"

घोषणा से लोगों को बड़ा असंतोष हुआ। काँग्रेस के पहले महात्मा जी और मोतीलाल जी वायसराय से मिले कि अब भी कोई रास्ता निकल आवे पर वायसराय ने किसी प्रकार का वादा करने से इन्कार कर दिया।

फलस्वरूप लाहौर कांग्रेस में देश की उद्बुद्ध युवक शक्ति का प्रथम दर्शन हुआ। ३१ दिसम्बर १९२९ की आधी रात तक सरकार के उत्तर की प्रतीक्षा की गई परन्तु उधर से क्या होना था। विवश होकर कांग्रेस को पूर्ण स्वाधीनता के ध्येय की घोषणा करनी पड़ी। बूढ़े सेनापति का हृदय खिल गया। इधर और विजय करना, उनकी प्रकृति में दाखिल हो गया था। उस दिन वह बच्चे हो रहे थे। सिर पर सरहदी कुल्ला और नीचे लुंगी बाँधकर मोतीलाल जी स्वयंसेवकों के बीच नाच रहे थे। इस दृश्य को देखकर दर्शकों की आँखों में प्रसन्नता के आँसू आ गये।

लाहौर कांग्रेस

लाहौर कांग्रेस में पिता ने पुत्र को देश का मुकुट पहनाया। कांग्रेस ने यह प्रस्ताव भी पास किया कि कांग्रेस के नाम पर चुने गये सदस्य कौंसिलों व असेम्बली से इस्तीफा दे दें। इस प्रश्न पर बड़ा विवाद खड़ा हुआ। कई कांग्रेसवादी कौंसिल बहिष्कार के पक्ष में न थे। परन्तु मोतीलाल जी का कहना था कि पूर्ण स्वतंत्रता का युद्ध किसी सरकार की बनाई कौंसिलों में नहीं लड़ा जा सकता। स्वराज-दल के अधिकांश सदस्यों ने इस्तीफा दे दिया। जो कांग्रेसवादी न थे पर कांग्रेस के नाम पर चुने गये थे उनमें से भी अधिकांश ने इस्तीफा दे दिया। कुछ ऐसे निकले जिन्होंने आदेश की परवा न की।

सत्याग्रह संग्राम

नेता सत्याग्रह-संग्राम की तैयारी में जुट गये। २६ जनवरी १९३० ई० को सारे भारत में स्वतंत्रता दिवस मनाया गया, सभाओं में स्वराज्य की घोषणा दोहराई गई। कांग्रेस-कार्यकारिणी ने सत्याग्रह-संचालन का सारा अधिकार महात्मा जी को दे दिया था। १२ मार्च को महात्मा

जी नमक-कानून तोडने के लिए, अपने चुने हुए सहयोगियों के साथ, साबरमती से दांडी के लिए रवाना हुए। ६ अप्रैल को सारे भारत में नमक-कानून भग किया गया। १४ अप्रैल को राष्ट्रपति जवाहर लाल गिरफ्तार हुए, वल्लभभाई तो पहिले ही गिरफ्तार हो चुके थे। जवाहर लाल के बाद फिर राष्ट्र की बागडोर मोतीलाल जी के हाथ में आई। उन्होंने प्रयाग में विराट् सभा के बीच नमक बनाया। फिर तो आनन्द-भवन के सामने सडक पर दिन में बार-बार नमक बनवाते। सारे शहर में यह नमक बिकने लगा।

नमक-कानून भग तो देश की भावुकता को जगाने के लिए था। इसलिए थोडे दिनों बाद पण्डितजी ने जड को पकडा और विलायती कपडे तथा विदेशी वस्तु-बहिष्कार का जबर्दस्त आंदोलन शुरू किया। विलायती कपडे की बडी-बडी आढतें बन्द हो गई, दुकानों में माल बद करके कांग्रेस की मुहर लग गई। मिल मालिकों से समझौता मोतीलाल जी की इस दिशा में सबसे बडी विजय थी। इस समझौते के अनुसार मिल मालिकों ने स्वदेशी सूत व्यवहार करने, एवं प्राय देशी पूँजी एवं देशी प्रबंध से मिल चलाने की प्रतिज्ञा की। जिन मिल मालिकों ने प्रतिज्ञा की उन्हें कांग्रेस की ओर से स्वदेशी का प्रमाण पत्र दिया गया। शेष का बहिष्कार हुआ। आज तक अधिकाश मिलें उस समझौते का पालन कर रही हैं।

सत्याग्रहियों के साथ पुलिस एवं फौज के दुर्व्यवहार की रिपोर्ट जगह जगह से आ रही थीं। धरासणा और शोलापुर के अत्याचार सामने थे। अत कांग्रेस-कार्यकारिणी ने एक प्रस्ताव पास करके हिन्दुस्तानी पुलिस और फौज से भारतीय होने के नाते देश के प्रति अपना कर्त्तव्य पालन करने की अपील की। सरकार इसे कैसे सह सकती थी? कांग्रेस कार्यकारिणी गैर कानूनी घोषित कर दी गई। प्रथम स्थानापन्न राष्ट्रपति मोतीलालजी गिरफ्तार कर लिये गये। उन्हें ६ महीने की सजा हुई।

आन्दोलन ने तूफानी रूप धारण किया। किसी को यह आशा थी। सरकार को तो थी ही नहीं, स्वयं महात्माजी को पता न था कि देश इतना तैयार है। साठ हजार से अधिक आदमी जेल गये। इधर दमन हो रहा था, उधर गोलमेज-कान्फ्रेंस की तैयारियां हो रही थीं। इसके दो सदस्य—सर तेज बहादुर सप्रू और श्री जयकर—कांग्रेस और सरकार के बीच संधि कराने के इरादे से वायसराय से मिले और उनकी अनुमति लेकर महात्माजी एवं मोतीलालजी से भेंट की। फिर विशेष सलाह मशविरे के लिए मोतीलालजी एवं जवाहरलालजी महात्माजी के पास यरवदा जेल ले जाये गये। वहाँ मुख्य मुख्य नेताओं ने गम्भीरता पूर्वक विचार किया पर सरकार के निश्चित वादे के अभाव के कारण कुछ फल न निकला।

जेल में मोतीलाल जी का स्वास्थ्य बहुत खराब हो गया। उनका दमे का रोग फिर उभड़ आया। यरवदा जेल से लौटकर, नैनी जेल

रिहाई और देहावसान

पहुँचते ही, उन्हें जोरों का बुखार आया। हालत यहां तक बढ़ी कि फेफड़ों में सूजन पैदा हो गई और थूक के साथ खून आने लगा। कलकत्ता के प्रसिद्ध डाक्टर सर नीलरतन सरकार ने जेल में उनकी परीक्षा की। अन्य डाक्टरों ने भी देखा और सम्मति दी कि रोग बहुत बढ़ गया है। इसपर सरकार ने ८ सितम्बर को जेल से पण्डित जी को छोड़ दिया।

छूटकर भी मोतीलाल जी विश्राम न पा सके। बम्बई के विदेशी वस्त्रविक्रेताओं से समझौता किया। कलकत्ता के पास दक्षिणेश्वर में प्रसिद्ध वैद्य कविराज वाचस्पति का इलाज कराया, उससे कुछ लाभ हुआ। इन्हीं दिनों बंगाल के कांग्रेसवादियों में जो मत भेद हो गया था, उसे दूर करने में उन्हें बड़ा परिश्रम करना पड़ा। फलतः दशा खराब हो गई। मसूरी में भी जाकर रहे पर विशेष लाभ न हुआ। इधर कुटुम्ब के अधिकांश लोग जेल में थे, इसका भी उन पर असर हुआ था।

उधर गोलमेज सम्मेलन समाप्त हो चुका था। सर सप्रू और जयकर आदि ने प्रधान मन्त्री—श्री रेम्जे मैकडानल्ड—से मिलकर भारत अनुकूल वातावरण पैदा करने के लिए नीति परिवर्तन का अनुरोध या। सरकार थक गई थी और जानती थी कि कांग्रेस के सहयोग ना कुछ भी सम्भव नहीं है। अत उसने कहना मान लिया। २६जनवरी ३१ को वायसराय ने विशेषाधिकार से, बिना शर्त कांग्रेस कार्य-रिणी के सब सदस्यों को छोड़ दिया। महात्मा जी यरवदा से सीधे म्बई और वहां से प्रयाग आये। अन्य नेता भी प्रयाग पहुँचने लगे। रवरी के आरम्भ में पण्डित जी के प्राय सभी सहयोगी और मित्र नकी रुग्ण शय्या के समीप आ पहुँचे।

गांधीजी का विचार बम्बई में कार्यकारिणी की बैठक करने का था। ह सुनकर पण्डित जी ने सबको रुलाते हुए कहा था—"भारत के ाग्य का निर्णय स्वराज्य भवन में करो। मेरे सामने करो और मेरी ातृ भूमि के अन्तिम सम्मान पूर्ण समझौते में मुझे भी भाग लेने दो।" ुद्ध में उन्हें मजा आता था और अन्तिम समय में इच्छाशक्ति के बल ार वह मृत्यु से भी हफ्तों लड़े। अन्त में कार्यकारिणी की बैठक स्वराज भवन में ही बुलाई गई। यद्यपि डाक्टरों ने पूर्ण विश्राम की सलाह दी थी किन्तु उनका दिल मानता न था और कार्यकारिणी को प्रत्येक विषय म वह अपनी सम्मति देते रहते थे। जब कुछ सदस्य उनसे मिलने गये तो उन्होंने कहा था—"मैं रोग से लड़ूँगा, मैं मृत्यु से लड़ूँगा और सब के ऊपर दासता-रूपी राक्षस से लड़ूँगा।"

कभी-कभी ऐसी घटनाएँ घटती रहती हैं जिनसे भाग्य पर विश्वास करने को जी चाहता है। मोतीलाल जी के सम्बन्ध में भी यही हुआ। लखनऊ में उनका देहावसान होना लिखा था। वैसा ही क्रम उपस्थित हुआ। शरीर की परीक्षा के लिए एक्स—रे की आवश्यकता थी। प्रयाग में उसका कोई प्रबन्ध न था। इसलिए ४ फरवरी को मोटर से उन्हें

लखनऊ ले जाया गया। घर के लोग तथा महात्मा जी साथ-साथ थे। लम्बी यात्रा के कारण शरीर को सूजन बढ़ गई और साथ ही हृदय की निर्बलता भी। महात्मा जी ने उनसे कहा—"यदि आप स्वस्थ हो जाँय तो मैं स्वराज ले लूँगा।" उन्होंने हँसते हुए उत्तर दिया—"स्वराज तो मिल ही गया है। जब ६० हजार पुरुष, स्त्री और बच्चों ने इतना अद्भुत त्याग किया है और जनता ने शान्ति से गोलियां एवं लाठियां सह ली हैं तो स्वराज के अतिरिक्त और नतीजा ही क्या हो सकता है!" दूसरे दिन डाक्टरों ने परीक्षा की और राय दी कि इस निर्बलता की अवस्था में एक्स-रे परीक्षा नहीं हो सकती।

दोपहर तक दशा कुछ अच्छी रही। शाम से फिर बिगड़ने लगी। चेहरा पीला पड़ने लगा, दृष्टि शक्ति क्षीण होने लगी। आधी रात के समय कुछ नींद आई पर बाद में बेचैनी बढ़ने लगी। जवाहरलाल, डा० विधानचन्द्र राय, डा० जीवराज महता, श्री आर० एस० पण्डित इत्यादि शय्या के पास बैठे थे। उस समय भी पण्डित जी इतने सावधान थे कि जागनेवालों को बार-बार सोने के लिए कहते थे। प्रातःकाल ६ बजे के लगभग उन्होंने पानी माँगा। कण्ठ सूज गया था पर वह पानी अन्दर न जा सका। प्रातःकाल ६ बजकर ४० मिनट पर भारत के भाग्याकाश का प्रकाशमान चन्द्रमा अस्त हो गया।

× × ×

जिस समय पण्डितजी मृत्यु से लड़ रहे थे उस समय भी पण्डित जी का राष्ट्र एवं उसके सेवकों का ध्यान था। गढ़वाली पल्टन के जिन सिपाहियों को देश सेवकों के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करने के कारण १५-१५ साल कड़ी कैद की सजा मिली थी उनके परिवार की सहायता करने के लिए उन्होंने महात्माजी से विशेष अनुरोध किया।

अन्त्येष्टि क्रिया

११ बजे के लगभग उनका शव राष्ट्रीय पताका अंकित कफन से ढककर फूल मालाओं से लदी एक मोटर में रखा गया। जवाहरलाल और मोहनलाल सक्सेना ने अरथी को सँभाला, श्री पण्डित ने ड्राइवर का काम लिया। उसके पीछे दूसरी मोटर में महात्माजी, माता स्वरूपरानी और मीरा बहन बैठीं।

मोटर बादशाह बाग, कैसरबाग, अमीनाबाद आदि से गुजरती हुई प्रयाग को रवाना हुई। रास्ते में तथा मकानों पर जनता के सिर ही सिर दिखाई देते थे। फूल मालाओं की वर्षा हो रही थी।

तीसरे पहर अरथी आनन्द भवन पहुँची। वहाँ सुबह से ही जन समूह रास्ता देख रहा था। लगभग ६० हजार की भीड़ थी। यहाँ आने पर कुछ समय के लिए दर्शनार्थ पण्डितजी का मुख खोल दिया गया और अन्त्येष्टि की कुछ जरूरी रस्म पूरी की गई। फिर अरथी का जुलूस आनन्द भवन से त्रिवेणी-संगम के लिए रवाना हुआ। पहले कटरा से जानसेनगंज एवं बहादुरगंज होकर जुलूस जाने को था पर भीड़ बढ़ जाने से सीधे किले की सड़क से ६॥ बजे शाम को त्रिवेणी पहुँचा। वहाँ भी अपार भीड़ थी। अरथी के पहुँचते ही 'इन्किलाब जिन्दाबाद' के नारे लगने लगे। पण्डित जी के कितने ही फोटो उतारे गये। शास्त्रीय विधियाँ पूरी हो चुकने पर शव चिता पर रक्खा गया। महात्माजी ने भी चिता में चंदन की लकड़ी के कुछ टुकड़े डाले।

हाय! वह दृश्य कैसा हृदय-वेधक था। राष्ट्र का मस्तिष्क अपनी कला दिखाकर अनन्त के गर्भ में समाता जा रहा था और उसे जाननेवाले, उसे प्यार करने वाले, अपने से अपने अपनी असमर्थता और बेबसी पर कलेजा मसोसकर रह जाते थे। जवाहरलाल तो न जाने किस दुनिया में पहुँच गये थे, आँखों में एक बूंद आंसू नहीं। चिता धू धू करके जल रही है, लपटों की आँच से शरीर जल रहा है पर मानो इसकी उन्हें खबर नहीं। यह दुःख की पराकाष्ठा थी! दूसरों ने देखा और वहाँ से हटाया!

उनकी मृत्यु से देश भर में हाहाकार मच गया। सर्वत्र हड़ताल हुई। सरकार तक को उनका अभाव अनुभव हुआ। देश ही क्यों विश्व के कोने-कोने में शोक मनाया गया। शायद ही किसी भारतीय की मृत्यु पर इतना विश्वव्यापी शोक मनाया गया हो। भारत के अतिरिक्त लंका, जापान, मेसोपोटामिया, ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रांस, इंग्लैण्ड, बेल्जियन कांगो, दक्षिण अफ्रीका, मध्य अफ्रीका, मलाया, टांगानिका, इराक, अमेरिका, स्याम, अदन, केनिया, नेपाल इत्यादि दूर दूर देशों में भी शोक मनाया गया। सभाएँ हुईं और शोक-सूचक प्रस्ताव पास हुए। मृत्यु के सम्बन्ध में वायसराय, राजे महाराजे, तथा देश भक्तों के हजारों तार एवं पत्र जवाहरलालजी के पास आये थे। सचमुच इतना अभाव किसी नेता का अनुभव न हुआ था। मुझे खुद अपना याद है कि मैंने सुना तो कलेजा बैठ गया, ऐसा मालूम हुआ मानो अपनी कोई अमूल्य मूल्यवान चीज खो गई हो।

उनकी चिता को दिखाकर महात्माजी ने ठीक ही कहा था—'यह चिता नहीं राष्ट्र यज्ञ का हवन कुण्ड है।' और इस हवन कुण्ड में इससे ऊँची आहुति गरीब देश क्या दे सकता था!

—पाच—

उनकी विशेषताएँ

यों तो उनमें अनेक गुण थे पर उनकी देशभक्ति उनके जीवन में सब से अधिक प्रकाशित है। देश का प्रश्न आने पर वह व्यक्तिगत मतभेद

देशभक्ति

को भूल जाते थे। बस शत्रु को चित करने—पछाड़ देने की चिन्ता उन्हें रहती थी। इस सम्बन्ध में एक घटना की याद आती है। १९२५ ई० में व्यक्तिगत तथा राजनीतिक कारणों से स्व० लाला लाजपतराय स्वराज्य दल से अलग हो गये थे। उनके इस सम्बन्ध विच्छेद को लेकर उनमें और मोतीलालजी में मनमुटाव

और कभी-कभी अत्यंत तीव्र एवं कटु विवाद उठ खड़ा होता था। मित्रों के बहुत यत्न करने पर भी तीन वर्ष तक दोनों नेता कभी एक दूसरे से न बोले। पर मौका आया जब देश दशा को ध्यान में रखकर यह ऐतिहासिक कलह शान्त हो गया।

शिमले में असेम्बली की बैठक हो रही थी। 'पब्लिक सेफ्टी बिल' पेश होनेवाला था। लाला जी अपने एक मित्र के साथ, जो असेम्बली—बड़ी कौंसिल—के सदस्य थे, आये। रास्ते में लाला जी ने उनसे कहा कि "इस समय स्वराजियों को और हमारे दल को मिल जाना चाहिए। जहाँ तक मूल कार्यक्रम से सम्बन्ध है, हममें और स्वराज दल में कोई फरक नहीं है। यदि हम मिलकर काम करेंगे तो बहुत अधिक शक्तिमान रहेंगे।" यह कहकर उन्होंने लम्बी साँस ली।

"पर इसमें बाधा क्या है?"—मित्र ने पूछा। लाला जी बोले—"मैं और मोतीलाल जी। मैं कभी-कभी अनुभव करता हूँ कि क्या यह हमारे लिए अयोग्य नहीं है कि हम अपने व्यक्तिगत मत भेदों को, देश हित के लिए समानरूप से प्रयत्नशील दलों के बीच में लावें?"

इस प्रकार बातचीत करते दोनों ने असेम्बली में प्रवेश किया। पर यह क्या? सामने बरामदे में ही मोतीलाल जी खड़े थे। वहाँ और कोई न था। लालाजी ओझल बचाकर निकल जाना चाहते थे। उन्होंने समझा कि संयोग से ही ऐसा हुआ होगा। पर बात ऐसी न थी। मोतीलाल जी राष्ट्रीयदल (नेशनलिस्ट पार्टी) के इस नेता की खोज में जान-बूझकर वहाँ खड़े थे।

"लाला जी, मुझे तुरन्त आपकी जरूरत है। मुझे तअज्जुब है कि हम लोग बात कर सकेंगे या नहीं ।"

इसके पहले कि पण्डित जी वाक्य पूरा करते, लाला जी 'क्लोक रूम' में घुस गये। पण्डित जी कुतूहल-वश वहीं खड़े रहे। घबराये नहीं। उनके ढंग से मालूम होता था कि वह पहले से ही इसके लिए तैयार

थे, लाला जी की इस घबड़ाहट एवं संकोच को वह विनोदपूर्ण आँखों से देख रहे थे, उसका मजा ले रहे थे। कुछ समय बाद लालाजी बाहर निकले। दोनों की आँखें मिलीं—जैसे दो बिछुड़े हुए प्रेमी मिल गए। लालाजी मुस्कराये। दोनों के मुख से बोली न निकली—दोनों मौन थे। लाला जी ने अपनी बाँहें पण्डितजी के गले में डाल दीं। यह शब्दों की भाषा से कहीं अधिक स्पष्ट था। फिर दोनों मित्र हो गये।

इसके बाद दोनों नेता एक मन्त्रणा गृह (कमिटी रूम) में १५ मिनट तक बातचीत करते रहे और जब वहाँ से हाथ में हाथ दिये निकले और सदस्यों की 'लाबी' में प्रवेश किया तो लोग आश्चर्य से आँखें फाड़ फाड़ कर देखने लगे और सरकारी सदस्य कर्तव्य विमूढ़ से हो गये। उनको कभी यह आशा न थी।

यह व्यक्तिगत मत भेद पर देश भक्ति की विजय का एक नमूना है। इस तरह के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। वास्तव में उनका देश-प्रेम अद्भुत था। इसके लिए उन्होंने भोग विलास, वैभव एवं राज-सिक सुख सब कुछ छोड़ दिया, इस वेदी पर उन्होंने अपना ऐश्वर्य, अपना प्रिय कुटुम्ब, अपना प्यारा लाल जवाहर चढ़ा दिया, यहाँ तक कि स्वयं अपनी बलि देकर माता के मस्तक को ऊँचा उठाया।

× × ×

वह लड़कपन से तेजस्वी और निर्भीक थे। वास्तव में वह शासक-कोटि के पुरुष थे। उनके जीवन पर इन सद्गुणों की छाप है और

तेजस्विता एवं निर्भीकता

जवाहरलाल के अन्दर इन गुणों का जो अद्भुत विकास दिखाई देता है, वह उनके पिता का ही दान है। उनकी तेजस्विता उनका एक अंग बन गई थी, उनसे अलग न हो सकती थी। मृत्यु के पूर्व भी काँग्रेस कार्य-कारिणी पर प्रभाव डालकर उन्होंने सरकारी घोषणा के सम्बन्ध में असन्तोष प्रदर्शक प्रस्ताव पास कराया था। वह झुकना न जानते थे और, बहुत से

लोगों की भाँति मेरा भी ऐसा खयाल है कि, यदि वह जीवित होते तो दिल्ली का समझौता न हो सकता। वह उन आदमियों में थे जो जबतक शत्रु के मुँह से कहला नहीं लेते कि मैं हार गया तबतक चैन नहीं लेते। उनकी तेजस्विता कमजोर समझौते को कभी स्वीकार न कर सकती।

इस सम्बन्ध में दो एक घटनाओं का उल्लेख करना आवश्यक है। सम्भवत १९०२ की बात है। उन दिनों कलक्टर ही म्युनिसिपल्टी का सभापति होता था। इस हैसियत से इलाहाबाद के कलेक्टर का कहना था कि पण्डित जी ने अपनी दीवार म्युनिसिपल्टी की जमीन पर बढ़ा कर बना ली है। दरअसल यह झूठी बात थी, पण्डित जी ने ऐसा नहीं किया था पर उसे तो इसी बहाने इनको दबाना था। किसी पिछली घटना से अपमान का अनुभव कर वह खार खाये बैठा था और इस बात पर तुला हुआ था कि दीवार गिरवाकर और पण्डित जी को जल भिजवाकर ही दम लूँगा। इधर पण्डित जी भी दृढ़ थे कि देखें कैसे दीवार गिरती है। यह झगड़ा बढ़ता ही गया। सब लोगों में एक आतंक छाया हुआ था। उस जमाने में कलेक्टर से दुश्मनी मोल लेना इन्द्र से दुश्मनी मोल लेने के समान था पर पण्डित जी टस् से मस न हुए। कलक्टर को मुँह की खानी पड़ी, दीवार ज्यों की त्यों रह गई।

उनमें राजपूती शान थी, वह प्रकृति से ही निर्भीक थे। कोई ऐसा काम नहीं, जिसमें डरनेवाले साबित हुए हों। असेम्बली-बमकाण्ड के समय इसका परिचय मिला। पहले बम का गिरना था कि भवन खाली हो गया, लम्बी-लम्बी स्पीचें देनेवालों ने रास्ता नापा इधर उधर के दरवाजों से निकल गये। पर मोतीलाल जी न केवल अपनी जगह पर ज्यों के त्यों बैठ रहे वरन् जरा दर बाद ही वह सरकारी बेंचों की तरफ यह सोचकर बढ़े कि देखें क्या हुआ और कोई घायल हुआ हो तो उसे सहायता दें। वह अपनी एवं स्वराष्ट्र-सदस्य (होम मेम्बर) की सीट के बीच में पहुँचे थे कि दूसरा बम गिरा, जिसके बाद रिवाल्वर

की दो गोलियाँ चलने की आवाज सुनाई पड़ी किन्तु इस दूसरे बम से भी वह डरे नहीं, न पीछे लौटे।

यह उनकी निर्भीकता थी!

वह अद्भुत लगन के आदमी थे। जिस क्षेत्र को अपनाया उसका विजय करके उसके शासक बन गये। कार्य करने की उनमें अद्भुत शक्ति थी। १९२३ और २६ के निर्वाचनकाल में मैंने उन्हें सुबह से रात को १० १० बजे तक लगातार काम करते देखा था। इतना जबर्दस्त परिश्रम करना उन्हीं का काम था। इसपर मजा यह कि परेशान एवं चिन्तित होना वह जानते न थे।

संघटन शक्ति एवं कार्य शक्ति

स्वराज दल, भारत के आधुनिक इतिहास में उनकी एक बड़ी सृष्टि है। इसके पहले भारत में ऐसा संघटित राजनीतिक दल दूसरा न था। राजनीतिक दलों के युग के वह विधाता थे। संघटन की उनमें जबर्दस्त शक्ति थी। एक ही साल के अन्दर उन्होंने राजनीतिक भारत का नकशा पलट दिया।

× × ×

अनुशासन एवं युद्ध नीति के तो वह आचार्य थे। अपने दल में जरा भी शिथिलता वह बर्दाश्त न कर सकते थे। वह सड़े गले अंग को काट कर फेंक देने की नीति के पक्षपाती थे। स्वराज दल में उनकी आज्ञा पर विवाद न हो सकता था। वह शासक की कोटि के थे। राजनीतिक दाँव पेंच वह जानते थे इसलिए विरोधी को सर उठाने का मौका न देते थे। जिस समय उसे आक्रमण की सब से कम संभावना होती उस समय आक्रमण करते और उस आश्चर्य से अभिभूत—पराजित कर देते वह अद्भुत योद्धा थे और युद्ध में—लड़ने में, जोर आजमाने में, [illegible] था। शत्रु को चित देख वह आम[illegible] से [illegible] का आनन्द लेते थे। [illegible] के [illegible] इति[illegible]

अनुशासन एवं युद्ध-नीति

यार किया वही उनकी युद्ध नीति का उदाहरण है। सब राष्ट्रीय दलों को तो मिला ही रखा था फिर भी उन्होंने जड़ पर ही आघात किया। विरोध करने की जगह उन्होंने 'प्वाइण्ट ऑव् आर्डर'—प्रस्ताव के असगत होने का सवाल—उठाया। सरकार विरोध के लिए प्रस्तुत थी पर उसे पता न था कि ऐसा सवाल उठाया जायगा, न और सदस्यों को पता था। मोतीलाल जी ने १९१९ के भारत शासन कानून (गवर्नमेण्ट ऑव् इण्डिया ऐक्ट) से उद्धरण लेकर दिखाया कि अंग्रेजों के अधिकार, स्वाधीनता एवं सुविधा को नष्ट करने वाला ऐसा कानून बनाने का असेम्बली को कोई अधिकार नहीं। उन्होंने अंग्रेजों के स्वतन्त्रता के अधिकार के नाम पर आवाज उठाई। मोतीलालजी अंग्रेजी अधिकारों के अस्त्र का उपयोग करेंगे, विरोधी, सरकारी सदस्य इसका स्वप्न भी न देख सकते थे। यह उनका अपना खास तरीका था, आत्म रक्षा आक्रमण के रूप में सामने आती थी जिससे युद्ध का नक्शा ही बदल जाता था। वह ऐसे अस्त्र का प्रयोग करते थे जिसकी विरोधी कल्पना ही न कर सकता था। इसलिए जब वह खड़े होते तो विरोधी उनके मुख की ओर भय, आश्चर्य एवं घबड़ाहट की दृष्टि से देखते थे। प्रतिद्वन्द्वी उनके आक्रमण से घबड़ा जाता था और इसके पहले कि होश हवास दुरुस्त करे पण्डितजी के अस्त्र से अपने को बिंधा हुआ—जमीन पर गिरा हुआ पाता था।

× × ×

साम्प्रदायिकता से रहित हृदय

उनमें हिन्दू मुसलमान का भेद भाव न था। साम्प्रदायिकता उनको छू तक न गई थी। उनकी प्रकृति का पोषण ही ऐसे वातावरण में हुआ था। बहुत से लोग तो उन्हें मुसलमानों का हामी कहते थे। उनके अनेक मुसलमान मित्र थे और राष्ट्रीय नेताओं में मुसलमान उन पर सबसे ज्यादा विश्वास करते थे। हिन्दू महासभा के आन्दोलन के समय एक सज्जन ने पूछा—"पण्डितजी, आप महासभा के सदस्य क्यों नहीं हैं?"

उन्होंने उत्तर दिया—"महज इसीलिए कि मैं मुस्लिम लीग का सदस्य नहीं हूँ।" वह पूर्ण राष्ट्रवादी थे। राष्ट्रवाद भी वह जो मानव प्रेम में बाधक न हो। हिन्दू होने के कारण उन्होंने कभी हिन्दुओं का पक्षपात नहीं किया, वह प्रकृति से हिन्दू मुसलमान में भेद करने में असमर्थ थे। यही नहीं, जैसा कि ('इण्डियन पेट्रन्स ऑन् द इंग्लिश थ्रोशार' के लेखक) सैयद अफजल हुसैन ने लिखा था—"उनके जीवन में कई ऐसे अवसर आये हैं जब वह हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों के प्रति अधिक उदार रहे हैं।"

× × ×

यूरोपीय परिच्छद में भारतीय हृदय

अपने वैभवपूर्ण जीवन के पूर्वार्द्ध में—१९२० के पहले हम उन्हें यूरोपीय रंग ढंग एवं वेशभूषा में सराबोर देखते हैं। किन्तु इसका यह मतलब नहीं कि उनमें भारतीय भावनाएँ मर गई थीं। नहीं, उस समय भी बीज हृदय में पड़ा हुआ था। वह हृदय से यूरोपीय नहीं थे, जैसा कि कई लोगों ने लिखा है। यूरोपीय रंग ढंग के नीचे उनकी भारतीयता छिपी हुई थी। इस सम्बन्ध में उनके परिचय में आनेवाले एक सज्जन लिखते हैं—

"यद्यपि पण्डितजी उस समय पाश्चात्य सभ्यता में निमग्न थे किन्तु उनके भीतर भारतीयता की वह ज्योति टिमटिमा रही थी जो आगे चलकर देशव्यापी ज्वाला फैलाने वाली थी। मुझे याद है कि अपने बाग के लता-गृह में उन्होंने जो कृत्रिम शैल बनवाया था उसमें शिवजी की एक प्रतिमा रक्खी थी, जिसकी जटा से गंगा निकलकर उस निकुंज में चारों ओर से फैल गई थी। फुहारे भी उन्होंने विलायती न मँगाकर जयपुर से मँगाये थे और उनका ढंग भी देशी था—शायद बीच में एक ऊँचा फुहारा था और उसके चारों ओर दिग्गज बने थे, जो अपने उठाये हुए शुण्डों से धारा निकालते थे। इतना ही क्यों, उन्होंने अपने निवास का नामकरण ही "   विला" या "   कैसिल" न करके 'आनन्द भवन' क्यों रक्खा!

"नये 'आनन्द भवन' का भारतीय स्थापत्य तो उनकी उस अन्तर्गमा का मूर्त रूप है, जो महात्माजी की अनुयायिता में उनके हृदय में उद्‌बुद्ध हो उठी थी।

"आज तो हम वैद्यक—हकीमी के कायल भी हो रहे हैं, उस समय तो ये चिकित्सा प्रणालियाँ जगन्त्या की चीज समझी जाती थीं किन्तु साहबी में रँग पण्डित जी ने इनका व्यवहार कभी न छोड़ा था।

"यही हाल देशी व्यायाम का भी था। वे नित्य दण्ड-बैठक किया करते थे। * ऐसी छोटी-छोटी बातों को मैं बहुत महत्त्व देता हूँ, क्योंकि इनसे मनोवृत्ति का पूरा पता चलता है।" †

दूसरी प्रकार सन्त निहालसिंह ने १९१० ई० के अपने प्रथम परिचय का उल्लेख करते हुए लिखा था—"वह निश्चिन्त, रसिक भारतीय जो उच्च फैशन का आदी था, जिसने अपने अपने पुत्र को 'पब्लिक स्कूल' के ढंग की शिक्षा पाने को इङ्गलैण्ड भेजा था—पश्चिम का अन्ध भक्त न था। उसके मूल में पर्याप्त पूर्वीय संस्कृति थी। वह फारसी और उर्दू कविता पर फिदा था और स्वयं लम्बी कविताएँ सुना सकता था। × × ।"

"वह समझता था कि हम लोग पश्चिम से कई बातें, अपने लाभ के लिए, ले सकते हैं। पर वह यूरोप की बुराइ भलाई दोनों से परिचित था। उसने भौतिक क्षेत्र को छोड़ अन्य बातों में कभी उसका महत्त्व स्वीकार न किया। उसके विचार से कई विषयों में यूरोप-वासी, भारतीयों के चरणों में बैठकर कुछ सीख सकते थे।" ×

---

* पिछले साल में स्वास्थ्य की खराबी एवं कार्याधिक्य से यह सब छूट गया था।

† राय कृष्णदास 'हंस' फरवरी १९३१ ई०।

× The Patriot Who Gave His All to India' Modern Review March 1931

मोतीलाल की दूरदर्शिता अप्रतिम थी। वह महीनों पहले से, आगे होनेवाली घटनाओं को देख सकते थे। सैयद अफजल हुसैन ने एक घटना का जिक्र किया है जिससे उनकी दूरदर्शिता और अद्भुत राजनीतिक प्रतिभा का पता चलता है। वह लिखते हैं—

दूरदर्शिता

"निर्वाचन के समय युक्तप्रांतीय कौंसिल के लिए जौनपुर के* नवाब मुहम्मद यूसुफ (जो अब मिनिस्टर हैं) के विरुद्ध स्वराज्य-दल की तरफ से उन्होंने मौलवी मुहम्मद हुसेन को खड़ा किया था। यह चुनाव इलाहाबाद—जौनपुर मुस्लिम ग्राम्य निर्वाचन क्षेत्र से था। पण्डित जी का नाम भर मौलवी साहब को वोट दिलाने और श्री मुहम्मद यूसुफ को हराने के लिए काफी था। बड़ा कठिन मुकाबला था। मैं नवाब यूसुफ के लिए काम कर रहा था। कोई शिया-सुन्नी का सवाल, चुनाव में जीतने के ख्याल से खड़ा नहीं किया जा सकता था। मैं गहरे पानी में था पर संयोग वश ऐसा हुआ कि जरूरी काम से पण्डितजी को कलकत्ता चला जाना पड़ा। इसके पहले उन्होंने मौलवी साहब के लिए कुछ काम नहीं किया था। फल यह हुआ कि नवाब यूसुफ चुने गये। जब मैं पण्डितजी से मिलने गया तो, इस चुनाव में उनका विरोध करने के कारण, मारे शर्म के दबा जा रहा था परन्तु उनके व्यवहार में कोई परिवर्तन न दिखाई दिया। उसी तरह मेरी पीठ पर हाथ फेर कर बोले—"तुम्हारे यूसुफ भाग्यवान हैं। वह केवल सदस्य ही नहीं हुए हैं, इस बार मिनिस्टर भी होंगे।" मैंने अपने मित्र नवाब यूसुफ से पण्डितजी की यह भविष्यवाणी कह सुनाई थी। मैं जानता था कि वह व्यर्थ नहीं बोलते, जो कुछ कहते हैं समझकर कहते हैं। वह सारी स्थिति का अद्भुत अध्ययन और ज्ञान रखते हैं। इसीलिए वह महीनों बाद घटित होनेवाली घटनाओं को देख सकते थे।'

* युक्तप्रान्त का एक शहर और जिला।

इसे बहुत कम लोग जानते हैं कि पण्डितजी फारसी और उर्दू साहित्य के अच्छे पण्डित थे। फारसी साहित्य का तो उनके जीवन पर बड़ा प्रभाव पड़ा था। उर्दू कविता में वह 'आतिश' और 'गालिब' को श्रेष्ठ समझते थे और 'अनीस' उनके प्रिय कवि—'फेवरिट'—थे। इसी प्रकार फारसी में हाफिज और नजीरी का उनका अच्छा अध्ययन था। इनके बारे में उनकी बहुत ऊँची सम्मति थी। ये दोनों उनके प्रिय कवियों में से थे। अंग्रेजी साहित्य में उनकी वैसी गति तो न थी पर उसकी बारीकियों को वह खूब समझते थे। खुद उनकी भाषा बड़ी चुस्त, मँजी हुई, सरल और प्रभावकारी होती थी। वकालत ने शान देकर छुरी को तेज कर दिया था।

साहित्यिक अभिरुचि और गुण ग्राहकता

गुण ग्राहकता की वृत्ति भी पण्डितजी में खूब थी। यद्यपि विरोधी' के साथ वह बड़ा ही निष्ठुर—निर्दय व्यवहार करते थे किन्तु गुणों की कद्र करना नहीं भूलते थे। योग्यता की कद्र करते थे और उसके लिए रुपये पानी की तरह बहाते थे। जब 'इण्डिपेण्डेण्ट' निकालने वाले थे तब उन्होंने एक प्रसिद्ध पत्रकार को पत्र एवं तार द्वारा उसका सम्पादन-भार ग्रहण करने को कहा। लिखा—"आफिस में आकर डेस्क की गुलामी करने की आवश्यकता नहीं—इसकी भी जरूरत नहीं कि आप कुछ न कुछ रोज लिखें ही। मुख्यत नीति इत्यादि पर ध्यान रखना होगा। अपना वेतन, अपने आप, आप जितना चाहें चुन लें।" इतनी उदार हृदयता से सिवा उनके दूसरा कौन लिख सकता है? वह आदमी को उठाना जानते थे, खूब उठाते थे। हाँ यह अवश्य है कि कृतघ्न को वह क्षमा न कर सकते थे। उसे मटियामेट करके छोड़ते थे।

स्फुट

मोतीलाल जी बड़े हाजिरजवाब थे। उन्होंने बड़ी हाजिर तबीयत पाई थी। पर एक बार की बात है कि उन्हें भी कुछ जवाब नहीं सूझ पड़ा। असेम्बली की बैठक थी। पण्डितजी किसी सम्बन्ध में भाषण देते हुए कह रहे थे—"मुझे स्वराज्य

की धुन सोते-जागते लगी रहती है। सुबह हो, दोपहर हो, शाम हो या रात हो, मैं सदा स्वराज की ही बात सोचता रहता हूँ।"

इसी समय कोई बोल उठा—"तब आप चर्खा किस समय चलाते हैं?"

यह सुनकर सब हँस पड़े। पण्डित जी को भी हँसी आ गई।

× × ×

व्यंग के तो वह बादशाह थे। उनके व्यंग सीधे चोट करते थे—बड़े मार्मिक होते थे। क्या कांग्रेस, क्या मित्र मण्डली, क्या असेम्बली सब पर उनके इस व्यंग विनोद की छाप थी।

एक बार की बात है कि पण्डितजी विलायत जा रहे थे। उसी जहाज पर हैदराबाद के एक नवाब भी थे। वह अक्सर पण्डित जी से छेड़छाड़ किया करते थे पहले तो उन्होंने ध्यान न दिया पर जब छेड़छाड़ बढ़ने लगी तो उन्होंने उनका मुँह बंद करने का उपाय सोचा। एक दिन नवाब ने पूछा—"आप गो-मांस खाते हैं?" पण्डित जी गम्भीर मुद्रा से बोले—"गो-मांस तो नहीं, यदि गो भक्षकों का मांस अच्छी तरह भुना हुआ, मसाला लगा के मिले तो उसके खाने में न हिचकूँगा।"

उस दिन से नवाब की आदत छूट गई।

× × ×

एक मुकदमे में मोतीलाल जी किसी बात पर कोई धारणा बना रहे थे—कोई निष्कर्ष निकालना चाहते थे। गवाह बड़ा अभिमानी था। उसने गुस्से से कहा—"आप गलती पर हैं। क्या आप मुझे बिल्कुल बेवकूफ समझते हैं?"

पण्डित जी ने जवाब दिया—"नहीं, नहीं।" फिर जरा रुककर सूखी हँसी हँसते हुए कहा—"लेकिन निश्चय ही, मैं गलती पर हो सकता हूँ।"

× × ×

राय कृष्णदास 'हंस' में लिखते हैं—

"१९२६ की बात है। मैं किसी कार्य से प्रयाग गया हुआ था। अकस्मात् पण्डित जी का बुलावा आया। जाकर मैं उनसे मिला। उस समय प्रतापगढ़ से श्री० सी० वाई० चिन्तामणि प्रान्तीय कौंसिल के लिए खड़े हुए थे। स्वराज दल उनका विरोध कर रहा था और अपना उम्मेदवार खड़ा करना चाहता था। इसी सम्बन्ध में उन्होंने मुझे याद किया था। वह मुझे ही उनके विरुद्ध खड़ा किया चाहते थे, क्योंकि उन दिनों श्री एन० सा० मेहता प्रतापगढ़ के डिप्टी कमिश्नर थे—और ऐसा खयाल किया जाता था कि वे चिन्तामणि का अनुमोदन कर रहे हैं। उन्हें इससे विरत करने के लिए यही उपाय था कि मैं खड़ा किया जाऊँ, क्योंकि उनसे मेरा भाई चारा है, अतः मेरे खड़े होने से वह धर्म-संकट में पड़ जाते। किन्तु राजनीति कभी भी मेरा क्षेत्र नहीं रहा है। जब जब मैं उसमें प्रविष्ट हुआ हूँ या प्रविष्ट किया गया हूँ, तब तब मैं ऊबकर भागा हूँ। यही मैंने उनसे भी निवेदन किया। इस पर उन्होंने जो उत्तर दिया वह बड़ा ही मार्मिक व्यंग था। उन्होंने कहा—"मैंने तो पहले ही कहा था कि कृष्णदास तो 'आर्टफुल' आदमी है, उनसे इससे क्या सम्बन्ध।" इस 'आर्टफुल' शब्द में बड़ी ध्वनि है, क्योंकि इसका शब्दार्थ तो है कलापूर्ण, किन्तु व्यंगार्थ है फितरती। × × ×।"

× × ×

एक मुकदमे में पण्डित जी वकील थे। मुकदमे की अन्तिम अवस्था में वह जूरी को भाषण—एड्रेस—कर रहे थे। बीच में बोले—"मैं इस सम्बन्ध में जूरी को भ्रम में डालना नहीं चाहता।" जज ने बीच में ही कहा—"जूरी की चिन्ता न कीजिए, वे लोग स्वयं अपनी देख भाल कर सकते हैं।"

पण्डित जी ने कहा—"हाँ, यह हो सकता है पर मैं चाहता हूँ कि वे मेरे मुवक्किल की भी देख भाल करें।"

इस तरह वह यात मे बात पैदा कर देते थे। उनकी मजाकपसंद तबीयत ने उनकी युद्ध कला में एक लुत्फ पैदा कर दिया था।

—छः—

विश्लेषण

आत्म विश्वास मोतीलालजी की विशेषता थी। भावुकता से पैदा होनेवाला आत्म विश्वास नहीं, गंभीर विवेचक का, कूट राजनीतिज्ञ का गूढ़ रहस्यमय आत्म विश्वास। इसके साथ था आत्म विश्वास या अपनी विशेषता का वह भाव भी उनमे था जो राजा का—उच्च वैभव में पले सरदार का अपने साथियों के प्रति होता है। वह प्रत्येक इंच राजा थे—शासन करना जानते थे और उनके व्यक्तित्व के सामने प्राय झुकना ही पड़ता था। सैकड़ों वर्ष पूर्व डेकार्ट्स ने कहा था—"मैं सन्देह—शंका—करता हूँ इसीलिए वर्तमान हूँ।" मोतीलालजी का व्यक्तित्व कहता था—"चूँकि मैं हूँ, इसलिए अपने अन्दर विश्वास रखता हूँ।" कोई सिद्धान्त नहीं, कोई सूत्र—'फार्मूला'—नहीं। सिद्धान्त या मत के बन्धन में वह कभी न पड़े। सिद्धान्त था तो यह कि जहाँ रहें, जिस क्षेत्र में रहें, उस क्षेत्र के शासक, विजेता बनकर रहें। वह ससार को उसी विनोदपूर्ण दृष्टि से देखते थे जैसे आचार्य अपने शिष्यों की रस्साकशी या कुश्ती को देखता है,—जैसे जीवन की चिर-यात्रा का पथिक हजारों चीजों को विनोद एवं कुतूहल के साथ देखता है, उनसे रस लेता है पर उनमे बँधता नहीं, आगे बढ़ता जाता है। उन्हें कोई बन्धन स्वीकार नहीं। जिस असहयोग को एक दिन अपनाया और खूब अपनाया, उससे, जब वह बन्धन बन गया और पथ एवं सम्प्रदाय का रूप पकड़ने लगा तो, अलग हो गये। वह किसी खास प्रणाली के न थे—बँधकर न रह सकते थे। वह पालतू दुधार चौपाये नहीं थे, जंगल में मुक्त निर्भय विचरण

अद्भुत आत्म विश्वास

करनेवाले शेर थे। इसीलिए बंधन में बँधना न जानते थे, उलटे उस पर हावी होकर रहते थे और उपयोग कर लेने पर, उसके बेकार हो जाने पर, चूसे हुए आम की गुठली की तरह, उसे फेंक देते थे। मार्ग से उन्हें मोह न था। वह एक वीर खिलाड़ी थे—खेलते और हँसते। वह जीवन को उसकी सम्पूर्ण ताजगी के साथ ग्रहण करते थे। उनके नियम स्वयं उनके बनाये थे और जीवन के साथ उनका जो घनिष्ट सम्पर्क था, जो गहरा अनुभव था उसी पर कसे होते थे। उनके जीवन में कोई अतीत नहीं है—काल बीता, गुजरा हुआ कल वहाँ नहीं दिखाई देता। सब वर्तमान काल है—आज ही आज है। वह केवल अपनी प्रकृति के कानून को माननेवाले—उस पर निर्भर करनेवाले पुरुष थे। और अपने को भी अपने निष्ठुर नियमों पर कसते रहते थे। उन्हें दूसरों को विजय करने में आनन्द मिलता था—इसलिए अपने पर विजय पाने में भी वह उल्लास और आनन्द अनुभव करते थे।

सभी वस्तुओं के बारे में उनका एक अपना निर्णय था। चीज सामने आई नहीं कि उन्होंने उसका मूल्य अपनी दुनिया में आँका नहीं। जब वह ऐसा न कर सकते तो इसका यही अर्थ था कि उस वस्तु की उनके जीवन में स्थिति नहीं। उनके लिए जैसे वह चीज है ही नहीं। यहाँ हिचकिचाहट नहीं, सन्देह नहीं। उनके लिए निर्णय मस्तिष्क का अभ्यास, मन की एक आदत थी। हम सदा उन्हें अपने पर ही आश्रय रखते देखते हैं—उनकी बुद्धि मानो उनका कवच और अस्त्र है। अपने अन्दर इस जबर्दस्त विश्वास से ही उन्हें स्फूर्ति मिलती है।

हिम्मते मर्दां मददे खुदा—साहसी पुरुष की ईश्वर सहायता करता है। दुनिया उस व्यक्ति में विश्वास रखती है जो अपने में विश्वास रखता है। सफलता का यह पहला सिद्धान्त है और यह मोतीलालजी के जीवन में शुरू से अन्त तक स्पष्ट, और स्पष्ट से स्पष्टतर, होता गया है। सफलता उनकी पकड़

पैदायशी नेता

से—गिरफ्त से, छूट ही न सकती थी। वह चाहते तो भी ऐसा न होता। उनकी प्रकृति ही असफलता के विरुद्ध थी। आचरण ('कैरक्टर') ही भाग्य है और मोतीलालजी का आचरण उनकी शक्तिमान बुद्धि की उपज था, जिसमें भावना और भावुकता को स्थान नहीं। स्वभावतः वह निष्ठुर, शुष्क था। उच्च विचार, उच्च भावनाएँ उनके पास अपने-आप, बिना प्रयत्न किये, नहीं आ जाती थीं। उनके विचार बुद्धि और तर्क के हथौड़ों से जीवन के साथ उनके सम्पर्क की कसौटी पर गढ़े होते थे।

"प्राय लोग कहते सुने जाते हैं कि—'अजी, उन्हें ऊँचा उठने की अनेक सुविधाएँ मिल गईं, इसलिए उठ गये। अमुक-अमुक बातें न होतीं तो वह इतना ऊँचा न उठ सकते।' यह गलत धारणा है। वे बातें—सुविधाएँ भी उन्हीं की उपज थीं। उनमें जो गुण थे उनके कारण, वह जहाँ भी होते, वहीं ऊँचा उठते। ऊँचा उठे बिना वह रह ही न सकते थे—सर्व साधारण के समानान्तर, उनकी कोटि में, रहना उनकी प्रकृति में ही न था। वह परिस्थिति के मालिक—शासक के रूप में पैदा हुए थे, उसके गुलाम नहीं। उन्होंने राजनीति का—समाज का नकशा बदल दिया और नरमवाद (माडरेटिज्म) के हिलते हुए जिनाल्टर को उखाड़ कर फेंक दिया। उन्होंने कभी रियायत न मांगी, न अपने विरोधी के साथ रियायत की।"*

* It has become a fashion in certain quarters to say that but for such and such a factor he would never have risen to the political eminence he has attained It is a mistaken view The factors were largely the outcome of his own peculiar powers De despite his rare gifts could not overshadow him The qualities which made him successful in the paths he has chosen would have made him successful anywhere He was born the master of circumstances, not its victim While his compeers light half believers of their casual creeds hesitate and falter life away he marches from strength to strength and fills the country w

नम्रता की उनमें बड़ी कमी थी पर इसके न रहने से ही वह वह हुए जो थे। भावुकता की बातें उन्हें 'अपील' नहीं करती थीं। उसका स्वाद और आनन्द लेने की शक्ति ही उनमें न थी। शायद ही किसी दूसरे नेता ने अपने विरोधियों को इतनी निर्दयता एवं उपेक्षा के साथ अपने रास्ते से अलग हटाया होगा। महात्मा जी के हृदय की गहरी अनुभूति उनमें न थी, जो बड़ी नम्रता के साथ शत्रु के सामने भी व्यक्त होती है और अपनी मधुरता से उसका विरोध शिथिल और मन्द कर देती है। वह सात्विक साधना का—सात्विक साधक का पथ है। मोतीलाल राजसिक साधक थे। उनकी जबान एक तीव्र अस्त्र थी। उनके व्यंग ऐतिहासिक-से हो गये हैं। उनके अन्दर जो विष है उसी से वे अमर हुए हैं। मोतीलालजी सदा गहरी चोट करते और सीधे हृदय में घुसते थे। उनके आक्रमण का ढंग अद्भुत था, वह बड़ी बेरहमी से—निष्ठुरता से वार करते थे। आक्रमण करने में उन्हें मध्ययुगीन राजपूत सा आनन्द आता था। एक घटना याद आती है। घटना दुःखद है, उनकी मृत्यु के बाद उसकी स्मृति और भी दुःखद हो गई है पर उससे उनके व्यंग तथा अस्त्र की भाँति उसके प्रयोग की विधि का पता चलता है।

चोट करनेवाले व्यंग

कानपुर कांग्रेस की बात है। मालवीय जी किसी प्रस्ताव पर बोलने खड़े हुए। विरुद्ध बोल रहे थे। अपने व्याख्यान में उन्होंने असहयोग-काल के पहले के किये हुए अच्छे कामों का जोरदार वर्णन करना शुरू किया। कांग्रेस का इतिहास सुना गये। मोतीलाल जी ऐसा कोई मौका चूकते न थे। उन्होंने व्यंग किया—"इस तरह तो आप महाभारत और रामायण की कथा से भी आरम्भ कर सकते थे।" मालवीय जी व्यंग

the rumour of his name He has changed the face of society × × × He has swept away the shaken Gibralter of Moderatism He has never asked for quarter and never given it

—PILLARS OF THE NATION DELHI 1928.

की कला में कच्चे हैं, व्यग में ही जवाब न दे सके। चिढ़ गये। सार गुल के बीच वह उसकी सफाई देने खडे हुए। राष्ट्रनेत्री श्रीमती सरोजनी नायडू ने उन्हे रोका पर उधर ध्यान न देकर, 'रूलिंग' की परवा न करके वह पन्द्रह मिनट तक बोलते ही रहे—"हा, मै नित्य रामायण महाभारत पढता हूँ। इससे मुझे बडा लाभ हुआ है। मैं भाई मोतीलाल जी को भी सलाह दूँगा कि वे भी ऐसा करें। इससे उनको भी लाभ होगा।" यदि मालवीय जी में विनोद—वृत्ति (सेंस ऑव् ह्यूमर) होती तो मोतीलाल जी का व्यग हँसी में उड गया होता। मोतीलाल जी जवाब देने को उठे। जवाहरलाल ने बहुत रोका पर हाथ छुडाकर मच पर आ गये,—विजय पर विजय पाने के लिए। बोले—"मैने तो समता सूचक एक उदाहरण भर दिया था। इसमें क्या अपराध हुआ? मेरे लिए तो मालवीय जी भाई—जैसे है। हम लोग सहपाठी रहे हैं,— लड़कपन में साथ खेले है। फरक इतना ही है कि मैं उनसे छः महीने बड़ा हूँ इसलिए बुद्धि में उतने अन्तर का तो हकदार मैं हूँ ही। यह स्वाभाविक है कि जो बात मुझे आज सूझती है वह उन्हें छः महीने बाद सूझे।"

यह उनकी अजेय निष्ठुर व्यग—कला का एक नमूना है। इसके भीतर अपनी इच्छा, अपने महत्व का अहकार है। दूसरों की उपमा का

उनकी कमी भान भी है। यही उनकी शक्ति का स्रोत था ...

बुद्धि से नहीं चलाया जा सकता। सिवाय घरेलू जीवन के सम्बन्ध के भावुकता उनमें कहीं दिखाई नहीं देती थी। सार्वजनिक जीवन में वह विशुद्ध बुद्धिवादी थे। इसीलिए महात्माजी का भारतीय हृदय पर जो अपूर्व अधिकार है, उसे वह न प्राप्त कर सके—यद्यपि बुद्धि की सीमता में यह महात्मा जी से कम न थे, अधिक भले ही रहे हों। जनता से वह प्रेम चाहते भी न थे, आदर चाहते थे। अधिकार और आदर उनकी चीज थी। लोग उनके सामने झुक जाते थे—जैसे अदब से मास्टर के सामने लड़के झुक जाते हैं।

साम्प्रदायिक पक्षपात हीन यक्तिवादी के रूप में

एक बात यह कि वह शुद्ध व्यक्तिवादी और शुद्ध राष्ट्रवादी थे। इन्द्रजी ने लिखा है—"मोतीलालजी जाति से हिन्दू, शिक्षण से मुसलमान और मन-वाणी एवं कर्म से हिन्दुस्थानी थे।" कुछ का कहना है कि वह हृदय से हिन्दू की अपेक्षा मुसलमान ही अधिक थे। पर असल बात यह है कि वह न हिन्दू थे, न मुसलमान। एक प्रसिद्ध लेखक के शब्दों में 'वह प्रकृति से ही हिंदू मुसलमान में भेद करने में असमर्थ थे। इसी लिए जाति के विषय में उदासीन थे।' ईसाइयों की बढ़ती उनके सामने कोई समस्या नहीं उपस्थित करती थी, मुसलमानों की उपस्थिति कोई पहेली सामने नहीं रखती थी। मलकानों की शुद्धि से वह आनन्द विभोर नहीं हुए—'यह तो समुद्र में एक बूँद के समान थी।' मोपलों के अत्याचार से यह घबड़ाये नहीं। उनका देश प्रेम विशुद्ध था क्योंकि वह विश्व प्रेम का एक अंग था। जब बड़े-बड़े नेता जातिगत झगड़ों में बह गये, वह सबके बीच एक चट्टान की भांति अटल एवं अविचल रहे। उनकी अपनी दुनिया में जातियाँ नहीं हैं—ये तो सुविधानुसार कार्य विभाग हैं। वही थे जो राष्ट्र की पताका के अभिवादन के समय कह सकते थे—"मैं न हिन्दू हूँ, न मुसलमान।" या हकीम अजमल खाँ के सम्बन्ध में यह कि—"हम दोनों का धर्म एक ही था।"

उनमें जातिवाद के प्रति कभी जरा भी झुकाव न पैदा हुआ। लाला लाजपतराय—जैसे नेता, जिन्होंने उस समय राष्ट्रीयता की आवाज बुलन्द की थी जब बहुत थोड़े लोग उनके साथ खड़े हो सकते थे, जाति-गत झगड़ों के प्रवाह में बह गये, न केवल बह गये वरन् न बहनेवालों को, इस प्रश्न पर नीचा दिखाने के प्रत्येक अवसर का भी उपयोग किया तब भी मोतीलालजी अपने स्थान पर अटल रहे। वे दिन कितने दुःखद थे और उनकी स्मृतियाँ कितनी दुःखद हैं जब हम लाला लाजपतराय को प० मोतीलाल से यह पूछते हुए देखते हैं—"क्या आप वेदों में विश्वास रखते हैं?" देश प्रेम के बीच वेद को खींच लाकर राजनीति को कीचड़मय बनाने का यह कैसा भद्दा यत्न था। पर मोतीलाल को पराजित करना खेल न था। उन्होंने, अपने ढंग से उत्तर दिया—"वेदों के मूल में जो सिद्धान्त हैं उनमें मैं विश्वास रखता हूँ।" इस उत्तर में उनका सारा दृष्टि-कोण है और इस उत्तर ने लालाजी के तर्क को उखाड़कर फेंक दिया।

इसी प्रकार एक बार एक प्रसिद्ध मौलाना ने पण्डितजी से कहा कि "आप 'रँगीला रसूल' तथा पैगम्बर मुहम्मद पर इस प्रकार के अन्य आक्रमणों की निन्दा करते हुए एक वक्तव्य निकालिए।" मोतीलालजी ने उत्तर दिया—"पैगम्बर यदि वस्तुतः पैगम्बर हैं तो उन्हें हमारी—आपकी या मेरी—सहायता की आवश्यकता नहीं है।"

× × ×

मुँहतोड़ जवाब

मिस्टर (पर कथित चुनाव के समय 'पण्डित') चिन्तामणि के एक उत्साही समर्थक ने एक बार मोतीलालजी से पूछा कि 'ब्राह्मण होते हुए भी आप मांस और अण्डे क्यों खाते [illegible]?" निर्वाचन का समय था और ये बातें पण्डितजी को हिन्दू जनता की निगाह में गिराने के ख़याल से उठाई जा रही थीं अन्यथा ये छिपी न थीं। मोतीलालजी बोले—"हाँ, मैं दोनों चीजें खाता हूँ। मेरे पिता भी दोनों चीजें खाते थे। मेरे दादा इनकी तरह-तरह की चीजें

चीजें तैयार कराते थे, मेरे परदादा इनमें रस—स्वाद लेते थे। विगत सात पीढ़ियों से हम लोग मांस और अण्डे खाते रहे हैं किन्तु जहाँतक मुझे पता है आपके नवोत्पन्न 'पण्डित' ने, जिनका समर्थन करने आप यहाँ पधारे हैं, इन्हें गवर्नमेण्ट हाउस की मेजों पर ही चखना शुरू किया है।"

उनके मुँहतोड़ जवाबों का यह एक नमूना है। इसमें पाखण्ड नहीं, तीव्र शस्त्र प्रहार है।

सार्वजनिक मामलों में वह बड़े ही कड़े अनुशासन के पक्षपाती थे। जब महात्मा जी के असहयोग आन्दोलन में पड़े तो पूरी तरह उनके अनुशासन को पालन किया। वह कहते थे—"जो इस आंदोलन का पिता और नेता है उसी का अनुगमन करो।" उन्होंने खुद कड़े अनुशासन का पालन किया था अतः स्वराजदल में, असेम्बली में उन्होंने बड़ी निष्ठुरता से अनुशासन का पालन कराया। इस मामले में वह अपने प्रिय से प्रिय व्यक्ति को क्षमा न करते थे। सच पूछें तो उनके जौहर तो असेम्बली में ही जाकर खुले। यहाँ उनकी शक्ति का पता लोगों को लगा। साधारण जनता पर अधिकार कर लेना उतना कठिन नहीं जितना अपने को नेता समझनेवालों को काबू में रखना है। गाँधी जी ने देश सेवकों में अनुशासन का जो भाव जगाया था, उसे वह असेम्बली में लाये। स्वराज-दल उनकी संघटन शक्ति, उनके अनुशासन और उनकी युद्ध-नीति का एक श्रेष्ठ नमूना था। वह वैध जगत् में, कांस्टिट्यूशन की दुनिया में, असहयोग का शंख-नाद था। इसके पहले भारत में ऐसा संगठित दल कभी दिखाई न पड़ा था।

कड़ा अनुशासन

निश्चय ही, उनके अनुशासन की पद्धति बड़ी निष्ठुर थी। महात्माजी के अनुशासन के साथ उनके हृदय की विशालता लगी रहती है। वह शत्रु के साथ मित्र की तरह व्यवहार करते हैं पर मोतीलाल जी के पास, अनुशासन के मामले में, अपने से मत भेद रखनेवाले के लिए, चाहे वह कितना ही बड़ा हो, केवल उपेक्षा थी। अपनी युद्ध नीति

में वह कुछ सुनते न थे—कुछ हस्तक्षेप न सहन कर सकते थे। जो राह में आया, उसकी योग्यता—बड़प्पन कुछ न देखकर उसे दूध की मक्खी की तरह निकाल बाहर किया। विरोधी श्री निवास ऐयंगर को राजनीति से उखाड़ फेंकनेवाले वही थे,—गो ऐसा करके उन्होंने भारत का कम नुकसान नहीं किया, एक मूल्यवान सेवक खो दिया। पर इससे क्या? उनकी दृष्टि से रास्ता साफ हो गया। विट्ठल भाई—जैसे चाणक्य को उन्होंने असेम्बली के अध्यक्ष पद पर बिठाकर अपने नेतृत्व का मार्ग साफ किया। जिन रंगा ऐयर को बच्चे की तरह मानते थे, उन्हें अलग करके छोड़ा। अपने क्षेत्र में वह एक ही रह सकते थे,—एक म्यान में दो तलवारें नहीं। कोई राजा गद्दी पर अपने साथ दूसरे को भी राजा के रूप में नहीं बैठने दे सकता, चाहे वह कितना ही उदार हो। वह इतना तो कर सकता है कि खुद गद्दी छोड़ दे और दूसरे को उस पर बैठा दे।

पर इसमें मोतीलालजी का दोष नहीं, यह उनकी पद्धति का दोष है। वह जानते थे कि मेरी उपेक्षा से विरोधियों की संख्या बढ़ती है पर इसकी वह परवा न करते थे, न कर सकते थे। वह काठ के समान दृढ़ थे, झुक न सकते थे। यह उनकी राजसिक अहम्मन्यता थी। पर यह अहम्मन्यता व्यर्थ न थी, उनके लिए इसका कुछ अर्थ था, कुछ उद्देश्य था। वह एक शक्तिमान एवं युद्ध-कला निपुण पुरुष के हाथ में एक अस्त्र की भाँति थी। विरोधी पर, शत्रु पर प्रहार करने में उन्हें मजा आता था। इस सम्बन्ध में वह मध्ययुग के वीर राजपूत की याद दिलाते थे। मुँहतोड़ जवाब देने का,—शत्रु को पराजित देखने का प्रलोभन उनके लिए असह्य था। शायद ही किसी दूसरे भारतीय राजनीतिज्ञ ने उनसे कड़ुवे और तीखे व्यंग किये हों। उनके व्यंग कहावत हो गये हैं। वल्लभभाई में जरूर, एक सीमा तक, यह बात है पर उनमें—उनके व्यंगों में उतनी सफाई और गहराई नहीं है। सफल वकालत ने इसमें उन्हें अभ्यस्त कर दिया था। इतने पर भी यह उनकी

दोष किस जगह है?

शक्ति और योग्यता का उदाहरण है कि महात्माजी के बाद उनके सहकारियों में सब से अधिक छोटे मोटे नेता एवं प्रख्यात व्यक्ति थे ।

स्वराज्य-दल में उनका प्रतिबिम्ब

मोतीलालजी की सचाई—'सिंसियारिटी'—विशुद्ध बौद्धिक सचाई थी। वह प्रत्येक कार्य को बुद्धि की कसौटी पर कसते थे। अनुभव के साथ उनका मत भी बदलता था। उनकी वेधक—पैनी दृष्टि किसी बात की गहराई—मूल तक पहुँचती थी। उम्र का उसपर कोई असर नहीं—रीति रिवाजों का कोई रंग नहीं। कई बार उन्होंने अपने मत में परिवर्तन किया पर मनोदिशा—मनोरचना नहीं बदली, वह ज्यों की त्यों रही। स्वराज्यवाद (स्वराजिज्म) उनके लिए लक्ष्य (क्रीड) नहीं, मनोरचना का एक विशेष प्रकार मात्र था। वह सम्प्रदाय नहीं, राजनीति के क्षेत्र में राजनीति-कुशल योद्धा के आत्म सम्मान का प्रदर्शन था। यह विरोध की एक 'फिलासफी' थी। अपने उत्तम रूप में वह स्पष्ट युद्ध की तैयारी थी और साधारण रूप में शिथिल एवं दुर्बल हृदय राजनीतिज्ञों को गड्ढे में गिरने से रोक थी। वह उन्हें उस स्थान पर जाने से रोकता था जहाँ वह लाभ तो कुछ पहुँचा नहीं सकते थे पर हानि अवश्य पहुँचा सकते थे। स्वराजदल से रहित असेम्बली को देखिए—कैसी बेजान, कोरी बहस तथा जातिगत चालबाजियों का अखाड़ा है। मोतीलालजी ने उसे एक जीवन दे दिया था। वह जीवन उनका अपना जीवन था। जब वह उठते थे तो चारों ओर शान्ति छा जाती थी—जैसे मास्टर के आते ही दर्जे के विद्यार्थी शान्त हो जाते हैं।

इसके दो कारण थे। उनका प्रभावशाली व्यक्तित्व और उनकी शान्त प्रकृति। मौन का, चुप रहने का प्रभाव वह जानते थे। नीरवता शक्ति का चिन्ह है। चतुराई के साथ उपयोग करने पर वह शक्तिमान रक्षास्त्र का काम देती है। वह बहुत कम बोलते, इसलिए जब बोलते तो उनके भाषण की संक्षिप्तता सब को अपनी ओर खींच लेती। व्यर्थ बातों की चर्चा

छोड़ देने और केवल जरूरी बात को प्रभावशाली ढंग से कहने के वह आचार्य थे। प्रत्येक शब्द नपा तुला होता था,—अपनी जगह पर फिट, दुरुस्त। जो बात कहना चाहते थे, शब्द उसी की ओर दौड़ते थे। सबका सारा ध्यान एक बात की ओर खींचने की कला में कोई उनका मुकाबला न कर सकता था। वहाँ कहीं भाव प्रवणता नहीं, काव्य नहीं, भावुकता को उभाड़नेवाली 'अपील' नहीं, एक ऐसे महान् मेधावी पुरुष की अजस्र तर्कना मात्र है जो प्राप्त साधनों का बड़ी शान्ति, बेतकल्लुफी और आत्म विश्वास के साथ उपयोग करता है। उनमें दयानन्द का नैसर्गिक प्रवाह नहीं था, न बड़ी बड़ी सभाओं को उच्च भावना से भर देने की शक्ति उनमें थी किन्तु इतने पर भी अपने समय में वह सम्पूर्ण देश में, राजनीतिक क्षेत्र में, सब से महान् एवं शक्तिशाली बुद्धि के पुरुष थे।

दूसरे उनमें विश्वास रखते थे क्योंकि उनका अपने अन्दर विश्वास था,—क्योंकि वह पूर्णतः निर्भीक और सच्चे थे। उनमें बिना किसी हिचकिचाहट के 'नहीं' कहने की शक्ति थी। यदि वह यह कह देते कि "देखूँगा पर प्रतिज्ञा नहीं करता" तो समझो कि वह स्वीकृति दे रहे हैं,—काम हो जायगा। उनका 'हाँ' दूसरों के कसम खाने—प्रतिज्ञा करने के समान था। उनके दृढ़ जबड़ों को देखकर ही कहा जा सकता था कि यह आदमी झुकनेवाला नहीं है,—कभी झुका नहीं। वह तूफान में चट्टान की भाँति दृढ़ एवं स्थिर थे।

यदि जीते रहते तो वह भारत के मुख्तार बने होते—[illegible] तो हो ही नहीं सकते थे। यह सब की राय थी कि कांग्रेसवादियों में स्वतन्त्र देश के प्रधानमन्त्री होने के वह सब से अधिक योग्य थे।

—सात—

कुछ संस्मरण

पण्डितजी को पहली बार मैंने १९२० या २१ में बनारस में देखा। हिन्दू विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों ने असहयोग में कालेज छोड़ने के लिए एक समिति बनाई थी। उस समिति का काम था कि नेताओं को बुलाकर विद्यार्थियों में उनका व्याख्यान करावे तथा विद्यार्थियों से कालेज छोड़ने के लिए प्रतिज्ञा पत्र भरावे। उन दिनों कालेज में बड़ी चहल-पहल रहती थी। देश के अनेक नेता वहाँ आकर व्याख्यान दे चुके थे। मोतीलालजी भी आये थे। उनका व्यक्तित्व, उनके व्यंग की शैली सब से अलग थी। कुछ ही दिन बाद महात्मा जी के साथ, दौरे के सिलसिले में, वह फिर बनारस आये। मौलाना अबुल कलाम आजाद भी साथ थे। सम्भव है और भी छोटे-मोटे नेता रहे हों पर मुझे उनकी याद नहीं है।

हम लोगों ने एक पुस्तकालय एवं वाचनालय खोल रक्खा था। कुछ अपनी, कुछ अन्य मित्रों की पुस्तकें एकत्र कीं। कुछ हिन्दी के प्रकाशकों एव लेखकों से मुफ्त, पोस्टेज खर्च देकर, या आधे दाम पर लीं। कुछ गरीबी में कभी-कभी, अनियमित रूप से जलपान इत्यादि के लिए मिले पैसों में से काट-कपट कर खरीदीं। अखबार भी कई मिल गये थे। यह मेरा जीवन में सब से पहला सार्वजनिक काम था। कई लोगों ने 'विजिटर बुक' में उसकी व्यवस्था पर अच्छी राय दी थी। उस समय उस छोटी चीज के लिए भी बड़ा आग्रह था—बड़ी ममता थी। मैंने सोचा यदि महात्मा जी एक बार पधार कर देख लें और कुछ लिख दें तो यह रूप निखरेगा। यह भी चाँद को आकाश छूना था। आज सोचता हूँ तो अपनी हिमाकत पर हँसी आती है। न हमारे पास बैठने के लिए कुर्सियाँ थीं, न मेज। एक पुरानी कुर्सी और एक हिलती मेज

गुदड़ी मे खरीदी थी। जहा पुस्तकालय था वहाँ कोई सवारी मुश्किल से ही आ सकती थी। किन्तु किशोरावस्था में इतने तर्क-वितर्क कहाँ सूझते हैं। मैं अपने एक मित्र को लेकर मिलने गया। सिगरा पर—थियासफिकल सोसाइटी के पास ही ये लोग टिके हुए थे। भीतर पहुँचे तो वहाँ बीसों आदमी महात्मा जी को घेरे हुए थे। बाहर बरामदे में मौ० अबुलकलाम 'गीता रहस्य' पढ़ रहे थे। और मोतीलालजी, कुछ दूर पर पलंग पर लेटे हुए इन सब दृश्यों को विनोद पूर्ण निगाह से देख रहे थे, जैसे कोई अनुभवी दर्शक नाटक देख रहा हो। मैं महात्मा जी के कमरे में जाकर बैठ गया। उन दिनों इतना सकोची था कि बोली बहुत कम निकलती थी। तरह-तरह के लोग जमा थे। कोई राष्ट्रीय पाठशाला दिखाने ले जा रहा था, कोई बनारसी कारीगरी से उन्हें परिचित कराना चाहता था। धनी लोग अपने घर पधारने का निमन्त्रण दे रहे थे और इसी में अपनी कृतार्थता मानते थे। महात्मा जी के पास समय कम था अत वह कई जरूरी कार्य क्रमों को छोड़ रहे थे, लोगों को जवाब दे रहे थे। मेरा खयाल है कि उनके सेक्रेटरी इस कार्य में उनमे कहीं अधिक चतुर और निष्ठुर थे। यह सब दृश्य देख तो मेरे मसूबों पर पानी पड़ गया। मैंने देखा कि कहना व्यर्थ है। कुछ देर बैठकर, थोड़ी बात चीत करके, बाहर आ गया। बाहर मोतीलालजी के समीप गया। उनका व्यक्तित्व आकर्षित करता था। वहाँ बैठ गया। इतने में मोतीलालजी ने नौकर से इलायत का सामान लाने की आज्ञा दी। सब सामान के साथ एक बहुत सुन्दर और कीमती चीनी के प्याले में वह पानी लाया। पानी शायद साफ न था। यह उनके लिए असह्य था। गुस्से से उठ कर प्याले को फेंक दिया। वह चूर चूर हो गया। शान्त एव अच्छे 'मूड' में होने पर मैंने पण्डितजी से कहा कि प्याला तो व्यर्थ ही फूटा। वह हँसकर बोले—"अरे बेटा, तुम लोग अब मुझे इतना

हागा!"

उनके इस वाक्य में कुछ ही दिनों पहले का जो

हाने मेरे सामने उनकी एक राजकीय मूर्ति खडी कर दी। जब-जब मुझे उनकी याद आती है, यह घटना भी साथ ही स्मृति पट पर प्रकाशित हो उठती है।

उसके बाद तो उन्हें कई बार देखा। सरूप कुमारी (अब श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डित) के ब्याह के समय मैंने इस शुष्क—ठोस आदमी में पहली बार पिता का वह प्रेमपूर्ण हृदय देखा जो उसके जीवन की एक विशेषता थी। कन्यादान के समय उनकी आँखें डबडबा आई थीं। दरअसल वह अपनी सन्तान को बहुत प्रेम करते थे। जवाहरलाल और, लड़कियों में, कृष्णा को बहुत मानते थे। पीछे जवाहरलाल की इन्दु को बहुत मानने लगे थे। अपनी उच्चकोटि की गृहस्थी को वह अपने प्रेम से बाँधे हुए थे। सार्वजनिक जीवन में उनकी यह भावप्रवणता कहीं दिखाई न पडती थी पर घरेलू जीवन में उनका हृदय प्रेम से पूर्ण था। जवाहरलाल तो उनके कलेजे के टुकडे थे। उनको कष्ट झेलते देखने तो पुरानी स्मृतियाँ आ जाता। उन्हें तीसरे दर्जे में सफर करते देख कई बार गाधीजी तक उलाहना पहुँचाया। गाधीजी की तथा उनकी प्रवृत्तियों में विषमता होते हुए भी गाँधीजी का नेहरू—कुटुम्ब से घरौआ हो गया था और अबतक वैसा ही बना है।

× × ×

पण्डितजी अपनी बात के बडे कट्टर थे। इस बात में वह महात्माजी से भी बढे चढे थे। उनमें स्वीकारोक्ति ब्राह्मण की स्वीकारोक्ति नहीं, क्षत्रिय की प्रतिज्ञा होती थी। इस सम्बन्ध में एक घटना का जिक्र किया जा सकता है। सन् १९२७ में मुकदमे के सिलसिले में लदन गये थे। उस समय अनेक प्रभावशाली अंग्रेजों ने बीच में पडकर यह चेष्टा की कि पण्डितजी और सर जान साइमन की एक व्यक्तिगत मुलाकात हो जाय। पर पण्डितजी ने 'साइमन कमीशन के अध्यक्ष' से मिलने के इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। कई भारतीय मित्र भी नाराज हो गये।

१०

पर यह जानते थे कि इस तरह की मुलाकात का भी विरोधी राजनीति उपयोग कर सकते हैं। महात्माजी होते तो अवश्य मिलते। वह किस विरोधी से मिलने का सबसे पहले ध्यान रखते हैं पर मोतीलाल इसे अपनी शान के खिलाफ समझते थे। इसका यह मतलब नहीं कि वह विरोधी की योग्यता की कद्र नहीं करते थे। अपने एक प्रसिद्ध मुकद्दमें, जो प्रिवी कौंसिल में गया हुआ था, उन्होंने सर जान साइमन को बैरिस्टर रखने के लिए लन्दन के एक सालिसिटर को तार दिया था।

× × ×

यद्यपि वह राजसिक वैभव उन्होंने त्याग दिया था, उनकी रईसाना तबीयत असहयोग-काल में भी वैसी ही थी। खादी के अन्दर भी उनका वही शाहाना दिल छिपा था। १९२७ ई० की, लन्दन की, घटना है। पण्डित जी वहाँ थे। कुछ उत्साही लोगों ने एक सभा की, उसमें उनका व्याख्यान होनेवाला था। इस सभा में पार्लमेण्ट के कितने ही सदस्य और अनेक प्रभावशाली अंग्रेज उपस्थित थे। पण्डितजी की तबीयत भी ठीक न थी। ठंड में दमे की शिकायत बढ़ गई थी किन्तु खराब मौसिम और खराब स्वास्थ्य के होते हुए भी वह एक तांगे (Cab) में बैठकर सभास्थल (एसेक्सहाल) में गये। नियमानुसार, गाड़ीवान को किराया सवारी देने लगे पर वह राजी न हुए। " नहीं, नहीं मैं देता हूँ— " कहकर एक पौण्ड का नोट गाड़ीवान के हाथ में दे दिया और उसको किराया काटकर रुपया लौटाने या धन्यवाद का मौका दिये बिना ही वह हाल में घुस गये। गाड़ीवान उनकी दरियादिली पर आश्चर्य करता रह गया।

× × ×

उनका व्यक्तित्व ऐसा था कि छोटा-बड़ा कोई भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता था। लन्दन के होटल सेसिल में एक भारतीय भोज का प्रबन्ध किया गया। मोतीलालजी और महाराज गायकवाड़ दोनों माननीय अतिथि थे। दोनों के नाम कार्ड में एक साथ ही दिये गये थे। उनके

गत-सत्कार किया गया। पण्डितजी ने एक संक्षिप्त भाषण में धन्यवाद
या। उनके बाद महाराज गायकवाड बोले—"महान् स्वराजी नेता के
थ अपना नाम दिये जाने को मैं अपना सौभाग्य मानता हूँ।" यह
के व्यक्तित्व तथा प्रभाव का नमूना है।

× × ×

उनके व्यक्तित्व के प्रभाव के विषय में एक सज्जन ने लिखा था—

यदि किसी ऐसे आदमी से, जो पहली बार दर्शकों की गैलरी में
या हो, यह प्रश्न पूछा जाता कि 'भारतीय व्यवस्थापक-सभा का सब
शक्तिमान, सब से भयकारी और राजनीति-कुशल सदस्य कौन है'
बिजली की शीघ्रता से उसके मुँह से शब्द निकलते—"पं० मोतीलाल
हरू।" और कोई इसे गलत कहने—काटने की हिम्मत न कर सकता।
ब अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व के साथ वह असेम्बली हाल में प्रवेश
रते, तो ऐसा जान पड़ता कि किसी विजयिनी सत्ता के आ जाने से सब
दस्य दब-से गये हैं। उस समय सरकारी अधिकारी और सदस्य एक
सरे की ओर ताकने लगते और अपनी फाइलों एवं कागजों को गौर से
खने लगते। गैर सरकारी निर्वाचित सदस्यों की दृष्टि भारतीय राज
ीति के इस पुतले की ओर खिंच जाती। वह मनुष्यों एवं परिस्थितियों
र काबू रखनेवाले पैदायशी 'अरिस्टोक्रैट' थे। उत्तर भारतीय ढंग से
कीमती सिल्क के धवल वस्त्रों से सज्जित, चमकदार काश्मीरी शाल बाहों
के नीचे से लिपटा हुआ, देशप्रेम के प्रकाश से चमकती आँखें, दृढ़ता
की सूचना देनेवाली ठुड्डी, कभी न झुकनेवाले स्वभाव के सूचक भली
भाँति मिले हुए ओठ, इन सबको वश में रखनेवाला चौड़ा ललाट और
सबके ऊपर राजनीतिक प्रतिभा, क्षमता एवं कुशलता का भाण्डार तथा
बहुरंगी अनुभवों का अन्नागार, सारे शरीर पर शासन करनेवाला, उनका
मस्तक। पण्डित जी—असेम्बली के नेता—ऐसे थे। × ×, × भारतीय
राजनीति के क्षेत्र में उनका स्थान अप्रतिम है। वह भारतीय राजनीति

के 'पिरामिड' के सर्वोच्च शिखर थे। उन्हीं के बारे में यह कहा जा सक है कि वह—'आँधी पर सवार होकर उसका इच्छानुसार सचाल करते थे।'

× × ×

उनकी अन्तिम बीमारी के समय कार्यकारिणी की बैठक हुई थी उसमें सभी जमा हुए थे पर मोतीलालजी के बिना सब सूना लग था। एक लेखक (Alcibiades) ने 'सिंध आबजर्वर' में उस स का बड़ा ही अच्छा वर्णन किया था—

"× × भीतर जाने पर मैंने देखा कि बड़े-बड़े काग्रेसी नेता झु रूप के बाहर वाले बरामदे में खड़े हैं। श्रीमती नायडू बहुत दुबली हो ग फिर भी सदा की तरह प्रसन्न हैं, बहुत धीरे धीरे मौलाना अबुलकलाम बात कर रही हैं। पेरिन केप्टन डा० जीवराज मेहता से चर्चा कर रहे हैं। जवाहरलाल, थके और चिन्ता ग्रस्त, कभी-कभी मातालाल कमरे से बाहर निकलकर आते हैं और अपनी बहन को दो-एक सूचना फिर चले जाते हैं। सेनगुप्त अपने असल धवल खद्दर एवं 'पिंस नेज' से सुसज्जित, मुस्कराते हुए श्रीमती नायडू के पास आते हैं पर क्षण-भ ही, शायद बीमारी के सम्बन्ध में अन्तिम सूचना पाकर, उनकी मु गभीर हो जाती है। नेहरू परिवार की महिलाएँ शान्तिपूर्वक कार्य इधर उधर आ जा रही हैं। महात्मा जी अपने ऊपर के कमरे में हैं।

"एक बजा। सब लोग स्वराज भवन की ओर चले, जो आनन्द भ से लगा हुआ है। अन्दर ही अन्दर रास्ता जाता है। यहाँ सब इ हुए। राजगोपालाचार्य—जो पादरी या कार्डिनल आचार्य के नाम से भ मशहूर हैं—से बातें करते हुए मुद्रा में गभीर पर अट्टहास करने सदा प्रस्तुत सरदार वल्लभ भाई, सब से बड़ी सरगर्मी से हाथ मि वाले देसाई, शार्दूल सिंह से गले मिलते हुए जयरामदास, एवं चिन्ता के गट्ठर से दबे जा रहे डा० सत्यपाल, कांग्रेस सेक्रेटरि

ात्रि—कार्यालय) बहुत कार्य-व्यस्त है सब को यह अनुभव कराने डा० महमूद, ऊँचाई में सब के शरीर को मात करनेवाले शेरवानी, ते मुखड़े से प्रत्येक का स्वागत करनेवाले तथा किसी जटिल प्रश्न पर द बाबू से तर्क करते हुए आसफअली, दम घोटक आलिंगन का द चलानेवाले शिवप्रसाद गुप्त तथा प्रसन्नमुख के० एम० मुंशी ी यहाँ जमा है।

"पर सब के ऊपर विषाद की एक छाया है। आनन्द भवन के एक रे में राजनीति और समाज का एक अद्‌भुत व्यक्ति—एक शाहाना दमी, जिसके रुख पर बहुत कुछ इधर उधर हो जाता है—चारपाई पड़ा है।

"सैकड़ो युद्धो के योद्धा और हजारो मचो के वक्ता, उन विशेष जनीतिवेत्ता की आवाज, जो सदा हास्य या व्यंग से भरी रहती थी, ाज सुनाई नहीं देती थी। उसके बिना सब सूना और विषादमय हो ा है।"

× × ×

मृत्यु के पूर्व डा० सत्यपाल ने 'ट्रिब्यून' में लिखा था—

"× × × पण्डितजी बड़ी गहरी बीमारी के पंजे में पड़े हुए —वस्तुत वह मृत्यु से युद्ध कर रहे हैं। वह अत्यधिक दृढ़ता और ढ़ इच्छा शक्ति के पुरुष हैं और वही हैं जो जीवन-मृत्यु के इस युद्ध ी भी अपने को स्थिर रख सकते हैं। जब हम उनके कमरे में गये तो भारतीय राष्ट्रीयता के इस शेर को एक आराम-कुर्सी पर लेटे पाया। उनका चेहरा आशा से चमक रहा था—यद्यपि शरीर दमे से घुन गया था। सत्याग्रह—आन्दोलन के समय निरन्तर कार्य में लगे रहने तथा जेल जाने से बीमारी बढ़ गई किन्तु अब भी दिल में वही दृढ़ता है। उन्होंने कहा—"मैं रोग से लड़ूँगा, भाग्य से लड़ूँगा, मैं मृत्यु से लड़ूँगा और सब के बाद गुलामी के राक्षस से लड़ूँगा।" फिर बोले—"यदि

मरना ही हो तो मुझे स्वतन्त्र भारत की गोद में मरने दो। मुझे नींद गुलाम देश मे नहीं, स्वतन्त्र देश मे लेने दो।" और जब उन्हो कहा—"भारत के भाग्य का निर्णय स्वराज भवन में करो, मेरी उपस्थि में करो और अपनी मातृभूमि के भाग्य के अन्तिम सम्मानपूर्ण निर्ण मुझे भाग लेने दो,"—तो हम लोगो को रोना आ गया।

× × ×

महात्माजी एक सन्त और महापुरुष हे, मोतीलालजी राष्ट्रनिर्मा असाधारण व्यक्ति ओर असाधारण राजनीतिज्ञ थे। उन्होंने हमारा बहुत सुगम कर दिया ओर भारतीय राजनीति की एक परम्परा दी। उनकी समाधि से आवाज आती हे—

दुआएँ दें मेरे बाद आनेवाले मेरी वहशत को,
बहुत कांटे निकल आये मेरे हमराह मंजिल से।

जीवन-तालिका

८६१ ६ मई	दिल्ली में जन्म।
	बारह वर्ष की उम्र तक घर पर तथा इस्लामी मक्तब में शिक्षा मिली।
१८७२	गवर्नमेण्ट हाईस्कूल कानपुर मे प्रवेश।
१८७९	प्रथम श्रेणी मे इण्ट्रेंस परीक्षा पास।
	प्रयाग के म्योर सेण्ट्रल कालेज में प्रवेश। बी० ए० तक पढ़ा पर बीमारी के कारण परीक्षा मे न बैठ।
१८८२ ८३	सिर्फ तीन महीने मे हाईकोर्ट के वकालत की परीक्षा सर्वप्रथम पास की।
१८८३	कानपुर में वकालत शुरू की।
१८८६	प्रयाग आये और हाईकोर्ट में वकालत शुरू की।
१८८८	राष्ट्रीय महासभा के चौथे अधिवेशन (प्रयाग) में सम्मिलित हुए। तब से प्राय सम्मिलित होते रहे।
१८९२	राष्ट्रीय महासभा के (प्रयाग) अधिवेशन की स्वागत समिति के एक पदाधिकारी थे।
१८९६	एडवोकेट चुने गये।
१९०३	जवाहरलाल के साथ बम्बई अधिवेशन म सम्मिलित हुए।
१९०४	सपरिवार इंग्लैण्ड-यात्रा।
१९०६	इंग्लैण्ड से लौटकर कलकत्ता काग्रेस मे शामिल हुए। इनके एव मालवीयजी के ज्यादा जोर देने से नरमदल की हार होते होते बची।

१९०७		युक्त प्रांतीय कान्फ्रेंस के प्रथम अधिवे (प्रयाग) के अध्यक्ष ।
१९०९		'लीडर' निकाला । मार्ले मिण्टो सुधार जारी होने पर कौंसि के सदस्य हुए ।
१९०९ १९		१९०९ से १९१९ तक बराबर भारत कांग्रेस-कमिटी के प्रमुख सदस्यों में र। पटेल-बिल कमेटी तथा सामाजिक सम्मे के अध्यक्ष ।
१९१३		प्रान्तीय कान्फ्रेंस (लखनऊ) के सभापति।
१९१४ १७		प्रयाग म्युनिसपल बोर्ड के सदस्य र। इण्डियन डिफेंस फोर्स का संगठन कि। सरकार की सहायता की ।
१९१७		प्रान्तीय सम्मेलन के विशेष अधिवेशन के सभापति ।
१९१८	५ फरवरी	वसंत पंचमी के दिन 'इण्डिपेण्डेन्ट' प का जन्म ।
१९१८	१३ अगस्त	कौंसिल में, मंत्रि मण्डल की पाश्चात्य प्र- तंत्र प्रणाली जारी करने का प्रस्ताव कि। दिल्ली कांग्रेस के सभापति चुने गए प अस्वस्थ होने के कारण अस्वीकार कर दि। पंजाब हत्याकाण्ड की जाँच के लिए नियु कांग्रेस उपसमिति के अध्यक्ष ।
१९१९	दिसम्बर	अमृतसर कांग्रेस के अध्यक्ष हुए ।
१९२०	सितम्बर	कलकत्ता (विशेष) कांग्रेस में असहयो कार्यक्रम का विरोध ।

	दिसम्बर	नागपुर काग्रेस में असहयोग का समर्थन।
१९२१	२५ नवम्बर	काग्रेस, स्वय-सेवकदल गैर कानूनी घोषित किया गया।
	६ दिसम्बर	गैरकानूनी सस्था का सदस्य होने के कारण गिरफ्तारी।
१९२२		असहयोग आन्दोलन स्थगित।
	७ जून	लखनऊ में काग्रेस कार्यकारिणी की बैठक। मोतीलालजी की अध्यक्षता म सत्याग्रह जाँच-समिति की नियुक्ति।
	दिसम्बर	सत्याग्रह-जाँच समिति की रिपोर्ट निकली। इसम बताया गया कि देश की स्थिति सत्याग्रह के अनुकूल नहीं है।
	दिसम्बर	देश-बधु के सहयोग से स्वराज दल की स्थापना।
१९२३		बडी कौंसिल के लिए निर्विरोध निर्वाचित। असेम्बली में स्वराजदल का नेतृत्व उसका सगठन।
१९२७		ललनाराज के मुकदमे के सम्बध म इग्लैण्ड गये।
		रूस सरकार के निमत्रण पर रूस गये।
	८ नवम्बर	साइमन कमीशन की नियुक्ति की घोषणा।
	दिसम्बर	मद्रास काग्रेस में साइमन कमीशन के बहिष्कार का निश्चय। शासन विधान का एक मसविदा तैयार करने तथा सर्वदल सम्मेलन की बैठक दिल्ली में बुलाकर उसमे रिपोर्ट पेश करने का, कार्यकारिणी को आदेश।

१९२८	१२ फरवरी से २८ फरवरी तक	सर्वदल सम्मेलन की पहला बैठक दिल्ली म हुइ। मइ में दूसरी बैठक बम्बई में हुई। यहाँ मोतीलालजी की अध्यक्षता म एक कमेटी बनाई गइ। इसी कमेटी की रिपोर्ट 'नेहरू रिपोर्ट' के नाम से विख्यात है।
	मइ	
	अगस्त	लखनऊ में सर्वदल सम्मेलन का अधिवेशन हुआ और नेहरू रिपोर्ट, मुसलमानों तथा स्वतंत्रता-वादियों के विरोध के बाद भी, स्वीकृत हुइ।
	दिसम्बर	कलकत्ता-कांग्रेस की अध्यक्षता। अभूतपूर्व स्वागत।
१९३०	१४ अप्रैल	राष्ट्रपति जवाहरलाल की गिरफ्तारी के बाद स्थानापन्न राष्ट्रपति हुए। कांग्रेस कार्यकारिणी गैरकानूनी घोषित की गई। मोतीलालजी की गिरफ्तारी। छ महीने की सजा। जेल में ही सन्धि की बातचीत।
	८ सितम्बर	स्वास्थ्य बहुत खराब हो जाने के कारण रिहाइ। मसूरी गये। स्वास्थ्य खराब ही होता गया।
१९३१	२६ जनवरी	वायसराय की घोषणा क अनुसार कांग्रेस कार्यकारिणी के सब सदस्य छोड़ दिये गये।
	४ फरवरी	एक्स-रे परीक्षा के लिए लखनऊ ले आया गया।
	६ फरवरी	प्रातःकाल ६ बज कर ४० मिनट पर देहावसान।



महामना मदनमोहन मालवीय

मदनमोहन मालवीय

[महामना]

जन्म

२५ दिसम्बर १८६१ ई०

"Pt Malviya is nothing but heart from head to foot

C Y CHINTAMANI

"Like the peak of Kailas he stands, with his seventy winters, a towering spectacle clothed in the effulgence of a mass of white like the primaeval lotus which nothing can sully, a beacon of hope often, a portent never

V N MEHTA

"Next to Mahatma Gandhi it is difficult to find another man who has undergone so much sacrifice and has given such proofs of many sided activities

P C RAY

'To day among India's public men Pt Malviya's place is second only to that of Mahatma Gandhi, and he is the only man fit to be bracketed with the sage of Sabarmati

C Y CHINTAMANI

"मालवीय जी सिर स पेर तक हृदय ही हृदय है ।'

—चिन्तामणि।

"कैलाश के धवल शृंग की नाई, वह अपने सत्तर हेमन्तों को लिये हुए, उज्ज्वल धवल वस्त्रों से अच्छादित, एक महान् एव उच्च दृश्य के रूप में, खड़े हैं। सृष्टि के उस आदि-कमल की भाँति, जिसे कोई वस्तु मुरझा नहीं सकती, प्राय आशा के ज्योति पुज के रूप में उनके दर्शन होते हैं, निराशा या अपशकुन के रूप म कभी नहीं।'

—विनायक मेहता।

"महात्मा गाँधी के बाद, दूसरे किसी आदमी की खोज करना कठिन है जिसने इतने त्याग किये हों और नानाविध कार्यों के ऐसे प्रमाण उपस्थित किये हों।"

—पी० सी० राय।

"आज, भारत के जन सेवकों म मालवीय जी का स्थान केवल महात्मा गाँधी जी से दूसर नम्बर पर है और वही एक-मात्र व्यक्ति है जो साबरमती के सत के साथ खड़े किये जा सकते हैं।"

—चिन्तामणि

"Wearing the white robe of blameless life, dressed all in surplice he seems to stand in conscious rebuke of a wicked word ... In the midst of so much that is transient here stands a figure hinting at the permanence of things. With his turban sitting on his head without ever a suspicion of a sporting angle he takes the mind trippingly through the centuries, linking us with a past which fades into the twilight of SATYUGA. Plain living and as much high thinking as his Brahmanism will allow him, no alcohol, no tobacco, no meat, no beds of down, no weak concession to the flesh a glorious reminiscence of the days of Ramchandra"

—Al Kafir

—एक—

प्रथम दर्शन !

ऊपर से नीचे तक स्वच्छ धवल वस्त्रों से सज्जित, सिर पर वही पेटेण्ट साफा, ब्राह्मण का विनम्र पर प्राचीनता से दबा हुआ रूढि प्रेमी मुख, ललाट पर चन्दन की सुन्दर बिन्दी, एकहरा बदन, जैसे प्राचीन युग का कोई सात्त्विक ब्राह्मण, युग युग मे सचित हिंदू सस्कृति के गुण दोष दोनों का बोझ लिये हुए, सामने आकर खड़ा हो गया हो ! इसी रूप में पहली बार मालवीय जी को १९१७ या १९१८ मे देखा था। तब से

उन्हें उसी ब्राह्मण रूप में अनेक बार देखा है—अनेक बार उन्हें बोलते सुना है। सदा उनका वही रूप, वही ढंग रहता है।

इस महान् ब्राह्मण को देखते ही श्रद्धा होती है। उसमें कुछ ऐसी बात है कि मत भेद होते हुए भी आदमी का हृदय झुक जाता है। जैसे बिजली और और आधुनिक युग के महायंत्रों से भरे हुए मुहल्ले के बीच एक बुढ़िया को हाथ से चक्की चलाते देख दर्शक उसके प्रबल आत्म विश्वास के सामने, ठहरकर इधर उधर देखने लगता है, उसकी आँखों में एक हसरत, आशा निराशा के छायाचित्रों के साथ भर जाती है, कुछ अटपटा पर असामान्य एवं शान्तिकर सा अनुभव होता है, वैसे ही वर्तमान युग की इस घोर गतिशीलता एवं झंझावात के झकोरों के बीच, जब किसी को प्राचीन को देखने परखने की फुरसत नहीं और सब अपने आग लगे हुए घर से निकल निकलकर नई बस्ती की ओर भाग रहे हैं, एक आदमी को आशापूर्वक हम अतीत के ईंट पत्थरों को संचित करते में लगा देखते हैं। हमारी दृष्टि रुक जाती है और वह आदमी हमें आकर्षित करता है। यही मालवीय जी हैं।

स्वभावतः भविष्य की अपेक्षा अतीत उनके लिए अधिक आकर्षक है। वह अतीत पर भविष्य की दीवार खड़ी करना चाहते हैं। सारी बुराई भलाई के साथ भी वह अपनी चीज है—उसके प्रति इस पवित्र ब्राह्मण के हृदय में अत्यधिक ममता है।

पर इन बातों की चर्चा, इनका निरूपण तो आगे करेंगे। पहले उसका जीवन कथा कह लें। इसमें पाठकों को वह नींव मिलेगी, जिसपर उसके जीवन की इमारत खड़ी है।

—दो—

जीवन कथा

जिस कुल में मालवीयजी का जन्म हुआ, वह पहले बुंदेलखण्ड में, झाँसी से थोडी दूर, एक गाँव में बसा था। वहीं से इनके पूर्वज प्रयाग

कुल

आये थे। इनके कुल में संस्कृत के अच्छे विद्वान एवं शास्त्रज्ञ पण्डित होते आये हैं। मालवीय जी के पिता मह प० प्रेमधर मालवीय अपने पाण्डित्य एवं विद्वत्ता के लिए प्रयाग में प्रसिद्ध थे। उनके पुत्र, मदनमोहनजी के पिता, प० व्रजनाथ जी अपनी विद्वत्ता, मृदुभाषिता एवं सुन्दर स्वभाव के कारण राजा महाराजाओं में भी आदृत हुए थे। पण्डित जी श्रीमद्भागवत् की कथा तथा अन्य पुराण ऐसी उत्तम एवं मधुर रीति से बाँचते थे कि श्रोता मुग्ध एवं विह्वल हो जाते थे। इनकी विद्वत्ता एवं धर्माचरण के कारण काशी एवं दरभंगा के तात्कालिक नरेश इन्हें गुरु की तरह मानते थे। इन्होंने 'सिद्धान्त दर्पण' इत्यादि कई ग्रन्थ संस्कृत में लिखे, जिनमें कई उनके योग्य पुत्र ने बाद में छपवाकर प्रकाशित भी किये।

व्रजनाथजी के तीन पुत्र हुए। मदनमोहन इनमें सबसे छोटे हैं। इनका जन्म २५ दिसम्बर १८६१ ई० को प्रयाग में हुआ। आरंभ

बालपन एवं शिक्षा

में इन्हें संस्कृत एवं हिन्दी की शिक्षा पिताजी द्वारा घर पर ही दी गई। पर इसमें बाधा पडती देख पिता ने पुत्र को पहले 'धर्म ज्ञानोपदेश पाठशाला' में और फिर 'विद्या धर्म प्रवर्द्धिनी सभा' की संस्कृत पाठशाला में भेजना आरंभ किया। संस्कृत की प्रारम्भिक शिक्षा पूर्ण होने पर बालक मदनमोहन का नाम इलाहाबाद के अंग्रेजी जिला स्कूल में लिखाया गया। जिला स्कूल से १८७९ ई० में कलकत्ता विश्वविद्यालय की एण्ट्रेंस परीक्षा पास करके

इन्होंने म्योर सेण्ट्रल कालेज में पढ़ना शुरू किया। उस समय श्री हैरिसन उसके प्रिंसिपल थे।

आरंभ में मदनमोहन विद्याध्ययन में साधारण थे। पर आगे चलकर इनमें सत्यप्रियता, धीरता एवं देशानुराग के चिह्न दिखाई पड़ने लगे थे। प्रिंसपल हैरिसन इनके उच्च भावों से प्रसन्न रहते थे और समय समय पर इन्हें उत्साहित किया करते थे।

कालेज में मदनमोहन महामहोपाध्याय पं० आदित्यराम भट्टाचार्य के पास संस्कृत पढ़ते थे। भट्टाचार्यजी बड़े स्वदेशानुरागी एवं धार्मिक विद्वान् थे। मालवीयजी, बड़े होने एवं प्रसिद्धि पाने पर भी, सदा उन्हें गुरु मानते एवं उनपर तदनुकूल श्रद्धा रखते रहे एवं प्राय उनकी आज्ञा एवं आशीष लेकर ही कोई काम आरंभ करते।

१८८४ ई० में श्री मदनमोहन ने बी० ए० पास किया।

आरंभ से ही इनमें स्वदेश एवं समाज की सेवा करने का भाव विद्यमान था। कालेज जीवन में ही कुछ मित्रों की सहायता से इन्होंने इलाहाबाद में एक 'लिटरेरी इन्स्टिट्यूट' (साहित्यिक सभा) और 'हिंदू समाज' की स्थापना की थी।

सार्वजनिक सेवा एवं पत्र सम्पादन

बी० ए० पास करने के बाद जब कालेज खुला तो इन्होंने एम० ए० में नाम लिखाया पर घर की आर्थिक अवस्था ठीक न रहने एवं पूज्य पिताजी को कुछ विश्राम देने के खयाल से २-३ महीनों में ही कालेज छोड़ दिया और जिला स्कूल में असिस्टेण्ट मास्टर नियुक्त हुए। लगभग ३ वर्ष तक यहाँ काम किया। आरंभ में ५०) मासिक मिलते थे पर दो ही वर्ष बाद इनकी कार्य कुशलता से प्रसन्न हो शिक्षा विभाग ने वेतन ७५) मासिक कर दिया।

१८८५ ई० में कांग्रेस (राष्ट्रीय महासभा) की स्थापना हुई। १८८६ ई० में दूसरी बैठक राष्ट्र के ऋषि स्व० दादाभाई नौरोजी की

अध्यक्षता में कलकत्ता में हुई। यह अपने गुरु श्री आदित्यरामजी भट्टाचार्य के साथ कलकत्ता गये और अधिवेशन में सम्मिलित हुए। वहीं कालाकाँकर (अवध) के उदार एवं उन्नतिशील ताल्लुकेदार स्व० राजा रामपालसिंह से इनका परिचय हो गया। राजासाहब ने इन्हीं दिनों कालाकाँकर से हिंदी में 'हिंदुस्तान' नामक एक दैनिक पत्र निकाला था। यह हिन्दी का पहला दैनिक पत्र था। राजा साहब उसके लिए एक योग्य सम्पादक की तलाश में थे। पण्डितजी (मदनमोहन) की सत्यप्रियता एवं विचार स्वातन्त्र्य से वह बड़े प्रसन्न हुए। फल स्वरूप पण्डितजी सम्पादक बनकर कांग्रेस से लौटे। उन्हें दो या ढाई सौ मासिक मिलने लगे। गरीब हिंदी के गरीब सम्पादकों को इससे अधिक आज तक नहीं मिला। उस समय इस पत्र की बड़ी इज्जत थी। प्रान्तीय सरकार ने भी अपनी वार्षिक रिपोर्ट में इसकी प्रशंसा की थी।

'इण्डियन यूनियन'

इन्हीं दिनों प्रसिद्ध देशभक्त स्व० पं० अयोध्यानाथ ने प्रयाग से अंग्रेजी में 'इण्डियन यूनियन' निकाला और इन्हें कालाकांकर से उसके सम्पादन के लिए प्रयाग बुला लिया। मालवीय जी कई वर्षों तक इसका सम्पादन करते रहे।

'अभ्युदय' और 'लीडर'

१९०८ ई० में उन्होंने प्रयाग से हिंदी साप्ताहिक 'अभ्युदय' निकाला। प्रयाग में स्वतंत्र विचार के एक अंग्रेजी दैनिक की बड़ी आवश्यकता थी। इसलिए कुछ दिनों बाद मित्रों की सहायता से 'लीडर' निकाला, जो आज युक्तप्रांत का एक प्रभावशाली पत्र है।

'मर्यादा'

हिन्दी में उस समय मासिक पत्रिकाएँ तो कई निकलने लगी थीं पर गंभीर राजनीतिक लेखों एवं विचारों का उनमें बड़ा अभाव था। प्रायः साहित्यिक चर्चा ही रहती थी। इस अभाव को दूर करने के लिए मालवीयजी ने १९१० ई० में प्रयाग से 'मर्यादा' निकाली। यह हिंदी-साहित्य की कठोर भूमि पर राजनीतिक मासिक की

पहली बेल थी। कई वर्षों तक लहलहाकर भी,ज्यादा दिन तक हरा न रह सकी, सूख गई। फिर एक बार काशी के ज्ञान मण्डल ने उसे सींचने का प्रयत्न किया पर वह प्रयत्न भी स्थायी रूप से उसे जीवन न दे सका।

'हिंदुस्तान' के सम्पादन-काल के बाद ही कई मित्रों एवं गुरुजनों के आग्रह से इन्होंने वकालत पढ़ना शुरू किया। १८९१ में वकालत की

वकालत

परीक्षा पास की। १८९३ ई० में वकालत शुरू की। कांग्रेस के पिता श्री ह्यूम ने कहा था—"मदनमोहन, तुम्हें ईश्वर ने विलक्षण बुद्धि दी है। थोड़े दिन—केवल दस वर्ष—वकालत में परिश्रम कर लो, तुम उच्च श्रेणी में पहुँच जाओगे।" पर मालवीय जी का हृदय तो देश की दुर्दशा पर तड़प रहा था अतः इधर इनका ध्यान ही न जाता था। उनकी इस प्रवृत्ति को लक्ष्य कर इलाहाबाद हाईकोर्ट के एक प्रतिष्ठित जज ने कहा था—"Pt Madan Mohan Malviya has the ball before his feet, but he refuses to kick it" अर्थात् "पण्डित मदनमोहन मालवीय के पैरों के सामने ही गेंद है पर वह उसे ठोकर मारकर आगे बढ़ाने से इन्कार करते हैं।"

मालवीयजी के आत्म-त्याग और देश हितकर कार्यों में उनके अनथक परिश्रम पर मुग्ध होकर ३१ जनवरी १९१२ ई० को काशी में व्याख्यान देते हुए श्रीमती एनी बेसेण्ट ने कहा था—"आपने अपना सांसारिक जीवन, अपनी सब शक्ति, अपनी विलक्षण वाणी,—क्या कहा जाय, अपना समस्त जीवन और अपना स्वास्थ्य तक इस महत् कार्य में लगा दिया है।"

उस समय प्रयाग विश्वविद्यालय में बाहर से पढ़ने के लिए आने वाले हिंदू विद्यार्थियों के रहने का बड़ा कष्ट था। मालवीयजी ने युक्तप्रांत

हिंदू बोर्डिंगहाउस

में दौरा करके धन एकत्र किया। थोड़े ही दिनों में मैकडानेल हिंदू बोर्डिंग हाउस बनकर तैयार हो गया जिसमें २५० विद्यार्थी रह सकते हैं।

मालवीयजी ने ज्ञान प्रसार के लिए 'भारती भवन' नामक एक पुस्तकालय भी प्रयाग में खोला था, जो आज भी चल रहा है।

इलाहाबाद का मिण्टो पार्क भी, जो महरानी विक्टोरिया की घोषणा का स्मारक है, मालवीय जी के ही प्रयत्न का फल है।

युक्तप्रान्त की अदालतों में भी पहले उर्दू का ही बोलबाला था, हिंदी का बिलकुल ही प्रचलन न था। इसमें गरीब किसानों को अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। वे दूसरों की दया पर निर्भर करते थे। मालवीयजी ने जबर्दस्त आन्दोलन करके एवं गंभीर तर्कों तथा आँकड़ों द्वारा तात्कालिक लेफ्टिनेण्ट-गवर्नर श्री ऐण्टनी मैकडानेल को समझाकर सरकार द्वारा सन् १९०० ई० में यह कानून प्रचारित कराया कि अदालतों का काम हिन्दी या उर्दू दोनों भाषाओं में हो सकता है।

हिंदी आंदोलन

आज हिंदी की जो उन्नति हुई है उसमें मालवीयजी का बड़ा हाथ रहा है। 'हिंदुस्तान' के सम्पादन के अलावा अभ्युदय, मर्यादा, हिंदी आन्दोलन तथा अन्य कितने ही साधनों द्वारा उन्होंने हिन्दी की बड़ी सेवा की। 'हिंदी हिंदू हिंदुस्तान' की रट लगानेवाले वही थे। समय आया जब साहित्य सेवियों ने भी उनकी इस सेवा के लिए अपनी श्रद्धाञ्जलि समर्पित की। १९१० ई० में जब हिंदी साहित्य सम्मेलन को जन्म देने की बात सोची गई तो प्रथम अधिवेशन का सभापति मालवीय जी को ही बनाया गया।

× × ×

कांग्रेस में—

२८ दिसम्बर १८८५ को श्री ह्यूम, सर फीरोजशाह मेहता, श्री० उमेशचन्द्र बनर्जी, श्री सुरेन्द्रनाथ, श्री दादाभाई नौरोजी इत्यादि के प्रयत्न से बम्बई में सेठ गोकुलदास तेजपाल के संस्कृत विद्यालय में कांग्रेस का पहला अधिवेशन हुआ।

कलकत्ता की दूसरी कांग्रेस में मालवीय जी के शरीक होने की बात हम लिख चुके हैं। वहाँ मालवीय जी अपने गुरु श्री आदित्यराम जी के साथ बैठे हुए थे। मंच पर एक के बाद एक श्रेष्ठ वक्ता आ रहे थे। उनके व्याख्यानों को सुनकर इनके मन में भी बोलने की इच्छा हुई। गुरु की आज्ञा एवं सभापति का आदेश लेकर यह 'व्यवस्थापक सभा के सुधार' पर बोले। ऐसी महत्वपूर्ण, एवं चुने हुए विद्वानों एवं राजनीतिज्ञों की सभा में बोलने का यह पहला ही मौका था पर उनके इस पहले व्याख्यान का भी बड़ा प्रभाव पड़ा। इस नवयुवक का भाषण सुनकर लोग दंग रह गये। श्री ह्यूम ने कलकत्ता कांग्रेस की रिपोर्ट में लिखा था "जिस वक्तृता के लिए कांग्रेस-मण्डप में कई बार करतल-ध्वनि हुई थी और जिस वक्तृता को जनता ने बड़े उत्साह से सुना था, वह पं० मदन मोहन मालवीय की वक्तृता थी। पण्डित जी के गौरवर्ण सुन्दर मूर्ति और न्यायपूर्ण हृदय ग्राही मधुर भाषण ने कांग्रेस में बैठे हुए प्रत्येक पुरुष के चित्त को अपनी ओर आकर्षित कर लिया था।"

तब से मालवीय जी बराबर कांग्रेस में सम्मिलित होते रहे। उनके भाषण ओजस्वी भाषण कांग्रेस मंच की जान थे। उस समय उनके भाषण बड़े ही उत्साहमद होते थे। उस जमाने में भी वह बड़ी निर्भीकता के साथ बोलते थे। १८९१ ई० की नागपुर कांग्रेस में 'भारत की दरिद्रता' पर बोलते हुए कहा था—" जो कुछ मैं कहता हूँ वह यही है कि यह घोर अन्याय है, महापाप है और अति निन्दास्पद है कि तुम्हारे घर में तो तुम्हारे भाई भूख की महाकठिन व्यथाओं से पीड़ित हों, पर दूर के विदेशियों को पुष्टकर उनके सुख भोग की सामग्री इकट्ठी करो। तुम कहते हो—'देश गरीब है।' देश गरीब न हो तो क्या हो? सर विलियम हंटर और मन्त्रियों ने स्वयं एक बार यह कहा था कि भारत का आधा भाग, बदले में बिना कुछ लिये, यों ही विदेश को भेज दी जाती है। "। इत्यादि

१९०९ ई० में पहली बार मालवीयजी लाहौर कांग्रेस के अध्यक्ष हुए। उस समय जो भाषण उन्होंने दिया उसे सुनकर उपस्थित प्रतिनिधि दंग रह गये। भाषण मौखिक था, पहले से तैयार किया हुआ नहीं था पर मालवीयजी के मुँह से वाग्धारा बड़े वेग से निकल रही थी। इसमें मिन्टो-मार्ले सुधारों की आलोचना की गई थी। लगभग ३ घण्टे तक यह धारा प्रवाह व्याख्यान देते रहे।

पंजाब-हत्याकाण्ड के समय मालवीयजी ने बड़ा परिश्रम किया।

कांग्रेस-कार्यक्रम से कई बार मालवीय जी का मत भेद हुआ है। १९३० से १९३० तक तो यह एक प्रकार से उससे अलग ही रहे किन्तु अपने मुँह से कभी उन्होंने कांग्रेस का विरोध नहीं किया। कांग्रेस के प्रति वह सदा वफादार रहे हैं और मौका आया जब देश ने उन्हें फिर कांग्रेस की गोद में पाया।

बहुत दिनों तक मालवीयजी इलाहाबाद नगर बोर्ड के सदस्य

नगर सेवा   एवं वाइसचेयरमैन रहे। इन्होंने नये-नये मुहल्ले बसवाये। प्रयाग का लूकरगंज इन्हीं के प्रयत्नों का फल है।

प्रयाग में जब पहली बार प्लेग फैला, शहर में भगदड़ मच गई। कोई किसी की सुनता न था। पड़ोसी पड़ोसी को भूल रहे थे। शहर में सन्नाटा छा रहा था। ऐसे कठिन समय में मालवीयजी घर घर, मुहल्ले मुहल्ले घूमते, बीमारों का पता लगाते, उनके घरवालों को सान्त्वना देते, बीमारों की दवा का प्रबन्ध करवाते, रोगियों को अस्पताल भेजवाते, घरों की सफाई कराते। उस समय उनकी सेवा देखने ही योग्य थी।

सन् १९०२ ई० सरकार ने मालवीयजी को प्रांतीय व्यवस्थापक

व्यवस्थापक सभा में— सभा का सदस्य नियुक्त किया। उस समय उसमें केवल १२ सदस्य होते थे और सब सरकार-द्वारा ही चुने जाते थे। इनमें भी ज्यादातर अंग्रेज होते थे। आजकल की भाँति सदस्यों को बोलने एवं

आलोचना करने की सुविधा न थी। सदस्य केवल सलाह दे सकते थे, वे सरकार की आलोचना न कर सकते थे, उससे प्रश्न तक न पूछ सकते थे। कौंसिल क्या, एक प्रकार की परामर्श समिति (एडवाइजरी बाडी) थी। किन्तु ऐसे संकुचित क्षेत्र मे, इतने बधनों के भीतर रहकर भी, मालवीयजी ने समय समय पर दृढ़ता के साथ जनता का पक्ष समर्थन किया। १९०३ ई० में बुन्देलखण्ड में जमीन की बेदखली के कानून का मसविदा सरकार की ओर से पेश होने पर उन्होंने उसकी आलोचना करते हुए जोरदार भाषण दिया था। शिक्षा प्रचार तथा अन्य जन हितकर विभागों में अधिक खर्च करने के लिए मालवीयजी सदा अपने भाषणों में सरकार पर जोर डालते थे।

१९०९ ई० तक वायसराय की केन्द्रीय कौंसिल (आज की असेम्बली) में प्रान्तीय मेम्बर भारत सरकार स्वय चुनती थी। १९०९ ई० मे पहली बार यह नियम बना कि प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा का प्रतिनिधि चुनकर वहाँ भेज सकती है। तब एक प्रतिनिधि मालवीयजी चुन गये और वर्षों तक लगातार चुने जाते रहे।

× × ×

हिन्दू विश्वविद्यालय

काशी का हिंदू विश्वविद्यालय मालवीय जी की अटूट आशा-वादिता एव अथक परिश्रम का कीर्तिस्तंभ है। १९०४ ई० में स्व० काशा-नरेश की अध्यक्षता म एक सभा हुई थी जिसमें पहले बार मालवीयजी ने हिन्दू विश्वविद्यालय की आवश्यकता के सम्बन्ध में ब्योरेवार प्रस्ताव उपस्थित किया। प्रस्ताव का जनता ने स्वागत किया और सहानुभूति प्रगट की। अक्तूबर १९०५ ई० में प्रस्तावित हिंदू वि० वि० का एक विवरण पत्र (प्रास्पेक्टस) छपवा कर मालवीय जी ने देश के प्रधान हिंदू नेताओं, विद्वानों एव राजा महाराजाओं के पास भेजा। १९०५ की ३१ दिसम्बर को, कांग्रेस के

समय, काशी के टाउनहाल म एक बडी सभा इस प्रस्ताव पर विचार करने के लिए की गई। इसमे सब प्रान्तों के हिंदुओ के प्रतिनिधि एवं सब धर्मों के अनुयायी एकत्र थे। सभा ने योजना के साथ सहानुभूति प्रकट की। १९०६ ई० म सनातन धर्म महासभा ने भी, अपने प्रयाग-अधिवेशन में, इस योजना का समर्थन किया। पर उस समय प्रस्ताव प्रस्ताव ही रह गया, कार्यरूप में परिणत न किया जा सका। इतने बडे काय के लिए अत्यधिक धन की आवश्यकता थी। मौखिक सहानुभूति से काम न चल सकता था।

इन्हीं दिनों श्रीमती बेसेण्ट ने सेण्ट्रल हिन्दू कालेज को बढाकर 'यूनिवर्सिटी ऑव् इण्डिया' स्थापित करने का प्रस्ताव प्रकाशित किया। सन् १९०७ ई० म उन्होने इसके लिए एक आवेदन पत्र, कई प्रभावशाली भारतीयों के हस्ताक्षर से, भारत सरकार के पास 'रायल चार्टर' (राजकीय आज्ञापत्र) के लिए भेजा। उधर काशी का सनातन धर्म-महामण्डल भी स्व० महाराज दरभंगा के नेतृत्व मे एक विश्वविद्यालय स्थापित करने का प्रस्ताव करने लगा।

इस प्रकार के अलग अलग प्रयत्नो मे लाभ न देख अप्रैल १९११ ई० म श्रीमती बेसेण्ट और मालवीय जी प्रयाग म मिले। यह निश्चय हुआ कि सेण्ट्रल हिन्दू कालेज हिन्दू विश्वविद्यालय में मिला लिया जाय, श्रीमती बेसेण्ट अपना प्रार्थनापत्र सरकार के पास से वापस मँगा लें और दोनों मिलकर विश्वविद्यालय के लिए काम करें।

इसके बाद एक प्रभावशाली डेपूटेशन (प्रतिनिधि मण्डल) देश के मुख्य मुख्य स्थानों में घूमा। इसमें बडी सफलता हुई। मालवीय जी के प्रयत्न से देश के अनेक नरेशों एव नेताओं ने इस कार्य म धन एव सम्मति से बडी सहायता की। महाराज दरभंगा ने भी अलग विश्वविद्यालय स्थापित करने का विचार छोडकर इसी के साथ सहयोग दिया। इस प्रकार लगभग एक करोड रुपया एकत्र हो गया।

४ फरवरी १९१८ ई० को शुभ मुहूर्त में शास्त्रोक्त रीति से हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। तात्कालिक वायसराय लार्ड हार्डिंग ने इसकी नींव रखी। उसी साल इसकी पढ़ाई प्रारम्भ हुई।

मालवीयजी ने बचपन से ही धर्म की सेवा का व्रत ले रखा है। उनका राष्ट्र धर्म से अलग नहीं, बल्कि उसी का अंग है। हिन्दू

धार्मिक क्षेत्र में

समाज और हिन्दू धर्म के सुधार एवं पुनर्निर्माण के लिए उनके हृदय में बड़ी विकलता है। अल्पावस्था में ही इन्होंने प्रयाग में 'हिन्दू समाज' नाम की संस्था खोली थी। बड़े होने पर सनातन धर्म महासभा में बड़े उत्साह से भाग लेने लगे। १९०६ का सनातन धर्म महासभा का शानदार प्रयाग अधिवेशन इन्हीं के प्रयत्नों का परिणाम था। हिन्दू महासभा और गोरक्षा-संघ एवं गोरक्षा सम्मेलनों के तो यह प्राण ही रहे हैं।

मालवीयजी स्वदेशी के आरंभ से ही भक्त रहे हैं। पर उनके मत से स्वदेशी का तात्पर्य केवल स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग से ही पूरा नहीं

स्वदेशी एवं औद्योगिक आंदोलन

हो जाता। भारतीय रहन-सहन, संस्कृति, सभ्यता, धर्म, शिक्षा सभी विषयों में मनुष्य को पूर्ण स्वदेशी होना चाहिए। वस्तुतः वह इन पिछली बातों को स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग से अधिक महत्व देते हैं। इतने पर भी प्रत्येक औद्योगिक एवं स्वदेशी आंदोलन उनके आशीर्वाद एवं सहयोग से पवित्र एवं विकसित हुआ है। जब देश में स्वदेशी का भाव उत्पन्न न था या जन्मा था तो थोड़े ही व्यक्तियों के दिमाग में था तब से मालवीयजी इस दिशा में प्रयत्नशील हैं। १८८१ ई० में ही इलाहाबाद में एक 'देशी तिजारत कम्पनी' खोली गई थी। स्वदेशी कारीगरी को प्रोत्साहन देना ही इसका उद्देश्य था। मालवीयजी इस कम्पनी के प्रधान स्तंभ थे। शुरू से ही वह लोगों को समझाते रहे हैं कि अपने देश की बनी चीज प्राप्य होते हुए, चाहे वह कुछ भद्दी और महँगी हो,

विदेशी चीज खरीदना पाप है। स्वदेशी तो उनके लिए एक धार्मिक विश्वास सा है। इस विषय में जितना काम उन्होंने किया है उतना किसी ने नहीं किया। १९३० के बाद तो इस दिशा में उन्होंने अभूत पूर्व प्रयत्न किया है और सफलता पाई है। अखिल भारतीय स्वदेशी-संघ इन्हीं के प्रयत्न का फल है। भारत के प्राय सभी प्रधान नगरों में इसकी शाखाएँ है। और इस संघ के द्वारा बड़ा काम हो रहा है। स्वदेशी प्रदर्शनियाँ सार्वजनिक जीवन का एक मुख्य अंग बन गई है।

स्वदेशी के अतिरिक्त औद्योगिक शिक्षा एवं औद्योगिक आंदोलन के मालवीयजी दृढ़ समर्थक रहे है और हैं। १९०५ में बनारस में जो भारतीय औद्योगिक सम्मेलन हुआ था और १९०७ में इलाहाबाद में युक्तप्रांतीय औद्योगिक संघ खुला उसके पीछे मालवीयजी का बड़ा हाथ था। 'प्रयाग शूगर कम्पनी' की स्थापना में इनका कम हाथ नहीं था।

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है हिंदू धर्म एवं हिंदू संस्कृति के लिए मालवीयजी के मन में बड़ा गौरव है। ये उनके जीवन में ओतप्रोत

हिन्दू संगठन

हैं। इसलिए हिन्दुओं की वर्तमान दशा से उनके हृदय में बड़ी पीड़ा होती है। वह चाहते है कि हिंदू फिर उसी पवित्र एवं धवल रूप में संसार के रंग मञ्च पर आवें और जगत् को अपना दिव्य संदेश दें। इसीलिए समस्त हिन्दू जाति का संगठन करने के उद्देश्य से असहयोग-आंदोलन की समाप्ति के कुछ ही दिनों बाद उन्होंने हिन्दू-संगठन का आंदोलन चलाया। देखते देखते सारे देश में यह आंदोलन फैल गया और फल स्वरूप हिंदू महासभा की स्थापना हुई। सारे देश में उसकी शाखाएँ स्थापित हो गईं। वालण्टियरों—स्वयंसेवकों का 'महावीर दल' बना। मुझे आज वे दिन याद आते हैं जब नवीन हिंदू महासभा का प्रथम अधिवेशन काशी में, हिंदू कालेज (अब हिंदू स्कूल) के काशी नरेश हाल में हुआ था। वह उत्साह फिर दिखाई न पड़ा। इस अधि

वेशन में पारसी, बौद्ध, जैन, सिख सभी धर्मों के लोग शामिल हुए थे। उस दिन 'हिन्दू' शब्द का पहली बार व्यापक अर्थ किया गया अर्थात्— 'भारत में स्थापित किसी धर्म का अनुयायी'। इस परिभाषा ने भारतीय संस्कृति की एकता का संदेश दिया था। क्या ही अच्छा होता उस आधार पर हिन्दू जाति का संस्कार एवं निर्माण हुआ होता। पर हम देखते हैं कि कुछ ही दिनों बाद यह महान् आंदोलन राजनीतिक एवं साम्प्रदायिक झगड़ों में पड़कर अपना यह पवित्र पूर्व रूप खो बैठा और आज देश के अन्य साम्प्रदायिक संगठनों की भाँति हिंदू महासभा भी जी रही है।

देश के लिए सदा मालवीयजी ने अपने जीवन को तुच्छ समझा। इसके लिए उन्होंने सांसारिक सुख एवं धन मान को तिनके का तरह देशप्रेम की ज्वाला में छोड़ दिया। बीच बीच में वह मत भेद के कारण कांग्रेस से अलग हो गये पर कभी उन्होंने कांग्रेस पर आक्रमण नहीं किया। उसके प्रति उनके हृदय में अत्यधिक श्रद्धा और असीम अनुराग है। १९३० ई० में जब उन्होंने देखा कि सरकार इस संस्था को मटियामेट करने पर तुली हुई है तो उनका पैतृक स्नेह उमड़ आया और अपने मत भेद को दूर कर उन्होंने अपने को उसकी गौरव रक्षा के कार्य में उत्सर्ग कर दिया। तब से बराबर वह युवकों को लजानेवाले उत्साह एवं दृढ़ता से काम कर रहे हैं। दो बार गिरफ्तार होकर जेल गये। गोलमेज सम्मेलन में कांग्रेस की माँगों का उन्होंने जबर्दस्त समर्थन किया।

१९३२ और १९३३ के कांग्रेस अधिवेशन मालवीयजी के प्रयत्नों के ही फल स्वरूप हो सके। इन दोनों बार वह कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गये पर बीच में ही गिरफ्तार हो गये। बाद में छोड़ दिये गये। विगत तीन वर्षों से बराबर कांग्रेस आन्दोलन में वह अपना महत्वपूर्ण भाग अदा करते रहे हैं और यद्यपि आज कल उनका स्वास्थ्य बहुत खराब है फिर भी वह

काग्रेस के साथ हैं।

खराब स्वास्थ्य के होते हुए भी १९३२ मे हिन्दू मुस्लिम समस्या हल करने एव विभिन्न जातियों मे समझौता कराने के लिए उन्होंने प्रबल प्रयत्न किये।

नि सन्देह मालवीय जी का जीवन त्याग, पवित्रता, दृढ अध्यवसाय, लगन, परिश्रम और सेवा का ज्वलन्त उदाहरण है।

—तीन—

जीवन की झाँकियाँ

यह मालवीयजी की अद्भुत वाग्मिता, उनकी भाषण शक्ति थी जिसने पहली ही बार काग्रेस मच पर इन्हे लोकप्रिय बना दिया। तब से आजतक मालवीयजी ने जो सफलता प्राप्त की है उसमें उनकी भाषण शक्ति उनका प्रधान साधन रही है। इस विषय में सब एक मत हैं कि उनके जैसा धाराप्रवाह बोलने एव जन रुचि को 'अपील' करनेवाला वक्ता काग्रेस में दूसरा नहीं है। उनकी मृदु श्रवण मधुर बोली और विषय को स्पष्ट करने का उनका ढग अनोखा है। सस्कृत भाषा एव साहित्य के ऊपर असाधारण अधिकार, इगलिश इतिहास एव साहित्य का परिचय, जन समाज की दशा का गहरा अध्ययन एव वर्तमान आर्थिक समस्याओं की खोज इन सब विशेषताओ से उनके भाषण प्रकाशित हैं। उनके भाषणों का प्रभावशील कोमल युवक हृदय पर कैसा प्रभाव पडता है, इस विषय मे विहार के सर सच्चिदानद सिंह ने अपनी कुमारावस्था की एक घटना लिखी है। यह घटना काग्रेस के १८८८ ई० के इलाहाबाद अधिवेशन की है, जिसमें वह शरीक हुए थे। वह लिखते हैं—

भाषण-शक्ति

"सुरेन्द्रनाथ बनर्जी एव कालीचरण बनर्जी (कलकत्ता), ई० नार्टन (मद्रास), फीरोजशाह मेहता एव के० टी० तैलग (बम्बई) जैसे अपने समय के भारत के सर्वश्रेष्ठ वक्ताओं की कुछ वक्तृताओं ने मेरे युवकोचित मन पर बड़ा प्रभाव डाला। मुझे सब असाधारण एवं आश्चर्यजनक प्रतीत होता था। किन्तु मालवीय जी के भाषणों ने मेरे दिल पर जो कभी न मिटनेवाला प्रभाव डाला वैसा किसी दूसरे का न पड़ा। मुझे आज भी याद है कि जबतक मालवीय जी उस विशाल समूह के सामने भाषण करते रहे मैं मुग्ध सा, उसमें डूबा हुआ, आत्मविस्मृत की भाँति चुप चाप बैठा रहा। उनके भाषण में वाग्मिता के साथ मिठास एव जीवन था। तब से दीर्घकालिक परिचय के बल पर मैं कह सकता हूँ कि यद्यपि भारत ने कतिपय बेजोड़ वक्ता एव वाग्मी (डिबेटर) पैदा किये किंतु मालवीयजी अपने क्षेत्र में एक ही हैं। यही एक वक्ता है जो श्रोताओं को अपनी भाषा की शक्ति एव भाव से नहीं वरन् निपुणता, आश्चर्यजनक मृदुता, असाधारण आकर्षण—'चार्म' एव सरलतापूर्वक निकलती हुई वाग्धारा से प्रभावित करते है। ये सब बातें श्रोता के मन पर कुछ ऐसा प्रभाव डालती हैं कि उनमें विश्वास उत्पन्न हो जाता है।"

समयानुसार बोलने के ढंग मे वह परिवर्तन भी करते रहते हैं। वह जहाँ सिंह की भाँति 'दहाड़' सकते है वहाँ कोयल की भाँति मधुर स्वर में 'कूक' भी सकते है। उनके बोलने में एक अद्भुत मधुरता है। वह सच्चे ब्राह्मण की मधुरता है। श्री केलकर के शब्द मुझे याद आते है कि "उनका बोलना साफ है निखरी हुई कल-कल रव करके बहनेवाली जलधाराके समान है जिसमें इतना मधुर शब्द होता है कि उसे सुनते ही जाने की इच्छा बनी रहती है।"

विशेषताएँ

उनकी चमत्कृत वक्तृत्वशक्ति, उनकी मुहाविरेदार शैली, उसके अदर कलाविद् की तरह प्रकाश एव छाया ('लाइट' एव 'शेड') का

सम्पूर्ण समिश्रण करने की उनकी शक्ति सच अद्भुत है। वस्तुतः, जैसा कि श्री विनायक मेहता ने लिखा था "यह 'व्यास' की सर्वोच्च कक्षा तक पहुँची हुई वाग्मिता है।" प्रत्येक महान् वक्ता में तीन बातें होनी चाहिएँ—श्रोता को ज्ञान देने (ऊँचा उठाने), भावमय कर देने एवं आनन्दमय कर देने की शक्ति। मालवीय जी में तीनों बातें अत्यधिक परिमाण में पाई जाती हैं।

वह एक सच्चे ब्राह्मण की तरह बोलते हैं। उनकी वक्तृत्व शक्ति पर भी ब्राह्मणत्व की छाप है। उनमें जो गुण हैं वे भी ब्राह्मण के हैं और

दोष

जो दोष हैं वे भी ब्राह्मण के हैं। जहाँ उनके वक्तृत्व में गुण हैं वहाँ दो एक दोष भी हैं। एक तो यह कि वह समय एवं साधन का ठीक अनुपात—'प्रपोरशन'—नहीं लगा सकते। बोलने लगे तो बोलने ही लगे। सरिता की धारा की भाँति फिर उसका रुकना मुश्किल ही होता है। ५ या १० मिनट में उनको भाषण खतम करना हो तो बोल नहीं सकते—बोलेंगे तो उनकी मर्यादा के अनुसार वह न बोलने के समान ही होगा। भाषा पर उनका अधिकार तो असाधारण है पर वह जहाँ निर्माण कर सकते हैं वहाँ उसे बंधन में नहीं रख सकते। जबान पर 'डिप्लोमैट' का वह काबू नहीं है जो मौका देखकर जबान का उपयोग करता है, दिल में जो कुछ है उसको सबका सब जबान पर नहीं आने देता। मालवीयजी का यंत्र पर—जबान पर इतना अधिकार तो है कि वह उसे सर्वोत्तम शब्द एवं भाव सृष्टि का साधन बना सकते हैं पर यंत्र को जितनी आसानी से चला सकते हैं उतनी ही शीघ्रता से उसकी गति को रोक नहीं सकते। हाँ, इतना अवश्य है कि उसकी गति को वह जिस दिशा में चाहें मोड़ सकते हैं। इसीलिए उनके भाषणों में बहुत अधिक विविधता मिलती है। काम-काजी एवं निखुरे व्यावहारिक राजनीतिज्ञ को उनके लम्बे भाषण सुनना अच्छा नहीं लग सकता। असल में वह जन-समूह के लिए हैं। कानपुर कांग्रेस

में जब मालवीय जी बोलने खडे हुए तो स्व० प० मोतीलालजी ने मुस्कराते हुए कहा—"निश्चिन्त होकर बैठो, पण्डितजी का महाभारत शुरू होता है।" यद्यपि यह मोतीलालजी का व्यंग था किन्तु इस 'रिमार्क' में, इस सम्मति में मालवीयजी के भाषण के गुण दोष दोनों का आभास आ जाती है। महाभारत की भाँति ही उनके भाषण में शब्द सौष्ठव, शिथिलता, विस्तार एव 'व्यासत्व' है।

इसमें सदेह नहीं कि उनकी वाणी श्रोता को भावमय कर देती है—इसे कोई माई का लाल, जिसने उनका भाषण सुना है, इन्कार नहीं कर सकता। वह आपको उडा ले जाती है। आप उसमें मग्न हो जाते हैं और बोली के सौन्दर्य तथा आरोह अवरोह से प्रभावित होते हैं। उनकी वाणी की एक विशेषता यह भी है और यह बहुत बडी विशेषता है कि उनके सार्वजनिक या व्यक्तिगत किसी भी व्याख्यान में किसी व्यक्ति पर आक्षेप नहीं होता।*

× × ×

मालवीयजी का जीवन स्थायी देश भक्ति का एक उज्ज्वल उदाहरण है। जीवित नेताओं में लगातार ४० वर्ष तक जनता की सेवा करनेवाला

देशभक्ति

कोई दूसरा भारतीय नेता नहीं है। भारत के लिए माता बसन्त की सेवाएँ अमूल्य हैं पर केवल एक बार ही वह राजनीति को लेकर सर्वसाधारण के सामने आईं। भारत की आधुनिक जागृति के इतिहास में इस व्यक्ति का पवित्र सेवामय जीवन चमक रहा है। सभाओं में, कांग्रेस में, कौंसिलों में उनकी सेवा की प्रतिध्वनि मानो आज भी गूँज रही है। अनेक अवसर

* One standing feature of his speech public or private is that it never contains any personalities any dispraise of any person except when some conduct of his in public affairs has got to be condemned on public grounds and even then rarely
— Bhagvan Das

कर कार्यों के लिए वह लड़े हैं। एक जमाना था, जब एक कोने से दूसरे कोने तक भारतवर्ष में मालवीयजी ही मालवीयजी थे। वे दिन याद आते हैं, वे लड़कपन के दिन! (और आज भी अभी यह लड़कपन कौन बीत गया है, मालवीयजी जैसे श्रद्धास्पद गुरुजनों के सम्मुख हम सदा बच्चे ही रहेंगे), जब हिन्दी के 'देश प्रेमी'—राष्ट्रीय होते होते भी राष्ट्रीय हो न सके—कवि मैथिलीशरण ने—

'कहते हैं मालवी जी हम होमरूल लेंगे
दीवाने हो गये हैं, गूलर से फूल लेंगे।'

का जवाब देकर एवं भावी वरर्थकों के द्वारा गूलर से फूल पैदा करके अपनी वाणी को पवित्र किया था।

उसके बाद समय ने पलटा खाया। नागपुर कांग्रेस एवं उसके बाद के असहयोग एवं स्वराज आंदोलन ने कई शक्तिमान व्यक्ति देश के सामने रखे। जन हृदय का भाव सागर अपने ज्वार के साथ गांधी, मोती, जवाहर और देशबंधु जैसी अमूल्य मणियाँ हमारे आगे छोड़ गया। इनका मूल्य आँकना और तुलना करना हास्यास्पद है। इस परिवर्तन काल में अनेक पुराने नेता, जिनकी सेवा हमसे उनके सामने आदरपूर्वक झुकने का तकाजा करती थी, शून्य में पड़ गये। एक समय बंगाल के एक उग्र नेता एवं मंच के वीर सुरेंद्रनाथ एवं विपिनपाल, यहाँ तक कि 'गरमों में गरम' लालाजी तक पीछे छूट गये—जनता ने उन्हें भुला दिया। पर भारत के राजनीतिक इतिहास में केवल मालवीयजी एक ऐसे पुराने नेता हैं जो शुरू से लेकर आज तक जनता के आदर भाजन हैं। मत भेद हुए, पार्टियाँ बनीं पर जन हृदय में उनके लिए सदा वही आदर बना रहा। भारत के राजनीतिक इतिहास में यह एक आश्चर्य की घटना है। आश्चर्य की घटना इसलिए भी कि मालवीयजी का अपना कोई सुसंघटित दल नहीं है,

आश्चर्यजनक सत्य

उनका कोई निश्चित अनुकरण—'फालोइंग'—नहीं है। यह ठीक है कि असेम्बली में, वह एक छोटे से दल के नेता थे पर वह दल भी सफल या कोई अच्छा उदाहरण कभी न रहा। मालवीयजी सामूहिक अनुशासन का पालन कर नहीं पाते। स्वयं शायद थोड़ा बहुत कर भी पावें पर दूसरों से नहीं करा सकते। उनके हृदय की कोमलता इसमें बाधक है। इसीलिए मैं कहता हूँ कि इतना होते हुए भी मालवीयजी का जनता में जो आदर है वह शुरू से आज तक बराबर बना हुआ है, कभी कम नहीं हुआ, यह एक आश्चर्य की घटना है।

देश के लिए उन्होंने क्या त्याग नहीं किया? धर्म को छोड़ सब कुछ भेंट चढ़ा दिया। यह सच है कि वह कट्टर सनातनी हैं और अपनी कट्टरता को बहुत महत्व की चीज—धर्म की स्पिरिट—मानकर चलते हैं। इसीलिए १९३० तक, इतनी लम्बी सेवा के बीच कभी उन्होंने समुद्र की यात्रा न की, कभी बड़ी-बड़ी पार्टियों में क्रियात्मक रूप से शरीक न हुए। हमारा मतभेद हो सकता है पर यह मानना पड़ेगा कि अपनी कट्टरता में वह बहुत सच्चे—'सिंसियर'—रहे हैं। लोग इसकी हँसी उड़ा सकते हैं—उड़ाते रहे हैं पर जिसे उन्होंने ठीक समझा उससे वह कभी न डिगे। इस कट्टरता में भी उनकी सचाई, उनकी दृढ़ता स्पष्ट होकर बोलती है।

वह समय भी आया जब देश के लिए, कांग्रेस को कुचली जाता देखकर—और उससे भी अधिक भाइयों, बहनों और बेटियों के साथ होनेवाले अनुचित व्यवहार से, उनका हृदय पसीज गया। सम्भव सरकार था पर उनसे देखा नहीं गया और फलस्वरूप १९३० ई० में बम्बई में कानून तोड़कर वह जेल गये। किसी व्यक्ति के, उनकी इच्छा के विरुद्ध, जुर्माना जमा करने पर छोड़ दिये गये पर दिल्ली में कांग्रेस-कार्यकारिणी की गैरकानूनी बैठक में शामिल होने के कारण फिर गिरफ्तार एवं दण्डित हुए।

बम्बई में ठाकी तथा वल्लभभाई इत्यादि अन्य नेताओं की गिरफ्तारी । वह दृश्य आज भी मेरी आँखों के सामने फिर रहा है । उस समय भाग्य-वश मैं वहीं था । आकाश में घटाएँ घिर रही थीं । जुलूस चौपाटी से—लोकमान्य के स्मारक से—

वह दृश्य ।

...ला । धोबीतलाव तक पहुँचते पहुँचते जोर से बूँद पड़ने लगीं । ...स्ता नर नारियों की भीड़ से भरा पड़ा था । बड़े ही अनुशासन ... यदे से तीन तीन की कतार में जुलूस जा रहा था । इसमें वे ही लोग ...ये गये थे जो सब प्रकार की घटना के लिए तैयार थे । रास्ते में ...ठेक भाई का स्वयंसेवक दल आ आकर मिलता गया । पानी गिर रहा ...ा, बहुतों के पास छाते भी थे पर अनुशासन ऐसा जबर्दस्त था कि लोग ...ह भी नहीं लगाते थे । बहनें आगे थीं । श्रीमती हंसा मेहता जुलूस का ...तृत्व कर रही थीं । कुफ़ॉक रोड पर, हार्नबीरोड की क्रासिंग पर हथियार- ...द पुलिस के दस्ते ने जुलूस रोक लिया । लोग जमीन पर बैठ गये । ...भजन लग गए । ऊपर से पानी बरसता था लेकिन लोग खुशी से उछल ...रहे थे । यह दृश्य देखकर, विशेषतः बहनों के साहस से, मालवीय जी ...र वह असर हुआ जो कभी न हुआ । बहनों ने वह काम करा लिया ...जिसे उनकी युगों की सेवा न करा सकी थी । उन्होंने भी यज्ञ में अपनी ...आहुति दे दी ।

संधि हुई, आन्दोलन बन्द हुआ । कैदी छोड़े गये । कांग्रेस का गोल ...मेज सम्मेलन में स्वागत किया गया । मालवीय जी भी अपनी प्रियतम ...रूढ़ि को तोड़कर लन्दन गये । इंग्लैण्ड जाने से पूर्व मालवीय जी का ...स्वास्थ्य बहुत खराब था । विदाई के पहले की एक घटना का जिक्र मुंशी ...ईश्वरशरण ने किया है जिससे मालवीय जी की देश भक्ति पर प्रकाश ...पड़ता है । वह लिखते हैं—'इंग्लैण्ड जाने के पहले हम दोनों—वह और ...मैं—प्रयाग के मेकडानल हिन्दू बोर्डिंग हाउस में, × × जो उनका ही ...स्थापित किया हुआ है, जा रहे थे । मैंने पूछा, आपकी तबियत कैसी है ?

उन्होंने जवाब दिया—'मैं खाट म पड गया हूँ और उसमें बाहर नि
त्ने मे असमर्थ हूँ। किन्तु यह शरीर तो मातृभूमि का ही दिया हुआ है

शरीर माता का है। और इसमें क्या, चाह माता की सेवा में इग्लैण्ड म
इसकी मृत्यु हो या यहाँ।" कैसी प्रगाढ़ देश भक्ति!

सब लोग इस बात को नहीं समझ सकते कि जल गमन एव समुद्र पा
कर इग्लैण्ड जाना माल्वीयजी के लिए कितना बडा त्याग था। जो उन्हें
उनके जीवन की कट्टरता एव प्रिय भावनाओं को जानत हैं वे ही
त्याग की गभीरता समझ सक्ते हैं। यह नहीं कि देश के लिए जल में
एव इग्लैण्ड की यात्रा करने में उ हें कोई महान् शारीरिक कष्ट था, शा
रिक कष्टों की तो उन्होंने कभी परवा न की पर जिस बात का उन्होंने ५०
के सेवामय जीवन मे निबाहा उस कट्टरता को देश के लिए, तिनके
समान, एक मिनट म छोड दिया। जो व्यक्ति कुछ ही वर्ष पहल भरने
श्री गोविंद के जल जाने पर, मुक्ति के पश्चात्, उनसे प्रायश्चित्त कान
नहीं चूका, और जिसने जातीय रूढ़ि का निष्ठुर बधन तोडन के कारण अ
पुत्रवधू उषा को उसके पिता के यहाँ भेजने में भी हिचकिचाहट
थी, उसने देश के लिए वह भी किया जो प्रिय से प्रिय व्यक्ति और
के लिए नहीं किया था। दूसरी बात यह कि अपनी जीवन प्रणाल
लिए माल्वीय जी के हृदय म एक प्रकार का सूक्ष्म गौरव का भाव
यही एक नेता हैं जो जनता म, सरकार में ओर रजवाडों में समान
से आदत रहे हैं। कितने ही राजमहाराज उन्हें गुरु-तुल्य श्रद्धा
हैं। कई बार उन्होंने खुल्लमखुल्ला १४४ धारा तोडी और सरकारी
का भग किया पर सरकार ने इस दिव्य धवल ब्राह्मण नेता के
हाथ नहीं लगाया। जब पहली बार १९३० ई० में यह जेल गए
यद्यपि सब नेताओं से अधिक स्थान और सुविधाएँ जेल में माल्वी
को ही दी गई थीं पर उनके ऊपर जीवन की इस आश्चर्य जनक घट
बहुत ही अधिक प्रभाव पड़ा था। जैसे उनके पिछले जीवन का

कई', उनका सार्वत्रिक आदर एव उनकी लम्बी सेवा सब उन्हीं से प्रश्न र रहे हों कि 'यह कैसे हुआ ?' और 'क्या यह सभव है ?'

और आज आप मालवीयजी को देखिए। पहले भी उनका रात न सेवा एव जन हितकर कार्यों में ही बीतता था और आज भी बीतता पर आज वह पहले से बहुत बदल गये हैं। अब तो मानो मातृ भूमि चरणों में उन्होंने शरीर, मन एव अन्त करण के साथ पूर्ण आत्मार्पण कर दिया है। जब उनके शरीर पर कपड़े न हों उन्हे देखिए और फिर उनके रिश्रम एव उनकी चिन्ताओं को देखिए—दिल काँप जाता ह ! हड्डी ड्डी गिन सकते हैं। रात के सोने के चन्द घण्टों को छोड आप कभी हें खाली न पायेंगे। काग्रेस की, स्वदेशी आन्दोलन की, हिन्दू विश्वविद्यालय की, हिन्दू मुस्लिम ऐक्य की, अछूतों की तथा अनेक सभाओं स्थाओं एव व्यक्तियों की समस्याएँ अपने कन्धे पर उन्होंने उठा रखी । सितम्बर १९३२ ई० में महात्मा जी के उपवास के समय हरिजनों समस्या निबटाने म उन्होंने जो परिश्रम और जो दौड धूप की, उसका हुत थोड़ा अश जनता का मालूम ह। मुख्यत यह उन्हीं के प्रयत्नों का फल था कि इतनी जल्दी ऐसा सुन्दर समझौता हो गया। यहीं उनका स्वास्थ्य इतना खराब हो गया था कि डाक्टरों ने पूर्ण विश्राम की सलाह दी पर जातिगत ऐक्य के लिए जरा भी सभावना होते ही वह पजाब चले गये। वहाँ से फिर बगाल और फिर युक्तप्रात ! इलाहाबाद के ऐक्य सम्मेलन में दिन रात १६-१६, २०-२० घण्टे का परिश्रम और फिर उससे छुट्टी पाते ही केरल जाकर हरिजनों के मन्दिर-प्रवेश की समस्या सुलझाने की इच्छा ! काग्रेस का अधिवेशन करने के उनके उत्साह और कलकत्ता काग्रेस के बारे में उनकी सेवा से सब परिचित हैं। वह दिन दिन उम्र होते जा रहे ह। इस विद्यावयोवृद्ध ब्राह्मण ने अपने लिए कभी चिन्ता न की ! वह सदा जाति के, देश के हित को ही चिन्ता करते हैं। सर एम० विश्वेश्वरैया ने ठीक ही लिखा

है—"एक आदरास्पद और प्रेमयोग्य व्यक्तित्व रखनेवाले, एक कट्टर हिन्दू और एक महान् भारतीय—जो कुछ वह सोचते हैं, जो कुछ करते हैं, अपनी जाति एवं देश के हित के लिए ही करते हैं।"*

निःसन्देह देश के लिए उनका यह आत्मत्याग अद्भुत है।

× × ×

मालवीय जी का जीवन आरम्भ से ही त्याग और तपस्या का जीवन रहा है। उनके जीवन में ब्राह्मण की अद्भुत सात्विकता है। जैसा कि अल्फ़ाफिर ने लिखा है—'निर्मल जीवन के उज्ज्वल वस्त्र पहने इस अनित्य एवं परिवर्तनशील के बीच खड़े हुए वह वस्तु के स्थायित्व की ओर इशारा करते हैं। सादा जीवन और, उनका ब्राह्मण

त्याग एवं तपस्यामय जीवन की झलक

बुद्धि जहाँतक उन्हें जाने दे वहाँतक, ऊँचे विचार मादकद्रव्य नहीं,—मांस नहीं, वासना रञ्जन नहीं, शरीर की प्यास के लिए कोई घूँट नहीं, वह राम के युग के एक गौरवपूर्ण यादगार हैं।'

अधिकांश नेताओं का जीवन नैतिक दृष्टि से बड़ी डावाँडोल परिस्थितियों में बीता है। लोगों के विषय में तरह तरह की बातें भी कही जाती हैं। उनमें बहुतेरी निस्सन्देह कल्पित होती हैं पर उनका कुछ आधार होता है। इन सब के बीच मालवीय जी यौवनकाल से एक आजतक पवित्रता की मूर्ति की भाँति अटल हैं। उनके जीवन में कोई प्रेम-कथा नहीं, कोई एडवेंचर नहीं। राग रंग किसी बात का उन्हें शौक नहीं। शुरू से अन्त तक एक सात्विक रेखा उनके समतल जीवन में चली गई है। उनकी पवित्रता पर कभी किसी ने प्रश्न नहीं किया।

* 'A noble and lovable personality a staunch Hindu and a great Indian all he thinks of all he works for are the interests of his community and country

From Sir M Visvesvarayya's Personal Reminiscences in Malviya Commemoration Vol

किसी की उँगली, इस विषय में, उनके ऊपर नहीं उठी। ब्राह्मणत्व के गौरव एवं ब्राह्मणत्व की कट्टरता दोनों ने इस विषय म उनकी रक्षा की। जिस रूप में आज से ४०–५० वर्ष पूर्व वह दिखाई पड़े थे, वही आज तक बना है। वही साफा, अँगरखा, वही माथे की त्रिन्दी, सब कुछ वही है,—अवस्था ने रूप में जो भी परिवर्तन कर दिया हो।

जो लोग उनके सम्पर्क म आये हैं उन्हें उनके दैनिक जीवन म ही त्याग के अनेक दृष्टान्त मिले ह। नागरी प्रचारिणी सभा के संस्थापक प० रामनारायण मिश्र ने अपने व्यक्तिगत अनुभव लिखे ह। एक घटना का जिक्र करते हुए वह लिखते हैं—

एक घटना

"दिसम्बर १९०५ ई० में कांग्रेस बनारस म हुई थी। उसके साथ ही 'सोशल कान्फ्रेंस' (सामाजिक सम्मेलन) का भी अधिवेशन हुआ था। कान्फ्रेंस के लिए सब प्रबंध हो गया था। बम्बई हाईकोर्ट के जज सर नारायण चंदावरकर सोशल कान्फ्रेंस के प्रधान मन्त्री थे। उनके ठहराने का भार स्व० राजा मुंशी माधवलाल ने अपने ऊपर लिया था। एक दिन शाम को तार मिला कि वे बड़े सवेरे ही काशी पहुँचेंगे। कांग्रेस राजघाट के किले पर हुई थी। वहाँ राजा माधवलाल का खेमा था। मैं रात को उनके यहाँ पहुँचा। उनसे भेंट नहीं हुई। घबराया हुआ मैं उनके एहुरारीवाले बगीचे पहुँचा वहाँ भी वे न मिले। वहाँ कांग्रेस के मनोनीत सभापति श्री गोखले ठहरे थे। मैं उनसे मिला और मैंने प्रार्थना की कि वे सर चंदावरकर को अपने यहाँ ठहरा लें। उन्होंने कहा—"सर नारायण के लिए पूरा मकान चाहिए। वे महादेव (रानडे) की तरह नहीं हैं कि किसी के साथ थोड़ी जगह में भी निर्वाह कर लें।" बिना कुछ प्रबन्ध किये ही ईश्वर पर भरोसा कर मैं सवेरे तीन बजे काशी स्टेशन पर पहुँचा। मैं बड़ा व्याकुल था कि क्या करूँ। रेल आ गई पर संयोग से सर नारायण न आये। वे मुगलसराय में रह गये और उन्होंने अपने नौकरों से कहला भेजा कि मैं दूसरी रेल से, जो ३–४ घण्टा बाद

काशी आने वाली थी, आऊँगा। मैंने ईश्वर को धन्यवाद दिया और ९ बजे राजा माधवलाल के बगीचे में गया। दिसम्बर के जाड़े का सवेरा था। मालूम हुआ कि वे अभी सो रहे हैं। पीछे की तरफ एक खेमे में श्री मालवीय जी दिखाई दिये। वे शौचादि से उसी समय निवृत्त हुए थे। मुझे देखते ही उन्होंने कहा कि इतने सवेरे कहाँ आये? मैंने अपनी कठिनाई बताई, वे हँसकर बोले—"सर नारायण को इसी खेमे में ले आओ।" यह कहते ही वह खड़े हो गये और उन्होंने नौकर से कहा—'असबाब सामने पेड़ के नीचे ले चलो।' मैंने उनसे प्रार्थना की कि ऐसा न करें, कहीं न कहीं बंदोबस्त हो जायगा। परन्तु उन्होंने न माना। स्वयं असबाब उठाकर बाहर रखना शुरू कर दिया। और मुझसे कहा कि जाओ स्टेशन से उन्हें ले आओ। रेल का समय निकट था। मैं सर नारायण को थोड़ी ही देर में ले आया। वे उसी खेमे में ठहर गये। दूर के दो पेड़ों नीचे परदा लगाकर श्री मालवीयजी ने अपना प्रबन्ध कर लिया। दिन चढ़ने पर बहुत से लोगों ने मालवीयजी को उस पेड़ के नीचे देखा।"

घटना बहुत छोटी है पर उसका महत्व बहुत बड़ा है। ऐसी ही और दैनिक जीवन की बातों में ही मनुष्य का असली रूप चमकता है।

मालवीयजी इलाहाबाद के वैद्य श्री शिवराम पाण्डेय के अत्यन्त स्नेह भाजन हैं। पाण्डेयजी ने मालवीयजी के सम्बन्ध में अपने कुछ

तपस्वी रूप में

स्थिर जीवन के दो एक निजी अनुभव लिखे हैं। एक जगह 'तपस्वी मदनमोहन' का जिक्र करते हुए वह लिखते हैं—"इन्फ्लुएंजा के अवसर पर मेरे भतीजे चि० काशीनाथ को निमोनिया हो गया। एकदम बेहोशी आ गई। गोदान इत्यादि भी करा दिया गया। उस समय मेरी अवस्था पागलों की सी थी। मैंने मदनमोहन को बुलवाया। उन्होंने सान्त्वना देते हुए कहा—'घबराने की बात नहीं, बालक अच्छा है।' अन्त में यही हुआ, एक मामूली दवा से वह अच्छा हो गया।"

'इसी प्रकार की दूसरी घटना पहले घट चुकी थी। उस समय मालवीयजी के मझले भाई प० जयकृष्णजी समहणी से अत्यन्त पीडित थे। रोग बिगड गया था। बडे-बडे वैद्य डाक्टरों ने जवाब दे दिया था। उस समय मदनमोहन हमारे पास दौडे आये और बड जोर से मुझसे कहा—"मैंने सुना है कि भैया को आपने भी जवाब दे दिया है। बडी भूल की बात है। उठो, चलो हमारे साथ और उनकी दवा आरभ करो। वह बिल्कुल अच्छ हो जायँगे।" मुझे मालूम पडा मानो भगवान् कृष्ण अर्जुन से कह रहे है "उत्तिष्ट कौन्तेय, युद्धाय कृत निश्चय।" ऐसे कहता बचने की उम्मीद नहीं। साथ हो लिया। मुझमें भी साहस एव आत्म बल बढ गया। दवा आरभ की। धीरे धीरे मदनमोहन के आत्म-बल ने सहायता की। रोग दूर हो गया। जहाँ छटोक दूध हजम होना कठिन था वहाँ १२—१४ सेर दूध हजम होने लगा।

"एक दिन ऐसा हुआ कि मदनमोहन मेरे पास आये। वे बहुत दुर्बल मालूम पड रहे थे। उनके चेहरे का रग भी मुझ अच्छा न लगता था। यह भी मालूम पडा कि बाहर जानेवाले ह। उनके स्वास्थ्य के लिए मैं चिंतित था। गाडी के समय मैं मदनमोहन से मिलने स्टेशन पहुँचा। गाडी के पास देर तक खडा रहा। बहुत से आदमियों के साथ आये तो मुस्कराकर हाथ उठाया और प्रश्न किया तुम कैसे आये? मैं चकित था। मैंने साहस करके पूछा—"कौनसी जादू की पुडिया तुमने चाट ली या कौन-सा अभ्यास तुमने कर लिया कि जिससे तुम एकदम हट्टे-कट्टे और प्रफुल्लवदन हो गये हो।' उन्होंने हँसकर कहा—"हाँ, कुछ कर लिया।" इससे मुझे मालूम पडा कि उनके कुछ ऐसे अभ्यास हैं जिनको करके वे ताजे और चगे हो जाते हैं। मन इनमें आत्मबल, प्रसाद गुण, भगवद्भक्ति एवं भगवत् परायणता बहुत पाई है।"

और घटनाएँ

मालवीयजी का ज्ञान तप से पवित्र, कर्ममय जीवन त्यागद्वारा उज्ज्वल है। बाह्य जगत् से सामञ्जस्य स्थापित कर उन्होंने अद्भुत मानसिक शान्ति अर्जित की है।*

यह उनका त्याग एव तपस्यामय पवित्र जीवन ही है जिसके विरुद्ध कोई उंगली नहीं उठा सकता। यदि हम उनके व्यक्तिगत जीवन पर से परदा उठा दें तो कहीं एक धब्बा न दिखाई देगा, इस विषय में अनावृत—नग्न—स्वर्ग की भाँति वह पवित्र है। यह एक बहुत बड़ी सिद्धि है। हिन्दू में इसके न होने का मतलब कुछ न होना है।× इसमें सन्देह नहीं कि मालवीयजी का जीवन सादगी एवं तपस्या का एक पवित्र उदाहरण है।

नम्रता एवं कोमलता की मूर्ति

"मुझे जिस बातने सबसे अधिक प्रभावित किया वह उनकी नम्रता है"—आज से कई वर्ष पहले की भेंट का जिक्र करते हुए मैसूर के दीवान सर मिर्जा मुहम्मद इस्माइल ने लिखा था। मालवीयजी से मिलिए तो आप उन्हें नम्रता की मूर्ति पायेंगे। इस व्यक्ति में ऊपर से नीचे तक हृदय ही हृदय है। शायद ही उन्होंने अपने जीवन में किसी को कोई कटु, चुभने वाली बात कही हो। वह स्वयं सह लेंगे पर दूसरे को पीड़ा नहीं पहुँच

* Knowledge chastened by *tapas* life of action ennobled by *tyaga* mental peace secured by establishing harmony with the out side and polity involving maximisation of liberty for the individual to work out his own salvation these are the elements from which is forged the open sesame to the car of spiritual content —[illegible] Mehta.

× The ancient ethics inculcated sexual purity as the supreme virtue And we do not find a breath of suspicion [illegible] Malviya Strip his private life bare and reputation his it you will find him free from stain pure as the naked heavens All [illegible] considered it is a great achievement For the Hindus [illegible] that one lacks all

सकते। तीव्र मतभेद के बीच भी उनका प्रेम बना रहता है। जैसा कि ईश्वरशरण ने लिखा है—'मालवीयजी से अधिक सहिष्णु कोई नहीं है।" बात कीजिए तो आपको गुरुजनों के वात्सल्य का अनुभव होगा। छोटे से छोटे आदमियों का वह खयाल रखते हैं। मुंशी ईश्वरशरण ने इस सम्बन्ध में एक घटना का जिक्र किया है—"जब वह वकालत करते थे तब मेरा और उनका—दोनों के आफिस एक ही मकान में थे। इससे मेरे क्लर्क के साथ उनका परिचय हो गया। एक बार उन्होंने किसी त्योहार पर मुझे भोजन के लिए निमन्त्रित किया। जब मैं उनके घर पहुँचा तो उन्होंने पूछा कि 'आपके क्लर्क कब आयेंगे?' मैंने कहा कि उनको तो बुलाया नहीं गया था। मालवीय जी को बहुत दुःख हुआ और वह बड़े निराश हो गये। उन्होंने क्लर्क को भी निमन्त्रण देने का सोचा था पर भूल गये। दो बार उन्होंने इसके लिए मुझसे दुःख और निराशा प्रकट की और जब दूसरे दिन आफिस आये तो मेरे क्लर्क से बड़ी क्षमा माँगी।"

वह एक चींटी को कष्ट नहीं दे सकते, आदमी की तो बात क्या? सार्वजनिक हित के लिए भी किसी की आलोचना करना उनके लिए एक कष्टप्रद कार्य है।

× × ×

नम्रता और दया का परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध है। एक के बिना दूसरी नहीं हो सकती। वस्तुतः नम्रता से ही दया एवं करुणा की उत्पत्ति होती है। उनके दया भाव के विषय में अनेक घटनाएँ प्रसिद्ध हैं। जो लोग उन्हें लड़कपन से जानते रहे हैं उन सबका मत है कि उनका हृदय बड़ा कोमल है। किसी प्राणी को जरा भी दुःख में देखते ही वह विकल हो जाते हैं। वैद्य श्रीशिवरामजी का जिक्र मैंने ऊपर किया है। वह उनके यौवन काल की स्मृतियों का जिक्र करते हुए इस सम्बन्ध में लिखते हैं—"एक बार मदन मोहन बिजली की तरह मेरे घर आ धमके। वे बहुत जल्दी में थे।

दया भाव

बोले—'एक कुत्ते के कान के पास, कान ही से मिला हुआ एक बड़ा घाव है। घाव में कीड़े पड़ गये हैं। वह उस तरफ का सिर झुकाये और कान लटकाये हुए भागता रहता है। उसकी दवा बताइए।' मैंने एक अंग्रेजी दवा तजवीज की और इस सम्बन्ध में सलाह के निमित्त डाक्टर अविनाश के यहाँ गया। उनसे सारा हाल कहा। अविनाश हँस पड़े। बोले—'आपकी तजवीज की हुई दवा ठीक है।' मदनमोहन मेरे यहाँ से होकर दौड़े हुए कुत्ते के पास गये। उनके साथ बहुत-से स्कूल के लड़के भी थे। कुत्ता मक्खियों के डर से टट्टर की आड़ में दुःखी होकर बैठा था। मदनमोहन ने एक बाँस में कपड़ा लपेटकर उसे दवा से तर किया और दूर से कुत्ते के घाव में लगाना शुरू किया। कुत्ता भयंकर स्वर से गुर्राता और भूँकता था। वह दवा लगानेवाले को डराकर भगा देना चाहता था पर मदनमोहन अपनी धुन के पक्के थे। वे चुपचाप दवा लगाते जाते थे। दवा लगाने के बाद कुत्ते को आराम मिला और चिल्लाता हुआ कुत्ता थोड़ी देर में आराम से सोने लगा। ऐसा दुखी कुत्ता प्रायः मन की अवस्था में रहता है।"

"मदनमोहन का स्वदेशी प्रेम बहुत पुराना है। उन्होंने प्रयत्न करके उन दिनों देशी तिजारत कम्पनी खुलवाई थी। एक दिन मेरे पास आये। स्वदेशी की बात चली। मालूम हुआ कि उनके हिंसा विरोधी हृदय को एक नया आघात पहुँचा है। मदनमोहन ने कहा—"जूतों के कारण हजारों दीन एवं बेगुनाह पशुओं की जान जाती है। चमड़े के लिए असंख्य पशुओं के मारे जाने का तरीका डाक्टर जयकृष्ण ने मुझे बताया है। उनकी बातें सुनकर मुझे बड़ा दुःख हो रहा है और मेरे मन में यही चिन्ता हो रही है कि किस प्रकार इन गरीब पशुओं के जीवन की रक्षा की जाय।"

× × ×

मालवीयजी की मृदुता और सज्जनता सबको वश में कर लेती है। यदि कोई उनका आतिथ्य ग्रहण करे तो वह सुविधा के लिए कुछ भी

उठा न रखेंगे। रात दिन उनका द्वार लोगों के लिए खुला है। जब वह बीमार पड जाते है और डाक्टरों का आदेश होता है कि कोइ उनसे नहीं

माधुर्य और सज्जनता

मिल सकता उस समय भी यदि कोइ उनसे मिलने आवे और उन्हें मालूम हो जाय तो वह उससे मिलने पर बहुत जोर देते है। एक बार जब मालवीयजी हिन्दू यूनिवर्सिटी के अपने बँगले में थे, तब उनके पुत्र श्री गोविंद ने उनसे आकर शिकायत की कि सब तरह के आदमी बिना बुलाये कमरे के अन्दर आ जाते हे और कभी-कभी तो टेबुल पर पडी चिट्ठियों को भी पढते हैं। मालवीयजी ने धीरे से कहा कि बेचारे कायदा नहीं जानते पर उनका मतलब कष्ट देने का नहीं होता। गोविंद ने, युवकोचित उत्साह के साथ, कहा कि म अब इस ढग को बन्द करने का उपाय करता हूँ। मालवीयजी ने तुरन्त उत्तर दिया—शान्ति पर दृढता के साथ—"जबतक मैं इस मकान में हूँ ये गरीब आदमी बिना किसी रुकावट के आते रहेंगे।"

दूसरों की भावनाओं के लिए मालवीयजी के हृदय में जो आदर का भाव है, जो सदिच्छा है वह उनकी अनियमितता के मुख्य कारणों में से एक है। श्रीईश्वरशरण लिखते हैं—"मैंने देखा है कि वे कहीं काम से, किसी से, मिलने के लिए तैयार हो रहे है कि कोई किसी काम से या केवल दर्शन के लिए ही आ जाता है। वे आगन्तुक को, सकेत से, अपने जरूरी काम की ओर उस समय क्षमा करने की सूचना दे देते हैं किन्तु यदि आगन्तुक इतना समझदार या उदार न निकला और अडा रहा तो समझ लीजिए कि मालवीयजी उसकी दया पर निर्भर करते हैं। वह उसे लौट जाने को कह नहीं सकते।"

× × ×

महात्माजी को छोड हमारे देश के नेताओं में मालवीयजी से अधिक आशावादी शायद ही कोई हो। हिन्दू विश्वविद्यालय उन्हीं के महान् आशावाद का एक ज्वलंत एवं जीवित स्मारक है। जब उसकी योजना

उन्होंने बनाई तो ज्यादातर लोग यह समझते थे कि यह शेखचिल्ली की कल्पना है और पण्डितजी के उर्वर मस्तिष्क में ही रह जायगा। किन्तु इन निराशाओं के बीच उनकी आशा, उनके दृढ़ अध्यवसाय का सहारा लिये, आज एक सत्य के रूप में खड़ी है। उनकी लगन में अद्भुत बल है। वह एक धार्मिक प्रवृत्ति के पुरुष हैं इसलिए जिस काम में उनका दिल लग जाता है उसके लिए उनमें एक धार्मिक कट्टरता, एक पवित्र पागलपन आ जाता है।

महान् आशावादी

एक बार की बात है कि जब लार्ड मिण्टो भारत के वायसराय थे, मालवीय जी उनसे मिले और बिना मित्रों की सलाह लिये ही उनसे प्रयाग में यमुना के किनारे एक बाग का उद्घाटन करने का अनुरोध किया जिसका नाम वायसराय के ही नाम पर रखा जानेवाला था। लार्ड मिण्टो ने स्वीकार कर लिया। जब गोखले को यह बात मालूम हुई तो उन्होंने तुरन्त मालवीयजी से कहा—"पण्डितजी, आपने यह क्या किया? आपके पास रुपया नहीं है और आपने वायसराय से दिन निश्चित कर लिया। अब ज्यादा समय भी नहीं है। कृपया कौंसिल (उस समय सुप्रीम कौंसिल का अधिवेशन हो रहा था) का काम छोड़ कर जाइए और रुपया एकत्र कीजिए। यदि समय पर धन एकत्र न हुआ और आपका अपमान हुआ तो बस हम सब लोगों का अपमान होगा।" गोखले ने सच्चे मित्र की नाईं चिन्ता प्रकट की, मालवीयजी ने उन्हें समझा कर हँसते हुए कहा—'धन्यवाद है। पर इसके लिए चिन्ता न कीजिए। रुपया आ जायगा, इस चन्दे के लिए मैं कहीं न जाऊँगा। मेरे पत्र रुपया लावेंगे।" वह कहीं न गये, उनके पत्रों से ही समय पर रुपये आ गये और निश्चित तिथि को शिलान्यास हुआ। निरन्तर प्राप्त होने वाली सफलता ने उनकी आशावादिता को और बढ़ा दिया है।

१९३१ ई० के आरम्भ में जब कांग्रेस एवं सरकार के बीच समझौता हुआ और महात्मा जी गोलमेज कान्फ्रेंस में जाने के पूर्व वायसराय

मिले तब भी मालवीयजी की आशावादिता का जबर्दस्त प्रमाण मिला था। अंतिम समय में जब वह सब तैयारी कर चुके थे और विलायत जाने के लिए बम्बई पहुंच गये थे तब महात्माजी एवं सरकार के बीच बातें तै न पाने के कारण ऐसा मालूम होने लगा था कि कांग्रेस गोलमेज सम्मेलन में भाग न ले सकेगी। बातचीत अब टूटी, अब टूटी, यह हो रहा था पर मालवीयजी को सफलता में इतना विश्वास था कि गाँधी जी के रुक जाने से जब वह बम्बई से उत्तर की ओर आये तो सारा सामान एक कमरे बम्बई में ही यह कहकर छोड़ आये कि अभी तो यहाँ लौट कर आना ही है। वही हुआ। जो असम्भव दिखता था वह सम्भव हो गया और मालवीयजी महात्माजी के साथ समय पर जहाज से रवाना हो सके।

मालवीयजी की अनियमितता का एक कारण जहाँ दूसरों की भावनाओं के प्रति उनकी सदिच्छा एवं आदर है वहाँ दूसरा जबदस्त कारण उनकी आशावादिता है। अपने अद्भुत् मानसिक प्रयत्न द्वारा उन्होंने अपने अन्दर यह दृढ़ विश्वास पैदा कर लिया है कि जिस काम को दूसरे एक घण्टे में पूरा करेंगे उसे मैं पन्द्रह मिनट में ही कर लूँगा। फल यह होता है कि ४५ मिनट यानि किसी समय ज्यादा भी हो जाँय या बीत भी जायँ तो उनकी आशा ज्यों की त्यों बनी रहती है। उनके दैनिक जीवन में यह दृढ़ आशावादिता और यह अनियमितता कुछ ऐसे विचित्र ढंग पर पाई जाती है कि आश्चर्य होता है। उनकी आशा ने अनेक बार उनकी अनियमितता पर विजय प्राप्त की है। इस सम्बन्ध में कई घटनाओं का उल्लेख किया जाता है। मुंशी ईश्वरशरण लिखते हैं—

"एक बार की बात है कि वे गोरखपुर गये थे और वहाँ से हम लोगों को एक ट्रेन पकड़नी थी। हम लोग निबटकर स्टेशन को रवाना हुए। मालवीयजी के एक गरीब सम्बन्धी का मकान रास्ते में ही पड़ता था। मेरे बहुत मना करने पर भी वे उसके घर गये, वहाँ भोजन किया और

जल्दी-जल्दी स्टेशन पहुँचे। गाडी चल चुकी थी, वह दौड़ उसमें चढ़ गए। अपने डिब्बे से उन्होंने मुस्कराते हुए मुझसे कहा—"आखिर मेरी बात ठीक हुई। मैंने भोजन कर लिया और ट्रेन भी पकड़ ली।"

एक घटना इससे भी विचित्र है। एक बार की बात है कि मालवीयजी और स्व० सर सुन्दर लाल साथ ठहरे हुए थे। कहीं जाना जरूरी था पर ट्रेन का स्टेशन पर आने का जो समय था उससे एक घण्टा अधिक हो गया था। मालवीयजी स्टेशन को रवाना हुए। सुन्दरलालजी ने बहुत मना किया किन्तु उन्होंने न माना। बोले—"पण्डितजी, आप चिन्ता न करें, कभी-कभी गाड़ियां लेट भी होती हैं। यह गाड़ी भी 'लेट' हो सकती है।" वे गये और उन्होंने वही ट्रेन पकड़ी। यह गाड़ी उस दिन ढाई घण्टे 'लेट' थी।

रेलगाड़ियों के सम्बन्ध में तो मालवीय जी के जीवन के साथ अनेक घटनाएँ जुड़ गई हैं। बहुत ही कम बार ऐसा होता है कि वह समय पर स्टेशन पहुँचते हों। यौवन-काल में तो कई बार इलाहाबाद आदि में उनके लिए गाड़ियों को दो चार मिनट ज्यादा रुकना पड़ता था। किन्तु कार्याधिक्य तथा उपर्लिखित कारणों से होनेवाले अनियमितता के बावजूद उनकी आशावादिता सदा पनपती रही।

जब मालवीय जी पुरानी सुप्रीम कौंसिल के सदस्य थे तब का एक सम्बन्धी एक घटना उल्लेखनीय है। मालवीयजी का कौंसिल में एक प्रस्ताव पेश करना था। वे देर से स्टेशन पहुँचे, अन्तिम ट्रेन जा चुकी थी। कोई दूसरी ट्रेन की सम्भावना न थी फिर भी वे प्लेटफार्म पर प्रतीक्षा करते रहे। संयोग वश वायसराय की स्पेशल ट्रेन आ रही थी। उसमें चढ़ गये।

दिल्ली के कांग्रेस—सरकार के समझौते में, इलाहाबाद के एकता सम्मेलन में अनेक कठिनाइयों के बीच उनकी यह आशावादिता पर्वत की तरह दृढ़ रही है। इस दृढ़ आशावादिता के मूल में उनका आस्तिकता ही उनकी आशा का कवच है। वह दृढ़ आशावादी हैं इसलिए कि

दृढ़ आस्तिक हैं। हम देखते हैं कि आस्तिकता के मूल में ही आशा और विश्वास है। शुद्ध आस्तिक का विश्वास कभी नष्ट नहीं होता। महात्मा गाँधी और मालवीयजी दोनों के जीवन इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

× × ×

चंदा एकत्र करने की मालवीयजी की शक्ति भी अद्भुत है। देश में, इस विषय में, उनका कोई मुकाबला नहीं कर सकता। ऐसी ऐसी जगहों में वह जनहितकर-कार्यों के लिए रुपये लाते हैं जहाँ देश के लिए सहानुभूति का कोई भाव नहीं। इसी लिए देश भर में वह 'महान् भिक्षुक' के नाम से प्रसिद्ध हैं। यही नहीं कि वह राजा महाराजाओं से ही चंदा लाते हों। उनकी वक्तृत्वशक्ति सभाओं में बैठे दर्शकों को भी प्रभावित करके उनसे चंदा ले लेती है। सर विश्वेश्वरैया ने ऐसी एक सभा का वर्णन करते हुए लिखा है—"मैं कलकत्ता की ऐसी एक सभा में मौजूद था जिसमें उन्होंने हिन्दी में बड़ा उत्साहवर्द्धक और जोरदार व्याख्यान दिया था। मेरा ख्याल है कि यह जनवरी १९१२ ई० की बात है। उसमें धनी जमींदार, मारवाड़ी व्यापारी और दूसरे लोग बड़ी रकमों के वादे के साथ आगे आये, बहुतों ने वहीं करेंसी नोटों के बण्डल के बण्डल मालवीय जी को अर्पण कर दिये। पण्डितजी के उत्साह जनक भाषण ने श्रोताओं को वश में कर लिया था और रुपयों की वर्षा हो रही थी।"

महान भिक्षुक

यह उनकी आशावादिता और भिक्षा माँगने की अपनी शक्ति पर उनका दृढ़ विश्वास ही है कि हिन्दू विश्वविद्यालय जैसी एक महान् संस्था का सारा भार सिर पर लेकर भी वह देश के विविध कार्यों में अपने को फँसा देते हैं। यूनिवर्सिटी की आर्थिक अवस्था खराब हो रही है, कितनी ही योजनाएँ धनाभाववश अपूर्ण पड़ी हैं पर वह देश के अन्य कार्यों में लगे हैं। उन्हें विश्वास है कि जिस दिन उठेंगे, आवश्यक धन एकत्र कर लायेंगे।

मालवीयजी की कार्यशक्ति भी असाधारण है। महात्माजी अपने अद्भुत संयम, अनुशासन तथा नियमितता के कारण अपने विस्तृत कार्य क्षेत्र का उत्तरदायित्व प्रसन्नतापूर्वक वहन कर रहे हैं पर मालवीयजी इस विषय में शिथिल और अनियमित होते हुए भी कार्य करने की अद्भुत क्षमता रखते हैं। देश में दूसरा नेता नहीं है जिसने इतने विविध प्रकार के कार्यों का भार ले रखा हो। हिन्दू विश्वविद्यालय का ही काम इतना अधिक है कि उसमें शक्तिमान से शक्तिमान एक आदमी का सारा समय लग सकता है पर मालवीय जी ने विश्वविद्यालय के कार्य के अतिरिक्त हिन्दू महासभा, सनातन धर्म महासभा, ब्राह्मण महासभा, सेवा-संघ, भारतीय स्वदेशी-संघ, कॉंग्रेस तथा कितनी ही अन्य संस्थाओं का कुछ न कुछ कार्य अपने ऊपर ले रखा है। फिर इसके अतिरिक्त झगड़े सुलझाने एवं समझौता कराने के कितने ही काम उनपर आ पड़ते हैं। उनमें निरन्तर यात्रा करने की असाधारण शक्ति है। आज आप उन्हें लाहौर में व्याख्यान देते और नेताओं से सलाह मशविरा करते देखेंगे तो कल इलाहाबाद में और तीसरे ही दिन बनारस में दो-तीन घण्टे ठहरकर कलकत्ता की यात्रा करते पायेंगे। निरन्तर यात्रा की ऐसी शक्ति मैंने और किसी में नहीं पाई। भारत का शायद ही कोई नगर ऐसा हो जिसमें उनके भाषण न हुए हों। अब भी, जब कि अत्यन्त दुर्बल हो गये हैं, वह बंगाल गये थे वहाँ से लौट ही थे कि महात्माजी के ऐतिहासिक उपवास की सूचना मिली। झट हिन्दू नेताओं को तार दिये मीटिंग बुलाई अपीलें निकालीं और बम्बई दौड़े। बम्बई में हरिजनों के नेताओं के साथ हुए समझौते के लिए उन्हें कितना प्रयत्न करना पड़ा इसे सब लोग नहीं जानते। रात दिन के परिश्रम से शरीर और क्षीण हो गया पर वह समस्या सुलझी ही थी कि हिन्दू मुस्लिम सिख एकता के विचार से पंजाब दौड़े, वहाँ से फिर प्रयाग

८ अद्भुत कार्य-शक्ति

र बंगाल से फिर इलाहाबाद ! निराशाओं, कठिनाइयों और बाधाओं बीच ऐक्य सम्मेलन का कार्य जो इतनी दूर तक बढ सका था यह हीं के परिश्रम, आशावादिता और कार्यशक्ति का परिणाम था।

× × ×

अपने मित्रों के प्रति मालवीयजी की वफादारी की अनेक घटनाएँ सिद्ध है। इनमें एक का वर्णन मुंशी ईश्वरशरण ने किया है—"पुरानी

मित्रों के प्रति वफादारी

व्यवस्थापक सभा में किसी बिल पर मालवीयजी और स्व० श्री गोखले ने परस्पर-विरोधी विचार प्रकट किये। फल-स्वरूप जहाँ श्री गोखले की माचारपत्रों ने तीव्र आलोचना, भर्त्सना तक, की वहाँ मालवीयजी की रता एवं निर्भीकता की प्रशंसा की। जब बिल पर विचार चल ही रहा तभी एक दिन सयोग वश रेल्वे ट्रेन में मालवीयजी से भेंट हुई। वे बडे दुःखी और सुस्त (dejected) थे। उन्होंने मुझसे कहा—"गोखले यर हैं और मैं वीर हूँ ! यही वे कहते हैं। आः ! कैसा दुःख है ! यह त कलेजे को टूक टूक करनेवाली है। मैं चाहता हूँ कि मैं भी उनके गोखले के) साथ होता। लेकिन मेरे विश्वास ने इसे असम्भव कर या है। यदि अपने विश्वास के प्रतिकूल मैंने आचरण किया तो मैं पना यज्ञोपवीत तोड दूँगा !" वह बडे ही भावावेग में थे और अपने त्र की टीका को बहुत अनुभव कर रहे थे।"

इन घटनाओं में मालवीयजी विविध रूपों में व्यक्त हुए हैं। उनकी स विविधता में ही उनके गुण दोष, सफलता असफलता छिपी है। सने लोगों को श्रद्धा पूर्वक उनके चरणों पर झुकाया है और इसने लोगों में इनके प्रति विरोध और गलतफहमी भी पैदा की है। पर उन्हे ठीक तरह समझने के लिए हमें यह देखना पडेगा कि उनके इस महान् एवं विविधतामय व्यक्तित्व के पार्श्वभाग में—'बेक ग्राउण्ड' में—क्या है। इस दृष्टि से, उनकी इन स्मृतियों एवं गुणों के उल्लेख के बाद उनके व्यक्तित्व का विवेचन एवं विश्लेषण करना जरूरी हो जाता है।

—चार—

व्यक्तित्व का विश्लेषण

मालवीयजी के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में विचार करते समय सबसे पहली बात याद रखने की यह है कि वह एक सच्चे ब्राह्मण हैं।

ब्राह्मण

यहाँ ब्राह्मण शब्द से मेरा तात्पर्य इस शब्द में छिपे सम्पूर्ण इतिहास से है। उन्हें ब्राह्मणवाद की गौरवपूर्ण विरासत मिली है। वह इस युग के प्राणी नहीं हैं। उनमें जो कुछ असलियत है, तत्त्व है, सब प्राचीन है और युग-युग से सिलसिलेवार रक्त में मिलता आया है। उनके व्यक्तित्व के पार्श्वभाग में वह युग है जिसमें 'मूवी' नहीं, 'टाकी' नहीं। वह पुराणों के युग की स्मृति की भाँति, इस टूटते गिरते और फिर बनते हुए जन रव और कोलाहल के संसार में, एक आश्चर्य की तरह घूमते फिरते हैं।

ब्राह्मण की सारी विरासत उन्होंने पाई है। वह अंग्रेजी के उत्तम वक्ताओं में हैं पर भाषण के इस विदेशी रूप के नीचे उनके उत्साह का, शक्ति का केन्द्र संस्कृत का गंभीर अध्ययन है।

ब्राह्मण की विरासत

इस फौआरे को कभी-कभी हम पश्चिमी ढंग से सजे या पश्चिम के प्रभाव से पूर्ण बगीचों में भी छिड़काव करते देखते हैं, पर उसके मूल में, जो जल-स्रोत है वह पाइपों का नहीं, अज्ञात चट्टानों के नीचे से आनेवाली धारा का है। इसीलिए जहाँ उसमें एक स्निग्धता है वहाँ कठोरता भी है। कठोरता इस मानी में नहीं कि वह दूसरों को जान बूझकर कष्ट देता है। नहीं, इस मानी में कि वह सामने, इस युग को देखकर बहुत कम चलता है। वह जब बिजली के हण्डों से जगमग सड़क से निकलता है, जब अंग्रेज मुसलमान, अछूत प्रतिनिधियों की व्यवस्थापक सभा में बैठता है तो आँखें मूँदकर उस युग का स्मरण करता रहता है जहाँ शूद्र ब्राह्मण की सेवा कर रहे हैं, ब्राह्मण ...

कर्मकाण्ड में निमग्न है और सब-कुछ ठीक ठीक चल रहा है। ब्राह्मण में तपस्या ने इतनी शक्ति पैदा करदी है कि अपने शाप से वह राजदण्ड को लज्जित कर सकता है। जहाँ सब उसकी श्रेष्ठता को स्वीकार कर उससे दबे हुए हैं और उसके नेतृत्व में ही संसार के दुर्गम मार्ग पर चलना चाहते हैं।

वर्तमान युग की खींचा-तानी ने उन्हें उस उपनिषद् काल तक पहुँचने न दिया जहाँ योगी और तपस्वी ऋषि ब्राह्मण शूद्र के भेद के के ऊपर उठ गये थे, जहाँ उन्होंने मनुष्य के नाशमान शरीर में 'आत्म वत् सर्वभूतेषु' का अमृत छककर पिया था और मानवात्मा में विश्वात्मा को प्रत्यक्ष किया था। यह तपस्वी ब्राह्मण ब्राह्मण-काल का स्वप्न देखता है जहाँ यज्ञ हो रहे हैं, हवन हो रहे हैं। पवित्र प्राकृतिक दृश्यों के बीच देवता का अमल धवल मन्दिर है, नहा धोकर दिव्य वस्त्र पहने और ब्राह्मण बैठकर पूजा कर रहे हैं, उनका चन्दन चर्चित शरीर, उनका दमकता हुआ चेहरा, जलते हुए धूप दीप और अगुरु वातावरण को मादक, मधुर और स्वप्नमय बना रहे हैं, जिसकी परिधि में कोई अशुद्ध—मलिन फटे चीथड़ोंवाला शूद्र आकर वातावरण के सामञ्जस्य को भंग नहीं करता है!

× × ×

क्या यह आश्चर्य सा प्रतीत नहीं होता कि मालवीयजी-जैसा नव नीतोपम कोमल हृदय रखनेवाला मनुष्य, जिसके प्राणों का अणु अणु दया के अमृत से सींचा गया है, असेम्बली में लड़कियों के व्याह की अवस्था १२ वर्ष से कम न होने के बिल के विरुद्ध तक करता है और विरुद्ध सम्मति देता है? क्या यह आश्चर्यजनक नहीं है कि जो व्यक्ति किसी को जरा भी दुःख में देखकर रो पड़ता है, अछूतों के कष्टों का वर्णन करते-करते जिसकी आँखों में आँसू आ जाते हैं और जेब से रूमाल निकालने की आवश्यकता पड़ती

एक पहेली!

है यह शास्त्रों के आधार पर लोगों को समझाता फिरता है कि इतना दूर तक मंदिर में अस्पृश्य को जाना चाहिए और इसके आगे नहीं!

मुझे एक घटना याद आती है। स्व० आचार्य रामावतार शर्मा जब हिन्दू विश्वविद्यालय के प्राच्य विद्या विभाग के प्रिंसिपल पद से अलग हुए तो नवीन आचार्य की आवश्यकता हुई। उस समय अपनी संस्कृत की योग्यता एवं पाण्डित्य के लिए प्रसिद्ध, साथ ही अंग्रेजी के एम० ए०, एक विद्वान् से नियुक्ति के बारे में बातें चलीं। और तै-सी हो गई। उपर्युक्त सज्जन की वेश भूषा इतनी दिव्य और रहन-सहन इतना सात्विक है कि कोई आदमी भूलकर भी उनको सिवा ब्राह्मण के दूसरे कल्पना नहीं कर सकता। उनको देखकर ही एक पवित्र एवं सात्विक ब्राह्मण की याद आती है। उनका नाम भी कुछ वैसा ही है। आज भी बहुत ही थोड़े आदमी जानते हैं कि वह किस जाति के हैं। पर वह ब्राह्मण नहीं, कायस्थ थे। जब मालवीयजी को यह पता चला तो उन्होंने साफ साफ तो नहीं कहा पर किसी बहाने से उन्हें जवाब दे दिया। क्या इस बीसवीं शताब्दी में यह आश्चर्यजनक नहीं मालूम पड़ता! क्या यह आश्चर्यजनक नहीं है कि किसी विजातीय या हरिजन से छू जाने के बाद भोजन के पूर्व उन्हें शुद्ध होने की आवश्यकता प्रतीत होती है!

पर नहीं, इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। हमें आश्चर्य इसलिए लगता है कि हम उन्हें बीसवीं शताब्दी का प्राणी समझने की गलती कर बैठते हैं जिसका पथ प्रदर्शक ध्रुवतारा बुद्धि है। यदि इसका कारण हम यह याद रक्खें कि उनका निर्माण कैसे हुआ है, उनके व्यक्तित्व के पार्श्व भाग में क्या है तो हम यह भूल नहीं सकते कि वह उस युग के हैं जिसमें बुद्धि गौण एवं विश्वास ही प्रधान है। पर जान बूझकर किसी का दिल दुखाने या अपमान करने के लिए ऐसा नहीं करते। यह बात तो उनके जीवन के मूल में ही युग-युग से मिली हुई है। वह उस युग के उपकरणों से निर्मित हुए हैं जिसमें सब कुछ ईश्वरे

सीध चला जा रहा था, जिसमें ब्राह्मण बालक श्रेष्ठ होकर, प्रणाम लेकर भी, छूत मानकर भी गाँव के बूढे अछूत को काका कहकर बुलाता था। आज के युग में दया का नहीं, अधिकार का जो स्वर है, आज का मनुष्य बराबरी का जो दावा लेकर खड़ा हुआ है और जिसमें वह पैत्रिक श्रेष्ठता व धनी को मानने से इन्कार करता है, उसे वह देखते है, समझते हैं, शायद उससे सहानुभूति भी प्रकट करते हैं पर ये सब दृश्य उनके लिए आश्चर्यमय हैं, इन्हें देखकर उनका वह शान्ति का स्वप्न टूट जाता है, इस कम कोलाहल में ब्राह्मण की साधना ठीक ठीक चल नहीं पाती। वह समझते हैं आज जो युग बराबरी का, अधिकार का दावा लेकर उठ खड़ा हुआ है वह सब ब्राह्मण को समुचित आदर देने से, उसके आगे सिर झुकाने से भी इन्कार करेगा। ब्राह्मणवाद के गौरवमय अतीत और सस्कार को, उसकी महान् देन को वह इस तरह मिटते कैसे देख सकते हैं?

वह चिन्ता ही उनके सुधारक की सर्वोच्च सीमा तक उठने में बाधक है। अतीत से मिली हुई विरासत में से, जो कुछ दिव्य था केवल उसे ही उन्होंने नहीं अपनाया, मणि में जो जंग लग गया, जो मैल चढ़ गई उसे भी पकड़ रखा है। उन्हें भय है कि जंग निकालने, मैल छुड़ाने में कहीं वह मणि भी टूट न जाय। इसलिए अतीत को उन्होंने, जिस रूप में पाया, उसी रूप में ग्रहण कर लिया है। यदि वह दिव्य को लेकर ही चलते, यदि वह उन सब काँटों को दूर कर सकते जो किसी जमाने में फूल की रक्षा के लिए आवश्यक रहे होंगे पर आज उसका सारा रस चूसकर उसकी जड़ को कमजोर कर रहे हैं, यदि वह कतिपय प्रथाओं एवं रीति के बन्धनों को तोड़कर ऊँचा उठ सकते तो वर्तमान युग के न केवल भारत के वरन् विश्व के सुधारकों में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त करते।* शक्ति का अक्षय कोष उनमें भरा पड़ा है पर वह उसका

अतीत के प्रेमी

* Had Pt Malviya swept away the dingy cobwebs from before his path he would have gone down in history as one of the greatest

उपयोग करने से हिचकते हैं। उनमें जो दया है, मानवता के प्रति आ करुणा है, जो सहिष्णुता और क्षमा है, उसके साथ उन्हें भगवान् ने आ दिव्य चरित्र, जो स्निग्ध वाणी और ज्ञान एवं पाण्डित्य का जो वैभव दिया है, उनमें जो लगन, जो त्याग का भाव है, दुनिया में बहुत ही कम व्यक्तियों में पाया जाता है। उनको जीवन में जो मौके मिले वैसे शायद ही दूसरे को मिले हों पर हिचकिचाहट में वह चुप रहे और समय उनके सामने से उनकी ओर देखता देखता निकल गया।

× × ×

कोमलता गुण भी, दुर्गुण भी

सच बात तो यह है कि मालवीयजी की कोमलता एवं नम्रता जहाँ उनका एक महान गुण है, जो उनके अन्त सौंदर्य को प्रकट करता है, वहाँ वह उनका एक बड़ा दोष भी है और उनके आगे बढ़ने में उससे बाधा भी मिली है। जीवन को सत्य से अभिभूत करने के लिए, उसके द्वारा सत्य को प्रकाशित करने के लिए मनुष्य को अनेक बार निष्ठुर होना पड़ता है। यह हिंसा नहीं है, यह मोह पर ज्ञान की विजय है। जरूरत पड़ने पर फोड़े का आप्रेशन करना पड़ता है पर दुनिया में ऐसे बहुत लोग हैं जो फोड़े का आप्रेशन देख नहीं सकते—उसके लिए सम्मत नहीं होते। मैंने कई माताओं को देखा है जिनके बच्चे फोड़े की पीड़ा से तड़प रहे हैं पर आप्रेशन की बात चलाते ही उनकी आँखों में आंसू भर आता है, वे कहती हैं—"इसी तरह फूटकर बह जाय तो अच्छा हो भैया!" यह मनोविज्ञान का सवाल है। हम यह नहीं कह सकते, जैसा बहुत से सुधारक कहेंगे, कि वे अपने बच्चों को कम प्यार करती हैं या उनका कल्याण नहीं चाहतीं। ऐसा भी नहीं कि वे इसे समझती ही न हों पर

reformers of the age × × × The milk of human kindness ... flowing within him would have successfully prevented all kind of egotism seeking establishment of absurd superiorities

Pillars of the Nat...

क्रिया,—ढग—'प्रोसेस'—उनके लिए दु खदायी है। मालवीय जी की दया भी कुछ ऐसी ही है।

वह निष्ठुर नहीं हो सकते अथवा यों कहें तो ज्यादा सत्य होगा कि सुधारक को, समाज निर्माता को किस जगह कितना और किस प्रकार निष्ठुर होना चाहिए, इसे नहीं जानते। उनके हृदय पर किसी को दुखी देख तुरन्त ठेस लगती है, उनकी दया तुरन्त उनको अभिभूत कर लेती है। वह जरूरी से जरूरी काम के लिए उसे यों ही छोड़कर आगे नहीं बढ़ सकते। यह ब्राह्मण की व्यक्तिधर्मी दयाशीलता है। यह महान् है और उच्च है। यह हृदय के एक पक्ष को बड़े उज्ज्वल रूप में सामने रखती है पर दूसरा पक्ष इसके कारण तिरस्कृत हो रहा है, यह देखने का अवसर भी नहीं देती। संसार में दया का भी विभाजन किया जा सकता है। मालवीयजी की दया उस मिल या कारखाने के मालिक की दया के समान है जो मजदूरों को गर्दे, थके, धुँए और ठण्ड के बीच काम करते देख दया का अनुभव करता है, उनके लिए औषधालय खोल देता है, उनमें किसी को दुखी देखा तो उसकी सहायता कर देता है पर स्वयं कारखाने को ही, जिससे रोग, शोक, दु ख, बीमारियाँ एवं अमानुषिकता पैदा होती है, नहीं उठा सकता। शोक के, दु ख के मूल में जो कारण हैं उन्हें दूर करने की अपेक्षा वह तात्कालिक शोक और दु ख को दूर करने में लग जाते हैं। स्वभावत मालवीयजी में व्यक्तिवादी ही प्रधान रूप से विकसित हुआ है, समाजवादी उसके विकास में ही दब गया है। महात्मा गाँधी की भाँति यदि वह इन दोनों को साथ साथ बढ़ा सकते तो आज एक युग प्रवर्तक ऋषि होते।

× × ×

समाज का निर्माता होने के लिए समय समय पर निष्ठुरता का व्यवहार करना पड़ता है। जीवन में ऐसे अवसर आते हैं जब निष्ठुर होना भी महान नैतिक साहस का द्योतक होता है। मालवीयजी में यह

बात नहीं है—है भी तो नगण्य मात्रा में। दूसरों को निराश और दुःख करने में उनको दुःख होता है। उनका हृदय दूसरों के विचारों का उल्लंघन करने, निष्ठुर होने के लिए तैयार नहीं होता। फिर निर्दयता की भी उनकी दूसरी परिभाषा है। 'नहीं' कहना ही उनके लिए निर्दयता का द्योतक है।

निष्ठुरता का अभाव

बहुत ही कम बार आप उन्हें किसी अनुरोध से इन्कार करते सुनेंगे। जब इन्कार करते हैं या कर्तव्य-वश किसी का विरोध करना पड़ता है तो कर्तव्य-पालन में उन्हें उतनी प्रसन्नता नहीं होती जितना दूसरे का विरोध करने से दुःख होता है।

अपनी हृदय की कोमलता के कारण ही वह एक मार्ग का दृढ़ता से पकड़ नहीं पाते, एक दृढ़ निश्चय नहीं कर सकते। इस दृढ़ निश्चय में किसी का विरोध करना ही पड़ेगा, किसी की बुराई बतानी ही पड़ेगी। यह उनके लिए एक दुःखद कार्य है। उनका हृदय मानों प्रश्न करता है कहता है—'जो बुरा दीख रहा है, कहीं उसमें कोई भलाई न छिपी हो!' निर्णय करने में भूल हो सकती है और यदि भूल हुई तो उससे किसी को क्षति पहुँच सकती है। इसके विपरीत यदि निर्णय भविष्य के लिए स्थगित कर दिया गया तो निर्णय करने का अधिकार सुरक्षित रहता है। तीर अपने हाथ में रहता है। फिर निर्णय करने में एक व्यक्ति या दल को नाराज़ करना ही पड़ता है। और नाराज़ करने का मतलब खुद दुखी होना है। इसलिए जहाँतक बन पड़ता है वह 'इस पार या उस पार' की नीति ग्रहण नहीं करते। इसे उन्होंने माँज माँज कर कला का रूप दे दिया है।

अल काफिर ने लिखा है—"वह इस अद्भुत कार्य में, अपने प्रतिद्वंद्वी को थका देनेवाले कुश्तीबाज की प्रसन्नता के साथ शामिल होते हैं। इसी लिए तत्त्वतः वह एक 'डिप्लोमैट' है। उनके दयालु चेहरे पर गणना के व्यूहीकरण का चिन्ह है, तराजू के दोनों पल्डों को 'बैलेंस' करनेवाले

मन की एक रेखा है। सामान्यतः उनके कार्यों के पीछे, एक अत्यन्त दूरदर्शी मन की—सदा युद्ध क्षेत्र का निरीक्षण करने एवं विभिन्न शक्तियों की तुलना करते रहनेवाले मन की गणना होती है। राजनीतिक मसला पर वह प्रश्न के दोनों पहलुओं को इतनी स्पष्टता के साथ देखते हैं कि किसी पक्ष में शामिल होना पसंद नहीं करते।" ❀ इस चित्रण में कुछ भूल हो सकती है पर लेखक ने जो परिणाम निकाला है वह बहुत करके ठीक है। जबतक देश में कांग्रेस का एक ही दल था, लिबरल, माडरेट, परिवर्तनवादी, अपरिवर्तनवादी, असहयोगी का झगड़ा न था तबतक वह कांग्रेस मंच के प्राण थे और कांग्रेस के चोटी के नेताओं में रहे पर १९२० के बाद से उनके लिए एक निश्चित मार्ग को ग्रहण करना कठिन हो गया। इसमें पाखण्ड की कोई बात नहीं है। वह प्रत्येक दल और प्रत्येक वस्तु में कुछ अच्छाई देखते हैं। उनको लिबरलों की गंभीर चिन्तना शक्ति भी पसंद है, क्रांतिकारियों की ज्वलन्त देशभक्ति भी उन्हें 'अपील' करती है, स्वराजियों के असाधारण संगठन एवं सरकार से लड़ने की विचित्र नीति में भी कुछ अच्छाई उन्हें मालूम होती थी और 'रिस्पांसिव कोआपरेशन' दल वालों की नीति भी एक प्रकार से ठीक प्रतीत होती थी। इसीलिए मजबूती के साथ कुछ निश्चित सिद्धान्तों को लेकर कोई दल वह कभी बना न सके। आज भी वह सब दलों के मिश्रण से हैं। वह कांग्रेसवादी भी हैं, महासभावादी भी, वैध आन्दोलक भी हैं। पर पूरी तरह वह न कांग्रेस में शामिल होंगे, न और किसी दल में। वह कांग्रेस के हैं पर कांग्रेस-वादी

❀ He indulges in the feat with the joy of a wrestler tiring out his opponent. Essentially therefore he is a diplomat. His kindly face has a note of calculating strategy of a mind delicately balancing the scales. Behind his actions there is generally the cool calculation of a singularly far sighted mind, a mind always surveying the field weighing forces and estimating position. On political questions he sees both sides of the question so clearly that he prefers to take neither.'

नहीं हैं वह लिबरल ह पर लिबरल दल के नहीं हैं। पार्टी के बंधन व पार्टी की सकुचितता में बँधकर रहना उनकी प्रकृति क विरुद्ध है। इस जहाँ उनम मानवता के कई श्रेष्ठ गुणों की रक्षा हुई ह वहाँ साति एव उनके दृढ नेतृत्व से होनेवाले लाभों से समाज और देश वंचित म रहा है।

× × ×

पर ऐसा भी नहीं कि वह कभी निर्णय करत ही न हों। कई बार वे बडे निश्चय और बड़ी दृढता से अपना मत प्रकट करत ह पर ऐसे अव

दृढता ह, पर भावावेश की—

सरों पर जो दृढता दिखाइ देती ह वह मनन ए विचार के बाद किसी निश्चय पर पहुँचन का दृढ बहुत कम होती है, भावावेश की दृढता अधि होती है। पर यह भावावेश भी ऐसे सुदर अवसरों पर और ऐसे मनोहर रूप में प्रकट होता रहा है कि वह उनका भूषण बन गया ह। यह भावा वेश उनकी आत्मा का पक्ष है, उनकी मानवता, ५० वर्ष की निरन्तर अ सेवा से अर्जित उनकी मर्यादा एव स्थान का रक्षक ह। माडरेटों ने निराशा के साथ, अपने किले पर इस भावावेश को प्रहार करते देखा है गरमदल वालों के हृदय को कितनी ही बार इस भावावेश ने प्रसन्नता और गरमी पहुँचाइ ह इस भावावेश ने समय समय पर सरकार को सिखाया ह और मुसलमान इसीके कारण भय मिश्रित आश्चर्य स उनकी ओर देखते रहे हैं।* क्योंकि भावावेश कोइ बधन नहीं मानता, उसक कोइ कानून नहीं, कोइ राज-मार्ग नहीं। किस तरह, कब उसका उद होगा और किस तरह उससे बरतना चाहिए इसे कोई नहीं जानता।

मैंने ऊपर कहा है कि कई बार वह निश्चय करते हैं पर वह निश्च भावावेश का, हृदय का निश्चय होना है विचार और मनन के पश्च

* They have been the despair of the Moderates th of Extremists the eye openers of the Govt the secret terror of the Muslim heart

Pillars of the ...

चा हुआ दिमाग का निश्चय नहीं होता । जैसे असहयोग और ाग्रह आदोलन का उन्होने कभी समर्थन नहीं किया पर १९३० ई० में, काग्रेस पर सरकार ने प्रहार किया एव जब उन्होंने देखा कि स्वय कों एव अच्छे कुल की कोमल बहनों पर लाठियाँ पड रही है तब का हृदय तिलमिला उठा । भावावेश की दिव्यता मे मस्तिष्क की बकिचाहट हवा हो गई । फलस्वरूप लोगों ने उन्हे जल म पाया । में अपने व्यवहार से उन्होंने एक समय असहयोगियों एव स्वराजियों अप्रियता प्राप्त की थी, वहीं समय आया जब हमने देखा कि वह ज यहीं, वल्कि वहीं लोगों में जान डालते, निराश युवकों को उत्साहित ते, मजिस्ट्रेटों की अवज्ञा करते और कानून तोडते फिरते हैं । ऐसा ? क्या इसलिए कि जनता का नेतृत्व अपने हाथ में आ जाय ? नहीं, चाहते तो कभी का इसे प्राप्त कर सकते थे । वह इसलिए कि जब कार ने एक ऐसे महापुरुष पर हाथ रखा, जो ससार के इतिहास अपनी सज्जनता में बेजोड है, तो उनका अन्त करण चोट खाकर उठ डा हुआ ।

इस प्रकार का यह एक ही उदाहरण नहीं है । असहयोग के मध्यान्ह ए में, युवराज के बहिष्कार के समय, लोकप्रियता खोकर भी उन्होंने उन्हें हिन्दू विश्वविद्यालय मे निमत्रित किया था

नैतिक साहस

और उसी हिन्दू विश्वविद्यालय के कोर्ट की मीटिंग दश के प्रति महात्मा गाधी का सेवा की प्रशसा करते हुए उनकी गिरफ्तारी पर उन्हें धन्यवाद देने का प्रस्ताव पास कराया । यह एक डे साहस का काम था । लेकिन उनका हृदय इसे किये विना रह न का और एक सुप्रसिद्ध लेखक के शब्दों मे कहा जा सकता है कि "इस ोटी सी बात ने हिन्दू विश्वविद्यालय को एक राष्ट्रीय सस्था के पद पर हुँचा दिया और नैतिक महानता की दृष्टि से केवल (महात्माजी द्वारा) बारदोली सत्याग्रह का स्थगित किया जाना ही एक ऐसा कार्य है जो

इससे ऊँचा जा सका है।"*

इसी प्रकार कानूनी प्रतिबंध को भग करके कलकत्ता में प्रवेश करना भी उनका एक अत्यन्त गौरवपूर्ण कार्य था। मजि... एकांगी अफवाहों के आधार पर शान्ति भग की आशंका का बा... पर यह आज्ञा निकाली थी। उस अफवाह के विरुद्ध एक दीर्घ जीवन-व्यापी सेवा का 'रेकर्ड' था—भाषण की सौम्यता, वाणी क... रता एव शान्त शब्दों के निर्वाचन का एक बेजोड़ रकर्ड। उनकी स्थिति से नगर म उपद्रव होगा! यह विचार भी उच्छृंखलतापूर्ण ऐसी आज्ञा के आगे उनकी दीर्घकालिक सेवा आम सम्मानपूर्वक, तानकर खड़ी हो गई।

यह सब मोतीलालजी की भांति ठडे दिमाग की जोड़-तोड़ क... विशुद्ध भाव-जगत् में विचरण करनेवाले हृदय की गौरव-गा...

राष्ट्रवादी नहीं
देश भक्त

यदि उनके जीवन को हम सूक्ष्म दृष्टि से दे... इस निश्चय पर पहुँचेंगे कि वह राष्ट्रवादी ('... लिस्ट') नहीं, देश भक्त ('पैट्रियट') हैं... राष्ट्रवादी कम देश भक्त अधिक हैं। जैसे व्यक्ति की पीड़ा और दु... देखकर उनका हृदय विचलित हो जाता है वैसे ही मातृभूमि का... देखकर उनका हृदय विकल हो जाता है। वह मातृभूमि, जिसके... के साथ ब्राह्मण संस्कृति की उज्ज्वल गाथा जुड़ी हुई है, जिसमें... म आत्मा को आध्यात्मिक सान्त्वना मिली है, जिससे जगत् के प्राय... महान् धर्मों का विकास हुआ है—वही सुजला, सुफला, शस्य... मलयजशीतला मातृभूमि की आज कैसी दुर्दशा है! इस दुर्दशा को... कर माता के सच्चे सुपुत्र इस महान् ब्राह्मण का हृदय, जो... ओतप्रोत है, कैसे विचलित न हो, कैसे रो न पड़े?

* That simple act atoned raised the University to a ... institution and for its moral grandeur remains surpassed o... the Bardoli halt

इस दृष्टि से, मालवीयजी में त्रिविध, परस्पर विरोधी गुणों का ...भुत विकास हुआ है। जो उन्हें नहीं जानते वे उनके कार्यों में यह अनुमान नहीं लगा सकते कि उनका हृदय कितना कोमल है। आप अपने दुःख की जरा सी कथा लेकर उनके पास जाइए, सुनकर वह विचलित हो जाँयगे। ...ओं में बोलते-बोलते, कारुणिक बातों की चर्चा करते-करते उनकी ...ों में आँसू आ जाते हैं। जो कुछ दुःखद और शोकप्रद है उसे यह ...त नहीं कर सकते, उससे उनकी शान्ति अस्तव्यस्त हो जाती है। ...का हृदय मानो पूछना चाहता है कि दुनिया में इतनी पीड़ा, इतनी ...ति क्यों? जो जहाँ है वहां शान्ति क्यों नहीं पा सकता? उनका ...ी इतना कोमल है कि बहुत ही अनिवार्य अवस्थाओं में वह किसी ...का निरोध करते हैं और निरोध करने के बाद भी, उस पक्ष को ...ना दुःख होता होगा उससे कहीं ज्यादा स्वयं उन्हें होता है। विरोध ...ाम ही उन्हें दुःखप्रद है।

...रस्पर-विरोधी तत्वों
...अपूर्व मिश्रण

× × ×

...हमारा मन, यह सब देख, पढ़ और सुनकर मानो ऊपर उठ रहा है, ...वह उठकर पूछना चाहता है कि जो व्यक्ति इतना दयालु है, जिसके लिए एक आदरणीय पत्रकार ने लिखा था कि "वह सिर से लेकर पैर तक हृदय ही हृदय है"* वह इतना कट्टर कैसे हुआ? जो आदमी स्वभाव से ...घृणा नहीं कर सकता, जिसकी प्रकृति ही इसके विपरीत है वह ...जना के हाथ का जल क्यों ग्रहण नहीं कर सकता? जिसके मन में ...र्ष की गंध तक नहीं है, उसके हृदय में उच्च वर्ग के लिए—ब्राह्मण ...का इतना पक्षपात कैसे आ गया?

...ना दयालु! ...कट्टर क्यों?

* Pt Malviya is nothing but heart from head to foot
G Y Chintamani

इसीलिए कि उनके मूल में विशुद्ध ब्राह्मणवाद है। उनका शुद्ध मनुष्य की, नाम–रहित, 'अनलेबल्ड,' मनुष्य की दया नहीं,

मुनिए!

की दया है। ग्वाचातानी करके निकाल गये के अर्थ में नहीं, ब्राह्मण काल के आँगन ब्राह्मण अर्थ में। इस शब्द के साथ जो गौरवपूर्ण इतिहास जुड़ा है उसक जहाँ एक ओर दया है, वहाँ दूसरी ओर कट्टरता भी है, जहाँ कर करुणा की छाया है, वहाँ ब्रह्मदण्ड भी है, शाप की लपलपाता हुई मयी जिह्वा भी है। जहाँ आत्मज्ञान की सुगन्ध है, वहाँ का घना कण्टकाकीर्ण जंगल भी है। उसमें जहां वशिष्ठ, नार व्यास की अमृत वाणी है, माधुर्य है, वहा विश्वामित्र, दुर्वासा और की परुषता भी है, कट्टरता भी है। इसलिए इस आश्चर्यजनक सम माने विना कोई चारा नहीं।

उनके जीवन में इन परस्पर–विरोधी तत्वों का ऐसा समन्वय देखकर जो प्रश्न उठता है, उत्तर देने के लिए मान सारा जीवन उठकर कह रहा है—

'Do I contradict myself? Very well I cont myself I contain multitudes'[*]

(क्या मैं अपनी बातों का खण्डन करता हूँ? अच्छा, ऐसा हो मैं असंख्य भावों का आकर हूँ)

यह परस्पर विरुद्धता उनके अन्दर बहुत अधिक मात्रा में पाई है। अभी आप उन्हें जनतन्त्रवाद और समता पर बोलते सुनेंगे और देर बाद कट्टरों की उस सभा में भाग लेते पायेंगे जिसमें जाति के पीड़ित तिरस्कृत वर्ग को प्रारंभिक मानवी अधिकार देने के प्रस्ता भी विरोध हो रहा है। यह निश्चय ही पाखण्ड—'हिपोक्रेसी'—नहीं यह उनकी प्रकृति की मानवी दुर्बलता है।

* Walt Whitman

किन्तु यदि उनकी प्रकृति के इस अश को छोडकर देखें तो हम
ोविनायक मेहता के इन शब्दों को दोहरा सकते हैं कि " × × यह
थों एव कक्करों के समूह के बीच ग्रेनाइट की दृढ़ चट्टान की भाँति खडे
रहे हैं। उनका सुगढ़ शरीर, जिसका प्रत्येक अग आन्तरिक सामञ्जस्य से
नक रहा है, तपस की दीर्घ साधना, उनके अभिप्राय की उच्चता, जो
एर पर लिखते हुए गेटी के शब्दों में किसी भी गर्हित एव नीच विचार
ो अपने अन्दर स्थान नहीं दे सकती, उनके पाण्डित्य की विविधता,
ो उनके ज्ञान मन्दिर तक आने वाले पण्डित यात्रियों के बीच उन्ह बिना
सी असुविधा के स्थान देती है, उनकी भावना की सार्वदेशिकता जो
हें विश्व के एक नागरिक के रूप म पाती हैं, इन सबको देखते हुए कौन
ा है जिसे बीसवीं शताब्दि के इस शकर, आदर्श त्यागमूर्ति को
खने का सौभाग्य प्राप्त हुआ हो और उसने इनके अदर 'अति-ब्राह्मण'
न देख पाया हो। कैलास की धवल चोटी की नाईं वह अपने सत्तर
सन्तों को लिये हुए, उज्ज्वल धवल वस्त्रों से आच्छादित ऊँच दृश्य
रूप में खडे हैं, सृष्टि के उस आरम्भिक कमल की भाँति, जिसे कोई वस्तु
ला नहीं सकती, प्राय आशा के ज्योतिपुञ्ज के रूप म उनके
र्शन होते हैं, दुराशा एव अपशकुन के रूप म कभी नहीं।"❀

❀ he stands as a block of granite in the midst of a
ass of shale and conglomerate His beautifully modelled body
ery limb tingling with the pulsating harmony within
e prolonged asperities of *tapas* (austerities) his loftiness of
rpose that in the words of Goethe speaking of Schiller
ould disdain to think anything that was mean his varied
holarship that puts him at ease amongst the scholar pilgrims
his shrine of learning his universality of spirit that makes
m a citizen of the world and the least of a chauvinist and anti
eigner who that has known this Shankar of XX Century the
agmurti at its highest would fail to detect the Super Brahmin'

कुछ और सस्मरण

रात के समय स्त्री की रक्षा

श्री रामनारायण मिश्र लिखते हैं—"एक दिन रात क समय ।
यजे श्री मालवीयजी हिन्दू स्कूल (काशी) के बोर्डिंग हाउस (कम
थोरमहल), जिसम म रहता हूँ, पधारे और ३
बडी उम्र के लडकों को अपने साथ मादर पर
गये । एक घण्टे के अन्दर उनको स्वय लाकर पँ
गये । पता लगा कि जब वह बनारस स्टेशन पर उतरे थे, उन्होंने
नि दो बदमाश बच्चे वाली एक स्त्री के पीछ लगे ह और वह उ
बचने का प्रयत्न कर रही है । वह उस स्त्री के साथ हो लिये और
वह इक्के पर बैठ गई तब उन्होंने उसका पता जान लिया । बो
हाउस के लडकों को अपने साथ ले जाकर उनको खोनवों × में उस
का पता लगाने को छोड दिया । लडका ने पता लगा लिया । पहल
उस स्त्री ने डरकर दरवाजा बद कर लिया और समझा कि वहा बद
उसके पीछे पडे हैं परन्तु जब उसको मालूम हुआ कि मालवीयजी ने
उसकी रक्षा की है और वे यह जानने के लिए बाहर खडे हैं
वह घर पहुँच गई या नहीं तब वह प्रसन्न हो गई और उसन ड
दरवाजा खोल दिया ।"

× × ×

श्री शिवराम पाण्डेय लिखते ह—"यमुना के किनार मह
बनारस की कोठी म, मदनमोहन के उद्योग से, मध्य हिन्दू समाज

---

in him? Like the peak of Kailas he stands with his se
winters a towering spectacle clothed in the effulgence of a
of white like the primaeval lotus which nothing can so
beacon of hope often a portent never

× काशी के पास एक г

अयन्त महत्त्वपूर्ण अधिवेशन हुआ था। तीन दिन तक जल्सा हुआ। उस समय यूरोप की सैर करते हुए काला-कांकर नरेश स्व० राजा रामपालसिंह भी पधारे थे। यह कभी कभी सभापति पर चुटकियाँ भी कस जाते

हिंदुस्तान से सम्बन्ध

। उनके भाषण से बहुत से लोग असंतुष्ट थे पर बोलने की हिम्मत पड़ती थी। पर मदनमोहन से न रहा गया, कई बार उन्होंने कान में का। जल्सा समाप्त होने पर राजा साहब ने अपने 'हिन्दुस्तान' पत्र अधिवेशन की बड़ी प्रशंसा की पर यह भी लिखा—"उसमें दो एक लौंडे ने ढीठ थे कि वे बड़े-बड़े राजा रईसों एवं डाक्टरों (वक्ताओं) को यारव्यान देते समय उनके कान में सलाह देने को धृष्टता करते थे।'

"किन्तु यही राजा साहब पीछे मदनमोहन को प्रतिभा के कायल ए और २५०) मासिक पर 'हिन्दुस्तान' का सम्पादक नियुक्त किया। × × सम्पादन काल में भी वह वकालत का अभ्यास करते। वकालत शुरू करने पर जब आमदनी होने लगी तब भी राजा साहब २५०) रु० मासिक भेज देते थे। एक दिन मदनमोहन ने राजा साहब से कहा— 'महाराज, अब तो मैं आप का कुछ काम नहीं करता। आपकी नौकरी में भी नहीं हूँ —"

राजा साहब झट रुष्ट होकर बोले—"नौकरी म ! मालवीय जी, क्या आपने कभी मेरे मन में या बर्ताव में अपने साथ या किसी के साथ नौकर का भाव पाया है? आपके पास विद्या है और आप गुणों की खान हैं। उसके द्वारा आप मेरी सहायता करते हैं और मैं भी थोड़े पैसा से आपकी सहायता करता हूँ। मुझे आप जैसे बुद्धिमान पुरुष के मुँह से ऐसी बात सुनकर बड़ा दुःख हुआ।"

× × ×

श्री सच्चिदानन्द सिंह लिखते हैं—"पंजाब हत्याकाण्ड के बाद, उसी वर्ष की ग्रीष्म ऋतु की, शिमला की बात है। बहस—'डिबेट'—

—पाँच—

कुछ और संस्मरण

श्री रामनारायण मिश्र लिखते हैं—"एक दिन रात के समय एक बजे श्री मालवीयजी हिन्दू स्कूल (काशी) के बोर्डिंग हाउस (कमच्छा चौरमहल), जिसमें मैं रहता हूँ, पधारे और ३-४ बड़ी उम्र के लड़कों को अपने साथ मोटर पर ले गये। एक घण्टे के अन्दर उनको स्वयं लाकर पहुँचा गये। पता लगा कि जब वह बनारस स्टेशन पर उतरे थे, उन्होंने देखा कि दो बदमाश बच्चे वाली एक स्त्री के पीछे लगे हैं और वह उनसे बचने का प्रयत्न कर रही है। वह उस स्त्री के साथ हो लिये और जब वह इक्के पर बैठ गई तब उन्होंने उसका पता जान लिया। बोर्डिंग हाउस के लड़कों को अपने साथ ले जाकर उनको खोजवां × में उस स्त्री का पता लगाने को छोड़ दिया। लड़कों ने पता लगा लिया। पहले तो उस स्त्री ने डरकर दरवाजा बंद कर लिया और समझा कि वही बदमाश उसके पीछे पड़े हैं परन्तु जब उसको मालूम हुआ कि मालवीयजी ने ही उसकी रक्षा की है और वे यह जानने के लिए बाहर खड़े हैं कि वह घर पहुँच गई या नहीं तब वह प्रसन्न हो गई और उसने तुरन्त दरवाजा खोल दिया।"

रात के समय स्त्री की रक्षा

× × ×

श्री शिवराम पाण्डेय लिखते हैं—"यमुना के किनारे महाराज बनारस की कोठी में, मदनमोहन के उद्योग से, मध्य हिन्दू समाज का

---

in him Like the peak of Kailas he stands with his seventy winters a towering spectacle clothed in the effulgence of a mass of white like the primaeval lotus which nothing can sully a beacon of hope often a portent never × काशी के पास एक गाँव।

एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अधिवेशन हुआ था। तीन दिन तक जलसा हुआ। उस समय यूरोप की सैर करते हुए काला-काकर नरेश स्व० राजा रामपालसिंह भी पधारे थे। वह कभी कभी सभापति पर चुटकियां भी कस जाते थे। उनके भाषण से बहुत से लोग असंतुष्ट थे पर बोलने की हिम्मत न पड़ती थी। पर मदनमोहन से न रहा गया, कई बार उन्होंने कान में टोंका। जलसा समाप्त होने पर राजा साहब ने अपने 'हिन्दुस्तान' पत्र में अधिवेशन की बड़ी प्रशंसा की पर यह भी लिखा—"उसमें दो एक लौंडे ऐसे ढीठ थे कि वे बड़े-बड़े राजा रईसों एवं बाबूकों (वक्ताओं) को व्याख्यान देते समय उनके कान में सलाह देने की धृष्टता करते थे।'

'हिंदुस्तान' से सम्बन्ध

"किन्तु यही राजा साहब पीछे मदनमोहन की प्रतिभा के कायल हुए और २५०) मासिक पर 'हिन्दुस्तान' का सम्पादक नियुक्त किया। × × सम्पादन काल में भी यह वकालत का अभ्यास करते। वकालत शुरू करने पर जब आमदनी होने लगी तब भी राजा साहब २५०) रु० मासिक भेज देते थे। एक दिन मदनमोहन ने राजा साहब से कहा—"महाराज, अब तो मैं आप का कुछ काम नहीं करता। आपकी नौकरी में भी नहीं हूं —"

राजा साहब रुष्ट होकर बोले—"नौकरी में! मालवीय जी, क्या आपने कभी मेरे मन में या वर्ताव में अपने साथ या किसी के साथ नौकर का भाव पाया है? आपके पास विद्या है और आप गुणों की खान हैं। उसके द्वारा आप मेरी सहायता करते हैं और मैं भी थोड़े पैसा में आपकी सहायता करता हूं। मुझे आप जैसे बुद्धिमान पुरुष के मुँह से ऐसी बात सुनकर बड़ा दुःख हुआ।"

× × ×

श्री सच्चिदानन्द सिंह लिखते हैं—"पंजाब हत्याकाण्ड के बाद, उसी वर्ष की ग्रीष्म ऋतु की, शिमला की बात है। बहस—'डिबेट'—

साक्षात्कार ही रहो थो और पंजाब सरकार के चीफ सेक्रेटरी

वह वक्तृता

श्री थामसन (बाद में दिल्ली के चीफ कमिश्नर सर जेम्स थामसन) उसके (पंजाब सरकार के) प्रतिनिधि के रूप में उपस्थित थे। बहस कई दिनों तक चलता रहा जिसमें मालवीय जी ने शायद सब से महत्वपूर्ण भाग लिया। सरकारी सदस्य श्री थामसन को एक बड़ा शक्तिमान वक्ता—ज्वालामुखी के ज्वार के साथ बोलने वाला—समझते थे। वह मालवीय पर बड़े सख्त शब्दों में आक्रमण कर रहे थे । एक मौके पर उन्होंने मिल्टन के 'पैरडाइज लॉस्ट' से एक पद्य सुनाकर सोचा कि माल चीय जी के विरुद्ध विजय प्राप्त कर सकूँगा पर मालवीय ने मौके को सँभाला और अपने जवाब में श्री थामसन की प्रत्येक बात की न केवल धज्जियाँ उड़ा दीं वरन् मिल्टन के ही एक बिल्कुल विरुद्ध अर्थ व्यक्त करने वाले पद्य खण्ड को सुनाकर उन्हें चुप कर दिया। मालवीय जी की पंजाब सम्बन्धी ये वक्तृताएँ निश्चय ही बड़ी उच्च कोटि की बौद्धिक विशेषताओं से सम्पन्न थीं।"

× × ×

कौटुम्बिक दुःख सुख उनको ज्यादा समय तक जन हितकर कार्यों से अलग नहीं रख सके। इस सम्बन्ध में श्री ईश्वरशरण एक घटना का

कर्तव्य परायणता

वर्णन करते हैं—" × × मालवीय जी की एक बड़ी लड़की थी, जिसे वह बहुत चाहते थे। क्षय से उसकी मृत्यु हो गई। मैं उनसे मिलने गया। उनकी आँखें आँसुओं से तर थीं किन्तु क्षण भर बाद ही वह मेरी ओर घूमकर बोले—"खैर, वह चली गई। किन्तु उन हजारों लड़कियों का क्या होता है जो इस रोग की शिकार होती हैं और इतनी गरीब होती हैं कि स्वच्छ भोजन और मामूली चिकित्सा भी उन्हें नसीब नहीं होती? हमें इन अभागिन बहनों के लिए देश भर में स्वास्थ्याश्रम (सैनिटोरियम) बनवाने चाहिएँ।" यदि मैं

भूलता नहीं तो दूसरे ही दिन घर से वह हि० वि० विद्यालय (काशी) चले गये। निश्चय ही यह एक आत्मार्पण किये हुए व्यक्ति की नाईं जीवन बिताते हैं।"

× × ×

मालवीय जी परदा में विश्वास नहीं रखते। वह स्त्री सुधार के समर्थक हैं पर उनका मत है कि उनके सुधार का ढंग भारतीय हो। वह तेजस्वी पर सुशील माताएँ चाहते हैं, नजाकत एवं शौकीनी से दबी हुई रमणियाँ नहीं। ईश्वरशरण लिखते हैं—"वर्षों पहले की बात है जब इलाहाबाद की कायस्थ पाठशाला का उपाधि वितरणोत्सव था। मैं और वह दोनों गये थे। इलाहाबाद हाइकोर्ट के कोई अंग्रेज जज सभापति थे। उनके साथ उनकी कुमारी कन्या भी आई थी जो स्वास्थ्य एवं शक्ति की साक्षात् मूर्ति सी मालूम पड़ती थी। सभा विसर्जन होने पर मालवीयजी मेरी ओर घूम कर बोले—"तुमने कुछ देखा ?" मैंने कहा, मैं भी इसी सम्बन्ध में सोच रहा था। वह बोले—"न जाने किस दिन हमारे देश में ऐसी लड़कियाँ होंगी ?"

स्त्रियों के सुधार के समर्थक

स्त्रियों के लिए मालवीय जी के हृदय में बड़ी श्रद्धा है इसलिए उनकी वर्तमान अवस्था एवं दुःखों पर बड़ी वेदना भी है, फिर भी वह रीति रिवाजों के बन्धनों को तोड़कर ज्यादा दूर तक जा नहीं पाते हैं।

—छः—

उनकी सफलता का रहस्य

मालवीयजी का जनता में जो आदर है, उसपर जो अधिकार है उसका क्या कारण है ?

एक तो यह कि वह अतीत के पुरोहित हैं। प्रत्येक व्यक्ति का, विशेषतः भारतवासी को, अपना प्राचीन, अपना बीता हुआ जमाना प्यारा लगता है। उसके लिए वह सुरक्षित करके रखने की चीज है। मालवीयजी उसी प्राचीनता के गायक हैं। सौभाग्य वश हमारा प्राचीन बड़ा मनोहर, और काफी ऊँचा भी, रहा है। इसलिए हमारे हृदय में उसके प्रति बड़ी ममता है। हम एक प्राचीनतम जाति के आदमी हैं, हमें प्राचीन विशेष प्यारा है। जिसका कोई प्राचीन हो ही न, उसे वह प्यारा क्योंकर लगे ? मालवीयजी उस युग के भग्नावशेष की भांति हमारे लिए दर्शन, आदर और स्नेह की चीज हैं। हम इस विद्यावयोवृद्ध ब्राह्मण को देखते हैं जो इस युग की हलचल के बीच, इस होड़ और प्रतिहिंसा की दौड़ में, शान्त भाव से खड़ा हुआ, आश्चर्य और दुःख के साथ हमारी अशान्ति देख रहा है। जब रास्ते में दौड़ते दौड़ते वर्तमान के इस घोर जन रव और कोलाहल से ऊबकर पीछे दौड़े आनेवालों के धक्कों एवं चाबुक से तिलमिला कर साँस लेने के लिए इधर उधर देखते हैं तो वह अद्भुत् आदर्मी दिखाई देता है जो आज के लिए दुर्लभ अतीत की स्मृतियों को सामने रखकर कहता है—'देखो !' इस विकलता के बीच जो कुछ बीत गया है और जो अब फिर लौटकर न आयेगा वह स्वभावतः प्यारा लगता है।

इस दृष्टि से मालवीयजी की लोकप्रियता का प्रधान कारण यही है कि उनकी वाणी में प्राचीन को साकार—सा करके खड़ा कर देने की शक्ति है वह प्राचीन युग की ओर निर्देश करते हैं।

उनकी सफलता का दूसरा कारण यह है कि वह शत्रु पैदा नहीं करते। उनमें मित्रों को अन्त तक मित्र बनाये रखने की अद्भुत शक्ति है। वह छोटे से छोटे आदमी को भी अपने व्यवहार से प्रसन्न रखना चाहते हैं। आदमी के अन्दर जो आलोचक होता है उसे वह कभी नहीं जगाते। वह स्वयं बहुत कम आलोचना करते हैं, जो कुछ उन्हें कहना होता है, उसका जिक्र—वर्णन—कर देते हैं। उस वर्णन का ढंग अवश्य ही निराला होता है। आलोचना उन्हें पसंद नहीं। उनका मत भेद भी इतना शान्त होता है कि आपका जोश ठंडा कर देता है। यदि वह आपसे मत भेद प्रकट करते हैं तो दुःख के साथ और यदि सम्भव हो तो वह आपको यह पता भी न चलने देंगे कि आपसे उसका मत—भेद है। दूसरों की भावनाओं का खयाल रखने वाला ऐसा दूसरा आदमी मैंने नहीं देखा।

व्यवहार की कोमलता

उनमें संकोच और शालीनता इतनी अधिक है कि आप आ गये, आप से बात कर रहे हैं। उनको जरूरी काम है पर आप से यह न कहेंगे कि अब जाइए। यही नहीं बहुत सम्भव तो यह है कि यदि आप जाने को कहें तो वह आपको निराश करते हुए दुःखी होंगे और आपसे बैठने का अनुरोध करेंगे।

× × ×

तीसरी बात, जो एक प्रकार से पहली के साथ सम्बद्ध है, उनकी शारीरिक एवं मानसिक पवित्रता है। जब अन्य नेताओं की तरफ लोग उनके भूत या वर्तमान जीवन की रंगीनियों की ओर इशारा करते हुए अंगुली उठाते हैं तब मालवीय पर सन्देह एवं अविश्वास की जरा-सी कालिमा कभी किसी ने नहीं डाली। उनके जीवन में ऐसी कोई बात ही नहीं जिसके साथ होली खेली जा सके। वह अत्यन्त उच्चकोटि के नैतिक पुरुष हैं। उनकी ईमानदारी सन्देह की सीमा के परे है। आजतक उन्होंने लाखों रुपये एकत्र किये, इन रुपया

पवित्रता

का नियमित एवं व्यवस्थित हिसाब भी बहुत ही कम बार प्रकाशित होते हैं फिर भी यह उनके उच्च चरित्र का एक प्रमाण है कि आज तक उनको किसी ने पैसा खा जाने या इधर उधर कर देने का दोष नहीं लगाया। अन्यथा इतना रुपया जिसके हाथों से इधर उधर हुआ हो, उसके सम्बन्ध में कोई अपवाद, कोई किंवदन्ती न फैले, यह भी आश्चर्य ही है।

चौथी बात उनकी आज्ञापालिता एवं तदनुकूल कर्मनिष्ठा है। जिसके सम्बन्ध में यथास्थान लिखा जा चुका है।

× × ×

सार्वजनिक और व्यक्तिगत दोनों प्रकार के जीवन में उनके महत्व का एक बड़ा कारण समझौता करने और कराने की उनकी महान् शक्ति भी है। उन्होंने अपने जीवन को ही इस साँचे में ढाल लिया है। समझौते की शक्ति उनमें असाधारण है। इसे उन्होंने कला का रूप दे दिया है। जैसे व्यक्तिगत जीवन में उन्होंने अनेक घरों को टुकड़े टुकड़े होकर टूटने से बचाया है वैसे ही सार्वजनिक जीवन में भी उन्होंने इस दिशा में अद्भुत सफलता पाई है। उनके समझौते की प्रतिभा को व्यक्त करनेवाली कितनी गाथाएँ आज अप्रकाशित या 'विश्वसनीय' हैं। १९३० के महान् सत्याग्रह आन्दोलन के बाद कांग्रेस और सरकार के बीच जो समझौता हुआ उसमें उनका प्रधान हाथ था। कई बार टूटते टूटते उन्होंने उसको संभाला। समझौते के समय उनमें अद्भुत प्रतिभा एवं कार्यशक्ति प्रकट होती है। जब लोग कठिनाइयों एवं बाधाओं से निराश हो जाते हैं तब भी समझौते के विषय में आशाप्रद बातें करना, आशावादी बने रहना उनकी प्रकृति का एक अंग हो गया है। प्रयाग का ऐक्य-सम्मेलन उन्हीं के व्यक्तित्व तथा समझौते की उनकी प्रतिभा एवं स्फूर्ति में केन्द्रित था, ऐसा कहें तो अत्युक्ति न होगी।

समझौता की शक्ति

इसके अलावा उनकी लम्बी सेवा, उनकी देश भक्ति, उनका त्याग तो उनकी लोकप्रियता के कारण हैं ही पर इनका उल्लेख तो हम पहले कर चुके हैं।

उनके कार्य महान् हैं। एक हिन्दू विश्व विद्यालय ही उनकी कीर्ति रक्षा के लिए काफी है। हिन्दू-जाति के लिए उन्होंने बहुत काम किया है। जैसा श्री भगवानदास जी ने लिखा है—"स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज के बाद 'कामन'(सामान्य) हिन्दू भावना को जन्म देने का श्रेय मालवीयजी, सेण्ट्रल हिन्दू कालेज और हिन्दू विश्वविद्यालय को ही है।" भारतवर्ष के लिए उनकी सेवाओं का वर्णन क्या किया जाय। ५० वर्ष की निरन्तर सेवा स्वत अपना एक पवित्रतम स्मारक है।

देश में ऐसे राजनीतिज्ञ नेता होंगे या होगये हैं जिनकी कूटनीतिज्ञता, राजनीतिक प्रतिभा बहुत बढ़ी हुई हो पर महात्मा गाँधी के अतिरिक्त दूसरे किसी भारतीय नेता के सामने हमारा हृदय उस श्रद्धा से नहीं झुकता जिस श्रद्धा से मालवीयजी के सामने झुकता है। उनका व्यक्तिगत जीवन उनके सार्वजनिक जीवन से भी अधिक पवित्र और सुन्दर है। निश्चय ही महात्माजी के सिवा दूसरा और कोई ऐसा आदमी दिखाई नहीं पड़ता जिसने इतना त्याग किया हो या विविध प्रकार के कार्यों का इतना बोझ सभाल रखा हो। ❀ आज भारत की जिन विभूतियों पर हम कुछ गर्व कर सकते हैं उनमें मालवीयजी का स्थान बहुत ऊँचा है और एक वही आदमी हैं जिनका नाम गाधीजी के साथ साथ रक्खा जा सकता है। ×

यह मालवीय शुभ्र एव वैदय धर्म प्रधान वर्तमान जगत् के कोलाहलमय अन्धकार में दीप शिखा की भांति चमक रहा है।

❀ Next to Mahatma Gandhi it is difficult to find another man who has undergone so much sacrifice and has given such proofs of many sided activities — P C Ray

× "To day among India's public men Pt M M Malviya's place is second only to that of Mahatma Gandhi and he is the only man fit to be bracketed with the sage of Sabarmati"

C Y Chintamani

जीवन तालिका

१८६१	२५ दिसम्बर	प्रयाग में जन्म।
		पिता द्वारा घर पर ही संस्कृत एवं हिन्दी की प्रारम्भिक शिक्षा।
		'धर्म ज्ञानोपदेश पाठशाला' एवं 'विद्याधर्म प्रवर्द्धनी सभा' में संस्कृत-अध्ययन। जिला स्कूल में अंग्रेजी शिक्षा।
१८७९		इण्ट्रेंस पास करके म्योर सेण्ट्रल कालेज में प्रवेश।
१८८१		इलाहाबाद में 'स्वदेशी तिजारत कम्पनी', कुछ मित्रों के साथ, खोली।
१८८४		बी० ए० पास किया।
१८८५		जिला-स्कूल में अध्यापन-कार्य।
१८८६		कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में भाषण। तबसे बराबर कांग्रेस में सम्मिलित होते रहे। राजा रामपालसिंह से परिचय।
१८८७		हिन्दी दैनिक 'हिन्दुस्तान' का सम्पादन।
१८९१		'इण्डियन यूनियन' का सम्पादन। वकालत की परीक्षा पास की।

१८९२		नागपुर कांग्रेस में 'भारत की गरीबी' पर महत्वपूर्ण भाषण।
१८९३		इलाहाबाद में वकालत शुरू की।
१९०२		प्रांतीय व्यवस्थापक सभा के सदस्य।
१९०५	अक्तूबर	प्रस्तावित हिन्दू विश्वविद्यालय का विवरण पत्र प्रकाशित किया।
	२१ दिसम्बर	काशी कांग्रेस के समय टाउनहाल की विराट् सभा में विश्वविद्यालय की याचना का समर्थन।
१९०६		सनातनधर्म महासभा के प्रयाग अधिवेशन में विश्वविद्यालय की योजना का समर्थन।
१९०८		प्रयाग से हिन्दी साप्ताहिक 'अभ्युदय' निकाला तथा मित्रों की सहायता से 'लीडर' को जन्म दिया।
१९०९	दिसम्बर	लाहौर कांग्रेस के अध्यक्ष हुए।
		वायसराय की केन्द्रीय कौंसिल (आजकल की असेम्बली) के सदस्य चुने गये।
१९१०		प्रयाग से हिन्दी की राजनीतिक मासिक पत्रिका 'मर्यादा' निकाली।
१९१६	४ फरवरी	हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना।
		दिल्ली कांग्रेस का सभापतित्व।
१९१९		पंजाब हत्याकाण्ड के समय जाँच एवं सेवा।
१९१९—२३		हिन्दू महासभा आंदोलन के मुख्य स्तंभ। स्वदेशी-आन्दोलन, कांग्रेस आन्दोलन के मुख्य आधार। कांग्रेस कार्यसमिति के सदस्य की हैसियत से गिरफ्तारी। बम्बई

में कानून भंग के कारण गिरफ्तारी और सजा। सन्धि और छुटकारा। गोलमेज सम्मेलन में विलायत गये। दिल्ली एवं कलकत्ता की कांग्रेसों के सभापति चुने गये।

[नोट—मालवीयजी ऐसे बहुधंधी आदमी हैं और इतनी सार्वजनिक संस्थाओं और कार्यों से उनका सम्बन्ध है कि इस तालिका में आधे कार्यों का उल्लेख करना भी मुश्किल है। हिन्दी आंदोलन, ब्राह्मण महासभा, सनातन धर्म महासभा, सेवासमिति तथा अन्य कितनी ही संस्थाओं एवं कार्यों में उनका हाथ है।]



लाला लाजपतराय

लाजपत राय

['लालाजी' : पंजाब-केसरी]

जन्म	मृत्यु
२८ जनवरी १८६५ ई०	१७ नवम्बर १९२८ ई०

Youth proclaim'd him as a hero; time, a statesman;
love, a man;
Death has crowned him as a martyr,—so from goal to
goal he ran,
Knowing all the sum of glory that a human life
may span.

E. W. Wilcox

× × ×

"यौवन ने उसे बहादुर, समय ने राजनीतिज्ञ, प्रेम ने मनुष्य घोषित किया। मृत्यु ने उसे शहादत का ताज पहनाया—इस प्रकार मंजिल पर मंजिल वह तै करता गया। मानवजीवन में सम्भव सब प्रकार की विभूति एवं यश का अनुभव उसने किया।"

—सत्या निष्काम

'मेरा मजहब हकपरस्ती है। मेरी मिल्लत कोमपरस्ती है। मेरी इबादत खलकपरस्ती है। मेरी अदालत मेरा अन्तःकरण है। मेरी जायदाद मेरी कलम है। मेरा मंदिर मेरा दिल है। मेरी उमगें सदा जवान हैं।'

—लाजपतराय ('वंदे मातरम्' के प्रथम अङ्क में)

—एक—

दस वर्ष पहले

यदि भूलता नहीं तो १९२२ का साल था—या १९२१ का रहा हो। मतलब कुछ ऐसा ही था। बहन सरूपकुमारी (अब श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डित) की शादी के दो एक दिन इधर उधर की बात है। इलाहाबाद में जिला राजनीतिक कान्फ्रेंस हो रही थी। महात्मा गांधी से लेकर बाबा रामचन्द्र तक—लगभग सभी नेता उस समय प्रयाग में उपस्थित थे। कुछ नेहरू परिवार में विवाह के सम्बन्ध में, कुछ अन्य कारणों से। सरोजनी, एण्ड्रूज, लाजपतराय, मुहम्मदअली सब जमा थे। गर्मागर्म अफवाहें उड़ रही थीं। कोई कहता—स्थान स्थान पर मशीन गन (तोप चलानेवाली मशीन) लगा दी गई है, कोई कहता मुहम्मद अली गिरफ्तार होंगे, जवाहरलाल की गिरफ्तारी की खबरें भी उड़ने लगी थीं। एक अजीब सनसनी फैली हुई थी। दिलों में एक अजब मस्तानापन था। यह अपने ढंग की पहली ही कान्फ्रेंस थी। फिर इतने नेताओं के एकत्र हो जाने से दूर दूर की जनता उमड़ रही थी। उस समय युक्तप्रांत के किसान उद्वेलित हो रहे थे, उनके संगठन ने सरकार को चिंता में डाल दिया था। लालाजी कुछ ही दिन पहले अमेरिका से आये थे। चारों ओर एक हलचल मची हुई थी। यह असह-

।रा का शादी

योग का मध्याह्नकाल था। ऐसे ही समय कुमारी सरूपरुम
हुई और ऐसे ही समय यह कान्फ्रेंस होने जा रही थी। क्य क पवित्र

कान्फ्रेंस हुइ और बड़ी शान से हुइ। हिंदू मुस्लिम ऐस में दोनों भावों ने राष्ट्र म उमग का दरिया बहा दिया था। कान्फ्रेंस इतनी बडी जातियों के लोग शामिल थे—और खूब थे। मेरे लिए पर था। मैं राजनीतिक कान्फ्रेंस में शामिल होने का यह पहला अवसर था भाति मच के नीचे ही एक कोने में घेरा हुआ सिनेमा के चित्रपा। यदि मैं सामने से गुजरते हुए इन अद्भुत दृश्यों को देख रहा था मुझ का भूलता नहीं तो हिन्दी के राष्ट्रीय गायक कवि प० माधव पहली 'यह हिन्द मेरा आजाद रहे, माता के सिर पर ताज रहे', गा। इस गाने बार इसी कान्फ्रेंस में, शायद उन्हीं के द्वारा, गाया गया था से उस समय लोगों के दिल बल्लियों उछल रहे थे। र, तालियाँ

धीरे धीरे एक के बाद एक नेता बोलने खडे हुए। बोल, का एक पिटीं और बोलकर बैठ गये। इतने में नाटे, मझोले, क —होगा गठा हुआ पजाबी मच पर आकर खडा हुआ। किसी ने क हरलाल, कोई! पर दिल मानता न था। गाधी जी, मोतीलाल जी, ज देखा है, मुहम्मदअली इत्यादि को मैं पहले देख एव जान चुका था। कई र यह है ऐसा तो लगता है। याद आया, १९२० में काशी में देखा था। अरे! कौन? इतने में एक तरफ से आवाज आइ—लाला लाजपतराय। तब यह लालाजी हैं, जिनकी कलम का अमेरिकन भी लोहा मान चुक लानीक कर बैठ गया। लालाजी उठ, बोले और खूब बोले। मैने देखा कि न म— बोलने के ढंग पर पश्चिम का बडा प्रभाव पडा है। अग्रों के आदोल तीय की 'जेस्चर्स पास्चर्स'—म, सिवाय श्री रगा ऐयर के दूसरे किसी भा काम मैंने उनसे बढकर नहीं पाया। मच पर भी वह बडी स्वतत्रता हम्मद लेते थे। बोलते जा रहे हैं और पीछे फिरकर नीचे बैठ मौलाना मुहम्मदअली, अली की कधे पर एक धप जमाकर पूछते हैं—'क्यो भाइ मुहम्म

ठीक है न ?' मनोरंजक व्याख्यान देने, बीच-बीच में हँसाते जाने की उनकी कला पहली बार वहीं देखी। वह बोलते थे, जनता के लिए। जनता पर काबू करना, उसे भावों से ओतप्रोत कर देना उ का काम था। इसी नींव पर उनका सारा सार्वजनिक जीवन खड़ा है। मैंने पहली बार उनका व्याख्यान सुना और पहली बार ही समझ गया कि यह व्यक्ति लोकप्रिय नेता क्यों है ? तब से लाला जी को और भी देखा, सुना, पास बैठकर बातें भी कीं पर पहली बार का वह चित्र भूला नहीं। यह एक जीवित आदमी था !

यह मेरा लालाजी का प्रथम दर्शन था !

—दो—

और चार वर्ष बाद !

'लॉंग लिव् लाजपतराय, दि लॉयन ऑव् पंजाब, लाजपतराय दि लॉयन ऑव् पंजाब, इज डेड !' (पंजाब के शेर लाजपतराय चिरंजीवी हों, पंजाब का शेर लाजपतराय मर गया !' १९२५ या २६ में देशबंधु दल के प्रसिद्ध अंग्रेजी दैनिक 'फारवर्ड' के किसी अग्रलेख की पहली लाइन यह थी। यह हिन्दू संगठन, शुद्धि और तब्लीग का जमाना था। राष्ट्रीय एकता का बसंत आया और शैदाई बुलबुलों की बोली सुनाकर, बहार की दस-बीस कलियाँ इधर उधर खिलाकर, पुराने वृक्षों में सरसब्जी पैदाकर चला गया। इधर गई—उधर गई, कोई जान भी न सका कि वह बहार किधर गई। वह दीवानापन, वह मस्ती जिसने शताब्दियों के दर्दनाक कारनामों को धो बहाया था, कब आई और कब गई। जब आई तब हम होश में न थे, जब होश हुआ तो वह चली गई। वे दिन—

मादकता से आये ■ सत्ता स चले गये थे !

जहाँ भाई भाई मिलते थे, जहाँ दिल्ली की जामा मस्जिद में कट्टर आर्य समाजी नेता स्व० श्रद्धानन्द का 'वाज' (उपदेश) होता था, जहाँ मुसल

मान हिन्दू त्योहारों पर शर्बत पिलाते थे और हिन्दुओं ने मुसलमानों के लिए मन्दिर का दरवाजा खोल दिया था, वहाँ यह क्या हो गया। भारत के राष्ट्रीय जागरण की यह अद्भुत प्रतिक्रिया थी। स्वप्न जैसी। मानो कहीं ब्याहकर आई हुई लड़की आज विधवा हो गई हो! जो न होना चाहिए था, वही हो रहा था। जहाँ 'भारतमाता की जय' के नारे उछलते हुए दिलों से निकलकर आते थे, वहाँ 'हर हर महादेव' और 'अल्लाहो अकबर' एवं 'या अली' के नारे बुलन्द होने लगे। अखाड़ों के भाग्य चमके, लाठियाँ धड़ाधड़ निकलने लगीं। धर्म ने व्यवसाय का रूप पकड़ा। शुद्धि और तब्लीग वाले 'प्राहकों' पर इस तरह टूटे, जैसे पण्डे यात्रियों पर टूटते हैं! अविश्वास का कोहरा देखते देखते सम्पूर्ण भारतीय आकाश पर छा गया। औरंगजेब और शिवाजी रंगमंच पर खींचकर लाये जाने लगे। कृष्ण और हजरत मुहम्मद पर हमारे हृदय की गंदगी उबल पड़ी। दाढ़ी चोटी से आ भिड़ी और चोटी ने दाढ़ी की मुश्कें कसनी शुरू की। भाई चारे, विश्वास, सहिष्णुता, प्रेम और उदारता का दौर देखते देखते खत्म हुआ और ईर्ष्या द्वेष, दंभ, अविश्वास एवं अनुदारता का दुःखद एवं तूफानी दौर आया। बड़े बड़े डगमगा गये। ऐसा सैलाब आया जिसने पुराने तनों को खोखला कर दिया। हसरत मोहानी और सावरकर, इकबाल और परमानन्द—इस क्षेत्र में! और लाला जी, मानों भारत का भाग्य फूट गया हो। वह लाला जी, जो पंजाब के शेर थे, वह लाला जी जिन्होंने कहा था—'मेरा धर्म देश पूजा है', वह लालाजी जिन्होंने अमेरिका से, आग के शब्दों में लिखी हुई अपीलें निकाली थीं और वह लालाजी जिन्होंने मण्डाले देखा, असहयोग आंदोलन में जेलखाना देखा, वही लाला जी आज जातिगत झगड़ों के मैदान में! हिन्दू कैंप और मुस्लिम कैंप की इस मोर्चाबन्दी में लालाजी! कौन विश्वास कर सकता था कि यह वही लालाजी हैं, इसलिए उस वीर राजपूतनी की तरह जिसने अपने युद्ध से भागकर आने वाले पति के लिए महल का दरवाजा बंद करके कहा था कि यह मेरा पति

नहीं हो सकता, मेरा पति इतना कायर कभी न होगा, 'फारवर्ड' ने हृदय की पीड़ा व्यक्त करके लिखा—

'लाजपतराय जीवित रहें पर लाजपतराय, पंजाब का शेर, मर गया!

हाय! ये कैसे हृदय बेधक शब्द थे! यह भारत के दुर्भाग्य पर एक टिप्पणी थी!

× × ×

इस प्रकार के परिवर्तन लालाजी के जीवन में कई बार हुए। पर उनका कारण बताने अथवा उनके जीवन की आलोचना एवं विश्लेषण करने के पहले यह अच्छा होगा कि हम उनकी जीवन कथा पाठकों को सुना दें।

—तीन—

जीवन-कथा

लालाजी के पूर्वज पंजाब के लुधियाना जिले में स्थित जगराव के रहने वाले थे। इनके पिता लाला राधाकृष्ण भी समय समय पर वहाँ रहा करते थे। लाजपतराय का जन्म २८ जनवरी १८६५ ई० को अपनी ननिहाल—ढोडिग्राम—में हुआ। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा पिता की देख रेख में हुई।

जन्म, बचपन और शिक्षा

पिता सरकारी शिक्षा विभाग में काम करते थे, इसलिए उनकी बदली होती रहती थी। वह बालक लाजपत को बहुत मानते थे, इसलिए उसे भी जहाँ जाते साथ ले जाते थे। जरा बड़ा होने पर यह लुधियाना के मिशन स्कूल में पढ़ते रहे पर बाद में पिताजी की बदली होने पर उनके साथ अम्बाला चले गये। वहाँ एक बंगाली बाबू से अंग्रेजी पढ़ने लगे। उर्दू, फारसी और गणित स्वयं लाला राधाकृष्ण पढ़ाते थे। १८८० ई० में एण्ट्रेंस की परीक्षा पास की। एण्ट्रेंस परीक्षा के बाद इन्हें छात्र वृत्ति मिलने लगी। तब यह पिता के अनुरोध से आगे पढ़ने के लिए

लाहौर चले गये। उस समय सम्पूर्ण पंजाब (दिल्ली-सहित) में लाहौर में ही एक कालेज था। दिल्ली का कालेज १८७० इ० में तोड़ दिया गया था। जब एफ० ए० में पढ़ रहे थे तभी मुख्तारी की परीक्षा पास की। लाहौर में, छात्रावस्था में ही, स्व० गुरुदत्तजी, ला० हंसराज इत्यादि से परिचय हुआ तथा वहीं यह मेजर बी० डी० बसु के भाई एवं 'ट्रिब्यून' के जन्मदाता श्रीशचन्द्र बसु से मिले। उस समय श्री बसु नवयुवकों के उत्साह के एक केन्द्र थे। उनके तथा अन्य लोगों के सम्पर्क से 'लालाजी' के अन्दर सार्वजनिक सेवा के भाव उदय हुए। इनके पिता भी लेखादि लिखा करते थे, उसका भी इनके जीवन पर बड़ा प्रभाव पड़ा।

मुख्तारी की परीक्षा पास करने के बाद 'लाला जी' जगरावँ में ही मुख्तारी करने लगे। यहाँ मुख्तारी चल भी निकली थी पर कुछ दिनों

वकालत और आर्य-समाज में प्रवेश

बाद यह रोहतक आ गये और वकालत का तयारी करने लगे। १८८५ इ० में वकालत का परीक्षा पास की। १८८६ इ० में हिसार में वकालत शुरू की। १८९२ इ० तक वहीं वकालत करते रहे। यहाँ सफलता भी मिली। अप्रैल १८९२ इ० में मित्रों के अनुरोध से लाहौर चले आये। यहाँ आने पर आर्यसामाजिक संस्थाओं की इन्होंने विशेष उन्नति की। जब यह पढ़ते थे तो देव-समाज के संस्थापक श्री अग्निहोत्री की ओर विशेष रूप से आकर्षित हुए थे। देव समाज ब्रह्म समाज का ही एक संस्करण था। पर पीछे आर्य समाज ने इनको अपनी ओर खींच लिया। उन दिनों आर्य समाज की धूम थी। स्वामी दयानन्दजी का प्रभाव खूब बढ़ा हुआ था। १८७७ में उन्होंने लाहौर में आर्य समाज स्थापित किया। १८८२ ई० में 'लालाजी', स्व० गुरुदत्तजी एवं ला० हंसराज इत्यादि के साथ, आर्यसमाज में शामिल हुए। ये लोग पढ़ते भी थे और आर्य-समाज का काम भी करते थे। उन दिनों हिंदी-उर्दू का भी विवाद चलता था। ये लोग हिन्दी के पक्ष में थे। इसी समय (कार्तिक कृष्ण

अमावस्या-दीवाली-सवत् १९४० को) स्वामी दयानन्द का अजमेर में देहान्त हुआ। उस समय आर्य समाज लाहौर की ओर से शोक प्रकट करने के लिए जो सार्वजनिक सभा हुई उसमें लालाजी बोले और ऐसा बोले कि जनता पर उनकी वक्तृत्व शक्ति का उसी दिन से सिक्का जम गया। इनके तथा अन्य लोगों के प्रयत्न से १८८६ ई० में लाहौर में, स्वामीजी के स्मारक में दयानन्द एङ्ग्लो वैदिक कालेज की स्थापना हुई।

जब यह हिसार में वकालत करते थे तब भी सार्वजनिक कार्यों में भाग लेते रहते थे। बहुत दिनों तक हिसार की म्युनिसिपल कमिटी के अवैतनिक मंत्री भी रहे। स्वतंत्र विचार और निर्भीकता आरम्भ से ही उनकी विशेषताएँ थीं। जिसे ठीक समझते, करते। एक घटना याद आती है। जब वह म्युनिसिपल्टी के सेक्रेटरी थे तब एक बार पंजाब के छोटे लाट दौरा करते हुए हिसार पहुँचे। हिसार के डि० कमिश्नर म्युनिसिपल्टी के सभापति थे। म्युनिसिपल्टी में यह विवाद उपस्थित हुआ कि छोटे लाट को मानपत्र ('एड्रेस') अंग्रेजी में दिया जाय या उर्दू में। डिपुटी कमिश्नर अंग्रेजी पर जोर दे रहे थे क्योंकि इससे उन्हें स्वयं मान पत्र पढ़ने का मौका मिलता, फिर जो चाहते लिखते। लालाजी चाहते थे कि उर्दू में दिया जाय क्योंकि इसे वही पढ़ते और जनता के कष्टों का उल्लेख किये बिना न रहते। बड़ा वाद विवाद हुआ पर लालाजी टस से मस न हुए। फलतः उन्हीं की बात रही। उन्होंने ही मानपत्र लिखा और पढ़कर सुनाया एवं प्रजा के कष्टों का वर्णन करने से भी न चूके।

हिसार की सेवाएँ

हिसार में उन्होंने अनाथों के लिए एक उद्योग शाला भी स्थापित की थी।

श्री गुरुदत्त विद्यार्थी एवं श्री श्रीशचन्द्र वसु के उत्साहवर्द्धन एवं पथ प्रदर्शन से इनमें दिन दिन सार्वजनिक सेवा का भाव बढ़ा। श्रीगुरुदत्त के अनुरोध से ही यह लाहौर आये। लाहौर आने से पहले भी दयानंद कालेज का थोड़ा-बहुत काम तो करते ही रहते थे पर यहाँ आकर विशेष

रूप मे उसकी उन्नति के कार्य में लग गये। यह वर्ष तक यह उ

लाहौर में— कालेज की प्रबध-समिति के अवैतनिक मंत्री रह याद म बहुत दिनों तक उपसभापति भी रहे। क

वर्षों तक नि स्वार्थ भाव से उसमें अध्यापक का भी काम किया। ये यह इतिहास पढ़ाया करते थे। इतिहास और शिक्षा विज्ञान का इन्ह अच्छा अनुभव था। १९०५ ई० में अमेरिका की शिक्षा-सस्थाओं क अ लोकनाथ भी गये थे। वहाँ से लौटकर उर्दू तथा अग्रेजी में राष्ट्रीय शिक्ष पर पुस्तकें लिखीं।

आर्य समाज की सेवा में इनका ध्यान अनाथों की ओर विशेष रूप स आकर्षित हुआ। आर्यसमाजियों में शायद लाला जी ही पहले आद

अनाथों की रक्षा तथा जन सेवा — थे जिन्होंने सगठित रूप से, ईसाइयों के ढग प अनाथों के लिए अनाथालयों की स्थापना की। सं १९५३ (१८९६ ई०) में उत्तर भारत में भयं

अकाल पड़ा। लोग दाने दाने को तरस रहे थे। कितनों ने अपने बच्चों क बेच दिया, कितने माता पिता अपने लाडलों को छोड़कर चल बसे, कित विधवा हो गये, कितनी बहनों ने पापी पेट की भूख मिटाने के लि अपनी इज्जत बेच दी। उस समय लाला जी का कोमल हृदय यह दश देखकर व्यथित हो गया। उन्होंने सैकड़ों मनुष्यों को इस कष्ट से बचाया। इसके बाद ही सवत् १९५६ (१८९९ ई०) में राजपूताना म भयकर अका पड़ा। तब भी लाला जी ने लोगों की बड़ी सहायता की। पजाब-सरका तक को उनके अनाथ रक्षा सम्बन्धी कार्य की तारीफ करनी पड़ी औ जब १९०१ ई० में भारत-सरकार ने 'फैमीन कमीशन' (दुर्भिक्ष कमीशन) बैठाया तब पजाब की ओर से लाला जी ही साक्षी नियुक्त हुए। इसमें उनकी गवाही बड़े मार्के की हुई। उन्होंने अनाथ रक्षा सम्बन्धी कई बातें सुझाईं कमीशन ने उनमें से कुछ की सिफारिश भी की पर सरकार ने उधर विशेष ध्यान न दिया।

सन् १९०५ ई० में उन्होंने लाहौर आर्य समाज की ओर से एक सहायक-समिति स्थापित की। यह आजकल की सेवा समिति के ढंग पर थी। इसी साल भारत में भूकम्प हुआ। कांगड़ा (पंजाब) में इसका विशेष असर हुआ। कितने ही घर गिर गये, कितनी ही जान गईं। उस समय लालाजी दल बल सहित वहाँ पहुँच गये। उनकी बड़ी सेवा-सहायता की। दिन रात इधर उधर दौड़ते फिरते थे। इन सब कार्यों के साथ जगह-जगह चन्दा उगाहने के लिए भी जाना पड़ता था।

सन् १९०७-८ में उड़ीसा, मध्यप्रदेश एवं युक्तप्रांत में फिर भयंकर अकाल पड़ा। उस समय भी उन्होंने अकाल पीड़ितों की बड़ी सहायता की। जगह-जगह घूमकर चंदा इकट्ठा किया और स्वयंसेवकों के द्वारा धन की तथा अन्य प्रकार की सहायता लोगों को पहुँचाई। इस सहायता का उल्लेख सरकार ने भी अपनी मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट में किया था।*

---

*सन् १९११ की युक्तप्रांत की रिपोर्ट में लालाजी की इस सहायता का उल्लेख करते हुए ब्लन साहब लिखते हैं— The emissary of a well-known Arya leader came round distributing relief during the famine of 1907-08 and visited a certain village near which I had encamped. After his visit the recipients of his 'bounty being not quite sure whether they were doing right in accepting private charity when Government was looking after them sent a deputation to ask me whether they might keep his gifts. I of course told them to take all they could get and then their leader asked me who was the man (the Arya leader) who was distributing money in this whole ale way' अर्थात् "आर्य समाज के एक प्रसिद्ध नेता का एक प्रतिनिधि १९०७-८ के अकाल के समय चारों तरफ सहायता के लिए धन बाँटता हुआ आया और उस गाँव में भी आया जिसके निकट मैंने पड़ाव डाला था। उसके आने के बाद, उसकी उदारता से लाभ उठाने वालों ने, सहायता लेने न लेने के औचित्य का कुछ निश्चय न कर सकने के कारण,

वर्तमान समय में हरिजनों की समस्या को महात्मा गाँधी ने ब यल पूर्वक हिन्दू समाज के सामने रखा है और इस पाप का चिह्न मि

हरिजनों की सेवा

डालने के लिए उन्होंने प्राण तक उत्सर्ग कर देन व निश्चय करके अपूर्व उदाहरण देश के सामने उपस्थि किया है। लाला जी का भी इधर बहुत ध्यान था। सन् १९१२-१३ ई में अछूतों की दुर्दशा के प्रति कट्टर हिन्दुओं का ध्यान आकर्षित करन लिए उन्होंने काशी, प्रयाग, बरेली, मुरादाबाद इत्यादि की यात्रा की उनके उद्धार के लिए व्याख्यान दिये। सन् १९१३ में गुरुकुल काँगड़ में जो अछूत सम्मेलन हुआ था उसके यही सभापति थे। इसी सा चालीस हजार रुपये अछूत जातियों में शिक्षा प्रचार के लिए भी उन्हों दिये। ईसाइयों की 'मुक्ति सेना' (सल्वेशन आर्मी) की भाँति ए समिति भी बन गई। लालाजी ने कुमाऊँ इत्यादि में जाकर स्वय अछूतं की स्थिति की जाँच की और बड़ी हृदय द्रावक भाषा में प्रयाग के 'लीडर' नामक अंग्रेजी दैनिक पत्र में, उनके सम्बन्ध में, एक लेख लिखा। इस सम्बन्ध में युक्तप्रान्त के तात्कालिक लाट सर जेम्स मेस्टन से भी वह मिल थे। और आज तो उनकी जन-सेवक-समिति के अनेक कार्यकर्ता अपना सारा समय अछूतोद्धार के कार्य में लगा रहे हैं।

लाला जी के काँग्रेस में शामिल होने के साथ एक मनोरंजक पर दुःखद इतिहास लगा हुआ है। जब काँग्रेस का आरम्भ हुआ तो सरकार

राजनीति में प्रवेश

की उससे सहानुभूति थी। गवर्नर-जनरल लार्ड डफरिन ने भी कई बार उससे सहानुभूति प्रकट की थी पर पीछे जोर बढ़ता देख वह विरक्त हो गये—यहाँ तक कि एक वक्तृता में उन्होंने असंतोष भी प्रकट कर दिया। उस समय पश्चिमोत्तर

मेरे पास डेपूटेशन भेजा कि सहायता लें या न लें। मैंने उनसे कह दिया जो मिले ले लो। तब डेपूटेशन के नेता ने मुझसे पूछा कि वह कौन है जो इस प्रकार उदारता से धन बाँट रहा है।"

प्रान्त (इस समय का युक्तप्रांत) के छोटे लाट सर आक्लैण्ड काल्विन थे। यह कॉंग्रेस के प्रबल विरोधी थे। उन्होंने भिनगा-नरेश के नाम से 'प्रजातंत्र भारत के लिए सुविधाजनक नहीं है' (डेमोक्रैसी इज नॉट फिट्‌ टु इण्डिया) नाम की एक पुस्तिका भी निकाली थी। यह बात पीछे मालूम हुई कि इसके लेखक दरअस्ल काल्विन साहब ही थे। इसमें कांग्रेस का प्रबल विरोध किया गया था। उधर सरकार ने जब देखा कि लोगों में देशभक्ति के भाव फैल रहे हैं तो सर सैयद अहमद इत्यादि को ऐसा भड़काया कि वे कांग्रेस के विरुद्ध हो गये। सर सैयद, काशी के राजा शिवप्रसाद, मुंशी नवलकिशोर तथा भिनगा-नरेश इनमें मुख्य थे। पिछले तीनों से तो आशा ही क्या थी पर सर सैयद भी चकमे में आ गये। यह वही सर सैयद थे जो पहले भारतीय आकांक्षाओं के प्रबल समर्थकों में थे, यह वही सर सैयद थे जिन्होंने लाहौर के 'इण्डियन असोसिएशन' के सामने, अभिनंदन पत्र के उत्तर में, बोलते हुए कहा था—"हिन्दू मुसल्मान दोनों मेरी आँखें हैं। काश मेरे एक ही आँख होती, एक ही आँख से दोनों को देखता," यह वही सर सैयद थे जिन्होंने अपने भाषण में कहा था कि बंगाली भारतवर्ष के मस्तिष्क हैं,—वही सर सैयद ऐसे बहके कि दोनों आँखों को एक दूसरे से लड़ा दिया। मुसल्मानियत ('पान इस्लामिज्म') का खब्त उनपर सवार हुआ। उनके इस परिवर्तन पर हिन्दी के उस पुराने पत्रकार (स्व० बालमुकुन्द गुप्त) को 'सैयद का बुढ़ापा' में रोना पड़ा—

> द्रूप पाय के अपने मन में अब वह इतना फूल गया।
> बड़ा अचम्भा है दो दिन में सब पिछली गति भूल गया॥
> कीड़ों ने 'असबाबे बगावत'* को अबतक नहिं खाया है।
> उलटा करनेवाला भी भूतल में नहीं समाया है॥

* सर सैयद ने १८५७ के गदर पर 'असबाबे बगावत' नाम की एक अच्छी पुस्तक लिखी थी, उसी की ओर इशारा है।

बोलो तो बुड्ढे बाबा क्या उस सनेह का हुआ निबाह ।
भूल गये पंजाब सफर में तुम जो आँसू रहे थे फाड़ ॥
हिन्दू और मुसलमानों को एक ही सा बतलाते थे ।
आँख फाड़ने को अपनी झटपट प्रस्तुत हो जाते थे ॥

× × ×

करके द्रोह दीन दुखिया लोगों से क्या पद पाओगे ।
अपना नाम बड़ा कर लोग देश का नाम मिटाओगे ॥
फारूक और शद्दाद के झगड़े अब इस समय कहानी हैं ।
पर कलंक औ अपयश की तो चिरस्थायिनी बानी है ॥
वह दिन गये वक्तृता देते आँसू टप टप गिरते थे ।
मेरे तुम्हारे दीन हीन लोगों से कभी न फिरते थे ॥

× × ×

स्मरण हमें इस अवसर पे सादी का कहना आता है ।
ज्यों-ज्यों नर बूढ़ा होता है लोभ अधिक आ जाता है ॥

'लालाजी' के पिता सर सैयद के बड़े भक्त थे। उनका 'सोशल रिफार्मर' (समाज सुधारक) पत्र वह बड़े चाव से पढ़ा करते थे पुत्र को भी पढ़ाते थे। पर अकस्मात् उनके विचारों में यह परिवर्तन देख अचंभे में आ गये। उन्होंने लाहौर के 'कोहेनूर' नामक उर्दू अखबार में कई खुली चिट्ठियाँ सर सैयद के नाम छपवाईं। लाजपतरायजी ने इनका अंग्रेजी अनुवाद किया तथा स्वयं भी अंग्रेजी में कई खुली चिट्ठियाँ छपवाईं जिनमें सर सैयद के पहले के और उस समय के परिवर्तन की तुलना करके दुख प्रकट किया गया था।

सर सैयद कांग्रेस का व्यक्तिगत रूप से विरोध करके ही नहीं रह गये उन्होंने एक विरोधी सभा ('एण्टी-कांग्रेस') भी स्थापित की।

यह असहयोग-काल की अमन सभाओं की भांति थी। सरकार ने बाधाएँ डालीं, इस सभा ने भी विरोध का तूफान खड़ा किया फिर भी चौथी कांग्रेस प्रयाग में श्री यूल के सभापतित्व में शान से हुई। उसमें लाजपतराय भी आये थे। उस समय यह सिर्फ २३ वर्ष के थे पर कौंसिल सुधार-सम्बन्धी प्रस्ताव के समर्थन में खूब बोले। उसमें उनकी तरफ लोगों का ध्यान गया। 'रईस ऐण्ड रैयत' इत्यादि पत्रों ने उस व्याख्यान को लेकर उनकी प्रशंसा की। *

इसी समय से उनका कांग्रेस के साथ सम्बन्ध स्थापित हुआ। सन १९०५ ई० में कांग्रेस की ओर से श्री बिशन नारायन दर, श्री गोखले एवं 'लालाजी' को इंग्लैण्ड भेजकर वहाँ पार्लमेण्ट के सदस्यों के सामने भारतीय स्थिति में सुधार की

कांग्रेस डेपूटेशन में

* 'रईस ऐण्ड रैयत' ने अपने साहित्यिक स्तम्भों में लिखा—

To hear this very young man of short stature is to be agreeably surprised Who could a few minutes before believe that he was capable of so much ? × × His intelligent intellectual expression is a true index to his real worth With remarkable effect did he quote Sir Syed s former heretic (judged from his present attitude) professions from a very valuable pamphlet Open Letters to Sir Syed Ahmed whose authorship some people would father upon him He gave fair promise of a first rate speaker He should cultivate the art'

भावार्थ यह कि "इस नाटे कद के नवयुवक की वक्तृता सुनने से प्रसन्नता के साथ आश्चर्य हुआ। चंद मिनटों पहले किसे विश्वास था कि वह इतना सुन्दर भाषण दे सकेगा? उसकी बौद्धिक एवं चतुराई से पूर्ण वक्तृता उसकी असली योग्यता की सूचक है। अत्यन्त प्रभावपूर्ण ढंग से उसने सर सैयद के पहले के मत का उदाहरण देकर उनके इस समय के मत की आलोचना की। उसमें प्रथम श्रेणी के वक्ता होने के चिन्ह दिखाई पड़ते हैं। उसे इस कला को विकसित करना चाहिए।"

समस्याएँ रखने का निश्चय हुआ। श्री दर तो बीमारी के कारण न जा सके पर श्री गोखले एवं लालाजी गये। इंग्लैण्ड में लालाजी ने लोगों के सामने भारतीयों की स्थिति रक्खी। एक महीने में ४० व्याख्यान दिये, पत्रों में लेख लिखे, कितने ही प्रतिष्ठित आदमियों से मिले। पर वहाँ जो अनुभव हुए उससे उन्होंने समझ लिया कि भिक्षा वृत्ति से काम नहीं चल सकता और अपने पैरों पर ही खड़ा होना पड़ेगा। यही सन्देश लौट कर उन्होंने भारत वासियों को दिया।

बंग भंग

बंगाल नवीन भारत की जागृति का केन्द्र हो रहा था। एक नया भाव लोगों में फैल रहा था, एक नूतन प्राणोन्मेष हो रहा था। यह भारतीय संस्कृति का जागरण अधिकारियों से देखा न गया। १९०५–६ में तात्कालिक वायसराय लार्ड कर्जन ने बंगाल को दो टुकड़ों में विभक्त करके राष्ट्रीयता के बढ़ते हुए प्रभाव को दबाना चाहा। बंगालियों ने एक स्वर से विरोध किया पर उनकी पुकार पर कुछ ध्यान न दिया गया। निराश होकर बंगालियों ने सत्याग्रह आरंभ किया। विलायती वस्तुओं के बहिष्कार एवं स्वदेशी के उपयोग का ऐसा आंदोलन उठा कि वह देखते-देखते तूफान की तरह भारत में छा गया। लालाजी ने भी समर्थन किया। स्थान स्थान पर घूम घूमकर भाषण किये और जनता को जगाने लगे। सरकार ने दमन का सहारा लिया। अनेक देशभक्त जेलों में ठूस दिये गये। इसी समय काशी की काग्रेस श्री गोखले के सभापतित्व में हुई। इसमें लालजी ने कहा—"An Englishman hates or dislikes nothing like beggary. I think a beggar deserves to be hated. Therefore, it is our duty to show Englishman that we have risen to the sense of consciousness, that we are no longer beggars." अर्थात् "एक अंग्रेज भीख मांगने से अधिक किसी बात को घृणा या नापसंद नहीं करता। मैं

समझता है कि भिक्षुक इसी योग्य है कि उससे घृणा की जाय। इसलिए अंग्रेज को यह दिखा देना हमारा कर्तव्य है कि हमें अपनी अवस्था का अनुभव हो गया है और अब हम भिक्षुक नहीं हैं।" इस कांग्रेस के बाद ही देश में दो राजनीतिक दल हो गये—गरम, नरम। पहले में लाल-बाल-पाल (लाजपतराय, बाल गंगाधर तिलक, विपिन चन्द्रपाल) प्रधान थे और दूसरे में सर फीरोजशाह मेहता, गोखले, सुरेंद्रनाथ और मालवीयजी इत्यादि थे। देश में चारों ओर 'लाल-बाल-पाल' की धूम थी।

काशी-कांग्रेस के बाद देश की स्थिति और भयकर हो गई। बंगाल में दमन से हाहाकार मच गया। धर पकड़ एवं तलाशियों की धूम थी। बारीसाल में बंगाल प्रांतीय कान्फ्रेंस का अधिवेशन होने वाला था। स्व० श्री रसूल उसके सभापति मनोनीत हुए थे पर वहाँ के जिला मजिस्ट्रेट श्री इमर्सन ने कान्फ्रेंस न होने दी। सुरेंद्रनाथ को गिरफ्तार कर लिया और उन पर ५००) जुर्माना किया। इससे असंतोष की आग और भड़की। उस समय 'लालाजी' घूम घूमकर व्याख्यान दे रहे थे। उसी साल कलकत्ता में दादाभाई नौरोजी की अध्यक्षता में कांग्रेस हुई। उन्होंने स्वराज को ही सारे मर्ज की दवा बताकर सबको दृढ़ रहने का उपदेश किया। बाद में पंजाब में भी असंतोष फैल गया। उस समय लालाजी ने जनता में जागृति उत्पन्न करने में अपनी शक्ति लगा दी। फलस्वरूप पंजाब-सरकार के अनुरोध पर भारत सरकार ने देश निकाले की आज्ञा जारी कर दी।

पंजाब की अशान्ति

बंगाल की छूत पंजाब में भी फैल गई थी। सन् १९०७ में पंजाब क्षुब्ध सा हो रहा था। पंजाब के कुछ हिस्सों में बस्ती बसाने के लिए सरकार लोगों को ले गई और बस जाने पर उन पर कर लगाने का विचार किया। भूमि-कर सम्बन्धी नियमों में भी वह फेरफार करना चाहती थी। इसी समय लाहौर के

गोरे समाचार पत्र 'सिविल ऐण्ड मिलिटरी गजट' में भी भारतीयों के प्रति ईर्ष्या द्वेषपूर्ण स्वर निकलने लगे। 'सिंचाई-कर' में भी वृद्धि हुई, लोकप्रिय 'पंजाबी' पत्र पर राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया और उसका, जनता की राय में, जो 'अनीतिपूर्ण' फैसला हुआ उसने असंतोष की आग सुलगा दी। इस जाग्रति का उपयोग करने के लिए सरदार अजीतसिंह ने 'अंजुमन मुहिब्बाने वतन' (देश प्रेमियों की सभा) स्थापित की। प्रति रविवार को इसका अधिवेशन होता था। हजारों की भीड़ होती थी, लाहौर के बाहर के लोग भी आते थे। सरदार साहब के व्याख्यान बड़े जोशीले होते थे। पंजाब में घूम घूमकर उन्होंने व्याख्यान दिये। उस समय की पंजाब और बंगाल की जागृति का क्या कहना था? देश ने १८५७ के ५० वर्ष बाद, अपने अंदर एक नई चेतना का अनुभव किया था। जिस प्रकार बंगाल के प्राणों से 'के बले मा तुमि अबले?' स्वर उठ रहा था वैसे ही पंजाब के घर घर में 'पगड़ी सँभाल ओ जट्टा!'* गीत गाये जा रहे थे। पंजाब के जाटों में यह जागृति देखकर सरकार घबरा उठी थी। अतः मैं

* यह गीत बहुत बड़ा है पर दो-चार पद्य यहाँ दिये जा रहे हैं—

पगड़ी सँभाल ओ जट्टा ! टेक ॥
असानु पता नाहीं रज हो जावना।
साडीया कूड़ा साडा कुछ न बन आवना।
गाहनु करद पबे जाया उबाल ओ। पगड़ी० ॥

× × ×

लिख लिख चिट्ठिया पवे लाटनु घल्लिया।
कूड़ हाकदया लोको समझदयाल्लिया ॥
जेढ़ा वॅत्ती ची पिच्छे हाल ओ हालो ॥ पगड़ी० ॥

उसने सरदार अजीतसिंह और लाला लाजपतराय को निर्वासित कर दिया।

× × ×

निर्वासन-सम्बन्धी कुछ प्रामाणिक घटनाओं की चर्चा यहाँ जरूरी हो जाती है। 'मेरे निर्वासन की कहानी' (The Story of My Deportation) में लालाजी ने उनका विस्तार के साथ वर्णन किया है पर यहाँ अत्यंत संक्षेप में मैं उन्हें देता हूँ।

कुछ प्रामाणिक घटनाएँ

बात यह है कि रावलपिण्डी के लाला गुरुराम एडवोकेट, लाला हसराज तथा ला० अमोलक राम प्लीडर बड़े ही देश प्रेमी थे। वे लोग कभी-कभी एकत्र होकर देशसेवा सम्बन्धी बातों की चर्चा किया करते थे। ३० अप्रैल १९०७ को वहाँ के जिला मजिस्ट्रेट (मि० पी० डी० ऐग्यू) ने निम्नलिखित विचित्र नोटिस इन लोगों के नाम जारी की—

"लाला गुरुदासराम एडवोकेट, लाला हसराज प्लीडर, लाला अमोलक राम प्लीडर—मेरे पास यह रिपोर्ट पहुँची है कि कुछ दिन पहले इस शहर में एक सभा हुई थी, जिसमें अजीतसिंह नामक एक मनुष्य मुख्य वक्ता था। सुना जाता है कि लाला हसराज उस सभा के सभापति थे। सभा के संयोजक और मंत्री लाला अमोलकराम थे और वक्तृता देनेवाले

पेंदट पास जड़ा होना सी हो गया।
हक जेडा जेड़ा खाना सा खो गया।
हुन की करिए दस्सी मेरा सवाल हो। पगड़ा० ॥

× × ×

निरिया गल्ला नाल कुछ नहा बनदा।
रुढ़ा अलाज करों कोई वतन दा॥
बाजिया लुट्टी जादा देख बगाल ओ॥ पगड़ी० ॥

इत्यादि०

म भी एक वक्ता लाला अमोलक राम थे। मुझे यह भी खबर मिली है
कि अजीतसिंह की वक्तृता अत्यन्त राजविद्रोह फैलाने वाली थी और गु
दासराय की वक्तृता भी ऐसी ही थी। उनकी वक्तृता में बन्दोबस्त के कल
क्टर और मजिस्ट्रेट मि० किचन पर कठोर आक्षेप थे। इसलिए आप दोनों
को यह नोटिस देता हूँ कि आगामी दूसरी मई के ११ बजे दोपहर को
इसके सम्बन्ध में तहकीकात करूँगा, इसलिए आप लोगों को उस समय
यहाँ उपस्थित होने की अनुमति देता हूँ। वहाँ आप लोग इस
सम्बन्ध में जो कुछ कहेंगे वह भी ध्यानपूर्वक सुना जायगा। इस
तहकीकात करने के दो उद्देश्य हैं,—(१) ताजीरात हिन्द की १२४
और ५०५ धारा के अनुसार आप लोगों पर मुकदमा चलाने के यथेष्ट
प्रमाण प्रस्तुत हैं या नहीं। (२) यदि तहकीकात में ये बातें निश्चित
हो जायँ तो फिनान्शल कमिश्नर और चीफ कोर्ट की सेवा में, आप लोगों
के पास रेवेन्यू एजण्टी के जो लाइसेंस हैं उन्हें रद्द करने अथवा कानूनी
व्यवसायी कानून (Legal Practitioner Act) के ४१-३७ वीं
धारा के अनुसार जैसी स्थिति हो उसके मुताबिक करने की आज्ञा प्राप्त
करने की प्रार्थना की जाय। कृपया इस नोटिस के नीचे लिख दें—
देख लिया।

(हस्ता०) पी० डी० एग्न्यू,
जिला मजिस्ट्रेट।
३० अप्रैल १९०७।"

यह नोटिस गैर-कानूनी और हास्यास्पद थी। आज तक कभी
अन्यत्र ऐसी नोटिस नहीं देखी गई पर यहाँ तो किसी तरह इन्हें नीचा
दिखाना था। लालाजी को समाचार मिला, वह तुरन्त पहुँचे। सलाह
मशविरे के बाद यह तै पाया कि इन लोगों में से कोई अदालत न
जाय। इनकी ओर से वकील कर दिये गये। लोगों में नोटिस की अफवाह
फैल गई। ठट्ठ के ठट्ठ आदमी इन लोकप्रिय नेताओं का मुकदमा देखने

अदालत में उपस्थित हुए। मजिस्ट्रेट ने जब यह दृश्य देखा तो कह दिया, 'मुकद्दमा आज न होगा, पीछे तारीख की सूचना दे दी जायगी।' इधर जनता इतनी उतावली हो रही थी कि उसने जुलूस निकालना चाहा। लाला जी से व्याख्यान देने के लिए कहा गया, उन्होंने इन्कार कर दिया पर भीड़ हटती न थी इसलिए विवश होकर दोपहर को व्याख्यान देने का वादा करना पड़ा। इसके बाद समाचार मिला कि कुछ उजड्ड आदमी डिपुटी कमिश्नर के थाने के अहाते में गड़बड़ कर रहे हैं तथा कुछ लोग जिला जज की कोठी की तरफ भी गये हैं। अब सभा करके इस प्रकार के कृत्य की निन्दा करना आवश्यक हो गया पर इस बीच जिला मजिस्ट्रेट ने लाला जी को बुलाकर कहा—"सभा गैर-कानूनी करार दे दी गई है, पुलीस को कारतूस दे दिये गये हैं एवं घुड़सवार सेना भी बुला ली गई है। यदि सभा हुई तो गोलियाँ चलाई जायँगी।" खैर, सभा तो स्थगित कर दी गई फिर भी सारी रात धर पकड़ होती रही। ३ मई को लालाजी के ये सब वकील मित्र तथा और भी दो एक मित्र गिरफ्तार कर लिये गये। लालाजी ने इन मित्रों को छुड़ाने का बीड़ा लिया और आन्दोलन करने में लग गये।

निर्वासन के दृश्य

युरोपियन राज-कर्मचारी लालाजी से जलते थे। वे दाँत पीस रहे थे। लालाजी की गिरफ्तारी की अफवाह भी गर्म थी। उस समय लाला जी के बड़े लड़के (जो इस समय शायद बरिस्टर हैं) लाहौर में थे। स्त्री, पुत्र, पुत्री सब लुधियाना, उनके ससुराल में ही थे। लालाजी को वृद्ध पिता की चिन्ता अधिक थी। उन्होंने पिता को पत्र लिखा और चिन्ता न करने का अनुरोध किया। यद्यपि लालाजी ने कोई गैर-कानूनी काम न किया था इसलिए उनको विश्वास न था कि सरकार देश निकाले का अदूरदर्शीता पूर्ण काम करेगी, फिर भी उन्होंने अपने को तैयार रखना जरूरी समझा। उन्होंने दूसरे प्रान्त के नेताओं को पंजाब की परिस्थिति के सम्बन्ध में पत्र भेजे, सर

विलियम वेडरबर्न के पास चिनाब नहर की कर वृद्धि के सम्बन्ध में एक पत्र, आवश्यक कागजों के साथ, भेजा। निजायत भी एक मित्र को पत्र लिखा। इसमें लिखा—"पता नहीं विलायती डाक के दिन मैं पत्र लिखने में समर्थ होऊँगा या नहीं इसलिए यह पत्र इतनी जल्दी भेज रहा हूँ।" पत्र लिखकर भोजन किया। फिर दो पत्र और लिखे। इसके बाद एक लेख लिखा। फिर चिट्ठियाँ, लेख आदि जेब में रखकर चीफकोर्ट जाने के लिए गाडी तैयार करने की आज्ञा दी।

लालाजी अदालत जाने के लिए तैयार हो रहे थे कि उनके मुंशी ने खबर दी—"दो आदमी आपसे मिलना चाहते हैं।" लालाजी उनकी अभ्यर्थना को बाहर आये तो देखा कि एक सज्जन शहर और दूसरे अनारकली थाने के थानेदार हैं। सिटी पुलीस के इन्सपेक्टर ने लालाजी से कहा कि आपसे कमिश्नर और डिपुटी कमिश्नर मिलना चाहते हैं, शीघ्र चलिए।

"आपसे मिलना चाहते हैं।"

लालाजी ने सोचा कि शायद अफसरों ने उन्हें अशान्ति निवारण के लिए प्रयत्न करने के सम्बन्ध में बुलाया हो इसलिए बोले—"मुझे कचहरी में कुछ काम है अतः वहाँ से लौटते समय मैं कमिश्नर साहब से मिलूंगा।" शहर के थानेदार ने कहा—"कमिश्नर साहब डिस्ट्रिक्ट आफिस में हैं, चंद मिनटों के लिए ही आपसे मिलना चाहते हैं। आप उनसे मिलकर कचहरी जा सकते हैं।"

लालाजी को कुछ सन्देह हुआ। वह दोनों थानेदारों के साथ गाडी में बैठ गये। अभी गाडी थोडी ही दूर चली थी कि जिला पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट, एक और अंग्रेज के साथ, कूदकर गाडी के पायदाना पर चढ़ गये। लालाजी के आग्रह करने पर वे भी अन्दर बैठे। आफिस में पहुँचने पर कमिश्नर ने उन्हें सपरिषद् बड़े लाट द्वारा निकाली गई निर्वासन की आज्ञा सुनाकर कहा—"आप गिरफ्तार किये गये हैं और आपको देश निकाला होगा हाँ व्यवहार सज्जनतापूर्ण किया जायगा।" कमिश्नर

ने पूछा—"क्या निवासन के पहले आप किसी से मिलना चाहते हैं ?" लालाजी बोले—"नहीं।" कमिश्नर ने फिर पूछा—"किसी को पत्र लिखना चाहते और अपने कपड़े व बिस्तर आदि मँगवाना चाहते हैं ?" लालाजी ने उत्तर दिया—"हाँ।" इस पर कमिश्नर ने लालाजी को कागज कलम दवात दी। लालाजी ने दो चिट्ठियाँ लिखीं। एक ज्येष्ठ पुत्र को,—जिसमें अपने देश निकाले की सूचना के साथ लिखा कि मेरी अनुपस्थिति में अपने पितामह की आज्ञानुसार चलना। दूसरा पत्र अपने मित्र (अब स्व०) लाला द्वारकादास को वकालत-सम्बन्धी बातों के विषय में लिखा। इसके बाद लालाजी की तलाशी ली गई, फिर वह डिपुटी कमिश्नर की मोटर में बैठाये गये। डि० कमिश्नर खुद मोटर चला रहे थे, पास में जिला पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट हाथ में पिस्तौल लेकर बैठे तथा पिछली सीट पर लालाजी एवं एक युरोपियन सब इन्सपेक्टर बैठे। इस प्रकार ले जाकर लालाजी को युरोपियन गारद में बंद कर दिया गया।

भीतर जाते ही लालाजी एक तख्ते पर लेट गये, उनकी छाती में दर्द हो रहा था। जब दर्द कुछ कम हुआ तो मन में तरह-तरह के विचार उठने लगे। लालाजी स्वयं अपने निर्वासन की कहानी में लिखते हैं—"सबसे पहले मैंने ऐसा अच्छा अवसर उपस्थित करने के लिए परमात्मा का धन्यवाद किया क्योंकि इस समय मेरे पिता, मेरी स्त्री तथा बच्चों में से कोई उपस्थित न था, उनमें से किसी के रहने पर जो हृदय विदारक दृश्य उपस्थित होता उसे देखकर चित्त विचलित हो जाना कोई बड़ी बात न थी। दूसरी बात, जिसके लिए मैंने परमात्मा को धन्यवाद किया, यह थी कि मेरी माता का देहान्त हो गया था। मुझे अपने पिता की चिन्ता थी किन्तु यह विश्वास था कि वे दृढ़ चित्त के पुरुष हैं इसलिए विपत्ति से विचलित न होंगे। मैं अपने बच्चों और स्त्री की ओर से भी निश्चिन्त था क्योंकि ये लोग भी मेरे पिता की देखरेख में थे। इस प्रकार अपनी

लाहौर से मण्डाले

१६

१ कुटुम्ब-सम्बन्धी बातों का विचार करने के बाद अपनी परिस्थिति के विषय में स्वतन्त्रता पूर्वक विचार करने लगा। मुझे अपने अन्दर किसी प्रकार की मानसिक या नैतिक दुर्बलता का कुछ पता न लगा और न अपने विचारों से डगमगाने का मुझे कोई कारण प्रतीत हुआ। बाल्यावस्था से ही मुझे परमात्मा पर अटल विश्वास था। यही विश्वास इस समय भी मुझे बल दे रहा था। मुझे अपनी तात्कालिक अवस्था में सम्कष्टों को सहने की अधिक शक्ति प्राप्त हुई। मैंने अपने को इस आत्म निरीक्षण में अत्यन्त दृढ़ पाया। मैंने प्रभु से प्रार्थना की कि वह इन कठिनाइयों को सहन करने का बल दे और मुझसे जान या अनजान में कोई ऐसा कार्य न होने दे जिससे मातृभूमि की सेवा के मेरे उद्देश्य में किसी प्रकार की अड़चन आवे या मेरा समाज किसी तरह अपमानित और लज्जित हो।"

चार बजे शाम को लाला जी ने मोटरकार में बिठा दिया। छः बजे दरवाजा खुला और वह फिटन पर सवार कराकर मियाँमीर स्टेशन पहुँचा गये, जहाँ पहले से ही स्पेशल ट्रेन तैयार खड़ी थी। उसमें बैठते ही गाड़ी चल दी। साथ में सार्जेण्ट एवं सिपाही थे जिनकी हर स्टेशन पर बराबर तलाशी ली जाती थी। इस प्रकार पंजाब, युक्तप्रान्त, बिहार एवं बंगाल की सीमा पार कर लालाजी डायमण्ड हारबर (बंदरगाह पर) पहुँचाये गये। रास्ते में स्नान, भोजन इत्यादि का प्रबन्ध कर दिया गया था। डायमण्ड हारबर से लालाजी ने घरवालों को तार देना चाहा पर उनका अनुरोध स्वीकार नहीं किया गया फलतः उन्होंने एक पत्र पुत्र को और एक पिता को भेजा। १२ मई को डायमण्ड हारबर से चलकर १४ मई को रंगून पहुँचे। फिर वहाँ से रेल द्वारा माण्डले पहुँचाये गये। माण्डले स्टेशन पर गाड़ी पहुँचते ही स्टेशन बिल्कुल खाली करा लिया गया। स्टेशन से बाहर निकलते ही, भारत-सेवक समिति, (सर्वेण्ट्स आफ इण्डिया सोसायटी) के सदस्य और आज प्रधान, श्री देवधर शास्त्री

के चरणों पर गिर पडे । पुलिस वालों ने दोनों को अलग कर लिया पर लालाजी ने मस्तक नवाकर देवघर के प्रणाम का जवाब दिया । इस प्रकार १६ मई १९०७ को लालाजी माण्डले पहुँचे ।

इधर यह सब हो रहा था, उधर लालाजी के निर्वासन का समाचार सारे देश में फैल गया । इससे लोगों में बडा असंतोष फैला । जो अबतक उनके विरोधी थे वे भी सरकार की अनीति का विरोध करने लगे । इंग्लैण्ड एवं भारत के अनेक पत्रों ने इस कार्य का प्रतिवाद किया । उस समय के असंतोष का अनुमान गदर के बाद भिखारियों एवं सर्वसाधारण में प्रचलित गीतों की इन कडियों के फिर से प्रसार पाने से किया जा सकता है—'नहस जा फिरंगिया, हटजा दुरंगिया, अकाल सिक्खां दी फौज आई' तथा इसी प्रकार, 'आठ फिरंगी नौ गोरा, लडे जाट का दो छोरा' एवं 'फिरंगी रे जाट मिल गयो जगी रे' इत्यादि । लोग पागल हो रहे थे । अन्यथा ऐसे गीतों का सिवाय असंतोष-प्रदर्शन के कोई अर्थ नहीं हो सकता था ।

जनता में असंतोष

लोकमान्य (तिलक) और गोखले दोनों ने निर्वासन का विरोध किया था । गोखले ने कई बार बडी कौंसिल में भी इसकी चर्चा की । इंग्लैण्ड, दक्षिण अफ्रीका, जापान, अमेरिका इत्यादि में प्रतिवाद में हिन्दुस्तानियों ने सभाएँ कीं, अनेक विदेशियों ने भी प्रतिवाद में उनका साथ दिया । श्री हैण्डमैन, मजदूर दल के नेता श्री केयर हार्डी एवं नेविंसन इत्यादि ने सरकार के इस कार्य की निन्दा की । पार्लमेण्ट में अनेक प्रश्नोत्तर हुए । ४ जून १९०७ को पार्लमेण्ट में सर विन्सेण्ट के यह कहने पर कि 'लालाजी को गोली क्यों न मार दी जाय' बडी चखचख हुई । सर विन्सेण्ट के इस कथन पर लिबरल दल के अनेक सदस्य बिगड खडे हुए । पीछे श्री मार्ले ने बडी कठिनाई से लोगों को शान्त किया ।

लालाजी १६ मई १९०७ से ११ नवम्बर १९०७ तक ही माडले में कैद रहे । माडले के किले के एक बंगले में इनको रखा गया तथा एक

(मद्रासी) रसोइया दिया गया। पीछे बार-बार पंजाबी रसोइया मांगने पर एक पंजाबी लड़का दिया गया, बर्मी सिपाहियों की एक गारद उनकी निगरानी के लिए नियुक्त हुई। टहलने की सुविधा कर दी गई थी तथा भंगी, नाई, धोबी इत्यादि की सुविधाएँ भी मिल गई थीं पर उनपर पहरा बड़ा कड़ा था। मिलने-जुलने की इजाजत न थी। इनके छोटे भाई लाला धनपतराय ने मिलने के लिए कई बार सरकार को लिखा पर पंजाब सरकार ने आज्ञा न दी। जेल में लालाजी की छाती का दर्द बढ़ गया था अतः स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता था। 'लालाजी' प्रायः धार्मिक पुस्तकों के अध्ययन में समय काटते थे। गीता एवं दीवाने हाफिज को कई बार में पढ़ा तथा उर्दू में बर्मियों के सम्बन्ध में एक पुस्तक लिखी। उर्दू में एक उपन्यास एवं अंग्रेजी में समाज सुधार पर एक लेख भी लिखा। 'गीता का संदेश' नामक लेख भी वहीं का लिखा हुआ है।

कैद एवं छुटकारा

११ नवम्बर १९०७ को लालाजी छोड़े गये। पुलिस के पहरे में स्पेशल ट्रेन से (मण्डाले से) रंगून पहुँचाये गये, फिर जहाज द्वारा कलकत्ता लाये गये फिर स्पेशल ट्रेन से लाहौर पहुँचाये गये। १८ नवम्बर १९०७ को लाहौर पहुँचे। उनके छूटने का समाचार सारे देश में फैल गया जिसे सुनकर जनता को हार्दिक प्रसन्नता हुई।

निर्वासन के समय कलकत्ता के गोरे अखबार 'इंग्लिशमैन' ने लिखा था कि लालाजी ने हिन्दुस्तानी सैनिकों को विद्रोह के लिए भड़काया है। इसी प्रकार की बेहूदी बातें लाहौर के 'सिविल मिलिटरी गजट' ने भी लिखी थीं। लन्दन के 'डेली एक्सप्रेस' ने तो यह गप उड़ा दी थी कि लालाजी अमीर काबुल से मिलकर भारत से अंग्रेजी राज्य मिटाना चाहते हैं। लालाजी ने इन पत्रों पर नालिश की। कलकत्ता हाईकोर्ट ने 'इंग्लिशमैन' पर आपको डिग्री दी। लन्दन के 'डेली एक्सप्रेस' एवं

अखबारों पर नालिश

ाहौर के 'सिविल ऐण्ड मिलिटरी गजट' ने क्षमा मॉग ली ।

- पहले लिखा जा चुका है कि देश में नरम गरम दो राजनीतिक दल ो गये थे । कांग्रेस नरमदल वालों के हाथ में थी, जनता गरमदल की पीठ ठोंकती थी । कांग्रेस का अधिवेशन नागपुर में होनेवाला था और गरमदल वाले लोकमान्य (तिलक) को अध्यक्ष बनाना चाहते थे पर इससे सरकार के चिढ़ जाने का अन्देशा था इसलिए नरमदल वालों ने नागपुर की जगह सूरत में अधिवेशन करने का निश्चय किया । उनका यह अभिप्राय था कि उसी प्रांत के निवासी होने के कारण लोकमान्य (तिलक) अध्यक्ष न हो सकेंगे पर गरमदल ने लालाजी का नाम प्रस्तावित किया । वास्तव में यह देश में बढ़ती हुई युवक मनोवृत्ति के प्रकाशन का सवाल था । गरमदल आगे बढ़कर पैरों पर खड़ा होना चाहता था । १९०६ ई० में दादाभाई नौरोजी की अध्यक्षता में कलकत्ता अधिवेशन में पास हुए 'स्वदेशी, बहिष्कार, राष्ट्रीय शिक्षा और स्वराज्य' सम्बन्धी चार प्रस्तावों को भी नरमदल हटाना चाहता था । उन लोगों ने श्री (पीछे 'सर') रास बिहारी घोष को अध्यक्ष चुना था । लालाजी ने 'ट्रिब्यून' नामक पत्र में चिट्ठी छपाकर अपने स्थान पर श्री घोष को ही मनोनीत करने का प्रस्ताव रखा ।

तूफानी सूरत कांग्रेस

दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में सूरत में लोग एकत्र हुए । लालाजी भी पहुँचे । उनका बड़ी धूम धाम से स्वागत हुआ । उन्होंने दोनों दलों को मिलाने का बड़ा प्रयत्न किया पर सफलता न मिली । कांग्रेस में बड़ा हुल्लड़ मचा, किसी उच्छृङ्खल युवक ने मंच पर जूता तक फेंक दिया । श्री सुरेंद्रनाथ ने अपने संस्मरणों में इसका बड़ा दर्दनाक और दु:खमय खाका खींचा है उन्होंने श्री तिलक को ही इस घटना के लिए जिम्मेदार बताया है । जो हो, कांग्रेस भंग सी हो गई । दोनों दलों ने अपनी अलग अलग कान्फ्रेंसें कीं । गरमदल वालों के अध्यक्ष श्री अरविन्द

घोष और नरम के श्री रासबिहारी घोष हुए। लालाजी दोनों में शामिल हुए। इन दिनों स्वदेशी का आंदोलन जोरों पर था। ३० दिसम्बर १९०७ को अखिल भारतीय स्वदेशी सभा हुई जिसके लालाजी सभापति हुए। १९०८ के अप्रैल महीने में नरमदल वालों ने कांग्रेस के धर्म ('क्रीड') की रचना के लिए सम्मेलन किया। इसमें सम्मिलित होकर भी लालाजी ने दोनों दलों को मिलाने का प्रयत्न किया पर सफलता न हुई। यह वह समय था जब बंगाल में क्रान्तिकारी दल का जोर बढ़ रहा था। कई जगह बम-काण्ड हो चुके थे। सारे देश में तलाशियों एवं गिरफ्तारियों की धूम मच गई। लोकमान्य (तिलक) इत्यादि गिरफ्तार हुए। लोकमान्य को छः वर्ष का कारावास दण्ड मिला। इसी वर्ष लालाजी ने इंगलैण्ड के लिए दूसरी यात्रा की।

इंगलैण्ड में

लाला जी भारत की स्थिति से खिन्न होकर इंग्लैण्ड गये थे पर वहाँ भी भारत को नहीं भूले। वहाँ के अखबारों में भारत के सम्बन्ध में अनेक लेख लिखे और वहाँ के हिन्दुस्तानी विद्यार्थियों में व्याख्यानों द्वारा जागृति पैदा की। दक्षिण अफ्रीका के प्रवासी भारतवासियों के लिए, भारत में बेगार प्रथा दूर करने के लिए तथा अन्य अनेक बातों के लिए लालाजी ने बड़ी चेष्टा की। इंग्लैण्ड में उनका जीवन बड़ा कार्यमय रहा। जब लालाजी इंग्लैण्ड में थे तभी मार्ले मिण्टो सुधारों की घोषणा हुई। लालाजी ने उस समय इन सुधारों की निस्सारता प्रकट की और उनका विरोध किया।

पंजाब हिन्दूसभा

सन् १९०९ ई० में लालाजी भारत लौट आये। लौटने पर कई मित्रों की सहायता से पंजाब हिन्दू सभा की स्थापना की जिसका प्रथम अधिवेशन स्वामी श्रद्धानन्द जी (उस समय महात्मा मुंशी राम जी) के विरोध करने पर भी स्व० सर प्रतुल चन्द्र चटर्जी की अध्यक्षता में धूमधाम से हुआ। इसमें पहली बार सनातनी, आर्यसमाजी, जैन, सिख, ब्रह्मसमाजी आदि सब हिन्दू भाई एक

प्लेटफार्म पर एकत्र हुए। मानो आगे जिस हिन्दू महासभा का संगठन हुआ, यह सभा उसका बीज हो।

१९१० ई० में लालाजी का पुत्र, जो इंग्लैण्ड में पढ़ता था वहीं, बीमार पड़ा। उसे देखने को लालाजी फिर इंग्लैण्ड गये। वहाँ सम्राट एडवर्ड सप्तम के राज्यारोहण के अवसर पर हिन्दुस्तानी राजनीतिक कैदियों को छोड़ने की अपील की पर उसका कुछ फल न हुआ। वहाँ से लौटने के थोड़े ही दिन बाद (२३ फरवरी १९११ को) उस पुत्र का देहान्त हो गया। पुत्र वियोग से लाला जी को बड़ी चोट लगी पर वह किसी प्रकार सार्वजनिक कार्यों में लगे ही रहे। १९११ ई० के अंतिम भाग में पंजाब में शिक्षा-संघ स्थापित किया। प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के लिए कई स्कूल खोले और अपने गाँव में, शिक्षा-संघ के अन्तर्गत, पिता के नाम पर, 'राधाकृष्ण हाई स्कूल' स्थापित किया।

तीसरी विलायत-यात्रा

सन १९१२ ई० में लाला जी लाहौर म्युनिसिपल बोर्ड के सदस्य चुने गये। उसके द्वारा उन्होंने नगर की यथासंभव सेवा की। १९०७ के बाद देश से बाहर रहने तथा दलबंदी एवं फूट के कारण लाला जी कांग्रेस में सम्मिलित नहीं हुए थे। १९१२ ई० में वह बाँकीपुर (पटना) कांग्रेस में शामिल हुए। श्री गोखले ने दक्षिण अफ्रीका के प्रवासी भारतीयों के दुखों का वर्णन बड़े हृदय द्रावक शब्दों में किया। मालवीयजी और लालाजी ने समर्थन—अनुमोदन में बड़ी ओजस्वी वक्तृतायें दीं। इसके बाद ही १९१२-१३ में महात्मा (उस समय कर्मवीर) गाधी ने दक्षिण अफ्रिका में सत्याग्रह आरंभ किया। १९१३ ई० के अन्तिम भाग में इस सत्याग्रह ने बड़ा जोर पकड़ा। लोगों में एक नया जीवन आ गया। अबतक प्रार्थनाओं और अपीलों का रास्ता ही लोगो को मालूम था गाँधीजी के इस नवीन ढंग के आंदोलन ने लोगों की आँखें खोल दीं। उस समय

प्रवासी भारतीयों की सेवा

श्री गोखले थे, इस सम्बन्ध में, धन के लिए सारे भारत में अपील की थी। लालाजी ने पंजाब में घूम घूमकर लगभग २५ हजार रुपए चन्दा एकत्र कर वहाँ भेजवाया। १९१२ ई० में कराँची-कांग्रेस में भी दक्षिण अफ्रीका के प्रवासी भारतीयों के सम्बन्ध में लालाजी बोले। इस सम्बन्ध में, १९१४ ई० में, एक डेपुटेशन भी इङ्गलैण्ड भेजा गया। लोगों के अनुरोध से इस कार्य में लालाजी ने भी भाग लिया पर इस शिष्टमण्डल का कोई फल न निकला। डेपुटेशन के और सदस्य तो लौट आए पर लालाजी वहीं रह गये। वहाँ उन्होंने आर्यसमाज पर एक पुस्तक लिखी। १९१४ ई० की मद्रास कांग्रेस के लिए अधिकांश प्रान्तों ने लालाजी का ही नाम भेजा पर कांग्रेस के विधाता नहीं चाहते थे कि उनके हाथ में कांग्रेस की बागडोर चली जाय। इसलिए उन लोगों ने प्रान्तों से अपना मत वापस लेने का अनुरोध किया, उनके मन के अनुसार ही हुआ।

इङ्गलैण्ड से लालाजी जापान गये। वहाँ से भारत आना चाहते थे कि युद्ध छिड़ गया। पासपोर्ट न मिलने के कारण वह भारत न आ सके, इङ्गलैण्ड लौट गये। वहाँ से सन् १९१४ ई० के नवम्बर में अमेरिका चले गए। यों तो १९०५ ई० में भी थोड़े दिनों के लिए अमेरिका हो आये थे पर इस बार काफी समय मिला। सम्पूर्ण संयुक्त राज्य में भलीभाँति घूमकर लालाजी ने वहाँ की शैक्षणिक एवं सामाजिक संस्थाओं का परिचय प्राप्त किया। इस देश के सम्बन्ध में एक पुस्तक भी लिखी। अनेक पत्र पत्रिकाओं में लेख लिखे। वहीं 'तरुण भारत' (यंग इण्डिया), 'भारत का राजनीतिक भविष्य' (पोलिटिकल फ्यूचर ऑव् इण्डिया) इत्यादि पुस्तकें भी लिखीं। पहली पुस्तक उस समय भारत में आने से रोक दी गई थी।

अमेरिका में कार्य

अमेरिका के प्रसिद्ध प्रसिद्ध पुरुषों से मिलकर लालाजी ने उनका ध्यान भारतीय परिस्थिति की ओर आकर्षित किया। उस समय भारत में होमरूल आन्दोलन चल रहा था। लालाजी ने अमेरिका में भी (स्व०)

श्री केशवदेव शास्त्री और हार्डिकर की सहायता से, 'इण्डियन होमरूल-लीग' की स्थापना की तथा इस संस्था द्वारा 'यंग इण्डिया' नामक एक साप्ताहिक पत्र भी निकालना शुरू किया। लालाजी स्वयं इसका सम्पादन करते थे। 'लीग' के सभापति एवं कोषाध्यक्ष भी लालाजी ही थे, मंत्री श्री हार्डिकर थे। इस लीग ने वहाँ बड़ा काम किया। अमेरिका के अनेक नगरों में उसकी शाखाएँ स्थापित हुईं। भारतीयों के अलावा प्रायः ८०० और लोग भी 'लीग' के सदस्य हो गये थे। अमेरिका में भी लालाजी के पीछे अंग्रेज खुफिया लगे रहते थे। एक दिन तो उन्होंने यहाँ तक दुस्साहस किया कि जिस कमरे में लालाजी अपने मित्रों से कुछ परामर्श करनेवाले थे उसमें छिपाकर 'डिक्टोग्राफ' रख दिया। इस मशीन में यह बात है कि जो कुछ आदमी बोलता है सब उसमें रेकार्ड की तरह भर जाता है। पर संयोग वश कोई बात उनके विरुद्ध न निकली।

युद्ध की समाप्ति पर भारत को स्वभाग्य निर्णय का अधिकार दिलाने के लिए 'लीग' ने बड़ा प्रयत्न किया। लालाजी ने 'टुकड़ों के लिए झगड़ा' (Fight for Crumbs) नामक पुस्तिका लिखकर उसकी लाखों प्रतियाँ अमेरिका में बँटवाईं। इससे बड़ा आन्दोलन फैला। यहाँ तक कि अमेरिकन शासन सभा की वैदेशिक समिति के सामने भी एक प्रस्ताव आया। अमेरिका के कितने ही पत्रों में खुली चिट्ठियाँ एवं लेख निकले जिनके अनुवाद स्पेनिश, जर्मन, स्वेडिश, जापानी इत्यादि भाषाओं में भी हुए। 'लीग' ने बहुत बड़ी तादाद में पुस्तिकाएँ बटवाईं।*

---

*अक्तूबर १६१८ ई० से अक्तूबर १६१६ तक 'लीग' ने 'भारत के लिए संगठित मांग' नामक पुस्तिका की ३००००, 'भारत का स्वराज्य का अधिकार' की ५००० और अमेरिकन श्रमजीवियों के प्रति भारत का संदेश की ५०००० प्रतियाँ बँटवाई थीं।

भारतीय व्यापार की उन्नति के लिए अमेरिकनों एव भारतीयों के साझे म लालाजी ने एक कम्पनी खोली तथा न्यूयार्क में 'इण्डियन इन्फार्मेशन ब्यूरो' की भी स्थापना की।

जिस समय लालाजी इस प्रकार विदेश में काम कर रहे थे, पजाब का भयानक हत्याकाण्ड हुआ। लालाजी का हृदय अपनी मातृभूमि के लिए तड़प रहा था पर भारत सचिव ने स्वदेश लौटने की आज्ञा न दी। युरोप में सधि होने एव पूर्ण शान्ति स्थापित होने के बाद ही उन्हें भारत आने की आज्ञा मिली। २० फरवरी १९२० ई० को लालाजी बम्बई पहुँचे। वहाँ बड़ी धूमधाम से उनका स्वागत हुआ। इस देश में लौटने पर उन्होंने निश्चित किया कि अब केवल स्वदेश सेवा का ही काम करूँगा। आते ही घूम घूमकर पजाब में जागृति लाने की चेष्टा करने लगे। राष्ट्रीय सप्ताह में लाहोर से उर्दू का दैनिक 'वन्दे मातरम्' निकाला। उसके उद्देश्य का जिक्र करते हुए, अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये—

"मेरा मजहब हक्परस्ती
मेरी मिल्लत कोमपरस्ती
मेरी इबादत खलकपरस्ती
मेरी अदालत मेरा अन्त करण
मेरी जायदाद मेरा कलम
मेरा मदिर मेरा दिल
मेरी उमगें सदा जवान हैं।"

पहले लालाजी माण्टगू चेम्सफोर्ड सुधार योजना के पक्ष में थे। पर पजाब के हत्याकाण्ड के विषय में न्याय न होता देख उनका विश्वास उससे उठ गया। उसके बाद ही इलाहाबाद जिला कान्फ्रेंस में जो स्पीच दी उसमें इन पक्तियों का लेखक स्वय उपस्थित था। उसमें उन्होंने आगामी युद्ध के लिए देश को तैयार रहने की अपील की। इन्हीं दिनों लालाजी

'सुधार' और असहयोग

कौंसिल प्रवेश के भी विरुद्ध हो गये। कलकत्ता की विशेष कांग्रेस के पहले ही असहयोग के पक्ष में वह कई लेख लिख चुके थे। असहकार आन्दोलन आरंभ करने के कार्यक्रम पर विचार करने के लिए कलकत्ता में जो विशेष कांग्रेस हुई उसके लालाजी ही अध्यक्ष निर्वाचित हुए। ४ दिसम्बर १९२० ई० का दिन, इस दृष्टि से, भारत के इतिहास में बड़ा महत्वपूर्ण है। यहाँ से भारत की राष्ट्रीयता एक नया मार्ग ग्रहण करती है, तभी महात्माजी भारतीय राजनीति के रंग मंच पर सूत्रधार के रूप में प्रकट हुए। कलकत्ता में महात्माजी का असहकार का प्रस्ताव पास हुआ। लालाजी ने बड़ी योग्यता से कांग्रेस का कार्य सम्पादित किया।

इसके बाद १९२० के दिसम्बर में, नागपुर में, कांग्रेस का नियमित अधिवेशन हुआ। यहाँ भी बहुमत से असहयोग का कार्यक्रम पास हुआ।

गिरफ्तारी और सजा

नागपुर कांग्रेस के कुछ पहले ही राजनीति की उच्च शिक्षा देने के लिए लालाजी ने, लोकमान्य के स्मारक में 'तिलक स्कूल ऑफ् पालिटिक्स' नामक संस्था खोली। यह वह समय था जब देश की धमनियों में नवीन रक्त भर रहा था, चारों ओर हलचल मची हुई थी। इधर देश ने करवट ली, उधर सरकार ने अपनी दमन की लाठी सँभाली। चारों ओर धर पकड़ मच गई। देश के छोटे बड़े सभी कार्यकर्ता गिरफ्तार होने लगे। ऐसी अवस्था में लालाजी कैसे पीछे रह सकते थे? ३ दिसम्बर १९२१ को वह गिरफ्तार हुए। १८ महीने की सजा एवं ५००) जुर्माना हुआ। गिरफ्तारी के समय राष्ट्रीय पंजाब के नाम लालाजी ने जो अपील निकाली थी उसके प्रत्येक शब्द से उनके हृदय में भरे देश प्रेम का परिचय मिलता है।

कुछ समय बाद पंजाब सरकार ने एक दिन, रात के समय, लालाजी को छोड़ दिया। पर थोड़ी देर बाद ही वह फिर गिरफ्तार कर लिये गये। ९ मार्च १९२२ ई० को, राजद्रोही सभा कानून और ताजीरात हिंद की ११७ धारा के अनुसार एक वर्ष का कठोर कारावास और

रिग्यूलेशन या एमेण्डमेण्ट ऐक्ट की १० (२) धारा के अनुसार एक सादी सजा का दण्ड हुआ। यह भी आज्ञा हुई कि पहले कड़ी भुगतनी पड़ेगी, फिर सादी। जेल में इन्हें अपने सम्बन्धियों से मिलने न दिया जाता था अधिकारियों का व्यवहार बड़ा खराब लालाजी का स्वास्थ्य बिगड़ गया, धीरे धीरे उन्हें क्षय रोग हो गया। में हलचल मच गई। नरमदल के नेताओं और समाचारपत्रों ने आ विषय में आन्दोलन किया, पार्लमेण्ट में भी सवाल पूछे गये पर नतीजा न निकला। सरकार चाहती थी कि लालाजी छुटकारे के अर्जी दें। भला लालाजी से यह कब संभव था? फल यह हुआ दिन दिन स्वास्थ्य खराब होता गया। बाद में सरकार ने अस्पताल रखकर चिकित्सा की व्यवस्था की, अन्य सुविधाएँ भी कर दीं पर लाभ न हुआ, रोग बढ़ता गया। सरकार कहती थी कि क्षय रोग है। अन्त में सिविल सर्जन इत्यादि के परीक्षा करने पर जब क्षय सन्देह हुआ और सरकार ने देखा कि लालाजी को जेल में रखने में ख है तो १६ अगस्त १९२३ ई० को उन्हें छोड़ दिया।

इस समय गांधीजी जेल में थे। देश में, नेताओं में, दलबंदी राज्य था। कौंसिल प्रवेश और कौंसिल बहिष्कार के प्रश्न ने इत व्यापक रूप पकड़ा कि देश सेवा की असली भी धाराएँ छिन्न भिन्न हो गईं। एक हंगामा उठ खड़ा हुआ अधिकारवाद ने जोर पकड़ा। परिवर्तनवादी और अपरिवर्तनवादी दोनों दलों में से कोई झुकना न चाहता था। गया कांग्रेस का व जमाना मुझे याद है जिसमें प्रतिनिधियों के दाम और किराये ठीक कि जा रहे थे। उनकी वह हालत थी जो तीर्थों में जानेवाले यात्रियों क दो दल के पण्डों के बीच होती है। अर नाम पर दास पार्टी की ओर दो दो प्रतिनिधि टिकट कैम्प में पड़ थे। इसीलिए मैंने इस साधारण में भाग लेना मुनासिब न समझा। अस्तु मतलब यह कि इस वातावरण

देश की हालत

में देश भक्ति का दम घुटा जा रहा था और द्वेष दंभ एवं अधिकार का धुआँ चारों ओर फेला हुआ था। गया-कांग्रेस में अपरिवर्तनवादियों की विजय हो चुकी थी। पर (स्व०) देशबन्धुदास और (स्व०) पं० मोतीलाल के प्रयत्नों से लोकमत बदल रहा था। उधर था राजगोपालाचार्य थे। लालाजी तथा अन्य कई नेताओं ने समझौते के लिए प्रयत्न किया पर कुछ फल न निकला। अंत में जब लोग इन झगडों से ऊब गये तो दिल्ली में स्पेशल कांग्रेस बुलानी पडी। उसमें जाकर समझौता हुआ। परिवर्तनवादियों को कौंसिल प्रवेश का अधिकार दे दिया गया। इस समझौते का श्रेय सर्वश्री राजेन्द्रप्रसाद, वल्लभ भाई, जमनालाल बजाज, (स्व०) मुहम्मद अली, अबुल्कलाम आजाद, (स्व०) दास और (स्व०) पं०मोतीलालजी को है।

लाला जी जेल से तो छूट गये पर बाहर भी उनका स्वास्थ्य खराब ही रहता था। देश में असहयोग काल की अभूतपूर्व हिन्दू मुस्लिम एकता की प्रतिक्रिया होने लगी थी, तबलीग और शुद्धि के भाव जोर पकड रहे थे। मुसलमानों में श्री हसननिजामी और हिन्दुओं में (स्व०) स्वा० श्रद्धानंद—यही दिखते थे। यह वही हसन निजामी थे जिन्होंने कृष्ण पर एक सुन्दर पुस्तक लिखी थी और जिनका गदर का इतिहास मुस्लिम शासकों की दुर्दशा का एक करुण चित्र है, और यह वही श्रद्धानंदजी थे जो अभी कुछ ही वर्ष पहले दिल्ली की जामा मस्जिद में 'वाज' (उपदेश) कर चुके थे। हाय, देश के लिए यह केसा दुःखद जमाना था। भाई से भाई लड रहे थे। इसी समय मालवीयजी, लालाजी और स्वामीजी ने मिलकर हिंदू महासभा का संगठन किया। इसका पहला अधिवेशन बनारस में हुआ। इसमें बौद्ध, जैन, पारसी, सनातनी, आर्यसमाजी, ब्रह्मसमाजी, अछूत सभी सम्मिलित हुए थे। इन पंक्तियों का लेखक स्वयं उसमें उपस्थित था। जिस समय बंगाल के प्रसिद्ध नाटककार स्व० द्विजेन्द्र लाल राय के सुपुत्र गायक श्री दिलीप कुमार राय ने अपने मधुर कण्ठ से मीरा का 'म्हाने चाकर राखो जी' गीत गाया, उस समय

पर सर्वों बँध गया । यह ही उत्साहप्रद दृश्य था पर महात्मा का यह रूप ज्यादा दिन तक कायम न रह सका । राष्ट्रीयता का नींव अनिष्ट भावों को लेकर डाली ही नहीं जा सकती ।

सन् १९२५ ई० में कलकत्ता में हिन्दू महासभा का जो अधिवेशन हुआ लालाजी उसके अध्यक्ष थे । लेकिन महासभा में भाग लेते हुए भी लालाजी 'साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व' के विरोधी थे, जैसा कि १९२५ के आरम्भ में हुए दिल्ली के ऐक्य—सम्मेलन में की हुई उनकी घोषणा से स्पष्ट हो गया था । उनके प्रयत्नों से ही १९२६ में यह निश्चय हुआ कि हिन्दू महासभा अपनी ओर से उम्मीदवार न खड़ा करे ।

सन् १९२५ ई० में जब स्वराज्य-दल का जोर था, लाला जी स्वराज दल में सम्मिलित हुए थे और कुछ दिनों तक बड़ी कौंसिल में उसके

कौंसिल में डिपुटी लीडर भी रहे पर कुछ दिनों बाद मत भेद के कारण अलग हो गये । वह 'वाक आउट' (कौंसिल से बाहर चले जाना) नीति को ठीक न समझते थे । अलग होकर, मित्रों की सहायता से, 'स्वतंत्र कांग्रेस दल' की स्थापना की और इसी पार्टी की ओर से, विरोध होते हुए भी, दो दो स्थानों से, बड़ी कौंसिल के लिए निर्वाचित हुए । लालाजी ने असेम्बली, र का ना ।

'शान्तिरक्षा बिल' और 'साइमन कमी'

वक्तृताएँ स्मरणीय हैं । बाद में, मद्रास

मुस्लिम ऐक्य के लिए बड़ी चेष्टा क

रिपोर्ट का कई बातों में मत भेद रखते

१९२ समय तक ला

देश के दर्द

जीवन भा

भयंकर

के कारण

गए गये थे। 'पंजाब का शेर' अपनी दहाड भूल गया था। पंजाब के अन्दर भी उनकी वह लोकप्रियता न रह गई थी। पर समय पर उन्होंने देश की गति को पहचाना और महसूस कर लिया कि हम पिछड़ते जा रहे हैं। इस दृष्टि से देखें तो उनके जीवन के अन्तिम दिनों में जो-कुछ हुआ, अच्छा ही हुआ। यदि वह न होता तो इसमें सन्देह है कि लालाजी अन्तिम दिनों तक अपनी लोकप्रियता बनाये रख सके होते। घटनाओं ने उनके गिरते हुए प्रभाव को बचा लिया।

बलिदान

३० अक्तूबर १९२८ ई० को साइमन कमीशन लाहौर पहुँचने वाला था। जनता काले झण्डों का जुलूस निकालकर अपना असंतोष प्रदर्शित करना चाहती थी। उधर पुलिस ने भी पूरी तैयारी कर रखी थी। १४४ धारा (सभा-बन्दी कानून) लगा दी गई थी पर उधर जनता भी जुलूस निकालने पर तुली हुई थी। लालाजी इटावा (युक्तप्रांत) की प्रांतीय हिन्दू कान्फ्रेंस से उसी दिन लाहौर पहुँचे थे। १४४ की घोषणा का समाचार सुनकर उन्होंने भी जुलूस में शामिल होने का विचार कर लिया। दोपहर को जुलूस निकला। लालाजी, सरदार शार्दूलसिंह (कवीश्वर) इत्यादि जुलूस के आगे थे। जुलूस स्टेशन के पास ठहर गया और साइमन कमीशन के आगमन की प्रतीक्षा करने लगा। 'साइमन लौट जाओ' एवं 'वन्दे मातरम्' की ध्वनि से स्टेशन गूँज रहा था। पुलिस से यह बर्दाश्त न हुआ। एकाएक पुलीस ने लाठियाँ चलानी शुरू कीं। लालाजी की पीठ एवं छाती पर भी एक गोरे ने कई लाठियाँ चला दीं। कहते हैं कि वह सीनियर पुलिस सुपरिंटेण्डेण्ट साण्डर्स था। लालाजी पर पड़ने वाली कई लाठियाँ रायजादा हंसराज ने अपने ऊपर ले लीं। लालाजी ने उस गोरे अफ्सर से उसका नाम पूछा पर उसने नाम नहीं बताया। उस दिन की सभा में लालाजी ने बड़ी जोशीली वक्तृता दी। कहा था—'मेरे शरीर पर पड़ी हुई एक एक चोट ब्रिटिश साम्राज्य के कफन की कील होगी।'

उस समय तो ताजी चोट कुछ मालूम न हुई पर वस्तुतः वह सांघातिक थी। लालाजी की शारीरिक अवस्था बिगड़ती ही गई। घाव से छाती में घाव एवं सूजन हो गई। पर अपने शरीर का खयाल न कर गए दिल्ली के सर्वदल सम्मेलन एवं भारतीय कांग्रेस की कार्य-समिति में शामिल होने गये। इससे उनपर और जोर पड़ा। वहाँ से लौटने पर उनकी दशा बिगड़ती ही गई। फिर भी किसी को यह खयाल न था कि लालाजी इतनी जल्द हमें छोड़कर चले जायँगे पर जो बातें मानवी शक्ति के बाहर की हैं, उन्हें वह कैसे जान सकता है? १७ नवम्बर १९२८ को प्रातःकाल ७ बजे, ६३ वर्ष की उम्र तक भारत की सेवा करके, पंजाब केसरी चिर निद्रा में मग्न हो गया!

—चार—

<u>व्यक्तित्व का विश्लेषण</u>

लालाजी का नाम सुनते ही उनका मझोले कद का गठा हुआ पंजाबी आकार नेत्रों के सामने नाचने लगता है। पंजाबी प्रकृति की सारी अच्छाइयाँ और बुराइयाँ उनमें प्रस्फुटित हुई थीं। भावुकता, दयार्द्रता, जोश, शहादत की ओर ले जाने वाली भावुकता,—और इसीलिए एक प्रकार की अस्थिरता—सभी रंग बिरंगी कलियों एवं फूलों से वह गुलदस्ता बना था। इसमें हर प्रकार का रंग मौजूद था। इसीलिए लालाजी की जीवन धारा एक निश्चित मार्ग से बहती हुई नहीं दिखाई दी, वह जीवन के अनेक टेढ़े-मेढ़े मार्गों के बीच होकर बही। ऐसा नहीं कि उसमें कोई प्रवाह था नहीं, प्रवाह तो एक था ही पर मार्ग अनेक थे। उनकी जीवन धारा गंगा की नहीं, रेवा (नर्मदा) की याद दिलाती है। वह मैदान की शान्त, स्थिर, अपनी धुन और गति में चुपचाप—सीधे अपने मार्ग पर बहती जानेवाली सरिता नहीं, पहाड़ियों को काटती, चक्करदार घेरों के बीच अपने को कभी सरल-सुगम

गंगा नहीं, रेवा!

और कभी दुर्गम बनाती घूमती फिरती, अठखेलियाँ करती बहनेवाली सरिता का पेचदार प्रवाह है।

पर इतना कह देने से काम कहाँ चलता है ? इसके बाद, इतना कह चुकने पर, मन मानों यह पूछने के लिए उतावला है—ऐसा क्यों ?

ऐसा क्यों ?

लालाजी के जीवन में प्राचीनता का वह नशीला, धुँधला और मन आकर्षित करने वाला रंग नहीं, जो मालवीयजी की विशेषता को आबदार बना देता एवं उनके व्यक्तित्व में एक खास दिलचस्पी पैदा कर देता है। लालाजी में वह स्थिर, तर्क से तराश कर चारों ओर से सुडौल की हुई, तलवार की पैनी धार की तरह सामने से आकर आर पार करने वाली सगठित राजनीतिक नेतृत्व की एवं विरोधी को जवाब देने की प्रतिभा नहीं, जो स्व० प० मोतीलालजी की एक विशेषता थी और जिसने भारतीय राजनीति के क्षेत्र में उनके व्यक्तित्व को शासन की अद्भुत क्षमता प्रदान की थी और उसे अध्ययन का एक मनोरंजक विषय बना दिया था। मानवात्मा का वह प्रकाश उनके जीवन में जगमगाता नहीं जो महात्मा गाँधी को अत्यन्त दिव्य रूप में जगत् के सामने रखता है।

फिर लालाजी का इतना प्रभाव क्यों ? इतना आदर क्या ? मन पूछना चाहता है और वह पूछकर रहेगा।

राजनीति शतरंज का खेल है—कम से कम महात्माजी से पहले, हम उसे इसी रूप में जानते सुनते आये हैं। इस दुरूह पचीली सघन

बार-बार मत परिवर्तन

वनस्थली में जब कोई खिलाड़ी आ जाता है तब उसका अध्ययन करके उससे कुछ निष्कर्ष निकाल लेना हो नहीं सकता। हो भी तो वह खतरे से खाली नहीं। बडप्पन म सब बह जाता है और राजनीति में तो जनता जिसे बना दे और जो जनता का बन जाय। यदि मन न माने और पूछना ही चाहे तो कहना पड़ेगा कि लालाजी की सफलता का रहस्य उनकी लोकप्रियता में है। वह एक लोक प्रिय नायक थे, पथ प्रदर्शक (अपना

एक खास कार्यक्रम लेकर चलने वाले) नेता नहीं । वह जनता के थे, जन-समूह के भावों पर उनके जीवन की सुई घूमती रहती थी। जब से वह राजनीति के क्षेत्र में आये तब से लेकर जीवन के अंतिम दिनों तक उनकी यही अवस्था रही । पहले सरकार में उनका थोडा-बहुत विश्वास था पर विदेशी यात्राओं ने उनकी आँखें खोल दीं । युरोपीय यात्रा से लौटकर उन्होंने अपने अनुभव प्रकाशित करते हुए कहा था —"मैं इंग्लैण्ड गया, मैं फ्रांस गया, मैं युरोप के अन्य देशों में गया मैं अमेरिका गया पर मैं जहाँ गया वहाँ एक पराजित जाति की शर्म अपने साथ ले गया।" तब से लालाजी की गणना उग्रवादी दल के लोगों में हुई । उस समय लाल बाल पाल की त्रिमूर्ति, भारतीय राजनीति के मंच पर, उभार के साथ, प्रकट हुई थी । उस समय तिलक के विचार व्यापक हो रहे थे, तब लालाजी भी उसी 'स्कूल' के थे । बाद में जब भारतीय राजनीति के क्षितिज पर अन्यवस्था और दलबन्दी के कोहरे को भेद कर गांधीवाद का सूर्योदय हुआ तब भी लालाजी ने उसे पहचाना नहीं, उसका स्वागत नहीं किया । आरम्भ में वह असहयोग आन्दोलन के विरुद्ध थे । पर सूर्य निकला, निकला ही नहीं उसने अविश्वास के बादलों को अपने प्रकाश से ढक दिया, चारों ओर वही वह हो गया । जनता उसको अर्घ्य देने को दौडी । जन हृदय पर उसका ऐसा प्रभाव हुआ कि देखनेवाले दाँतों-तले अँगुली दबाने लगे अविश्वासियों ने बार बार आँखें मलकर देखा—मानो उस समय भी उनका मन प्रश्न कर रहा हो, यह कैसे हो गया ! अपने साथ प्रबल आत्म विश्वास को जो आँधी गाँधीजी लाये उसमें बड़े-बड़े के पाँव उखड़ गये । लालाजी भी असहयोगी हुए बिना ऐसा किये देश-सेवा का, जनता की आँखों में अपने को न गिरने देने का कोई मार्ग ही किसी के लिए नहीं रह गया था । उसके बाद फिर जमाने ने पलटा खाया । स्व० देशबन्धु (चित्तरंजन दास) और स्व० पं० मोतीलाल ने देश में, पश्चिम की पार्लमेण्टरी पार्टियों के समान सुसंगठित

क दल—स्वराजदल—खड़ा कर दिया। कुछ तो कौंसिल की वामोरिक मोहनी थी और कुछ मोतीलालजी की अद्भुत् सगठन-शक्ति ने असत् को भी सत् कर दिया। स्वराज दल का जोर बहुत बढ़ गया, तब लालाजी भी स्वराज दल में शामिल हुए असहयोगी से स्वराजी हुए। पर राजनीति में प्रतिक्रिया का होना तो निश्चित ही है। और घरे राष्ट्र धर्म का स्थान जातिगत, साम्प्रदायिक सुविधाओं ने ले लिया। एक आँधी उगी। भाई ने भाई के विरुद्ध लकड़ी उठाई, भाई के विरुद्ध भाई सगठित हुआ। देखते-देखते आकाश धुएँ से भर गया, जैसे किसी मायावी ने चुटकी बजाते बजाते सबकी सुधि हर ली हो। लोग अचत हो गये। स्वराज दल का जोर कुछ कम हुआ। एक बार हिन्दू जनता राष्ट्र सेवा के पथ से गिरत हुए उसके अन्दर जोरो से सगठन की लहर उगी। लालाजी उस प्रवाह के विरुद्ध ताकर खड़े न हो सके। वह प्रतिसहयोगी या स्वतत्र आत्रेस दल में सम्मिलित हुए। पर यह महल जिसकी नींव में कोई ठोस चीज न थी, कबतक खड़ा रहता। दो वर्ष के अन्दर यह जोश, हिन्दुओं की सेवा का यह उत्साह, सगठन का यह बिगुल, फिर बद हुआ। आघात पर आघात करके अग्रेज बन्धुओं ने हमें फिर जगाया। जनता फिर पलटी, फलस्वरूप हम अन्तिम दिनों में लालाजी को साइमन कमीशन के विरुद्ध निकाले गये जलूस में शामिल होकर लाठियाँ खाते देखते हैं और दिल्ली एवं लाहौर की सभाओं में एक बार फिर उनकी वह दहाड़ सुनते हैं जो 'पजाब का शेर' की एक समय की अपनी विशेषता थी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि लालाजी जन रुचि के साथ चलने वाले थे। ८ वर्ष के अन्दर जनप्रवाह के साथ साथ उन्होंने ४ बार अपना मार्ग बदला। इसीलिए वह सदा लोकप्रिय बने रहे। जनता ने उन्हें हाथों-हाथ रक्खा। उनके देहावसान के समय युवक बहुत असन्तुष्ट हो रहे थे और यदि वह जीते रहते तो बहुत सभव था कि लाहौर में लोग

उन्हें फिर युवकों के साथ हँसते।

× × ×

एक लेखक ने लालाजी की, जन रुचि के साथ बदलती रहने वाली इस मनोवृत्ति का बड़ा मनोरंजक चित्र खींचा है। मनोरंजक हम इस

एक तीखा चित्र

लिए कहते हैं कि उसमें रंग जरा गाढ़ा हो गया है, का पल्ला थोड़ा उठ गया है बातें जरा बढ़ा कर कही गई हैं पर ऊपर के आवरण को उठा दें, शब्दों में जरा हेर फेर कर दें तो सब मिलाकर उससे लालाजी के राजनीतिक जीवन की आकृति बन जाती है। उसका चित्र यह है—

"हम भाई भाई की तरह रहेंगे"—ओर से भीड़ कहती है।

"रहेंगे क्या, हम भाई हैं ही",—अपने मुसकराते हुए पंजाबी के साथ, लाला लाजपतराय कहते हैं।

"हम भाई नहीं हो सकते,"—भीड़, जरा देर ठहरकर, उतने ही जोश के साथ सिर हिलाकर कहती है।

"एकता की बात करना व्यर्थ है," 'पंजाब का शेर' दहाड़ता है।

जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूँ रंग तीखा है पर चित्र का आधार ठीक है। लालाजी जनता के भाव प्रवाह में प्रायः बह जाते थे। हिंदू संगठन का जोर जब ज्यादा था तो एक बार उनके मुँह से "स्वराज्य ठहर सकता है" (Swaraj can wait) शब्द सुनकर मुझे रोना आ गया था। यह भाषण कहीं उत्तर भारत में दिया गया था। बम्बई की जनता दूसरे प्रकार की थी, वहाँ के हिंदू युवकों पर राष्ट्रवादी भावों का असर था। इसलिए वहाँ उन्होंने ऊपर के वाक्य को सुधार कर कहा—"सरकार एवं मुसलमानों के विरोध के होते हुए भी हिंदू स्वराज्य प्राप्त करेंगे।" कांग्रेस के एक सभापति के मुँह से ऐसे वाक्य निकलना दूरदर्शिता का उदाहरण नहीं उपस्थित करता। पर लालाजी भाषण देते समय भूत और भविष्य को भूल जाते थे, केवल वर्तमान जनता के

विचार ही उनके सामने रहता था। मोतीलालजी के मुँह से ऐसे वाक्य, जिनका विरोधी अवसर पर फायदा उठा लें, कभी न निकलते, मालवीयजी ने, जो हिन्दू-संगठन के कर्ता धर्ता थे, कभी ऐसी कोई बात नहीं कही। पर लालाजी पर, भाषण करते समय, जनता के दिल पर काबू करने का भाव, उसे प्रभावित कर देने, उसपर हावी हो जाने का भाव इतना प्रबल होता था कि वह अपने को भूल जाते थे, अपने पर काबू न रख सकते थे। जन-रुचि के विरुद्ध तनकर खडे होना, उनसे न हो सकता था। वह राजनीति में सदा शुद्ध तत्काल के प्राणी रहे।

पर इसका यह अर्थ नहीं कि उनमें नेतृत्व कमाने की कोई लालसा थी, न इसका यही अर्थ है कि वह सम्प्रदायवादी (कम्यूनलिस्ट) थे। ऐसा कुछ नहीं। उनके हृदय में देश के लिए जब र्दस्त लगन थी। वह मातृभूमि की स्वतन्त्रता के आजन्म पुजारी रहे पर उनकी प्रकृति ही कुछ इस प्रकार की बन गई थी, उनकी तबियत ही कुछ ऐसी वाकअ हुई थी कि वह जनता में ओतप्रोत हो गये थे। जनता का होकर भी जनता से ऊपर या अलग रहना उनसे नहीं हो सकता था। उनमें कुछ ऐसा भाव ही आ गया था कि बिना जनता का भक्ति प्राप्त किये, बिना लोकप्रिय हुए, लोक-सेवा को समष्टिगत शक्तियों से युक्त नहीं किया जा सकता। लालाजी के जीवन का उत्तरार्द्ध उनके पूर्वार्द्ध से अधिक मनोरञ्जक है। देश के प्रत्येक नवीन राजनीतिक प्रवाह को देखकर वह प्रश्न करता है—'क्या समय इसके उपयुक्त है ? क्या इसमें सफलता होगी ?' यदि विश्वास हो गया कि सफलता इधर है तो लालाजी को आप उधर पायेंगे। ऐसा नहीं कि वह स्वयं आगे आकर मार्ग दिखायें, नये रास्ते पर ले चलें और समय को उपयुक्त बना लें। किसी भी जन आन्दोलन के मध्याह्न में आप उस आन्दोलन के कर्णधार से भी उन्हें आगे पायेंगे। एक लेखक लिखते हैं—"भले ही वह महात्मा गांधी हों जिन्होंने जन प्रियता के किले से

समय के प्रवाह के साथ।

भाटरटों को निकाल बाहर किया हो पर यह लाला लाजपतराय ही हैं जो उन 'विश्वास घातकों' (ट्रेटर्स) पर फैसला देंगे । चाहे साम्प्रदायवाद के प्रवाह को रोकनेवाले दास और मोतीलाल ही हों पर पंजाब केसरी ही यह बात कहेगा कि मुसलमानों द्वारा हिन्दू दुकानों का लूटा जाना आसूदा और गैर आसूदा लोगों के बीच होनेवाले सघर्ष का एक अंग है ।" मतलब यह कि चाहे आरम्भ में वह किसी जन आन्दोलन से मत भेद भी रखते रहे हों पर उसकी, सफलता की आशा होने पर उसके मध्याह्नकाल में वह सदा जोरों के साथ उसका समर्थन करते रह गये । उनकी मनोवृत्ति ही समष्टि मनोवृत्ति (क्राउड मेण्टलिटी) थी । इसलिए उसमें समयानुसार परिवर्तन होता रहता था । मौलाना मोहम्मद अली उन्हें 'द्रुत परिवर्तनशील कलाविद्' ('क्विकचेंज आर्टिस्ट') कहा करते थे ।

'क्विक चेंज आर्टिस्ट'

पर जब हम इस मनोवृत्ति की बात लिख रहे हैं तब यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं, और ऐसा किये बिना न्याय के साथ ज्यादती होगी कि इस प्रकार की सतत परिवर्तनशील मनोवृत्ति भी उनमें कुछ ऐसे अद्भुत रूप में प्रकट हुई थी कि उसने उनको एक शक्तिमान पुरुष बना दिया था । इस परिवर्तनशीलता को उन्होंने जीवनमय, प्राणमय बना दिया था । इसलिए उनमें कभी जड़ता नहीं आई । उनका परिवर्तन ऐसे मनोवैज्ञानिक क्षण ('साइकालोजिकल मोमण्ट') में होता था कि जनता में आश्चर्य पैदा करने की अपेक्षा वह उत्साह ही अधिक पैदा करता था । भीषण तूफान के समय बिजली की भाँति एकाएक वह कड़कड़ाते हुए सामने आते थे । पूर्ववर्ती के साथ परवर्ती और कल के साथ आज को इस प्रकार जोड़नेवाला कलाकार आधुनिक भारतीय राजनीति के क्षेत्र में दूसरा नहीं हुआ । इसी विशेषता के कारण वह जन-समाज में सदा जिन्दा रहे; विपिनचन्द्रपाल में यही बात नहीं थी जिससे धारा ने उन्हें

फिर भी शक्तिशाली क्यों ?

एक किनारे लगा दिया और आगे बढ़ गई। इस सतत परिवर्तन ने मातृ-भूमि की स्वाधीनता के लिए उनमें अटूट उत्साह पैदा कर दिया था। बदलती रहनेवाली विभिन्न परिस्थितियों के अनुसार स्वयं अपने को मोड़कर वह अपने भावावेश, अपने मनोभाव की एकता ('यूनिटी ऑव् इम्प्रेशन') बनाये रखते थे। उनकी इस विशेषता ने ही उन्हें देशबन्धु-दास और लोकमान्य के समकक्ष कर दिया था। इसके कारण ही उनमें एक प्रकार का नैतिक प्रवाह उमड़ता था जो बड़-बड़े जन समूहों को हिला देता था, इसके कारण ही उनके शब्दों में ऐसी शक्ति पैदा हो जाती थी जो श्रोता को आत्मसात् कर लेती थी, जिसमें एक अविश्वासी तार्किक श्रोता का सब विरोध बह जाता था। इसी के कारण वह अपने समय के भारत के अत्यन्त प्रभावशाली, और शायद सबसे शक्तिशाली, वक्ता थे।

पर यह प्रश्न रह ही जाता है कि उनमें इस प्रकार की परिवर्तन-शीलता बाहर से आई या खुद उनकी प्रकृति में ही इसके बीज थे।

यह बात आई कहाँ से? इसका सहसा कोई उत्तर नहीं दिया जा सकता। यह बहुत विचार की बात है और बहुत सोचने-विचारने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचना चाहेंगे कि बीज आन्तरिक था, उन्हीं के अन्दर था। परिस्थितियों एवं राजनीति की शतरंजी चालों ने बाहर से भी उसे सहारा दिया। बात यह है कि लालाजी दिल से राजनीतिज्ञ न थे, परिस्थिति ने उन्हें राजनीतिज्ञ बना दिया। उनका हृदय एक जन सेवक एवं समाज सुधारक का हृदय था। पर जब किसी पराधीन देश में जागरण का काल आता है तब उसमें चेष्टा करके भी सुधार के एक क्षेत्र को दूसरे क्षेत्र से अलग नहीं रक्खा जा सकता। पराधीन देश की राजनीति और पराधीन देश का समाज सुधार सब जब उठते हैं तो शक्ति के एक ही स्रोत को लेकर उठते हैं। भारत में भी यही हुआ। इसलिए हम ब्रह्म समाज, आर्यसमाज और राम कृष्ण मिशन

के अनेक सेवकों और प्रचारकों में राष्ट्रीयता की ज्योति देखते हैं। वहाँ राष्ट्र जब उठता है तो सबको लेकर उठता है, उसके उत्थान को टुकड़े टुकड़े करके नहीं देखा जा सकता। उस सम्पूर्ण का एक व्यक्तित्व बनता है, एक अलग व्यापक आत्मा बन जाती है।

लालाजी भी, गोखले की तरह, शुरू में समाज सुधार को लेकर चले थे। उनमें सेवा की जबर्दस्त प्रवृत्ति थी। वह दीन-दुखियों, रोगियों, अछूतों की दुर्दशा देख न सकते थे। अन्त तक राजनीति के नीचे दबी हुई, उनकी आकांक्षा साथ साथ चलती रही। जन सेवक समिति द्वारा उन्होंने अन्तिम वर्षों में अछूतों के प्रश्न को हाथ में ले भी लिया था और अन्तिम दिनों में तो यह भाव उनमें इतना प्रबल हो गया था कि राजनीति के क्षेत्र से वह अलग हो जाने की सोच रहे थे, जैसा कि एण्डरूज को उन्होंने एक पत्र में लिखा भी था। राजनीति के बाह्याचार के बोझ से विशुद्ध जन सेवा की मानवी भावना यद्यपि दब गई थी फिर भी जो चीज उनकी प्रकृति में ही रम गई थी वह कहाँ जाती? परिस्थितियों ने उन्हें राजनीति के क्षेत्र में लाकर खड़ा कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि यद्यपि वह इसमें पड़ गये पर राजनीतिक नेता में कुछ निश्चित सिद्धान्तों को लेकर चलने और जरूरत पड़ने पर विरोध करनेवाली जनता का मुक़ाबला करके, अपनी संगठन-शक्ति एवं अध्यवसाय से उसकी मनोवृत्ति में परिवर्तन कर देने की जो विशेषता होनी चाहिए वह उनमें नहीं थी। वह आगे होकर जनता को एक रास्ते पर चलाने की अपेक्षा, जनता के स्वय एक रास्ते पर चलने का निर्णय एवं तैयारी कर चुकने के बाद, उसके आगे आगे चलने को तैयार होते थे। आवश्यक होने पर, जनता द्वारा चिढ़ाये जाकर भी मार्ग दिखाने एवं अनुशासन की जो निष्ठुरता नेता को अपने एवं दूसरों के साथ करनी पड़ती है वह उनमें नहीं थी। उनका कोमल हृदय ऐसा हो भी नहीं सकता था।

मानवी आधार

इसीलिए हम उन्हें जन रुचि को 'अपील' करनेवालों में अग्रगण्य पाते हैं। भीड़ को, जन-समूह को देखकर उनमें अद्भुत भावावेश आ जाता था। मेरे एक स्नेही बंधु ने, जो एक अच्छे वक्ता हैं, मुझसे एकबार अपने सम्बन्ध में कहा—"जितने ही अधिक श्रोता हों, उतना ही मेरा भाषण अधिक प्रभावशाली होता है।" लालाजी के विषय में भी यह बिल्कुल ठीक है। थोड़े से आदमियों में वह उतना अच्छा कभी न बोल सकते थे, जितना अच्छा विशाल जन-समूह के सामने बोलते थे। जन-समूह नशा का काम करता था, उस समय वह और सब भूल जाते थे। वह हैं और जनता का एक विशाल समूह है (जो उनका व्याख्यान सुनने की आशा से एकत्र हुआ है) इतना ही उन्हें याद रहता था। यह याद रखने की बात है कि जनता सकपूर्ण भाषणों को कभी पसन्द नहीं करती, विश्लेषणात्मक भाषण उसे थका देते हैं, वह साफ-साफ, 'हाँ या नहीं', इस पार या उस पार में वक्ता का निर्णय सुनना चाहती है। लालाजी में यही बात थी। रूजवेल्ट ने कहा था—"सबसे सफल राजनीतिज्ञ वह है जो वे बातें कहता है, और सबसे जोरदार आवाज में उन्हें कहता है, जिसे सर्वसाधारण सोच रहे हों।" * यह एक सत्य है, यदि सफल से श्री रूजवेल्ट का अभिप्राय लोकप्रिय राजनीतिज्ञ से हो। लालाजी के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है। 'वह वर्तमान के सन्देश वाहक थे। ×

जनता के नेता

इस वर्तमान के कारण ही वह भूत को बिल्कुल भूल जाते थे। नहीं तो उनके समान व्यक्ति, जिसने अपनी सारी उम्र अछूतोद्धार में व्यतीत की और जो अनेक बार युरोप और अमेरिका की यात्राएँ कर चुका था, जातिगत वैमनस्य के जमाने

वर्तमान के पुजारी

* 'The most successful politician is he who says what every body is thinking most often and in the loude t voice.'

× He is the prophet of the present mood the mood that is passing away '

में, कौंसिल निर्वाचन के समय, मोतीलालजी पर यह आरोप करता है कि वह होटल सेसिल में टिक्ते हैं और मुसलमानों के साथ खाना खाते हैं। लालाजी के मुँह से यह बात ! मालवीयजी यदि यही बात कहते तो उचित न होते हुए भी उसमें एक सचाई होती पर लालाजी, मानो यह कहकर, अपने ही भूतकाल पर पानी फेर रहे हों। ऐसा क्यों ? इसलिए कि वर्तमान का आवेश उनमें इतना प्रबल हो जाता था कि वह भूतकाल को बिलकुल भूल जाते थे। वह हिन्दू मुस्लिम अविश्वास का जमाना था। उस समय ऐसी बातें हिन्दुओं को रुचती थीं। इसलिए उन रुचि के इस महान् प्रतिबिम्ब में हम ऐसी बातें पाते हैं। ऐसा नहीं कि वह मुसलमानों के विरोधी थे नहीं, यह सोचना उनको बिलकुल गलत दृष्टि से देखना है। उनमें मुसलमानों के प्रति द्वेष का जरा भी भाव न था। यदि जनता हिन्दू मुस्लिम ऐक्य के लिए तैयार होती तो वह उसके उतने ही जबर्दस्त हामी होते। वर्तमान के प्रति, बिलकुल तुरन्त के प्रति, उनकी इस आसक्ति को समझे बिना उनके जीवन को समझने में बड़ी भूल हो सकती है। जबतक इसे न समझ लिया जाय तबतक यह कैसे समझा जा सकता है कि जिस व्यक्ति ने मातृभूमि की सेवा में बाल पकाए, निर्वासन और जेल-यातनाएँ सहीं वह हिंदू संगठन के समय, कौंसिल निर्वाचन के अवसर पर, हिंदू जनता को सम्बोधन करके यह कह सकता है—"मेरा समग्र जीवन, हिन्दुत्व की सेवा में लगा रहा है। मेरे जीवन, मेरे रक्त में यह व्याप्त है!"

हिंदू संगठन के उस जमाने में उनकी कैसी अस्थिर मनोवृत्ति हो रही थी, इस सम्बन्ध में एक घटना* का उल्लेख किये बिना नहीं रहा जा सकता—

स्वामी श्रद्धानन्द की, एक मुसलमान-द्वारा, हत्या हो चुकी थी। इस घटना के कुछ ही दिनों बाद का जिक्र है। मध्यप्रांत के एक महाराष्ट्र

* Pillars of Nation से ली हुई।

ब्राह्मण शिमला गये हुए थे। लौटती बार उन्होंने सोचा—पंजाब-केसरी के दर्शन करते चलें। लालाजी उस समय बड़ी अस्थिर मनोदशा में थे। अफवाह उड़ रही थी कि मुसलमान उनके पीछे भी पड़े हैं और उनकी भी वही दशा होगी। बचारे ब्राह्मण देवता ऐसे ही समय दर्शन के लिए पहुँचे। लालाजी ने गौर से उनकी ओर देखा, सिर पर लम्बी चोटी और कानों में छल्ले पड़े थे। "तुम हिंदू नहीं हो," लालाजी ने कहा। निर्दोष ब्राह्मण ने कहा—"मैं हिंदू हूँ।" लालाजी को विश्वास नहीं हुआ, वह घबड़ा गये, बोले—"नहीं, तुम हिंदू नहीं हो।" इसके बाद आवाज दी—"मेरा पिस्तौल लाओ।" बेचारा गरीब ब्राह्मण अपनी जान लेकर भागा। लालाजी के आदमी ने उसका पीछा किया पर वह किसी तरह निकल गया और दिल्ली आकर वहाँ के स्थानीय नेताओं से इस घटना की चर्चा की।

× × ×

इस विश्लेषण में मैंने लालाजी के व्यक्तित्व को खोलकर समझाने की चेष्टा की है। इससे उनका महत्त्व कम नहीं होता। भारतीय स्वाधीनता के इतिहास में उन्हें लोकमान्य के साथ ही स्थान मिलेगा। स्वाधीनता यज्ञ में दो प्रकार के आदमियों की आवश्यकता होती है। पहले आन्दोलक की, हलचल मचाने वालों की, लोगों में स्वाधनीता का भाव भर देने वालों की, बाद में गंभीर नेता की। लालाजी पहली श्रेणी के थे। वह आन्दोलनकारी ('एजीटेटर') थे, नेता ('लीडर') नहीं। या यह कह सकते हैं कि 'एजीटेटर' अधिक थे, 'लीडर' कम। उपयोगिता के लिहाज से, पराधीन दशा में, आन्दोलनकारी का, 'एजीटेटर' का स्थान अधिक महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि बिना उसके राष्ट्र में चेतना नहीं आती। बिना इसके समष्टि—समाज—जीवन शून्य रहता है, और बिना इस जाग्रति के, हलचल के राष्ट्रीयता की दीवार खड़ी की नहीं जा सकती। आन्दोलक—हलचल,

उनका महत्व

कारी,—'एर्जीटेटर'—जो शक्ति पैदा करता है उसी पर आगे आनेवाला नेता अपनी नींव रखता है। इस दृष्टि से हमारे तिलक और लालाजी, गोखले और सप्रू से कहीं बड़े ठहरते हैं। उनकी कोई स्पष्ट देन तो दिखाई नहीं देगी—उन्होंने देश के लिए सरकार से कुछ सुविधाएँ नहीं प्राप्त कीं, न कोई महत्वपूर्ण समझौता उनके नाम के आगे अंकित किया जा सकता है फिर भी उन्होंने विशाल भारतीय जन-समूह के हृदय में एक भावना, एक लगन, एक प्यास पैदा की—वह प्यास जो स्वतंत्रता में सफल हुए बिना शायद ही बुझे। लालाजी का महत्व यहीं पर है।

—पाँच—

विभिन्न क्षेत्रों में कार्य

लालाजी एक प्रबल समाज सुधारक, जन सेवक, शिक्षा विशेषज्ञ, सफल लेखक और शक्तिमान वक्ता थे। सेवा का शायद ही कोई क्षेत्र ऐसा हो जिसमें उन्होंने कुछ न कुछ काम न किया हो। उन्होंने विभिन्न देशों की शिक्षा-पद्धतियों का अच्छा अध्ययन किया था। लेखक की हैसियत से देखें तो उनकी रचनाओं में भाषा का वह प्रवाह, तथ्यों एवं घटनाओं का वह संकलन मिलता है जो दूसरी जगह बहुत कम मिलेगा। उनकी मैजिनी, गेरीबाल्डी, शिवाजी, कृष्ण, दयानन्द, गुरुदत्त की जीवनियाँ इस बात को प्रकट करती हैं कि वह एक सफल जीवनी-लेखक थे। 'आर्य समाज' और 'भारत का राजनीतिक भविष्य' नामक उनकी पुस्तकें अपने समय में, बड़ी प्रामाणिक मानी जाती थीं। उनके 'तरुण भारत' (यंग इण्डिया) ग्रंथ ने एक समय बड़ी हलचल पैदा की थी और उस समय भारत में उसका आना भी रोक दिया गया था। उनकी अन्तिम पुस्तक, जिसमें उन्होंने बड़ा परिश्रम किया था, और जिससे अनेक पाठक परिचित हैं, मिस मेयो की पुस्तक 'भारत माता' के जवाब में लिखा हुआ,

'दुखी भारत' है। इससे अच्छा और प्रामाणिक उसका दूसरा जवाब नहीं निकला। 'वन्देमातरम्' और 'पीपुल' में लिखे हुए लेख उनकी जबर्दस्त कलम की यादगार छोड़ गये हैं।

और वक्ता तो वह लाजवाब थे। कितना ही विशाल जन समूह हो उसको काबू में कर लेना उनके बायें हाथ का खेल था। उनकी वक्तृता 'मार्च' करती हुई फौज के सामने बजनेवाले धौंसे के—बैण्ड के समान, जो सैनिकों को मस्त कर देता है, थी। लालाजी ने बोलने का यह ढंग देव-समाज के स्थापक प० शिवनारायण अग्निहोत्री से लिया था। अग्निहोत्रीजी (पीछे से देवगुरु) अपने समय में, भारत में, हिन्दी उर्दू के बेजोड़ वक्ता थे।

निस्सन्देह विभिन्न क्षेत्रों में लालाजी ने बड़ा काम किया था।

—छः—

उनकी स्मृति में—

यह भी मेरा भाग्य था कि मृत्यु के दो चार दिन पहले ही मैंने उनके दर्शन किये थे। चोट लगने के बाद भी लालाजी दिल्ली आये थे। उस समय सर्व-श्री मोतीलाल, जवाहरलाल, माता बसन्त, सुभाष बोस, विजय राघवाचार्य, मालवीयजी, लालाजी इत्यादि सभी यहाँ एकत्र हुए थे। मुझे जवाहरलालजी, सरदार शार्दूलसिंह और लालाजी से मिलना था। जवाहरलालजी और कवीश्वर शार्दूलसिंहजी के दर्शन किये, कुछ बातें भी हुईं। लालाजी बहुत व्यस्त थे। इसलिए सरदार साहब की सलाह से मैंने लाहौर जाकर मिलना निश्चय किया। दो दिन बाद लालाजी एवं सरदार साहब लाहौर लौटे। तीन चार रोज बाद मैं लाहौर पहुँचा। वहाँ टण्डन जी के भी दर्शन हुए। सरदार साहब से मिलकर मैं लालाजी के यहाँ पहुँचा। मेरे मित्र श्री राजाराम शास्त्री ने (जो उस समय द्वारकादास

पुस्तकालय के पुस्तकालयाध्यक्ष थे) कहा—'लालाजी की तबियत तो ठीक नहीं है। शायद ही मिल सकें।' पर दिल कहाँ मानता था! काँपते हाथों एवं धड़कते हृदय से मैंने चिट्ठी लिखी और उनके पास भेज दी। थोड़ी देर बाद ही उन्होंने मुझे बुला लिया। एक आरामकुर्सी पर लेटे हुए थे। उस समय भी काम तो करते ही जाते थे पर चेहरे पर वह उत्साह न था। थकान मालूम होती थी, फेफड़ों में कुछ तकलीफ थी, इसलिए धीरे धीरे बोलते थे। मैंने देखा कि ऐसी हालत में ज्यादा कष्ट देना ठीक नहीं। काम की दो चार बातें करके मैंने उन्हें झुककर प्रणाम किया और वहाँ से चला आया।

उसके बाद कानपुर होता हुआ मैं बनारस पहुँचा ही था कि मुझे उनके देहावसान का समाचार मिला। वज्राघात-सा हुआ। समाचार इतना आकस्मिक था कि हृदय मानना ही न चाहता था। किसी का, लालाजी के कुटुम्बियों तक का, यह ख्याल न था कि लालाजी हमें इतना जल्द छोड़ जायँगे। मैंने मन ही मन उन्हें प्रणाम किया और कलेजा मसोस कर रह गया।

यह १७ नवम्बर १९२८ का दिन था।

× × ×

लाला जी का जीवन अनवरत अध्यवसाय का जीवन था। कभी वह शान्त नहीं बैठे। सदा कुछ न कुछ करते रहते थे। स्त्रियों एवं अछूतों के लिए उनके दिल में सब से ज्यादा पीड़ा थी। इस दिशा में वह सदा प्रयत्नशील रहे। उनका जीवन वह प्रकाश है जिसकी सहायता से वर्तमान और अगली सन्तति निरन्तर सेवा के अत्यन्त कल्याण-कारी मार्ग पर बढ़ सकती है। गाँधी जी ने ठीक ही कहा था—

"लाला जी तो एक संस्था थे। अपनी जवानी के समय से ही उन्होंने देश भक्ति को अपना धर्म बना लिया था और उनके देश प्रेम में संकीर्णता न थी। वह अपने देश से इसलिए प्रेम करते थे कि वह संसार से प्रेम

करते थे। उनकी राष्ट्रीयता अन्तर ष्ट्रीयता से भरपूर थी। × × × उनकी सेवाएँ विविध थीं। वे बडे ही उत्साही समाज और धर्म-सुधारक थे। × × ऐसे एक भी सार्वजनिक आन्दोलन का नाम लेना असम्भव है जिसमें लाला जी शामिल न थे। सेवा करने की उनकी भूख सदा अतृप्त ही रहती थी। उन्होंने शिक्षण-संस्थाएँ खोलीं, वे दलितों के मित्र बने, जहाँ कहीं दुःख दारिद्र्य हो वहाँ वह दौडते थे।"

		में मेवा-कार्य । दयानन्द कालेज की (अवैतनिक मन्त्री, उपसभापति एवं अध्यापक के रूप में) सेवा ।
१८९६		उत्तर भारतीय अकाल में स्मरणीय सेवा ।
१८९९		राजपूताना दुर्भिक्ष में स्मरणीय सेवा ।
१९०५		कांगड़ा भूकम्प के समय स्मरणीय सेवा ।
		कॉंग्रेस डेपुटेशन में इंग्लैण्ड यात्रा ।
		महत्वपूर्ण प्रचार-कार्य ।
		यहाँ से अमेरिका की यात्रा ।
१९०७	अप्रैल	गिरफ्तारी । निर्वासन ।
	१६ मई	मण्डाले के किले में पहुँचाये गये ।
	११ नवम्बर	छुटकारा ।
	१८ नवम्बर	लाहौर पहुँचे ।
	दिसम्बर	तूफानी सूरत कॉंग्रेस में सम्मिलित हुए । कॉंग्रेस के दोनों दलों में समझौते का प्रयत्न किया पर असफल रहे ।
	३० दिसम्बर	अखिल भारतीय स्वदेशी सभा (सूरत) की अध्यक्षता ।
१९०८	अप्रैल	कॉंग्रेस के नरमदलवालों का सम्मेलन । लालाजी सम्मिलित हुए । यहाँ भी दोनों दलों को मिलाने की कोशिश की पर सफलता न हुई ।

	नवम्बर	इङ्गलैण्ड से अमेरिका गये। अमेरिका में 'यंग इण्डिया', 'पोलिटिकल फ्यूचर आव् इण्डिया' इत्यादि पुस्तकें लिखीं। अनेक पुस्तिकाएँ लिखीं तथा खूब प्रचार किया। वहाँ 'इण्डियन इन्फार्मेशन ब्यूरो' की स्थापना की।
१९२०	२० फरवरी	बम्बई में आगमन।
	सितम्बर	कलकत्ता के विशेषाधिवेशन की अध्यक्षता। 'तिलक स्कूल ऑव पालिटिक्स' की स्थापना।
१९२१		असहयोग आन्दोलन में सम्मिलित हुए।
	३ सितम्बर	गिरफ्तारी। १८ महीने एवं ५००) जुर्माना की सजा। पर कुछ समय बाद छुटकारा। फिर गिरफ्तारी।
१९२२	९ मार्च	एक वर्ष का कठोर कारावास एवं एक वर्ष की सादी कैद की सजा। स्वास्थ्य बहुत खराब हो गया।
१९२३	१६ अगस्त	स्वास्थ्य की खराबी के कारण मुक्ति। हिन्दू महासभा—आन्दोलन में सम्मिलित हुए।
१९२५		हिन्दू महासभा के कलकत्ता अधिवेशन की अध्यक्षता।

		स्वराज्य-दल में सम्मिलित हुए। पर अलग हो गये और स्वतन्त्र कांग्रेस-दल का संगठन किया।
१९२८	अक्तूबर	युक्तप्रांतीय हिन्दू कान्फ्रेंस इटावा की अध्यक्षता।
	३० अक्तूबर	साइमन कमीशन का लाहौर-आगमन। १४४ की घोषणा। जुलूस का संगठन। पुलिस द्वारा लट्ठी-प्रहार, लालाजी की छाती में चोट।
	१७ नवम्बर	प्रातःकाल ७ बजे देहावसान।



महात्मा गांधी

मोहनदास कर्मचन्द गांधी

['महात्मा']

जन्म	जन्म
२ अक्तूबर १८६९ ई०	आश्विन कृष्ण १२ सं० १९२५ वै०

"Mahatma Gandhi to day stands at the very centre of the world's life with the fate of centuries poised within his hands"

JOHN HAYNES HOLME

× × ×

"I see in Mr Gandhi the patient sufferer for the cause of righteousness and mercy a true representative of the crucified Saviour than the men who have thrown him into prison and yet call themselves by the name of Christ"

LORD BISHOP OF MADRAS

"आज महात्मा गांधी समग्र संसार के जीवन के मध्य में खड़े हैं और कई शताब्दियों का भाग्य अपनी मुट्ठी में बंद किये हुए हैं।"

—जान होम्स

× × ×

"मैं महात्मा गांधी में सदाचार और क्षमा के लिए धीरतापूर्वक दुःख सहने वाले पुरुष को,—तथा जिन्होंने उन्हें जेल में डाल दिया है और फिर भी अपने को क्राइस्ट के नाम पर पुकारते हैं उनकी अपेक्षा क्रूस पर चढ़े हुए उस त्राता (ईसा) के एक अधिक सच्चे प्रतिनिधि को देखता हूँ।"

—मद्रास के बिशप

The Pillar of a People's Hope
The Centre of a World's desire

—एक—

पहली झाँकी !

एक आँधी की भाँति वह मेरे जीवन में आया,—पर आँधी की भाँति उड़ा नहीं ले गया। न आँधी की भाँति वह क्षण भर रहकर चला गया। उसने स्वार्थ की कुटिल प्रवृत्तियों को पकड़ा और उनकी गति मोड़ दी। जीवन की तह में, अभिलाषाओं की राख के नीचे, छोटी सी, बुझने बुझने जैसी एक-दो चिनगारियाँ पड़ी थीं, इस प्रभंजन ने उन्हें जगा दिया। धूल उड़ गई और नीचे से धधकती हुई आग, हँसते-हँसते, जीवन के क्षितिज पर उठी !

यह १९२१ की बात है। तब पहली बार उसे देखा। पर यह तो आँखों का देखना था। बिना आँखों के,—हृदय की आँखों से—तो उससे पहले ही उसे देखा था,—उसके बारे में पढ़ा भी था और सुना भी था। और,—यह मेरे लिए, मेरे जीवन की एक घटना और सुखद स्मृति है कि मेरे साहित्यिक जीवन का आरंभ उसी को लेकर हुआ। १९१३ वर्ष की अबोध आयु में मैंने पहला लेख उस पर लिखा—पहला लेख जो एक मासिक पत्र में प्रकाशित हो सका। उस समय वह, जनता के लिए, सारा 'कर्मवीर' था और आज उसके साथ 'महात्मा' भी है। प्रतिक्षण अपने मार्ग पर बढ़नेवाली नदी के समान उसका जीवन आत्मसाक्षात्कार के अमृत सिंधु की ओर चला जा रहा है। तब जो वह था उससे आज वह बहुत ऊँचा है। भावना का वेग क्रमशः कम होता गया है, विवेक अत्यन्त दिव्य रूप में प्रकट होता गया है। भक्त की विह्वलता अपेक्षाकृत कम और ज्ञानी की अनासक्ति तथा सदसद्विवेक धीरे धीरे बढ़ता गया है। आज वह बिना अर्थ का नहीं, सचमुच का, 'महात्मा' है—चाहे वह स्वयं

हो इसे इन्कार करे। और उसकी इ कारी तो उसके महत्व का प्रमाणपत्र ही है।

पर हाँ,—क्या कह रहा था ? बनारस में १९२१ में पहली बार उसे देखा। तबसे जहाँ आत्मा—'स्पिरिट'—में बहुत परिवर्तन हो गये हैं, शरीर, अपनी सीमा और बंधन में, बहुत थोड़ा बदला है।—और दुबला जरूर हो गया है पर वैसा न होता तो आश्चर्य की बात होती। आकृति में कोई विशेषता न तब थी, न अब है पर आकृति विज्ञान के विद्यार्थी को उसके कान, ओठ और आँखें अवश्य आकर्षित करती हैं। कान बड़े, खुले हुए। मानो जगत् में जो-कुछ श्रेष्ठ है सब सुनने और सबको ग्रहण कर लेने के लिए उत्सुक हैं। ओठों से जीवन की अभिव्यक्ति—'एक्सप्रेशन'—फूटी पड़ती है। इतने 'एक्सप्रेसिव' ओठ बहुत ही कम लोगों के देखे गये हैं। और आँख। उनमें वैसा कुछ नहीं जो साहित्य की परम्परा में स्थान पाने योग्य हो। फिर भी उनमें कुछ ऐसा जरूर है जो रह रह कर प्रकाशित होना—जीवन में चमक उठना चाहता है। रह रहकर उनमें एकाएक प्रकाश आ जाता है और वे जुगनू की भाँति, चमक उठती हैं।

× × ×

उसने अपनी सत्य की चिर साधना के सहारे ससार को सत्याग्रह का दान दिया है। यह सत्याग्रह,—जिसका एक ही विराट् रूप हमने भारतीय राजनीति के प्रांगण में देखा है, और दूसरा कुछ-कुछ एक बिजली की भाँति चमकनेवाले उसके अस्पृश्यता निवारण सम्बन्धी हल्के उपवास में,—जगत् के लिए इस दिव्य आत्मा का सन्देश है। इसकी सिद्धि ही जगत् के लिए एक महान् आशा है, पीड़ित मानवता का प्राण है। उसकी असफलता ससार के लिए भयकर होगी (क्योंकि वह शठ के आगे सत्य के हारने—जैसा होगा)। इसे वह भी जनता है और इसीलिए उसने इसकी सफलता के लिए अपनी सारी शक्ति लगा दी है।

इस समय वातावरण उलझा हुआ है। उसमें नीरवता है पर यह नीरवता महाश्मशान की नीरवता की भाँति सतत जीवनमय और भयानक है। यह आँधी आने के पहले विश्वात्मा के श्वास का प्रक्षेप है। इसमे मालूम होता है कि गांधी, जो अभी जरा ही बोल पाया था कि गिरफ्तार* कर लिया गया और जो यदि पूरा बोल पाता तो अपनी 'रास'—यात्रा में, चुप रहकर भी, शायद सब से ज्यादा आग लगा देता,—और जिसके दिमाग में क्या युद्ध चल रहा है कोई जानता नहीं और जिसके हृदय में चलने वाले मथन को केवल अन्तर्यामी जानता है—दूसरा कोई जानना चाहे तो भी न जान सकेगा—ज्वालामुखी की तरह फूटनेवाला है। १८ वर्ष की प्रियतम स्मृतियों से गूंथे हुए सत्याग्रह के स्मारक उस आश्रम को आज उसने योगी की निठुरता के साथ ध्वस कर दिया है और माताएँ बच्चों से अश्रुमय नेत्रों की मौन वाणी में विदा माँग चुकी हैं। यह सब जो होने वाला है, उसकी चिनगारियाँ हैं। उसे फूटना होगा तो जेल की बहार दीवारी उसकी ज्वाला को फूटने से रोक न सकेगी। इस आग में या तो वही जल जायगा या जो कुछ असत् और असार है, वह सत्य की ज्वाला में जलकर भस्म हो जायगा। और भूत के उस गिरे हुए ढेर से उसकी साधना—उसका वैराग्य—अधिक उज्ज्वल रूप में जगत् के सामने आयेगी।

यह निश्चय है कि वह जो कुछ करने जा रहा है और जो कुछ करेगा, चाहे वह कैसा ही हो—पर ऐसा होगा जो निद्रालु जन समूह को हिला कर छोड़ेगा। हमारा हृदय तो, दुर्बल प्रेमी की तरह, अभी से कांपता है और हम तो हाथ उठाकर मालिक से उसकी चिरायु की भीख माँगते है।

वह तपस्या का धधकता हुआ अगारा है। उसके बारे में कुछ कहना सहज नहीं है पर जो कुछ कहना है हम बाद में कहेंगे। तबतक, आइए उसके जीवन पर एक सरसरी दृष्टि डाल लें।

---

* ३१ जुलाई १९३३ की रात को गाधी जी एव उनके साथी गिरफ्तार कर लिये गये।

—दो—

जीवन-कथा

गांधी नाम से तो ऐसा ही मालूम होता है कि गांधी परिवार पहले पंसारी का काम करता रहा होगा। पर गांधीजी के पहले तीन पुश्त तक

परिवार एवं जन्म

यह काठियावाड़ की भिन्न भिन्न रियासतों में दीवानी का काम करता आया। इनमें श्री उत्तमचंद गांधी पोरबंदर के दीवान थे पर पीछे अपनी निर्भीकता के कारण इन्हें यह स्थान छोड़ना पड़ा। इनके पुत्र करमचन्द गांधी भी पहले पोरबन्दर (सुदामापुरी) और बाद में राजकोट एवं बीकानेर के दीवान रहे। यह एक अनुभवी राज्याधिकारी थे पर स्कूली शिक्षा उनकी बहुत कम—बिल्कुल प्रारंभिक हुई थी। करमचंद गांधी एक सद्गृहस्थ थे। वह निर्भीक और राज काज में निपुण पुरुष थे। उनमें सत्य की प्रवृत्ति थी। रिश्वत इत्यादि से दूर भागते थे। इन गुणों के साथ उनमें, क्रोध और विषयासक्ति, ये दोष भी थे। उनके एक एक करके चार विवाह हुए। उनकी अन्तिम पत्नी पुतलीबाई साध्वी और निष्ठावान थीं। व्रत उपवास एवं पूजा पाठ में उनकी विशेष रुचि रहती थी। वह बहुत ही दयालु, भावुक एवं कोमल प्रकृति की थीं। इन्हीं माता पिता के घर, पोरबन्दर में, २ अक्टूबर १८६९ ई० (आश्विन कृष्ण १२ संवत् १९२५) को मोहनदास (गांधीजी) का जन्म हुआ। वह अपने माता पिता की अन्तिम संतान थे।

बचपन में मोहनदास साधारण बुद्धि के बालक थे, उनमें विशेष प्रतिभा न दीख पड़ी थी। इनके आरंभिक वर्ष पोरबन्दर में ही बीते।

बचपन एवं आरंभिक शिक्षा

अतः वहाँ ही किसी पाठशाला में यह बैठाये गये। उस समय इनका मन पढ़ने में विशेष न लगता था। उन्होंने स्वयं लिखा है—"उस समय मैंने लड़कों के साथ महेताजी—मास्टर साहब—को सिर्फ गाली देना सीखा

था इतना याद पड़ता है, और कोई बात याद नहीं आती। इससे यह अनुमान करता हूँ कि मेरी बुद्धि मंद रही होगी और स्मरण शक्ति उन पंक्तियों के कच्चे पापड़ की तरह रही होगी जिन्हें हम लड़के गाया करते थे—

"एकड़ एक, पापड़ शेक,
पापड़ कच्चो,—मारो— ।"

पोरबन्दर में जब इनके पिता राजकोट गये तब मोहनदास की उम्र लगभग सात वर्ष की थी। वहां इनकी शिक्षा मन्दगति से चलती रही। वह पाठशाला के साधारण विद्यार्थियों में थे। इनका स्वभाव बड़ा संकोची और झेंपू था और वह किसी से ज्यादा मिलते जुलते न थे। पाठशाला खतम होती और घर आ जाते। पर पिता माता के अच्छे संस्कारों की मोहनदास में प्रबलता थी। झूठ बोलने का दुर्गुण कभी उनमें न आया। मोहनदास में सत्य की ओर बचपन से ही रुचि और प्रवृत्ति थी। पाठशाला के वातावरण में भी इन गुणों में कमी न आई। ऐसी अवस्था में जब स्कूल के अन्य विद्यार्थी तरह तरह की 'चालाकियां' सीख जाते हैं और मास्टर भी इस कार्य में उनकी कुछ कम मदद नहीं करते तब अपने प्रबल संस्कारों के कारण मोहनदास सत्य में स्थिर रहे*, यह इस बात की मानो सूचना थी कि भावी जीवन किस प्रवाह में बहेगा।

---

* गांधीजी ने 'आत्म कथा' में एक घटना दी है—

'हाईस्कूल के प्रथम ही वर्ष की परीक्षा के समय की एक घटना लिखने योग्य है। शिक्षा विभाग के इन्सपेक्टर, जाइल्स साहब, निरीक्षण करने आये। उन्होंने पहली कक्षा के विद्यार्थियों को पाँच शब्द लिखवाये। उनमें एक शब्द था 'केटल' (kettle)। उसे मैंने गलत लिखा। मास्टर साहब ने मुझे अपने बूट से ठोकर मारकर चेताया। पर मैं क्यों चेतने लगा? मेरे दिमाग में यह बात न आई कि मास्टर साहब मुझे आगे

गुरजनों के प्रति भक्ति

सत्य के साथ ही इनमें गुरजनों—बडों—के प्रति आदर एव भक्ति का भाव भी आरभ से था। इसलिए मास्टरों के प्रति अवज्ञा का, उनको मूर्ख बनाने का जो भाव आजकल के लडकों में है, उनमें न था। पढने लिखने में यह सुस्त थे। पाठ्य-पुस्तकें ही पूरी नहीं पढ पाते थे फिर बाकी पुस्तकें कहाँ से पढते पर इस विद्यार्थी अवस्था की दो घटनाओं का उल्लेख उन्होंने किया है। एक तो यह कि एक दिन अपने पिता की खरीदी एक पुस्तक 'श्रवण पितृ भक्ति नाटक' पर इनकी दृष्टि पड गई। न जाने क्यों पढने को मन ललचाया। उसे पढकर माता पिता के प्रति इनके हृदय में जो भक्ति थी वह और जाग्रत हुई। शीशे म तस्वीर दिखाने वालों से भी एक दिन श्रवण की मातृ पितृ भक्ति के दृश्य देखे, हृदय गद् गद् हो गया, आँखों में आँसू भर आये। इस पुस्तक और इस दृश्य दर्शन का इनके जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा।

इसी प्रकार जब यह पढ रहे थे तब एक नाटक-कम्पनी वहाँ खेल दिखाने आई। पिता की आज्ञा से इन्होंने 'हरिश्चन्द्र' नाटक देखा। इसका भी उनके चित्त पर स्थायी प्रभाव पड़ा। यह लिखते हैं—"इस नाटक को देखते मैं अघाता न था। बार-बार उसे देखने को मन

के लडके की स्लेट देखकर सही लिखने का इशारा कर रहे हैं। मैं यह मान रहा था कि मास्टर साहब तो इस बात के लिए पहरा लगा रहे थे कि कहीं हम एक दूसरे की देख-देखकर न लिख लें। सब लडकों के पाचों शब्द सही निकले, और मैं ही अकेला गधा साबित हुआ। बाद को मास्टर साहब ने मेरी 'मूर्खता' मुझे बताई, परन्तु उनकी अक्ल का कुछ असर मेरे दिल पर न हुआ। दूसरों की देख-देखकर लिखना मुझसे न सधा।"

—आत्मकथा (हिन्दी) प्रथम खण्ड, अध्याय २; पत्र २१ ११

हुआ करता, पर यों बार-बार कौन जाने देने लगा ? जो हो ? अपने मन में मैंने इस नाटक को सैकड़ों बार खेला होगा। हरिश्चन्द्र के सपने आते। यही धुन लगी कि हरिश्चन्द्र की तरह सत्यवादी सब क्यों न हों ? यही धारणा होती कि हरिश्चन्द्र के जैसी विपत्तियाँ भोगना और सत्य का पालन करना ही सच्चा सत्य है।" यहीं इनके बाद के जीवन की कुंजी हमें मिलती है। गुरुजनों के प्रति भक्ति एवं सत्य की दृढ़ता के जिन संस्कारों की बात हम ऊपर लिख आये हैं उनको इन दो घटनाओं ने लड़कपन में ही खूब दृढ़ कर दिया। 'हरिश्चन्द्र की तरह क्यों न हों', इस प्रेरणा और लगन ने ही उनको इस दिव्य-रूप में आज जगत के सामने उपस्थित किया है।

धार्मिक एवं सामाजिक विचारों की दृष्टि से देखें तो इनके कुटुम्ब की गणना कट्टर कुटुम्बों में की जानी चाहिए। इसके परिणाम-स्वरूप हम

विवाह

सात वर्ष में इनकी सगाई होते और तेरह वर्ष की अवस्था में इनका विवाह कस्तूरबाई के साथ, होते देखते हैं। विवाह के समय वैवाहिक मर्यादा को तो यह क्या समझते ? उम्र एवं बुद्धि ही कितनी थी। उस समय तो यह उनके तमाशे एवं मनोरंजन की चीज सा मालूम हो रहा था। पूर्व संस्कारों के कारण कहिए या उस समय की साधारण दाम्पत्य-जीवन की प्रथा की दृष्टि से कहिए विवाह के बाद इनका जीवन पत्नी के साथ बहुत विषयासक्त हो गया था। यह आसक्ति इतनी प्रबल हो गई थी कि दिन को स्कूल में भी इनका मन पत्नी में ही लगा रहता था। इनकी पत्नी कुछ विशेष पढ़ी-लिखी न थी और जहाँ विषय भावना की प्रबलता हो वहाँ इच्छा रहने पर भी पति क्या पढ़ा सके ? इन्होंने भी बहुत चाहा पर न पढ़ा सके। स्त्री के सामने जाने पर समय गप शप में निकल जाता।

जब इनका विवाह हुआ तो यह हाई स्कूल में पढ़ते थे। अब यह पढ़ाई पर कुछ ध्यान देने लगे थे और बोदे छात्रों में न समझे जाते थे।

पर इनके जीवन में सदा यह बात रही और उस समय भा
हाइस्कूल में यह पुस्तकी शिक्षा में चाहे लापरवाह रहे पर सदाचरण म सदा जागरूक रहत थे। यदि किसी गलती के लिए कोई शिक्षक उलाहना देता तो इन्हें बहुत दु
एक बार किसी गलती पर मास्टर ने इन्हें पीटा। इसका इनका दु ख हुआ। फूट-फूट कर रोये। दु ख पिटने का नहीं इसलिए हुआ यह पिटने के योग्य समझे गये। इन कारणों से सत्य प्रिय होने क साथ अपने कार्यों के विषय में बहुत सावधान भी रहत थे। एक घटना जब यह सातवीं कक्षा में पढ़ रहे थे तब सब व्यायाम स्कूल में अनिवार्य कर दिया गया था पर इनका मन उसम न लगता, पिता की सेवा उनका मन लगता था। एक दिन की बात है, सुबह का स्कूल था। शाम को चार बजे व्यायाम में जाना था। इनके पास घड़ी न थी। बादल छा रहे थे इसलिए समय का कुछ ठीक ध्यान न रहा। जब यह पहुँचे व्यायाम समाप्त हो चुका था और सब लोग घर चले गये थे। दूसरे दिन जब अनुपस्थिति का कारण पूछा गया तो जो बात थी, इन्होंने बता दी पर मास्टर को विश्वास न हुआ और उन्होंने जुमाना कर दिया। उस दिन इन्हें बड़ा दु ख हुआ और इन्होंने यह शिक्षा ग्रहण की कि सत्य का मार्ग ग्रहण करनेवाले को सदा सावधान रहना चाहिए।

सत्य के प्रति इतना आग्रह होते हुए भी उस समय, संगति दोष से, दो-एक काली रेखाएँ इनके जीवन म आ गईं। किशोरावस्था
काली रेखाएँ मनुष्य के लिए बहुत सँभालकर रखने की चीज है। इन दिनों बहुतेरे ऐसे मित्र मिल जाते हैं जो गापनीय बातों में रस लेते हैं और प्रलोभन एव कुतूहल वश प्राय इनके पर में पड जाते हैं। मोहनदास की भी एक लडके से घनिष्टता हुई। उसके संस्कार अच्छे न थे और उसमें कई दुगुण थे। उसके सम्बन्ध में माता, बड़े भाई और पत्नी ने चेतावनी भी दी पर यह समझते थ कि इसकी

बुराइयों का असर मुझपर न पड़ेगा, उल्टा मैं उसे सुधार सकूँगा। इसलिए इन चेतावनियों पर ध्यान नहीं दिया।

आज की भाँति ही उन दिनों कुछ युवक श्रद्धाहीन अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव से युरोपीय फैशन के मोह जाल में फँस गये थे। उस सगी ने मोहनदास को बताया कि कितने ही बड़े-बड़े आदमी और हिन्दू शिक्षक छुपे छुपे मांसाहार और मद्यपान करते हैं। पहले तो इन बातों से इन्हें दुःख होता पर उस 'मित्र' ने समय-समय पर इस प्रकार की बात कर करके इनके हृदय को दुर्बल कर दिया। मोहनदास के मँझले बड़े भाई पहले से ही इस व्यसन में फँसे हुए थे। वह खूब खेलते कूदते, दौड़ते। उनमें फुर्ती भी तथा वह निर्भय भी थे। इधर मोहनदास सुस्त, डरपोक तथा दुर्बल थे इसलिए इन्हें अपनी अवस्था पर ग्लानि होती रहती थी। उस 'मित्र' ने इनके भाई तथा उसी प्रकार के अन्य लड़कों के उदाहरण दे देकर इन्हें यह समझाया कि मांसाहार से शक्ति बढ़ती है, स्फूर्ति आती है, इसीलिए अंग्रेज बलवान और हृष्ट पुष्ट हैं। धीरे धीरे इन बातों का असर मोहनदास के हृदय पर पड़ा और कुछ ही दिनों में उन्होंने मांसाहार की उपयोगिता स्वीकार कर ली तथा उन्हें विश्वास हो गया कि इससे मैं बलवान हो सकता हूँ और यदि सारा देश मांसाहार करने लगे तो अंग्रेजों को हरा सकता है।

धीरे धीरे बातें आगे बढ़ीं। मांसाहार आरंभ करने का दिन भी निश्चित हो गया पर यह सब निश्चय गुप्त रखा गया क्योंकि यद्यपि बुद्धि मांसाहार की उपयोगिता स्वीकार करती थी पर हृदय में वैष्णव संस्कार भरे हुए थे। पिता माता सब कट्टर वैष्णव थे तथा चारों ओर के वातावरण में मांसाहार के प्रति तिरस्कार का अत्यन्त तीव्र भाव वर्तमान था। मालूम होने पर माता पिता को बहुत दुःख होगा, इस विचार से भी सारी बातें गुप्त रखने का ही निश्चय हुआ। दूर नदी के किनारे एक जगह मिल गई। उस समय इनके मन की दशा विचित्र थी। उसमें संघर्ष

चल रहा था। एक ओर वीर बनने और सुधार करने का उत्साह और दूसरी ओर चोर की तरह छुप छिपकर काम करने की शर्म। नियत स्थान पर पहुँचे। मास के साथ डबल रोटी भी थी पर दोनों ही चीजें इन्हें अच्छी न लगीं। मांस चमड़े जैसा मालूम हुआ। रात भर नींद न आई। ऐसा मालूम होता कि पेट में बकरा 'में में' बोल रहा है। पर 'सुधार' में ऐसी कठिनाइयाँ तो आती ही हैं, यह सोचकर तथा 'मित्रों' के उत्साह दान से आगे भी क्रम चला। उन लोगों ने कई प्रकार की स्वादिष्ट चीजें बनानी शुरू कीं। इस तरह समय समय पर पाँच [illegible] बार मांस इन्होंने खाया होगा।

पर उत्तम संस्कारों के कारण इस बात को लेकर उनके मन में सदा युद्ध चला करता। जिस दिन मास खाते उस दिन घर खाना न खाया जाता और माँ से झूठ बहाने करने पड़ते। सत्य की निष्ठा एवं मातृ भक्ति के कारण यह बात इन्हें बहुत खलती थी। दिल में बेचैनी रहती कि मैं माता पिता को धोखा दे रहा हूँ। धीरे धीरे इस भाव ने जोर पकड़ा और इन्होंने निश्चय कर लिया—'माता पिता से झूठ बोलना पाप है अतः जबतक वे जीवित हैं माँस खाकर धोखा देना उचित नहीं। पर वे न रहेंगे तब स्वतंत्रता पूर्वक खायेंगे।' उस दिन से मांस छूटा।

पर उस 'मित्र' ने यहीं तक नहीं, आगे भी कदम चलाया। मांसा-हार से व्यभिचार की ओर गति हुई। एक बार दलदल में गिरने पर

दलदल में फँसते-फँसते

धीरे धीरे नीचे आने लगा। एक दिन मोहनदास को भी वह एक चकले में ले गया। बाई से सब बातें उसने पहले से ही तै कर ली थीं और उसे पैसे भी दे दिये थे। पर अपने झेंपू स्वभाव के कारण मोहनदास बच गये या यह कहें तो ज्यादा अच्छा होगा कि ईश्वर ने उन्हें बचा लिया। वह जाकर मारे शर्म के गूँगे से उस बाई की चारपाई पर बैठ गये। एक शब्द मुँह से न निकला। इससे वह बाई झल्लाई और उसने इन्हें बाहर का

था। उस समय तो इन्हें अपने इस अपमान और 'नामर्दी' पर बड़ी ग्लानि हुई पर पीछे ज्ञान होने पर उन्हें विश्वास हो गया कि भगवान् ने मेरी रक्षा की है।

इसी प्रकार चचा इत्यादि को देखा देखी सिगरेट पीने की आदत १२ वर्ष की अवस्था में पड़ी। सिगरेट के लिए पैसे न मिलते इस लिए चचा की पी हुई अधजली सिगरेटें चुरा-चुराकर पीते। पीछे नौकरों के पैसों में काट कपट कर चोरी करने लगे। पर चोरी चोरी यह काम करने में बड़ी ग्लानि होती। यहाँ तक कि इसी ग्लानि में एक दिन आत्म-हत्या कर लेने का भाव मन में आया। धतूरे के बीज खोज लाये। मंदिर के एकान्त स्थल में शाम को आत्महत्या करने चले पर एक दो बीज खाते ही हिम्मत छूट गई। मरना सरल काम न रहा। खैर, आत्म हत्या तो न हुई पर इससे एक अच्छा फल यह निकला कि सिगरेट के ठूँठ पीने एव नौकरों के पैसे चुराकर उससे सिगरेट लाने की बात छूट गई।

इसी प्रकार चोरी की एक घटना का उल्लेख उन्होंने अपने 'सत्यना प्रयोगो' में किया है। इनके मांसाहारी मझले भाई ने व्यसनों में फँस कर २५) के लगभग कर्ज कर रखा था। उनके पास पहनने का सोने का एक कड़ा था। इन दोनों भाइयों ने यह निश्चय किया कि इसमें से एक तोला सोना निकाल लिया जाय। तदनुसार कड़ा कटा; कर्ज चुका पर इनका मन इनको इस चोरी के कारण धिक्कारने लगा। मन में आया कि पिताजी से यह बात कह देनी चाहिए। उनके नाराज होने एवं इस घटना से उनके मन और फलस्वरूप स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ने की संभावना थी। फिर भी दिल की प्रेरणा इतनी जबर्दस्त थी कि इन्होंने पिताजी के नाम पत्र लिखा। उसमें सब बातें लिख दीं और प्रतिज्ञा की कि आप दुःख न करें। आगे से ऐसा मैं न करूँगा। पत्र पढ़कर पिता की आँखों से आँसू बहने लगे। दोनों रोये। पर इससे मन धुल गया और

हृदय का बोझ दूर हो गया। इनके दोष-स्वीकार से पिता इनके सन्त में निःशंक हो गये।

इनके पिता को बहुत दिनों से भगन्दर रोग था। धीरे धीरे वह बहुत बढ़ गया। और इसी सिलसिले में १८८५ ई० में उनकी मृ हुई। इसी साल श्रीमती कस्तूर बा के पहले बालक का जन्म हुआ और इतनी कच्ची उम्र सन्तान होने का जो परिणाम होता है वही हुआ, दो चार दिन में उसकी मृत्यु हो गई।

पिता का देहावसान

बचपन से ही इन्होंने सत्य को अपना पथ प्रदर्शक बनाया था इस लिए हृदय में उदारता थी। इनकी बूढ़ी दाई ने इन्हें रामनाम का महत्व बताया था। 'रामनाम से भूत प्रेत भाग जाते हैं' यह कहकर उसने इन्हें उसका अभ्यास करने सलाह दी थी। आज वह रामनाम में अमोघ शक्ति पाते हैं, वह उसी दाई—रंभा—का बोया हुआ है। अपने बड़े भाई के कहने से राम रक्षा' का पाठ भी किया करते और रामायण की कथा भी सुनते। यद्यपि धर्म में इनकी श्रद्धा न थी पर इन बातों के संस्कार हृदय पर बैठते गये। वैष्णव होते हुए भी इनके घरवाले राम-मन्दिर इत्यादि जाते। इससे साम्प्रदायिक संकुचितता का भाव इनमें न रह गया। कृष्ण, राम सब एक से रहे। इनके पिता के पास जैन धर्म के आचार्य भी आया करते। मुसल्मान मित्र भी आते और अपने धर्म की बातें करते। इससे इन धर्मों के प्रति भी किशोर मोहनदास के हृदय में समभाव पैदा हुआ। परन्तु इन सबमें इन्होंने दो बातें निश्चित रूप से लड़कपन से ही ग्रहण कीं। एक तो यह कि संसार नीति पर खड़ा है, दूसरी यह कि सत्य सब प्रकार की नीति का निचोड़ है। इसीसे उनमें अहिंसाभाव का भी जन्म और विकास हुआ। 'अपकार का बदला उपकार', यह भाव दृढ़ हुआ।

सर्वधर्म सम भाव

१८८७ ई० में मोहनदास ने मैट्रिक की परीक्षा पास की और
के बाद भावनगर के श्यामलदास कालेज में भरती हुए पर वहाँ पढ़ाई
में मन न लगता, विषय कठिन मालूम पड़ते। ऐसे
विलायत यात्रा
ही समय इनके पिता के मित्र एवं कुटुम्ब के सलाह-
र श्री मावजी दवे ने इनके घरवालों से कहा कि इन्हें विलायत भेजकर
बैरिस्टरी पास कराना चाहिए। बड़ी कठिनाई से भाई और माता ने आज्ञा
। माताजी के सामने इन्होंने मांस, मदिरा और स्त्री-संग से दूर रहने की
तिज्ञाएँ लीं। विलायत जाने की बात सुनकर जाति की पंचायत ने इनको
कना चाहा पर यह टस से मस न हुए। फलतः जाति बहिष्कृत होकर भी
सितम्बर १८८८ ई० को बम्बई से विलायत के लिए रवाना हुए।

जहाज पर भोजन सम्बन्धी अनेक कठिनाइयाँ आईं पर इन्होंने सदा
तिज्ञा का पालन किया। अंग्रेजी में कच्चे थे, फिर झेंपू स्वभाव के थे
इसलिए लोगों से मिलने में डरते थे। खैर, किसी
विलायत में
तरह विलायत पहुँचे। साथ में डा० प्राणजीवन
हता, श्री दलपतराम शुक्ल, प्रिंस रणजीतसिंह और दादा भाई नौरोजी
नाम परिचय पत्र ले गये थे। डा० मेहता एवं श्री शुक्ल ने इंग्लैण्ड
आचार विचार एवं रीति नीति से इन्हें परिचित कराया और होटल से
टाकर इन्हें एक ऍंग्लो इण्डियन कुटुम्ब में रक्खा। इससे खर्च में कमी
ई। पर शुरू-शुरू में तो इन्हें सभ्य बनने की धुन सवार हुई थी।
फलतः नये ढंग के फैशनेबुल कपड़े सिलाये, नृत्य-कला सीखनी शुरू की
था फ्रेंच और लैटिन पढ़ना भी आरम्भ किया।

उस समय लन्दन में निरामिष भोजनालय दो ही चार थे। और
कि इन्हें अपनी प्रतिज्ञा का सदा ध्यान बना रहता इसलिए ऐसे भोज
नालय की खोज में रहते। कभी-कभी हाथ से भी
जीवन में परिवर्तन
बना लेते। यहीं अन्नाहार एवं फलाहार की श्रेष्ठता
का विवेचन करनेवाली कई अच्छी पुस्तकें इनके हाथ लगीं। उन्हें पढ़कर

अन्नाहार की उपयोगिता पर इनका विश्वास बढ़ता गया। तभी से भो सम्बन्धी प्रयोगों की धुन इनपर सवार हुई, जो आजतक चली जा

इस बात से दो अच्छे फल तो तुरन्त हुए। एक तो यह कि में सादगी आई और जो भोजन पहले शुष्क मालूम पड़ता था स्वाद आने लगा। दूसरा यह कि ज्यों ज्यों यह अपने सम्बन्ध में गह से विचार करते गये त्यों त्यों अपने जीवन में अधिकाधिक सादगी एवं खर्च में कमी करने का भाव इनके मन में प्रबल होता गया। का खर्च इन्होंने घटा दिया और पैदल आना-जाना शुरू किया। स्वास्थ्य भी सुधरा। केवल एक सस्ते कमरे से काम चलाना शुरू कि मिर्च मसाले इत्यादि का प्रयोग भी छोड़ दिया। इस प्रकार खाने एवं कमरे के किराये का खर्च बहुत घट गया। इसके साथ ही पढ़ने में भी मन लगाया।

सादा भोजन के विषय में इनके अन्दर ऐसा उत्साह पैदा हुआ 'बेजवाटर' मुहल्ले में (जहाँ उस समय रह रहे थे) इन्होंने एक 'अ हारी मण्डल' स्थापित किया। डा० ओल्डफील्ड को अध्यक्ष एवं एडविन अर्नाल्ड को उपाध्यक्ष बनाया और यह स्वयं मंत्री बने। पर संस्था बहुत दिन न चली, कुछ ही महीनों में उसका अन्त हो गया यह उस मुहल्ले को छोड़कर दूसरे मुहल्ले में चले गये।*

असत्याचरण का अन्त

विलायत में भारतीय विद्यार्थी के सामने अनेक प्रकार के प्र आते हैं। इनके सामने भी ऐसे अवसर आये। उन दिनों बहुत विद्या छात्र अपने को वहाँ अविवाहित ही बताते। उन्हें उन कुटुम्बों की युवती लड़कियों के साथ घू फिरने एवं मनोविनोद की स्वच्छन्दता मिल जिनमें वे रहते थे। उसी प्रवाह में यह भी बह गये। एक दिन

* अनुभव प्राप्त करने के खयाल से इन्होंने यह नियम बना लिया कि थोड़े थोड़े समय बाद स्थान परिवर्तन करते रहना चाहिए।

समुद्र के किनारे हवाखोरी का स्थान) में लन्दन निवासिनी एक बुढ़िया से परिचय हुआ । पीछे उससे घनिष्टता बढ़ गई और विलायत से लौटने के बाद भी कायम रही । उसने लन्दन का अपना पता दिया । वह रविवार को इन्हें निमन्त्रित करती और युवती स्त्रियों से, विशेषकर उसके यहां रहने वाली एक लड़की से, इनको हिलाती मिलाती । उस लड़की से पहले तो बोलने में यह झपते पर धीरे धीरे उसमें रस आने लगा । पर सत्य के संस्कार इनमें जमे हुए थे, प्रतिज्ञा भी इन्हें याद थी इसलिए समय पर भगवान् की कृपा से यह बच गये । वह लड़की इन्हें अविवाहित समझ इनसे स्नेह बढ़ाती जा रही थी । अन्त में इसके परिणाम की भीषणता की कल्पना करके साहस पूर्वक इन्होंने बुढ़िया को एक पत्र लिखा और सच्ची स्थिति प्रकट कर दी । इनकी उस सत्यवादिता का उसपर अच्छा ही असर हुआ और इन लोगों की मित्रता अन्त तक कायम रही ।

त्याग का भाव

विलायत में रहने की अवधि में ही दो थियासोफिस्ट ('ब्रह्मवादी') मित्रों से परिचय हुआ और उनके आग्रह से इन्होंने गीता का एडविन अर्नाल्ड कृत अनुवाद पढ़ा और उसके साथ मूल श्लोक भी शुरू किये । दूसरे अध्याय के—

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते ।
सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोपजायते ॥
क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृति विभ्रमः ।
स्मृति भ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धि नाशात्प्रणश्यति ॥*

* विषय का चिन्तन करने से पहले उस विषय में आसक्ति उत्पन्न होती है । आसक्ति—संग—से उस विषय की कामना—उसे प्राप्त करने की वासना—का जन्म होता है और उस कामना (की तृप्ति में विघ्न आने पर उस) से क्रोध उत्पन्न होता है । क्रोध से मोह (अविवेक), मोह से

श्लोकों का इनके हृदय पर बड़ा प्रभाव पड़ा। तभी से गीता की दिव्यता पर इनकी श्रद्धा हुई और अब तो वह मानते हैं कि गीता से बढ़कर मनुष्य के लिए सत्पथ प्रदर्शक दूसरा ग्रन्थ नहीं।

इन्हीं दिनों 'थियोसफी' की भी दो एक पुस्तकें पढ़ीं। अर्नाल्ड का 'बुद्ध चरित' पढ़ा। बाइबिल भी पढ़ गये। उसका 'सर्मन ऑन द माउण्ट' (गिरि प्रवचन) नामक अध्याय पढ़कर उनके हृदय को बड़ा आनन्द हुआ। इसकी शिक्षाएँ उनके सत्य धर्म की नीति के अनुकूल थीं। उनमें अपकार का बदला उपकार से एवं हिंसा का प्रेम से देने का उपदेश किया गया था। इन ग्रंथों के अध्ययन से इनके हृदय में धीरे धीरे ईश्वर के प्रति श्रद्धा का संचार हुआ और यह बात दिल में बैठ गई कि त्याग में ही धर्म है। इस प्रकार सत्य, अहिंसा एवं त्याग के भावों ने इनके दिल में जड़ जमा ली। इन भावों के कारण विकार-वश होने से भी कई बार यह बचे। एक बार पोर्टसमथ में (जहाँ अन्नाहार[illegible] के सम्मेलन में गये हुए थे) रात को अपने एक भारतीय साथी के साथ गृहणी से ताश खेलने बैठे। विनोद आरंभ हुआ। वह साथी इस कला में निपुण था, धीरे धीरे पापपूर्ण विनोद बढ़कर क्रिया में परिणत होने की नौबत आई। उस समय यह भी विकाराधीन हो गये थे पर ठीक समय पर उस साथी ने इन्हें चताया—'यह काम तुम्हारे लिए नहीं।' यह भगे रात भर नींद न आई। उस समय यह ईश्वरीय सहायता का पूर्ण अर्थ न समझते थे पर इन्हें ऐसा मालूम पड़ा कि भगवान ने ही उबारा है। दूसरे ही दिन पोर्टसमथ से चल दिये। इस प्रकार इनके जीवन में एक साधक की प्रवृत्ति हम शुरू से देखते हैं। बुराइयों में फँसते हैं, वेदना और फिर पश्चात्ताप होता है यह जग जाते और उनसे

स्मृति विभ्रम, स्मृति विभ्रम से बुद्धिनाश और बुद्धिनाश से उस व्यक्ति का ही विनाश होता है।

गते हैं। अपने को कसने एवं प्रलोभनों का ज्ञान होते ही उससे दूर ने की नीति ने ही इनकी रक्षा की है।

ये बातें इसलिए लिखनी पड़ीं कि उनके परवर्ती जीवन में जो सत्य प्रकाशित हुआ, उसके बीज हम इनमें देखते हैं और धीरे धीरे उनके जीवन को सत्पथ पर बढ़ता पाते हैं। पर जिस बैरिस्टरी के लिए यह विलायत गये थे उसकी पढ़ाई भी जारी थी और फलस्वरूप १० जून १८९१ को यह बैरिस्टर हुए। ११ ता० को ढाई शिलिंग फीस देकर इंग्लैण्ड के हाईकोर्ट में अपना नाम रजिस्टर कराया और १२ जून को हिंदुस्तान के लिए रवाना हुए।

बैरिस्टर

बम्बई आने पर डा० मेहता ने (जिनसे विलायत में परिचय हुआ था) अपने जिन सम्बन्धियों से मोहनदास का परिचय कराया उनमें से उनके बड़े भाई के दामाद रायचन्द भाई का उल्लेख करना यहाँ आवश्यक है। गाँधीजी के जीवन पर उनका बड़ा प्रभाव पड़ा है। वैसे रायचंद भाई हीरे-जवाहरातों के व्यापारी थे। वह अच्छे कवि और शतावधानी थे। स्मरण शक्ति अद्भुत थी पर व्यापार एवं संसार के अन्य कार्यों में लगे रहने पर भी उनमें आत्म दर्शन की तीव्र आकांक्षा थी, उनका शास्त्र ज्ञान व्यापक और गंभीर था। उनका चरित्र निर्मल था। वह सदा अपने सम्बन्ध में जागरूक रहते और अनासक्त भाव से ही सब काम-काज करते थे। जिन तीन आदमियों—रायचंद भाई, टाल्सटाय और रस्किन *—

रायचन्द भाई से परिचय

* टाल्सटाय की 'हेवेन इज इन यू' (स्वर्ग तुम्हारे ही अन्दर है) और रस्किन का 'अन टू दिस लास्ट' (जिसका अनुवाद स्वयं गांधीजी ने 'सर्वोदय' नाम से किया) नामक पुस्तकों ने गांधीजी के जीवन पर बड़ा प्रभाव डाला है।

पर गाँधीजी के जीवन पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा है। उनमें रायचंद भाई का स्थान सबसे ऊँचा एवं महत्वपूर्ण है। इनके संसर्ग एवं सत्संग से गाँधीजी के जीवन की अनेक आध्यात्मिक गुत्थियाँ सुलझी हैं।

× × ×

बैरिस्टर तो हो आये पर धड़ल्ले से बोलने और अपने भाषण द्वारा मुकदमे की सब बातों को प्रभावशाली ढंग से अदालत के सामने रखने की शक्ति का सर्वथा अभाव था। वकालत के मैदान में संसार का अनुभव इन्हें बिल्कुल न था, जो वकील की पूँजी है। किसी सभा में बोलने खड़े होते तो शरीर काँपने लगता। इधर घर का खर्च बहुत बढ़ गया। इसलिए मित्रों की सलाह से यह निश्चय हुआ कि बम्बई जाकर कुछ दिन हाईकोर्ट में अनुभव प्राप्त करें और एकाध मुकदमे मिल जायँ तो उन्हें भी लेते रहें। इसलिए वहाँ से यह बम्बई को रवाना हुए।

बम्बई में एक ओर कानून का अध्ययन शुरू हुआ और दूसरी ओर भोजन के प्रयोग। कानून का अध्ययन चला तो पर जैसा चाहिए वैसा नहीं,—बहुत सुस्ती के साथ। बाहर बैरिस्टर की तख्ती लगी रहती और अन्दर बैरिस्टर बनने की तैयारी चलती रहती। वह स्वयं लिखते हैं कि इस समय मेरी हालत ससुराल में आई हुई नई बहू जैसी हो रही थी।

इसी समय एक मुकदमा इनके हाथ आया। मामला 'स्माल काज़ कोर्ट' में था। पहले दलाल ने दलाली माँगी;—इन्होंने इन्कार कर दिया। मामला आसान था, एक दिन से ज्यादा का काम उसमें न था। ३०) मेहनताना उसमें मिला था पर वह भी इनसे न सधा। अदालत में पैरवी करने गये। मुद्दालेह के वकील थे इसलिए इन्हें जिरह करनी थी पर जब यह खड़े हुए तो पाँव काँपने लगे सिर घूमने लगा। ऐसा मालूम पड़ा मानो सारी अदालत घूम रही है। यह बैठ गये, दलाल से

हा—"तुम दूसरा वकील कर लो।" उस दिन से इन्होंने पूरी योग्यता प्राप्त किये बिना कोई मुकदमा हाथ में न लेने का निश्चय किया। इधर यह हाल था, उधर खर्च बढ़ता ही जाता था। अन्त में यहाँ से निराश हो पाँच-छ महीने बाद यह फिर राजकोट लौट गये।

राजकोट में आफिस खोला। वहाँ कुछ सिलसिला चला और अर्जियाँ लिखने का काम मिलने लगा। इससे लगभग २००) मासिक की आय होने लगी। ये अर्जियाँ भी इनकी योग्यता के कारण नहीं, भाई के प्रभाव से मिलती थीं।

× × ×

जब इस प्रकार सिलसिला चल रहा था तो इन्हें पहली बार अंग्रेजों की दो-रंगी व्यवहार-नीति का अनुभव हुआ और दिल में ठेस लगी।

पहला आघात। बात यह थी कि पोरबन्दर के राणा साहब को गद्दी मिलने के पूर्व इनके भाई उनके मंत्री एवं सलाहकार थे। उस समय कुछ राज्याधिकारियों ने इनके भाई पर दोष लगाया कि वह राणा साहब को उल्टी सलाह देते हैं। ये शिकायतें उस समय के पोलिटिकल एजेण्ट तक भी पहुँचाई गई और उसका रुख इनकी तरफ से खराब हो गया। गाँधीजी की इस साहब से विलायत में मुलाकात हुई थी और काफी परिचय हो गया था। इसलिए भाई ने चाहा कि वह जाकर उससे मिलें। यह बात उन्हें पसन्द तो न पड़ी पर भाई के जोर देने पर वह गये। वह लिखते हैं—" मैंने पुरानी पहचान निकाली। परन्तु मैंने तुरन्त देखा कि विलायत और काठियावाड़ में भेद था। हुकूमत की कुर्सी पर डटे हुए साहब और विलायत में छुट्टी पर गये हुए साहब में भेद था। पोलिटिकल एजण्ट को मुलाकात तो याद आई पर साथ ही अधिक बेरुखे भी हुए। उनकी बेरुखाई में मैंने देखा, उनकी आँखों में मैंने पढ़ा—उस परिचय से लाभ उठाने तो तुम यहाँ नहीं आये हो? यह जानते समझते हुए भी मैंने अपना सुर छेड़ा। साहब

अधीर हुए—'तुम्हारे भाई कुचक्री हैं। मैं तुमसे ज्यादा बात सुनना
चाहता। मुझे समय नही है। तुम्हारे भाई को कुछ कहना हो
यथायम्य अर्जी पश करें।' यह उत्तर बस था, परन्तु गरज बावली
है। मैं अपनी बात कहता ही जा रहा था। साहब उठे। 'अब तु
चला जाना चाहिए।'

मैंने कहा—'पर मेरी बात तो पूरी सुन लीजिए।' साहब लाल
हुए—'चपरासी इसको दरवाजे के बाहर कर दो।'

'हुजूर', कहकर चपरासी दौडा आया। मेरा चर्खा अभी तक
ही रहा था, चपरासी ने मेरा हाथ पकडा और दरवाजे से बाहर
दिया।

इस घटना मे अंग्रेजों की नीति एव अपनी पराधीनता का इन्हें
कडुवा अनुभव हुआ और इस आघात ने उनके जीवन का दिशा
में बडा काम किया।

इधर यह घटना हुई, उधर काठियावाड के राज्यों का वातावरण
रहने लगा। वहाँ भीतर भीतर नाना प्रकार के षड्यन्त्र चल

दक्षिण अफ्रीका की यात्रा

साहब से लडाई होने के बाद वकालत का द्वार भी
हो गया क्योंकि ज्यादातर मुकदमे उन्हीं का अदालत
होते थे। भाई इनके लिए किसी नौकरी की
में थे। इसी समय इनके भाई के पास पोरबन्दर की एक मेमन दुकान
सन्देशा आया—"दक्षिण अफ्रीका में हमारा व्यापार है। हमारी
बडी है। वहाँ हमारा एक बडा मुकदमा चल रहा है। चालीस
पौण्ड का दावा है। मामला बहुत दिनों से चल रहा है। हमारा
बडे-बडे और अच्छे बैरिस्टर हैं। यदि अपने भाई को वहाँ भेज दें तो
भी मदद मिलेगी और उनकी भी कुछ मदद हो जायगी। वह
मामला हमारे वकीलो को अच्छी तरह समझा सकेंगे। इसके अलावा
देश की यात्रा भी होगी।" इस सम्बन्ध में दादा अब्दुल्ला के हिस्से

सेठ अब्दुलकरीम से मिलने पर मालूम हुआ कि 'ज्यादा मेहनत का काम नहीं है। जाने आने का पहले दर्जे का केराया मिलेगा, घर के बँगले में जगह मिलगी, खाना भी मिलेगा और १०५ पौण्ड मिलेंगे। एक साल का काम है।' गांधी जी ने हामी भर ली और पहले दर्जे का टिकट ले अप्रैल १८९३ में जहाज से दक्षिण अफ्रीका को रवाना हुए।

दक्षिण अफ्रीका में

मई के अन्त म यह नेटाल के डरबन बंदर पर उतरे। उन्हें लिवाने अबदुल्ला सेठ आये थे। जहाज से उतरते ही लोगों के व्यवहार को देख यह समझ गये कि यहाँ हिन्दुस्तानियों का विशेष आदर नहा है। अबदुल्ला सेठ तो ऐसे व्यवहार के आदी हो गये थे। खैर, अबदुल्ला सेठ के बँगले पर गये। सेठ ने अपने कमरे के पास ही इन्हें कमरा दे दिया।

दूसरे या तीसरे दिन अबदुल्ला सेठ इन्हें डरबन की अदालत दिखाने ले गये और कई आदमियों से परिचय करा दिया। अदालत म अपने

एक घटना

वकील के पास इन्हें बैठाया। मजिस्ट्रेट इन्हें कुतूहल पूर्ण दृष्टि से देखता रहा। फिर इनसे पगड़ी उतार देने को कहा। इन्होंने इन्कार किया और उठकर बाहर चले आये। यहाँ भी इनके भाग्य में लड़ाई ही लिखी थी।

पगड़ीवाली घटना को लेकर इन्होंने अखबारों में आन्दोलन शुरू किया। उन दिनों भारतीयों को दक्षिण अफ्रीका में नीची निगाह से देखा जाता था (और यह बात तो आज भी है)। गाँधी को भी अंग्रेज 'कुली बैरिस्टर' कहते। घटना को लेकर अखबारों म खूब चर्चा हुई। किसी ने पक्ष समर्थन किया, किसी ने भर पेट निन्दा की। इस प्रकार शीघ्र ही इनकी प्रसिद्धि दक्षिण अफ्रीका में हो गई।

धीरे धीरे लोगों से परिचय भी बढ़ने लगा। डरबन के ईसाई भारतीयों के सम्पर्क में आये। डरबन अदालत के दुभाषिया श्री पाल रोमन (जो कैथलिक थे) तथा प्रोटेस्टेण्ट मिशन के शिक्षक श्री गाडफ्रे से भी

अधीर हुए—'तुम्हारे भाई कुचक्री है। मैं तुमसे ज्यादा बात सुनना नहीं चाहता। मुझे समय नहीं है। तुम्हारे भाई को कुछ कहना हो तो बाकायदा अर्जी पेश करें।' यह उत्तर बस था, परन्तु गरज बावरी होती है। मैं अपनी बात कहता ही जा रहा था। साहब उठे। 'अब तुमको चला जाना चाहिए।'

मैंने कहा—'पर मेरी बात तो पूरी सुन लीजिए।' साहब लाल पीले हुए—'चपरासी इसको दरवाजे के बाहर कर दो।'

'हुजूर', कहकर चपरासी दौड़ा आया। मेरा चर्चा अभी तक चल ही रहा था, चपरासी ने मेरा हाथ पकड़ा और दरवाजे से बाहर कर दिया।

इस घटना से अंग्रेजों की नीति एवं अपनी पराधीनता का इन्हें बड़ा कड़ुवा अनुभव हुआ और इस आघात ने इनके जीवन की दिशा बदलने में बड़ा काम किया।

इधर यह घटना हुई, उधर काठियावाड़ के राज्यों का वातावरण इन्हें खलने लगा। वहाँ भीतर भीतर नाना प्रकार के षड्यन्त्र चला करते।

दक्षिण अफ्रीका की यात्रा

साहब से लड़ाई होने के बाद वकालत का द्वार भी बंद हो गया क्योंकि ज्यादातर मुकदमे उन्हीं की अदालत में होते थे। भाई इनके लिए किसी नौकरी की तलाश में थे। इसी समय इनके भाई के पास पोरबन्दर की एक मेमन दुकान का सन्देशा आया—"दक्षिण अफ्रीका में हमारा व्यापार है। हमारी दुकान बड़ी है। वहाँ हमारा एक बड़ा मुकदमा चल रहा है। चालीस हजार पौण्ड का दावा है। मामला बहुत दिनों से चल रहा है। हमारी तरफ बड़े-बड़े और अच्छे बरिस्टर हैं। यदि अपने भाई को वहाँ भेज दें तो हमें भी मदद मिलेगी और उनकी भी कुछ मदद हो जायगी। वह हमारा मामला हमारे वकीलों को अच्छी तरह समझा सकेंगे। इसके अलावा नये देश की यात्रा भी होगी।" इस सम्बन्ध में दादा अब्दुल्ला के हिस्सेदार

सेठ अब्दुल्करीम से मिलने पर मालूम हुआ कि 'ज्यादा मेहनत का काम नहीं है। जाने आने का पहले दर्जे का किराया मिलेगा, घर के बँगले में जगह मिलेगी, खाना भी मिलेगा और १०५ पौण्ड मिलेंगे। एक साल का काम है।' गांधी जी ने हामी भर ली और पहले दर्जे का टिकट ले अप्रैल १८९३ में जहाज से दक्षिण अफ्रीका को रवाना हुए।

दक्षिण अफ्रीका में

मई के अन्त में यह नेटाल के डरबन बंदर पर उतरे। उन्हें लिवाने अबदुल्ला सेठ आये थे। जहाज से उतरते ही लोगों के व्यवहार को देख यह समझ गये कि यहाँ हिन्दुस्तानियों का विशेष आदर नहीं है। अबदुल्ला सेठ तो ऐसे व्यवहार के आदी हो गये थे। खैर, अबदुल्ला सेठ के बँगले पर गये। सेठ ने अपने कमरे के पास ही इन्हें कमरा दे दिया।

दूसरे या तीसरे दिन अबदुल्ला सेठ इन्हें डरबन की अदालत दिखाने ले गये और कई आदमियों से परिचय करा दिया। अदालत में अपने वकील के पास इन्हें बैठाया। मजिस्ट्रेट इन्हें कुतूहल पूर्ण दृष्टि से देखता रहा। फिर इनसे पगड़ी उतार देने को कहा। इन्होंने इन्कार किया और उठकर बाहर चले आये। यहाँ भी इनके भाग्य में लड़ाई ही लिखी थी।

पर घटना।

पगड़ीवाली घटना को लेकर इन्होंने अखबारों में आन्दोलन शुरू किया। उन दिनों भारतीयों को दक्षिण अफ्रीका में नीची निगाह से देखा जाता था (और वह बात तो आज भी है)। गाँधी को भी अंग्रेज 'कुली बैरिस्टर' कहते। घटना को लेकर अखबारों में खूब चर्चा हुई। किसी ने पक्ष समर्थन किया, किसी ने भर पेट निन्दा की। इस प्रकार शीघ्र ही इनकी प्रसिद्धि दक्षिण अफ्रीका में हो गई।

धीरे धीरे लोगों से परिचय भी बढ़ने लगा। डरबन के ईसाई भारतीयों के सम्पर्क में आये। डरबन अदालत के दुभाषिया श्री पाल रोमन (जो कैथलिक थे) तथा प्रोटेस्टेण्ट मिशन के शिक्षक श्री गाडफ्रे से भी

परिचय हुआ। पारसी रुस्तमजी और आदमजी मियाँ खान से भी जान-पहचान हो गई। ये लोग पहले आपस में बहुत कम मिलते थे पर इनके प्रयत्न से अब अक्सर मिलने लगे।

परिचय

इसी समय दुकान के वकील का एक पत्र आया कि मुकदमे की तैयारी के लिए या तो अब्दुला सेठ को प्रिटोरिया आना चाहिए या दूसरे किसी को वहाँ भेजना चाहिए। अब्दुला सेठ ने गुमाश्तों को बुलाकर कहा कि गांधी को सब मामला समझा दो। मामला समझकर वह प्रिटोरिया जाने को तैयार हो गये। जाते समय अब्दुला सेठ से उन्होंने कहा कि यदि सभव हुआ तो मैं समझौता कराने का भी यत्न करूँगा क्योंकि आप दोनो निकट के सम्बन्धी है अत व्यर्थ वकीलों के घर भरना ठीक नहीं। एक वकील के मुँह से ऐसी बातें सुनकर सेठ को आश्चर्य हुआ पर इतने दिनों में वह गाँधी की प्रकृति को समझने लगे थे इसलिए जरूरी बातें बताकर उन्होंने गाँधी को बिदा किया और अपने वकील को उनके ठहरने का इन्तजाम कर देने के लिए पत्र भी लिख दिया।

बैरिस्टर गाँधी के लिए रेल के पहले दर्जे का टिकट लिया गया था। सोने की जगह के लिए पाँच शिलिंग का एक और टिकट लेना पड़ता था। अब्दुला सेठ के बहुत कहने पर भी इन्होंने सोने का टिकट न लिया। अब्दुला सेठ ने चलते चलते चेताया—"देखना, यह हिन्दुस्तान नहीं है। खुदा की मेहरबानी है। आप पैसे का खयाल न करना और अपने आराम का सब इन्तजाम कर लेना।"

रास्ते म अपमान

रात को ९ बजे ट्रेन नेटाल की राजधानी मेरीत्सबर्ग पहुंची। उस समय का सजीव वर्णन गाधीजी ने अपनी 'आत्म कथा' में किया है—" यहाँ सोने वालों को बिछौने दिये जाते हैं। एक रेल्वे के नौकर ने आकर पूछा—'आप बिछौना चाहते है?' मैंने कहा—'मेरे पास मेरा बिछौना है।' वह चला गया। इस बीच एक यात्री आया। उसने मेरी

ओर देखा। मुझे हिन्दुस्तानी देखकर चकराया। बाहर गया। और एक दो कर्मचारियों को लेकर आया। किसी ने मुझसे कुछ न कहा। अन्त को एक अफसर आया। उसने कहा—'चलो, तुमको एक दूसरे दर्जे में जाना होगा।' मैंने कहा—'पर मेरे पास पहले दरजे का टिकट है।' उसने उत्तर दिया—'परवा नहीं, मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम्हें आखरी डब्बे में बैठना होगा।'—'मैं कहता हूँ कि मैं डरबन से इसी डब्बे में बिठाया गया हूँ और इसी में जाना चाहता हूँ।' अफसर बोला—'यह नहीं हो सकता। तुम्हें उतरना होगा और नहीं तो सिपाही आकर उतारेगा।' मैंने कहा—'तो अच्छा, सिपाही आकर भले ही मुझे उतार, मैं अपने आप न उतरूँगा।' सिपाही आया। उसने हाथ पकड़ा और धक्का मारकर मुझे नीचे गिरा दिया। मेरा सामान नीचे उतार लिया। मैंने दूसरे डब्बे में जाने से इन्कार किया। गाड़ी चल दी। मैं वेटिंग रूम में बैठा। हैंड बेग अपने साथ रक्खा। दूसरे सामान को मैंने हाथ न लगाया। रेल्वे वालों ने सामान कहीं रखवा दिया। मौसम जाड़े का था। दक्षिण अफ्रीका में ऊँची जगहों पर बड़े जोर का जाड़ा पड़ता है। मेरित्स बर्ग ऊँचाई पर था—इससे खूब जाड़ा लगा। मेरा ओवरकोट मेरे सामान में रह गया था। सामान माँगने की हिम्मत न हुई। कहीं फिर बेइज्जती न हो। जाड़े में सिकुड़ता और ठिठुरता रहा। कमरे में रोशनी न थी। आधी रात के समय एक मुसाफिर आया। ऐसा जान पड़ा मानो वह कुछ बात करना चाहता हो, पर मेरे मन की हालत ऐसी न थी कि बात करता। मैंने सोचा, मेरा कर्तव्य क्या है?—'या तो मुझे अपने हकों के लिए लड़ना चाहिए, या वापस लौट जाना चाहिए। अथवा जो बेइज्जती हो रही है, उसे बर्दाश्त करके प्रिटोरिया पहुँचूँ और मुकद्मे का काम खतम करके देश चला जाऊँ। मुकदमे को अधूरा छोड़कर भाग जाना तो कायरता होगी। मुझपर जो बीत रही है वह तो ऊपरी चोट है—वह तो भीतर के महारोग का बाह्य लक्षण है। यह महारोग

है—वर्ण द्वेष। यदि इस गहरी बीमारी को उखाड़ फेंकने का सामर्थ्य हो तो उसका उपयोग करना चाहिए। उसके लिए जो-कुछ कष्ट दुःख सहन करने पड़ें, सहना चाहिए। इन अन्यायों का विरोध उसी हद तक करना चाहिए जिस हद तक उसका सम्बन्ध वर्ण द्वेष दूर करने से हो।' ऐसा संकल्प करके मैंने, जिस तरह हो, दूसरी गाड़ी से आगे जाने का निश्चय किया। सुबह मैंने जनरल मैनेजर को तार द्वारा एक लम्बी शिकायत लिख भेजी। दादा अब्दुल्ला को भी समाचार भेजा। अब्दुल्ला सेठ तुरंत जनरल मैनेजर से मिले। जनरल मैनेजर ने अपने आदमियों का पक्ष तो लिया पर कहा कि मैंने स्टेशन मास्टर को लिखा है कि गांधी को बिना खतरा मुकाम पर पहुँचा दो। अब्दुल्ला सेठ ने मेरीत्सबर्ग के हिन्दू व्यापारियों को भी मुझसे मिलने तथा मेरा प्रबन्ध करने के लिए तार दिया तथा दूसरे स्टेशनों पर भी ऐसे तार दे दिये। इससे व्यापारी लोग स्टेशन पर मुझसे मिलने आये। उन्होंने अपने पर होने वाले अन्यायों का जिक्र मुझसे किया और कहा कि आप पर जो कुछ बीता है वह कोई नई बात नहीं है। पहले दूसरे दरजे में जो हिंदुस्तानी सफर करते हैं उन्हें क्या कर्मचारी और क्या मुसाफिर दोनों सताते हैं। सारा दिन इन्हीं बातों के सुनने में गया। रात हुई। गाड़ी आई। मेरे लिए जगह तैयार थी। डरबन में सोने के लिए जिस टिकट को लेने से इन्कार किया था, वही मेरीत्सबर्ग में लिया। ट्रेन मुझे चार्ल्सटाउन ले चली।"

पर इतने से ही अपमान की कथा पूरी न हुई। मोहनदास सुबह चार्ल्सटाउन पहुँचे। वहां से जोहान्सबर्ग तक उन दिनों ट्रेन न थी, घोड़ा गाड़ी जाती थी और बीच में एक रात स्टैंडर्टन में रहना पड़ता था। बैरिस्टर मोहनदास के पास इस घोड़ा गाड़ी का टिकट था। एक दिन पिछड़ जाने से वह रद्द न होता था। अब्दुल्ला सेठ ने भी घोड़ागाड़ी के अफसर को तार दे दिया था पर उसने इन्हें अजनबी आदमी समझकर कहा—"तुम्हारा

जले पर नमक

टिकट तो रद्द हो गया है।" यह बहाना—मात्र था और इसका मतलब यह था कि गोरे मुसाफिरों के साथ इन्हें बैठाना न पड़े तो अच्छा। घोड़ागाड़ी में बाहर की तरफ कोचवान के दायें बायें दो जगहें थीं। उनमें से एक पर घोड़ा-गाड़ी कम्पनी का एक गोरा अफसर बैठता था परन्तु इन्हें गोरों के साथ न बैठाने की नीयत से वह स्वयं अन्दर बैठा और इनको बाहर बैठाया। इसमें गांधी को अपमान का अनुभव तो हुआ पर उस समय झगड़ा करने में कोई लाभ न देख, वह वहीं बैठ गये।

पर आगे और अपमान बदा था। रात को तीन बजे के लगभग उस गोरे अफसर को बाहर (जहाँ यह बैठे थे) बैठकर सिगरेट पीने की इच्छा हुई। उसने इन्हें पाँव रखने के रास्ते पर बैठने को कहा। यह अपमान इनसे सहन न हुआ। इन्होंने विरोध किया। इसपर उसने कई थप्पड़ मारे और हाथ पकड़कर नीचे खींचने लगा। यह दृश्य देखकर अन्दर के यात्रियों को कुछ दया आई। उनके झिड़कने पर गुर्राता हुआ वह बैठ गया।

रात को स्टेण्डर्टन पहुँचे। वहाँ ईसा सेठ (इन्हें अब्दुल्ला सेठ ने तार दिया था) के आदमी आये थे। वे इन्हें दुकान पर ले गये। इन्होंने ईसा सेठ इत्यादि से सारी घटना सुनाई। उन लोगों को दुःख हुआ। पर उन्होंने ऐसी कई घटनाएँ सुनाकर आश्वासन दिया। उसके बाद गाँधी ने घोड़ा गाड़ी कम्पनी के एजण्ट को चिट्ठी लिखी। उसने संदेशा भेजा कि यहाँ से बड़ी घोड़ा-गाड़ी जाती है। आपको उसमें सबके साथ ही जगह दी जायगी। खैर, वहाँ से चलकर रात को जोहान्सबर्ग पहुँचे। स्टेण्ड पर मुहम्मद कासिम कमरुद्दीन का आदमी तो आया था पर इन्होंने उसे न पहचाना, न उसने पहचाना। वह लौट गया। यह एक होटल में पहुँच पर मैनेजर ने कहा—"खेद है, सब कमरे भरे हुए हैं।" उसके बाद यह गाड़ी करके सेठ कमरुद्दीन की दुकान पर आये और उनसे

होटल की बात कही। वे लोग हँसे और इन्हें बताया कि 'गोरे लोग अपने होटलों में हमें जगह नहीं देते। यहाँ वर्ण द्वेष बड़ा जबर्दस्त है। आप कल प्रिटोरिया जायँगे पर हम लोगों को पहले दूसरे दर्जे के टिकट ही नहीं देते। आपको तीसरे दर्जे में जाना पड़ेगा।" इन्होंने मँगाकर रेल के कानून-कायदे देखे। उसमें ऐसी कोई रोक न मिली। तब इन्होंने पहले दर्जे में ही जाने का निश्चय प्रकट किया। स्टेशन मास्टर को चिट्ठी लिखी कि 'मैं बैरिस्टर हूँ,—सदा पहले दर्जे में सफर करने का आदी हूँ। आशा है मुझे टिकट मिल जायगा। मैं स्वयं स्टेशन पर आपसे मिलूँगा।'

घूँट पर घूँट

उचित समय पर यह अंग्रेजी वेष भूषा में स्टेशन पहुँचे। इनकी बातों से स्टेशन मास्टर को दया आई। उसने इनके साथ सहानुभूति प्रकट की और इस शर्त पर टिकट दिया कि यदि रास्ते में गार्ड उतार दे तो आप रेलवे कम्पनी पर दावा न करें। यह धन्यवाद देकर पहले दर्जे में जा बैठे। कुछ समय बाद गार्ड टिकट देखने आया और इन्हें देखते ही झल्लाया और असभ्य भाषा में तीसरे दर्जे में जाने के लिए कहने लगा। इन्होंने टिकट दिखाया, विरोध किया पर उसने कहा—'टिकट है तो क्या? तुम्हें तीसरे दर्जे में बैठना पड़ेगा।' इस डब्बे में एक ही अंग्रेज यात्री थे। उन्होंने गार्ड को डाँटा और इनसे आराम के साथ बैठने को कहा। गार्ड यह कहता और बुरा भला सुनाता चला गया कि 'तुम्हें कुली के साथ बैठना हो तो बैठो। मेरा क्या?'

राम राम करके रात को आठ बजे प्रिटोरिया पहुँचे और एक अमेरिकन होटल में रात बिताई। दूसरे दिन अब्दुल्ला सेठ के वकील श्री बेकर से मिले और उनकी सहायता से २५ शिलिंग प्रति सप्ताह पर एक बाई के घर पर रहने का इन्तजाम हो गया। यह बेकर साहब कट्टर पादरी भी थे। इनका एक प्रार्थना समाज था। श्री बेकर ने ईसाई धर्म की ओर आकर्षित करने के विचार से इनको भी इसमें बुलाया। गांधी की मुक्ति और मार्ग प्रदर्शन के लिए सबने प्रार्थना की। धीरे धीरे यहाँ कुमारी

हैरिस, गेब एव मि० कोट्स से परिचय हुआ। दोना महिलाएँ साथ रहती था। उन्होंने हर रविवार को ४ बजे चाय पीने के लिए अपने यहाँ इन्हे निमंत्रित करना शुरू किया। ये सब गाँधी को ईसाई बनाने के फेर में थे। श्री कोट्स इसा एव ईसाई धर्म सम्बन्धी अनेक पुस्तकें इन्हे पढने को देते।

प्रिटोरिया के भारतीयों म सेठ तैयब हाजी ग्वान मुहम्मद की बडा प्रतिष्ठा थी। नेटाल में जो स्थान दादा अब्दुल्ला का था वही प्रिटोरिया म उनका था। उनके बिना वहाँ कोई सार्वजनिक काम न हो सकता था। गाँधी ने उनसे पहले ही सप्ताह में परिचय कर लिया और भारतीयों की स्थिति को समझने में उनसे मदद माँगी। उन्होंने खुशी से सहायता देना स्वीकार किया।

भारतीयों स परिचय

उनकी तथा अन्य भाइयों की सहायता से इन्होंने भारतीयों की एक सभा की जिसमे उन्हे समझाया कि "व्यापार में भी सत्य को न छोडना चाहिए। विदेश में आपको देखकर, भारतीय सभ्यता का अन्दाज लगाया जाता है इसलिए आपकी जिम्मेदारी और बडी है।" इसके अलावा इस सभा में गदगी दूर करने और हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई, गुजराती, मद्रासी, पजाबी, सिंधी इत्यादि का भेद भुला देने की भी अपील की ओर सुझाया कि एक मण्डल की स्थापना करके भारतीयों के दु ख-कष्ट का उपाय अधिकारियों से मिलकर एव प्रार्थना पत्र इत्यादि के द्वारा करना चाहिए। इसके लिए अपना समय भी देने का वचन दिया। लोगों को अंग्रेजी पढने की सलाह दी और इसके लिए अपनी सेवाएँ देने को भी तैयार हुए। कुछ लोग तैयार हो गये और इस दिशा में थोडा बहुत काम हुआ।

बाद में नियमित रूप से भारतीयों की सभा होने लगी। इसमें परस्पर सलाह मशविरे होते। धीरे धीरे प्रिटोरिया के प्राय समस्त भारतीयों से इनका परिचय हो गया। भारतीयों की स्थिति का भी पूरा ज्ञान

हुआ। ब्रिटिश एजेण्ट से मिले, उन्होंने आश्वासन दिया। रेल्वे अधि-कारियों से भी गाँधी ने लिखा पढ़ी की और उन्हें दिखाया कि हिंदुस्तानियों की यात्रा में जो रुकावटें डाली जाती हैं वे उनके ही नियमों के अनुसार वेजा हैं। इसके उत्तर में पत्र मिला कि साफ सुथरे और अच्छे कपड़े पहननेवाले भारतीयों को ऊपर के दर्जे के टिकट दिये जायँगे। इससे समस्या हल तो न हुई पर कुछ सुविधा हुई।

× × ×

'ऑरेंज फ्री स्टेट' में १८८२ के पहले एक कानून बनाकर भारतीयों के तमाम अधिकार छीन लिये गये थे। सिर्फ होटल में 'वेटर' बनकर रहने या इसी प्रकार की छोटी मेहनत मजूरी करते रहने का अधिकार रह गया था। भारतीय व्यापारियों को नाम मात्र का मुआवजा देकर वहाँ से हटा दिया गया। उनके आवेदन पत्र रद्दी की टोकरी में फेंक दिये गये। इसी प्रकार १८८५ ई० में ट्रांसवाल में भी कड़ा कानून बनाया गया। विरोध करने पर १८८६ ई० में उसमें कुछ सुधार हुआ और नियम बना कि प्रवेश फीस के तौर पर प्रत्येक हिंदुस्तानी ३ पौंड दे। उनके लिए जमीन पर मालकी पाने का अधिकार कुछ निश्चित हिस्सों में ही रक्खा गया। पर व्यवहार में ये सुविधाएँ भी न मिलती थीं। मताधिकार किसी को कुछ न था। भारतवासी 'फुटपाथ' (पगडंडी) पर न चल सकते थे, रात को ९ बजे के बाद बिना परवाने के बाहर न निकल सकते थे।

भारतीयों की दुदशा

इधर गाँधी रात को देर तक कोट्स के साथ घूमते थे। इसमें पुलिस से झड़प होने का डर रहता ही था इसलिए श्री कोट्स ने इन्हें सरकारी वकील डा० क्राउजे से मिलाया। यह और गाँधी एक ही 'इन' के बैरिस्टर निकले। यह बात कि ९ बजे रात के बाद निकलने के लिए गाँधी को परवाने की जरूरत है, उन्हें अनुचित मालूम पड़ी और उन्होंने अपनी तरफ से एक पत्र दे दिया कि पत्रवाहक को हर समय कहीं भी जाने का

अधिकार है, पुलिस इन्हें न रोके। डा० क्राउजे एव उनके भाई (जो जोहान्सबर्ग के पब्लिक प्रासीक्यूटर थे) से धीरे धीरे अच्छा परिचय हो गया। पर इतने से ही इनकी समस्या हल न हुई। यह तो उनके साथ एक खास रियायत हुई थी। भारतीयों की समस्या इससे हल न होती थी। इसलिए रात दिन वह उसे सुलझाने को व्यग्र रहते थे।

जिस मामले को लेकर यह दक्षिण अफ्रीका आये थे, उसका इन्होंने गहरा अध्ययन किया। दोनों पक्ष के कागज पत्र देखे। इससे इन्हें निश्चय

मुकदमे में समझौता

हो गया कि उनके मुवक्किल का पक्ष बहुत मजबूत है। पर इनमें स्वार्थ भाव तो था नहीं, यह दिल से दोनों पक्षों का हित चाहते थे। मुकदमे का खर्च इतना बढ़ रहा था और परस्पर मनोमालिन्य दिन दिन इस प्रकार बढ़ता जाता था कि दोनों पक्ष शान्ति के साथ,दूसरे काम न कर पाते थे। इन्होंने देखा कि मुकदमे में दोनों पक्ष उजड़ जायँगे। इसलिए यह विपक्ष के तैयब सेठ से मिले, उन्हें बहुत समझाया। अन्त में मामला पंचायत में गया और वहाँ जो फैसला हुआ उसे दोनों पक्षों ने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया। इस सफलता से गाँधी को बड़ी प्रसन्नता हुई। इन्होंने समझ लिया कि वकील का काम टके कमाना नहीं, दोनों पक्षों के बीच पड़ी खाई को पाट देना है। यह निष्कर्ष इनके जीवन में अंकित हो गया और जबतक वकालत की, इसे न भुलाया। इससे न नैतिक और न आर्थिक दृष्टि से यह घाटे में रहे।

× × ×

उधर मि० बेकर तथा अन्य ईसाई मित्र इन्हें ईसाई बनाने पर तुले थे। पर उनकी बताई ईसाई धर्म की अनेक बातों पर इन्हें शंका

धार्मिक मंथन

होती थी। वह ईसा को महात्मा मानते थे पर चमत्कारी जीव न मान सकते थे और न यही मान सकते थे कि यही ईश्वर के एकमात्र पुत्र हैं। इधर हिन्दूधर्म की कई कुरीतियों के विषय में भी इनका संशय बढ़ रहा था। इसे दूर करने के

लिए इन्होंने रायचन्द भाई की शरण ली। उन्होंने इन्हें धीरज के साथ हिन्दूधर्म का अध्ययन करने की सलाह दी और लिखा कि 'हिन्दूधर्म में जो सूक्ष्म और गूढ़ विचार है, जो आत्म निरीक्षण और दया है, वह दूसरे धर्म में नहीं है।' उधर मेटरलिंक, एना किंग्सफर्ड एवं टाल्सटाय के साहित्य से ईसाई धर्म सम्बन्धी इनकी शंकाओं को पुष्टि मिली। इसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दूधर्म पर धीरे धीरे इनकी श्रद्धा बढ़ चली और आगे जाकर उसके आन्तरिक रहस्यों का भी इन्होंने पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया पर ईसाई एवं मुसलमान धर्म की कई बातों का इनपर अच्छा प्रभाव पड़ा। इसलिए इनमें पर धर्मों के प्रति भी आदर का ही भाव रहा और आज तो वह बहुत बड़े परिमाण एवं दिव्य रूप में वर्तमान है।

× × ×

दोनों दलों में समझौता हो जाने के बाद यह डरबन गये और वहां से भारतवर्ष लौटने की तैयारी की। अब्दुल्ला सेठ ने एक 'फेयरवेल पार्टी' (विदाई का जलसा) दी। उसी समय, पास रखे हुए अखबार के एक कोने में एक समाचार की ओर इनका ध्यान एकाएक आकर्षित हुआ। शीर्षक था—'हिन्दुस्तानी मताधिकार' (इण्डियन फ्रेन्चाइज)। और समाचार का भाव यह था कि नेटाल की धारा सभा के सभ्यों को चुनने का जो अधिकार हिन्दुस्तानियों को है वह छीन लिया जाय। इसके लिए एक कानून का मसविदा (बिल) धारा सभा

ठहर गये।

में पेश था और उसपर चर्चा हो रही थी। इन्होंने देखा कि इस बिल द्वारा भारतीयों का अस्तित्व ही मिटा डालने का इरादा किया जा रहा है। ये बातें इन्होंने जलसे में आये हुए लोगों को समझाईं। उन लोगों ने अनुरोध किया कि यदि आप यहां एकाध महीना रह जायँ तो जैसा कहें लड़ने को हमलोग तैयार हैं। इन्होंने ठहरने का निश्चय कर लिया और वह विदाई का जलसा विचार-समिति के रूप में बदल गया।

सबसे पहले हाजी महम्मद दादा के सभापतित्व में अब्दुल्ला सेठ के मकान पर एक सभा की गई। इस सभा में नटाल में जन्मे सभी प्रकार के हिन्दुस्तानी—ईसाई भी—बुलाये गये थे। डरबन की अदालत के दुभाषिया श्री पाल और मिशन स्कूल के हेडमास्टर श्री गाडफ्रे तथा उनके साथ बहुतेरे ईसाई नवयुवक आये थे। प्रायः सभी प्रतिष्ठित व्यापारी मौजूद थे। इस सभा में फ्रेंचाइज बिल के विरोध का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ और लोगों ने स्वयंसेवकों में अपना नाम लिखाया। धारा सभा के अध्यक्ष, मुख्य प्रधान सर जान राबिंसन और मि० एस्कम्ब को तार दिये गये कि वे बिल पर आगे विचार स्थगित कर दें। तार का जवाब मिला कि बिल पर चर्चा दो दिन तक स्थगित रहेगी। इससे लोगों को खुशी हुई। दरख्वास्त का मसविदा तैयार हुआ। उसकी तीन प्रतियाँ भेजी जाने को थीं। एक प्रति अखबारों के लिए भी तैयार करनी थी। उस पर अधिक से अधिक सहियाँ लेनी थीं और यह सब काम रात भर में पूरा करना था। व्यापारी तथा दूसरे स्वयंसेवक सारी रात जगे। दरख्वास्त गई, अखबारों में छपी। उसपर अनुकूल टिप्पणियाँ भी हुई। धारा सभा में भी उसकी खूब चर्चा हुई। किन्तु इतने पर भी बिल तो पास हो ही गया।

भारतीयों में जागृति का आरंभ

यह तो होना ही था पर इतने आन्दोलन से हिन्दुस्तानियों में नया जीवन आ गया। भेद भाव मिट गये। सबने समझा कि हम सबका समाज एक है, हम सब हिन्दुस्तानी हैं और राष्ट्रीय अधिकारों के लिए मिल-जुलकर लड़ना हमारा धर्म है।

बिल पास होने के बाद यह निश्चय किया गया कि एक भारी दरख्वास्त लिखकर अधिक से अधिक सहियों के साथ उपनिवेश मंत्री लार्ड रिपन को भेजी जाय। काम शुरू हुआ। दरख्वास्त पर लगभग दस हजार आदमियों के हस्ताक्षर हुए। उसकी एक हजार कापियाँ छपाकर हिन्दुस्तान के अनेक अखबारों एवं नेताओं के पास भेजी गई। विलायत में भी उसकी

प्रार्थनापत्र और प्रचार

नकलें सब दल के नेताओं के पास भेजी गई। भारत में 'टाइम्स ऑफ् इण्डिया' तथा इंग्लैण्ड में 'टाइम्स'—जैसे पत्रों ने उसका समर्थन किया। इससे बिल के स्वीकृत न होने की आशा बँधी। अब लोगों ने इन पर वहीं रह जाने के लिए जोर डालना शुरू किया। पर खर्च का क्या हो? लोगों ने इनका सारा व्यक्तिगत खर्च उठाने का आश्वासन दिया पर इन्होंने सार्वजनिक सेवा के लिए निजी सहायता लेना अस्वीकार कर दिया। अन्त में प्रस्ताव हुआ कि मुकद्मे दिलाने का प्रबन्ध कर दिया जाय और उससे यह अपना खर्च निकाल लें। सबको यह बात स्वीकार हुई और यह वहीं रह गये।

वकालत

इसके बाद नेटाल की अदालत में वकालत की सनद के लिए इन्होंने दर्ख्वास्त दी। उस समय वर्ण-द्वेष इतना जबर्दस्त था और गोरे भारतीयों को इतनी हिकारत की निगाह से देखते थे कि वकील-सभा ने इनकी दर्ख्वास्त का बड़ा विरोध किया पर अदालत ने उनका विरोध न मानकर वकीलों की सूची में इनका नाम लिख लिया। वकील-सभा के विरोध ने इनके लिए विज्ञापन का काम किया। कितने ही अखबारों ने इनके खिलाफ उठाये गये गोरों के विरोध की निन्दा की और वकीलों पर ईर्ष्या का इल्जाम लगाया। इस प्रसिद्धि से इनका आगे का काम सरल हो गया।

'नेटाल इंडियन कांग्रेस' की स्थापना

पर वकालत की व्यवस्था तो जीविका के लिए थी। असल काम तो भारतीयों की सेवा और संगठन का था। इसके लिए मई १८९४ ई० में 'नेटाल इण्डियन कांग्रेस' की स्थापना हुई। इसमें समय समय पर लोग इकट्ठे होते, परस्पर चर्चा एवं विचार विनिमय होता। प्रचार के उद्देश्य से गांधी ने दो पुस्तिकाएँ लिखीं। पहली में दक्षिण अफ्रीका के प्रत्येक अंग्रेज से अपील की गई थी और भारतीयों की स्थिति बताई गई थी। दूसरे में भारतीय मताधिकार के लिए अपील थी। इनका अच्छा असर

हुआ। कई अंग्रेजों की सहानुभूति इस कार्य में प्राप्त हुई तथा हिन्दुस्तान में सब दलों की ओर से मदद मिली।

इसी सिलसिले में 'कालोनियल बार्न इण्डियन एजूकेशनल असोसिएशन' (उपनिवेश में पैदा हुए भारतीयों की शिक्षा समिति) की स्थापना हुई। यह एक प्रकार की वाद विवाद सभा थी। इसमें युवक मिलते रहते, भाषण होते, निबंध पढ़े जाते। एक छोटा पुस्तकालय भी इसके लिए खोल दिया गया था।

× × ×

नेटाल इण्डियन कांग्रेस का आरंभ तो हुआ पर अभी तक उसमें बड़े-बड़े व्यापारी, क्लर्क या शिक्षित युवक ही शामिल हुए थे। मजूर या

मजूरों से सम्पर्क

'गिरमिटिया' (जो एग्रीमेण्ट करके मजूरी के लिए लाये गये हों,—'एग्रीमेण्ट' से बिगड़ कर ही 'गिरमिटिया' शब्द बन गया) न आये थे। पर ईश्वर की कृपा से ऐसा अवसर अपने आप आ गया। एक दिन बाला सुन्दरम् नामक एक मद्रासी गिरमिटिया रोता पीटता इनके पास आया। उसके मुँह से खून बह रहा था। उसके गोरे मालिक ने उसे इतनी बेदर्दी से पीटा था कि दो दांत टूट गये थे। गांधी ने डाक्टर से सर्टिफिकेट लेकर मामला अदालत में भेज दिया। मजिस्ट्रेट ने मालिक को तलब किया पर गांधी उसे सज़ा दिलाना न चाहते थे, वह सिर्फ उस नौकर को उस गोरे की गुलामी से छुड़ाना चाहते थे। उस समय के कानून के अनुसार बिना उसकी रजामन्दी के या बिना गिरमिटिया अफसर द्वारा लाइसेंस रद हुए वह नौकरी न छोड़ सकता था। यह उस गोरे से मिले, वह तो सजा से बचना चाहता ही था इसलिए उसने इनकी बात मजूर कर ली। इन्होंने बाला सुन्दरम् को एक दूसरे अंग्रेज के यहाँ नौकर रखवा दिया। इस घटना से गिरमिटियों में खूब हलचल फैली। गांधी के दफ्तर में उनकी भीड़ रहने लगी और इन्हें उनके सम्पर्क में आने का मौका मिला।

इसी समय एक दूसरी समस्या आखड़ी हुई। १८९४ इ० में नेटाल सरकार ने गिरमिटिया भारतीयों पर प्रतिवर्ष २५ पौण्ड (३७५ रु०) का कर लगाने का बिल तैयार किया।* यह अन्याय की सीमा थी। 'कांग्रेस' में आंदोलन करने का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। उधर भारत के वायसराय लार्ड एलगिन के सामने जब नेटाल सरकार ने यह तजवीज रखी तो उन्होंने २५ पौण्ड का कर घटाकर ३ पौण्ड कर दिया। यह ३ पौण्ड भी इन मजूरों के लिए बहुत था। इसलिए आन्दोलन शिथिल

असल में यह सब भारतीयों को दक्षिण अफ्रीका से नेस्त नाबूद करने की योजना थी। बात यह है कि १८६० के लगभग जब गोरों ने देखा कि नेटाल में गन्ने की अच्छी खेती हो सकती है तो भारत सरकार से लिखा पढ़ी करके हिंदुस्तानी मजूरों को नेटाल ले जाने की इजाजत प्राप्त कर ली। उन्हें लालच दिया कि पांच साल तक तो तुम्हें हमारे यहां काम करना पड़ेगा, बाद में आजाद हो शौक से नेटाल में रहो। उन्हें जमीन की मालकी का पूरा हक था। भारतीय कुलियों ने अपने परिश्रम से नेटाल की भूमि को हरा भरा कर दिया। तरह-तरह की शाक तरकारियां बोईं, आम लगाये, दूसरे फल पैदा किये। उन्होंने जमीनें खरीदीं, बाद में व्यापार भी करने लगे। इससे गोरे व्यापारी चौंके। वे व्यापार में भारतीयों की प्रतिद्वंद्विता सहन न कर सकते थे। इसलिए एक ओर मताधिकार छीन लेने और दूसरी ओर कर लगाने के रूप में यह विरोध प्रकट हुआ। कर-वाले बिल की मुख्य धाराएँ ये थीं—(१) मजदूरी का इकरार पूरा होने पर गिरमिटिया हिन्दुस्तान लौट जाय (२) दो-दो वर्ष का गिरमिट (एग्रीमेण्ट) नये सिर से कराता रहे और ऐसा हर गिरमिट में उसके वेतन में कुछ वृद्धि होती रहे (३) यदि भारत वापस न जाय और फिर मजूरी का इकरार भी न करे तो हर साल २५ पौण्ड का कर दे।

न हुआ और आगे जाकर उसने सत्याग्रह का वह रूप धारण किया जो प्रवासी भारतीयों के इतिहास में अत्यन्त गौरवप्रद स्थान पावेगा।

दक्षिण अफ्रिका में गाँधी का काम बढ़ता ही जाता था इसलिए उन्होंने स्त्री पुत्र को भी वहाँ लाने का निश्चय किया। साथ ही भारत में ३ पौण्ड के कर के बारे में भी आन्दोलन करना था।

भारत में

इसलिए १८९६ के मध्य में वह 'पेंगोला' जहाज से कलकत्ता को रवाना हुए। कलकत्ता से बम्बई जाते समय प्रयाग में 'पायोनियर' के सहायक सम्पादक श्री चेजनी से मिले। यद्यपि 'पायोनियर' साधारणतः भारतीय आकांक्षाओं का विरोधी था पर सम्पादक ने वचन दिया कि 'जो-कुछ आप लिखेंगे, मैं उस पर तुरन्त टिप्पणी करूँगा।' इसके बाद वह बम्बई होते हुए राजकोट गये। वहाँ एक पुस्तक लिखी जिसमें दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों की स्थिति का चित्र था। आवरण पृष्ठ हरे रंग का होने के कारण वह 'हरी पुस्तक' के नाम से प्रसिद्ध हुई। इसकी दस हजार प्रतियाँ छपवाई गई थीं और भारत के प्रायः सभी समाचारपत्रों एवं प्रतिष्ठित आदमियों के पास भेजी गई थीं। 'पायोनियर' ने सबसे पहले उसपर लेख प्रकाशित किया जिसका असर विलायत एवं नेटाल में भी हुआ। प्रायः सभी पत्रों ने टीका टिप्पणी की।

इसके बाद बड़े-बड़े शहरों में इस सम्बन्ध में सभा करने के उद्देश्य से वह बम्बई गये। वहाँ जस्टिस रानडे एवं बदुरुद्दीन तैयबजी से मिले।

आन्दोलन एवं प्रचार

उन्होंने सहानुभूति प्रकट की पर सार्वजनिक कार्यों में भाग न ले सकने की अपनी विवशता बताई और सर फीरोजशाह मेहता से मिलने की सलाह दी। वह उनसे मिले। उन्होंने सब बातें सुनकर सभा का दिन निश्चय किया। गाँधीजी ने सभा के एक दिन पहले, फीरोजशाह के अनुरोध से, अपना भाषण लिखा, रातों रात वह छपवाया गया। दूसरे दिन सभा हुई, उपस्थिति अच्छी थी। उसका अच्छा प्रभाव पड़ा। वहाँ से पूना गये। वहाँ दो दल थे,—

लोकमान्य का और गोखले इत्यादि का। यह लोकमान्य, गोखले सबसे मिले। सबकी राय से तटस्थ आदमी को अध्यक्ष बनाने की बात तै हुई और सर रामकृष्ण भण्डारकर ने इसके लिए इनका अनुरोध स्वीकार कर लिया। फलतः सभा हुई और वहाँ भी अनुकूल वातावरण उत्पन्न हुआ।

पूना से यह मद्रास गये। दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों में सदा से ही मद्रासियों की संख्या अधिक रही है। इसलिए मद्रास में तो बड़ा उत्साह पैदा हुआ। यहां उस 'हरा पुस्तक' की १० हजार प्रतियाँ और छपाई गई। 'मद्रास स्टैण्डर्ड' पत्र ने इस कार्य में बड़ी सहायता की।

मद्रास से यह कलकत्ता गये। वहाँ सुरेन्द्रनाथ, राजा सर प्यारी मोहन मुकर्जी एवं महाराज टागोर से मिले। पर इन लोगों ने कुछ ध्यान न दिया। 'अमृत बाजार पत्रिका' एवं 'बंगवासी' वालों ने तो अपमान जनक व्यवहार भी किया। पर जहाँ हिन्दुस्तानी क्षेत्र में सहायता न मिली, वहाँ अंग्रेजों की सहायता सहज ही प्राप्त हुई। 'स्टेट्समैन' एवं 'इंग्लिशमैन' के सम्पादकों से मिले। उन्होंने अपने पत्रों में इनके साथ हुई लम्बी बात चीत छापी। 'इंग्लिशमैन' के श्री साण्डर्स ने तो कहा कि आप मेरे पत्र का यथेष्ठ उपयोग कर सकते हैं। उन्होंने अपने अग्रलेख में कमी-बेशी करने की छूट भी इन्हें दे दी। उन्होंने सदा अपना वादा निबाहा।

जब यह इस प्रकार प्रचार-कार्य में लगे हुए थे तब एक दिन इन्हें डरबन से तार मिला—"पार्लमेण्ट की बैठक जनवरी में होगी जल्दी आइए।" इसलिए अखबारों में अपने दक्षिण-अफ्रीका लौटने की सूचना छपाकर कलकत्ता से राजकोट आये और दादा अब्दुल्ला के एजण्ट को तार दिया कि पहले जहाज से जाने का इन्तजाम करें। दादा अब्दुल्ला ने स्वयं 'कुरलेण्ड' जहाज खरीद लिया था। इसी जहाज से १८९६ की दिसम्बर के आरंभ में अपनी धर्मपत्नी, दो बच्चों एवं स्वर्गीय बहनोई के एकलौते पुत्र को लेकर यह दूसरी बार दक्षिण-अफ्रीका को रवाना हुए।

फिर दक्षिण अफ्रीका की ओर

इस जहाज के साथ 'नादरी' नामक एक और भी जहाज था, जिसके एजेन्ट दादा अब्दुल्ला थे। इनमें लगभग ८०० यात्री थे।

१८ या १९ दिसम्बर को दोनों जहाज डरबन बन्दर पर पहुँचे। लंगर डाला। उन दिनों बंदरगाहों पर यात्रियों की कड़ी डाक्टरी जाँच होती थी। इन जहाजों पर भी डाक्टर आये। जाँच की और कहा—"अभी मुसाफिर पाँच दिन जहाज पर ही रहेंगे क्योंकि बम्बई से चलते समय सम्भव है ये प्लेग के कीटाणु साथ लाये हों। इसके लिए २३ दिन तक सूतक रखना ही चाहिए। अभी १८ ही दिन हुए हैं।'

परन्तु यह सब तो बहाना था। असल बात यह थी कि गाँधी के भारत में किये आन्दोलन की अधूरी खबरें पढ़कर गोरे बिगड़ उठे हुए थे। जगह-जगह उनकी बड़ी सभाएँ हो रही थीं। वे दादा अब्दुल्ला को धमकियाँ दे रहे थे। जहाज भारत को लौटा देने पर उसका सारा खर्च देने को तैयार थे। यात्रियों को भी धमकियाँ दी जा रही थीं। उनका कहना था कि गान्धी ने हिन्दुस्तान में हमारी अनुचित निन्दा की है। दूसरे वह नेटाल को हिंदुस्तानियों से भर देना चाहता है इसलिए इतने आदमी जहाज में भर लाया है। पर ये दोनों बातें झूठी थीं। इसलिए गाँधी अविचल रहे और मुसाफिरों को ढाढस बँधाया। अन्त को २३ दिन के बाद १३ जनवरी को मुसाफिरों को उतरने की आज्ञा मिल गई। मुसाफिर उतरे पर सरकारी वकील श्री एस्कम ने कप्तान को कहला दिया कि गाँधी तथा उनके बाल-बच्चों को शाम को उतारना क्योंकि गोरे इस समय बहुत बिगड़े हुए हैं और उनकी जान का खतरा है। पर बाद में दादा अब्दुल्ला के वकील श्री लाटन आये और उन्होंने कहा कि इस प्रकार चुप चुप जाना उचित न होगा, फिर गोरे भी बिखर गये हैं। उनकी सलाह से गाँधी ने धर्मपत्नी एवं बच्चों को गाड़ी में रुस्तम सेठ के घर भेजा और स्वयं श्री लाटन के साथ पैदल चले।।

गोरों का तूफानी विरोध

पर कुछ छोकरों ने इन्हें पहचान लिया और 'गाँधी गाँधी' चिल्लाने लगे। धीरे धीरे भीड़ बढ़ती गई। उसमें श्री रास्टन अलग पड़ गये और इन पर कंकर और सड़े अण्डे बरसने लगे। बाद में किसीने पगड़ी गिरा दी और लातों एवं थप्पड़ों की मार शुरू हुई। गाँधी को चक्कर आने लगा। इतने में ही पुलिस सुपरिंटेण्डेण्ट श्री अलेक्जेण्डर की पत्नी उधर से निकलीं। वह इन्हें पहचानती थीं। देखते ही इनके पास आ गईं एवं अपना छाता इनपर तान दिया। इससे भीड़ कुछ रुकी। इसी समय, किसी हिंदुस्तानी के खबर देने पर, पुलिस की एक टुकड़ी इनकी रक्षा के लिए आ गई। उसकी हिफाजत में यह पारसी रुस्तमजी के घर पहुँचे। वहाँ इनका इलाज किया गया। पर गोरे तो बहुत उत्तेजित हो गये थे। उन्होंने घर को घेर लिया। मौका बेढब देख पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट श्री अलेक्जेण्डर वहाँ पहुँच गये और इन्हें गुप्त सन्देशा भेजा कि इस समय आप वेश बदलकर घर से निकल जायँ, नहीं तो आपके साथ आपके मित्र के जानोमाल को भी खतरा है। ऐसा ही किया गया। यह वेश बदलकर थाने में चले गये। पीछे शिकार निकल जाने की बात मालूम होने पर भीड़ तितर बितर हो गई।

मार

इस घटना के बाद स्व० श्री चेम्बरलेन ने नेटाल-सरकार को तार दिया कि गाँधी पर हमला करनेवालों पर मुकदमा चलाया जाय। श्री एस्कम्ब ने इन्हें बुलाकर यह सदेश दिया। पर गाँधी ने कहा—'इसमें बेचारे गोरों का क्या दोष है? वे झूठी खबरों से उत्तेजित किये गये थे। जब उन्हें अपनी भूल मालूम होगी तो आप पश्चात्ताप करेंगे। मैं उनपर मुकदमा नहीं चलाना चाहता।' इसी आशय का पत्र भी लिखकर उन्होंने दे दिया। इस स्थान पर उन्होंने अपनी अहिंसा एवं क्षमा-वृत्ति का अपूर्व परिचय दिया। और इसका अंग्रेजों पर अच्छा प्रभाव पड़ा। गोरों को शर्मिंदा होना पड़ा। अखबारों ने गाँधी को निर्दोष बताया और हुल्लड़कारियों की निन्दा की।

क्षमा-भाव

इसमे हिन्दुस्तानियों की प्रतिष्ठा भी बढ़ी और आगे का रास्ता सरल हो गया।

तीन चार दिन में फिर सब काम काज ठीक तौर से चलने लगा। यह घर आ गये। इस घटना के कारण इनकी वकालत भी चमक गई।

दो बिल

परन्तु इससे जहाँ हिन्दुस्तानियों की प्रतिष्ठा बढ़ी वहाँ उनके प्रति गोरों का भय और रोष बढ़ गया। इसी समय नेटाल की धारा-सभा में दो और बिल पेश हुए। इनमे से एक से भारतीयों के व्यापार धन्धा को गहरी हानि पहुँचनेवाली थी और दूसरे से उनके नेटाल आने जाने में बाधा पड़ती थी। उनकी भाषा तो ऐसी गोलमोल थी कि सब पर लागू होती दिखती थी पर असल में वे बिल हिन्दुस्तानियों को दबाने के लिए ही बनाये गये थे। इस सम्बन्ध में भी गाँधी ने बहुत आदोलन किया। विलायत तक मामला गया पर बिल तो स्वीकृत हो ही गये।

इन झगड़ों के कारण जो जागृति हुई उससे 'नेटाल इंडियन कांग्रेस' का कार्य खूब बढ़ गया। रुपये भी काफी आ गये और उसका अपना मकान भी हो गया। ज्यों-ज्यों कार्य बढ़ता गया,

दाम्पत्य जीवन में पवित्रता

इनका अधिक समय सार्वजनिक कामों में जाने लगा। इससे तथा धार्मिक चिंतन से इनके अन्दर यह भाव पैदा हुआ कि सेवा एव विषयासक्ति में परस्पर घोर विरोध है। इसलिए पति पत्नी सम्बन्ध में दिन दिन विषय भोग को हटाने की ओर इनका ध्यान गया और इधर प्रयत्नशील हुए। इसी सिलसिले में भोजन में भी सादगी लाने का निश्चय हुआ क्योंकि ब्रह्मचर्य का अस्वाद से घनिष्ट सम्बन्ध है। इसके साथ ही स्वावलम्बन का भाव भी आया और धोबी, नाई इत्यादि के काम घर मे ही अपने हाथों कर लेने का भाव पैदा हुआ। इस तरह एक ओर सार्वजनिक सेवा को और दूसरी ओर पवित्रता एवं सादगी को जीवन मे प्रधानता मिलने लगी। डा० बूथ की देखरेख में दो

घण्टे रोज नियमित रूप से रोगियों को दवा देने इत्यादि का काम भी करने लगे। इससे रोगियों की सेवा एवं परिचर्या प्रणाली का इनको अच्छा अनुभव हुआ जो आगे चलकर इनके कार्य में सहायक हुआ।

बोअर-युद्ध

इसी समय (१८९७–९९) बोअर * युद्ध छिड गया। अबतक ब्रिटिश शासन की न्यायपूर्णता में गाँधी का विश्वास बना था। इसलिए जितने साथी मिल सके उनको लेकर घायलों की सेवा शुश्रूषा करनेवाली एक टुकडी इन्होंने तैयार की। डा० बूथ ने आवश्यक शिक्षा लोगों को दी तथा डाक्टरी प्रमाणपत्र भी दिला दिये। उस समय तक अंग्रेजों की धारणा थी कि हिन्दुस्तानी जोखम के कामों में नहीं पडते। इसलिए भी गाँधी की इस समय कुछ करने की बात ज्यादा अपील कर गई। सरकार ने भी अपने संकट के समय यह सहायता स्वीकार करली।

---

* सोलहवीं शताब्दी तक दक्षिण अफ्रीका में विदेशियों का प्रवेश न हुआ था। सोलहवीं शताब्दी में डच लोग पहली बार दक्षिण अफ्रीका आये। धीरे धीरे उन्होंने विस्तार किया और राज्य जमा लिया। बाद में अंग्रेज भी वहाँ आये। दोनों के स्वार्थों में एक दूसरे के कारण हमेशा हानि पहुँचती थी इसलिए इनमें लडाइयाँ हुई और अंग्रेज हारे। यह डच ही बाद में बोअर नाम से प्रसिद्ध हुए। समय ने पलटा खाया। अंग्रेज शक्तिमान होते गये और बोअर-युद्ध में उन्होंने अपनी पहलेवाली हार का बदला लिया। इस युद्ध में बोअरों ने अद्भुत वीरता और दृढता दिखाई। फलतः दोनों में संधि हुई और दक्षिण अफ्रीका की डच और अंग्रेजी चारों रियासतें (नटाल, ट्रांसवाल, आरंज फ्री स्टेट और केप कालोनी) मिलाकर 'यूनियन ऑव् साउथ अफ्रीका' के नाम से स्वतंत्र औपनिवेशिक शासन में आ गये। जेनरल बोथा, जेनरल हरजाग, जेनरल स्मट्स इत्यादि बोअर नेता रहे हैं।

इस टुकडी में लगभग ११०० आदमी थे । ४० कैप्टन (मुखिया) ३०० स्वतंत्र हिंदुस्तानी और शेष गिरमिटिया थे । डा० बूथ भी साथ थे। इस टुकडी ने वीरतापूर्वक अपना काम किया । कई बार प्रत्यक्ष युद्धक्षेत्र (Firing Line) में भी जाकर काम किया । जनरल बुलर के अनुरोध से रणक्षेत्र से घायलों को डोलियों में उठाकर लाने का काम भी इन लोगों ने किया । इस तरह के घायलों में ये कितने ही प्रतिष्ठित लोगों—जेनरल उडगेट, लार्ड राबर्ट्स के पुत्र लेफ्टनेण्ट राबर्ट्स इत्यादि को भी लाये थे। उस समय इस टुकडी के सेवा-कार्य की बडी प्रशंसा हुई । जनरल बुलर ने अपने खरीते में इसकी प्रशंसा की । मुखियों को लडाइ के तमगे भी मिले और हिन्दुस्तानियों की प्रतिष्ठा बहुत बढ गई । गोरों के व्यवहार में भी कुछ अन्तर आया ।

× × ×

दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों पर गंदगी का आरोप प्राय लगाया जाता था । जब डरबन मे प्लेग का प्रवेश और प्रकोप हुआ तब इन्होंने म्युनिसिपलिटी की सम्मति से इस विषय में बडा काम किया । हिन्दुस्तानियों में सफाई के लिए बडे प्रयत्न किये । इसी प्रकार १८९७ एव १८९९ म जब भारत में अकाल पडे तब इन्होंने दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों से चन्दा उगाहकर काफी रुपये भारत भेजे । दिन दिन इनमें शुद्ध सेवा का भाव बढता जा रहा था और ज्यों-ज्यों सेवा का भाव बढा त्यों-त्यों सत्य का रूप मन में स्पष्ट होता गया । त्याग की भावना तीव्र होती गई ।

अन्य सेवाएं

युद्ध का काम समाप्त होने पर इन्होंने भारत लौटने का निश्चय किया पर लोगों ने इस शर्त पर इन्हे छुट्टी दी कि 'यदि एक साल के अन्दर फिर आवश्यकता पडी तो यहाँ लौटना पडेगा ।' इस समय भेंट म इन्हे तथा पत्नी को हीरा-जवाहर, सोना-चाँदी इत्यादि की अनेक कीमती चीजें (विदाइ के) उपहार में

त्याग की प्यास

मिलीं। इनके मन में यह प्रश्न पैदा हुआ कि ये चीजें सार्वजनिक सेवा के बदले मिली हैं इसलिए इ ह लेने का हमें क्या हक है ? रात भर इनके मन में संघर्ष चलता रहा। अन्त म सत्य का प्रकाश मन में आया। सत्य की विजय हुई। इन्होंने इन चीजों को न लेने का ही निश्चय किया और ट्रस्ट बनाकर वह सारी रकम पव चीजें उन्होंने सार्वजनिक सेवा के लिए दे दीं। पत्नी ने उस समय विरोध भी किया पर यह सत्य के मार्ग पर दृढ रहे। तब से इनका यह निश्चित मत हो गया कि जन सेवक को जो भेंट मिलती ह वे उसकी निजी नहीं हो सकतीं।

भारत यात्रा

इस तरह १९०१ ई० म यह भारत लौटे। रास्ते में मारीशस म उतर कर वहाँ के भारतीयों की अवस्था का भी अध्ययन किया और वहाँ के गवर्नर सर चार्ल्स ब्रूस के यहाँ भी एक दिन मेहमान रहे।

कलकत्ता में

देश पहुँचने पर कुछ दिन घूमने घामने में बीते। इस साल कांग्रेस (भारतीय महासभा) कलकत्ता में होनेवाली थी। श्री वाचा सभापति थे। यह दो तीन दिन पहले ही कलकत्ता पहुँच गये और बिना अपना परिचय दिये कांग्रेस आफिस में क्लर्क का काम करने लगे। पीछे उनका परिचय मिलने पर मन्त्री (घोषाल बाबू) बहुत शर्मिन्दा हुए थे पर इन्हें तो सेवा-कार्य प्रिय था। यहाँ तक कि स्वयंसेवकों को 'ड्यूटी' काम करने म घृणा करते देख कांग्रेस में दो-तीन बार पाखाने उठाकर भी वहाँ की गंदगी इन्होंने साफ की थी। यहाँ कांग्रेस तन्त्र का इनको काफी अनुभव हुआ एवं कांग्रेस की अव्यवस्था और त्याग वृत्ति के अभाव पर दु ख भी हुआ। इनके प्रयत्न से दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों के सम्बन्ध म एवं प्रस्ताव कांग्रेस में सर्वसम्मति से पास हुआ। कांग्रेस अधिवेशन के बाद भी दक्षिण अफ्रीका के काम से यह एक महीना कलकत्ता ठहर गये। गोखले भी वहाँ ठहरे थे इसलिए मालूम होने पर उन्होंने इन्हें अपने पास बुला लिया और बड़े प्रेम से

अपने छोटे भाई की तरह रखा। गाँधी के स्वावलम्बन, सादगी एव उद्योग शीलता की बडी अच्छी छाप गोखले पर पडी। इसी प्रकार गोखले की सेवा वृत्ति ने इनके मन को मोह लिया। गोखले अपना एक क्षण व्यर्थ न जाने देते थे। उनके तमाम कार्य देश के लिए ही होते। फिर बातों में कहीं मलिनता, दम या असत्य न दिखाई देता। हिन्दुस्तान की गरीबी और पराधीनता उन्हें बहुत चुभती थी। इन बातों का गाधी पर अच्छा प्रभाव पडा।

कलकत्ता म रहते समय इन्होंने वहाँ की एक एक गली छान डाली। अनेक नेताओं से परिचय प्राप्त किया। आधे दिन दक्षिण अफ्रीका के काम के सिलसिले में नेताओं से मिलते और आधा दिन कलकत्ता की धार्मिक एव अन्य सामाजिक संस्थाएँ देखने में बिताते। इस प्रकार बगाल के जीवन से इनका अच्छा परिचय हो गया। बीच में एक बार बमा भी हो आये।

कलकत्ता का कार्य समाप्त कर काशी को रवाना हुए और भारतीय जीवन के अधिक सम्पर्क में आने के उद्देश्य से तीसरे दर्जे में यात्रा शुरू की और आज तक यही क्रम चला जा रहा है। काशी म श्रीमती एनी बेसेण्ट से मिले, वहाँ से राजकोट आये। वहाँ दो-एक मुकदमों की पैरवी की पर बाद में मित्रों के अनुरोध से बम्बई आ गये। वहाँ भी सिलसिला ठीक चलने लगा। वहाँ हाइकोर्ट के पुस्तकालय से कानूनी पुस्तकें लेकर उनका अध्ययन भी करते। गोखले से भी मिलना जुलना होता रहता था।

इसी समय एकाएक दक्षिण-अफ्रीका से तार आया—"चम्बरलेन आ रहे हैं। आपको शीघ्र यहाँ आना चाहिए।" इन्हें अपने वचन याद थे इसलिए बल-बच्चों को बम्बई में ही छोड वह डरबन को रवाना हो गये। १ जनवरी १९०३ को प्रिटोरिया पहुँचे और वहाँ पहुँचते ही चेम्बरलेन से मिलनेवाले डेपूटेशन के लिए अरजी का मसविदा बनाने तथा अन्य कामों में लग गये।

नेटाल में तो विरोध होते हुए भी गांधी का अधिकारियों में अच्छा मान था इसलिए डेपूटेशन का कार्य पूरा हुआ। चेम्बरलेन ने मीठी-मीठी बातें कीं पर कठिनाइयाँ बताकर असली प्रश्न को टाल दिया। जब ट्रांसवाल में चेम्बरलेन के पास डेपूटेशन ले जाने की बात तै हुई तो वहाँ के एशियाटिक इमीग्रेशन के अधिकारियों ने उनके कार्य में बड़ी बाधा डाली और उन्हें डेपूटेशन में रखने से इन्कार कर दिया। गांधी जी के अनुरोध से, अनिच्छापूर्वक, श्री गाडफ्रे के नेतृत्व में डेपूटेशन चेम्बरलेन से मिला। पर ऐसे आवेदनों से क्या होना जाना था? इधर भारतीयों के कष्ट बढ़ते जा रहे थे। इसलिए लोगों के कहने से गाँधी ने वहीं ठहर जाना निश्चित किया और ट्रांसवाल के सुप्रीम कोर्ट के वकीलों में भरती हो गये। इसी समय कुछ मित्रों के सहयोग से 'ट्रांसवाल ब्रिटिश इंडियन असोसिएशन' की स्थापना की।

डेपूटेशन

ज्यों ज्यों कठिनाइयाँ बढ़ती जाती थीं, भारतीयों में जागृति होती जाती थी। इसलिए एक अखबार की आवश्यकता भी प्रतीत होने लगी। श्री मदनजीत नामक एक भारतीय सज्जन का एक छापाखाना था। उन्होंने अखबार निकालने का इरादा प्रकट किया। पत्र निकला पर पीछे उसका ज्यादातर भार गांधीजी पर ही आ पड़ा। अपनी बचत के सारे रुपये वह उसमें लगा देते थे। पहले यह पत्र हिन्दी, तामिल, गुजराती, अंग्रेजी में निकलता था पर बाद में केवल गुजराती और अंग्रेजी में ही निकलने लगा।

'इंडियन ओपीनियन'

सन् १९०४ ई० में जोहान्सबर्ग में प्लेग फैला। इसका जोर भारतीय हिस्से में ज्यादा था। म्युनिसिपैलिटी बार-बार ध्यान दिलाये जाने पर भी सफाई इत्यादि की कोई व्यवस्था न करती थी। प्लेग फैलने पर भी उसने इस तरफ ध्यान न दिया। तब गांधी ने अपने ही दो-चार साथियों को लेकर उस खतरे के बीच भी, जान की परवा न करके, सेवा-कार्य आरम्भ किया। उन दिनों

प्लेग में सेवा

रात-दिन रोगियों की परिचर्या में इनका समय जाता था।

ये सब सार्वजनिक काम तो चल ही रहे थे पर इस बीच इनका मानसिक तथा नैतिक विकास बराबर हो रहा था। दिन दिन स्वार्थ भाव

आत्मिक विकास

का नाश होता जा रहा था, अभी तक कमाने का जो कुछ भाव लगा था, वह छूटता जा रहा था और अनासक्तिमयी सेवा का भाव बढ़ता जाता था। जो लोग इनके साथ रहते उन सब से एक कुटुम्बी जैसा ही व्यवहार करते थे। इनके शुद्ध हृदय और श्रेष्ठ चरित्र का परिचय पाकर अनेक अंग्रेज और यूरोपियन इनके मित्र एवं सहयोगी हो गये थे। इनके आफिस में काम बहुत बढ़ गया था इसलिए स्काच कुमारी मिस डिक को इन्होंने टाइपिंग के लिए रखा था। यह कुमारी बड़ी ईमानदार, सुशील एवं परिश्रमी थी। गांधी जी के श्रेष्ठ चरित्र का उसपर ऐसा प्रभाव पड़ा था कि वह इन्हें पिता की भांति मानने लगी थी और पीछे तो जब उसका विवाह हुआ और मिसेज मैकडानल्ड बनने का मौका आया तो गांधी जी ने ही कन्यादान किया। इसी प्रकार शीघ्र-लेखन (शार्टहैंड) के लिए मिस श्लेशिना को अपने दफ्तर में रखा था। इस लड़की में जरा भी राग द्वेष न था, बड़ी योग्य एवं निर्भय लड़की थी। काम करने में न दिन देखती, न रात। जब बाद को सत्याग्रह में सब लोग जेल चले गये तो इस अकेली लड़की ने सारा काम सभाल लिया था। इसके साथ ही सारा पत्र व्यवहार एवं 'इंडियन ओपीनियन' का काम भी वह स्वयं करती थी। बाद में हेनरी पोलक नामक एक यहूदी युवक भी (जो 'क्रिटिक' के उप सम्पादक थे) गाधी जी के अनुरोध से वहाँ का काम छोड़कर चले आये और साथ काम करने लगे। इंग्लैण्ड में एक लड़की से इनका सहज स्नेह था पर गरीबी के कारण शादी न करते थे। गाधी जी ने पोलक को समझाया कि जहाँ प्रेम शुद्ध है वहाँ गरीबी अमीरी का भाव बाधक नहीं हो सकता। दोनों को यह बात पसन्द आई और दोनों की शादी हो गई। इसी प्रकार वेस्ट

तथा केल्नबैक इत्यादि कितने ही युरोपियन इनके सहयोगी थे। इन बातों से प्रकट होता है कि उनकी सेवा द्वेष मूलक न थी और वह सत्य पर रहते थे जिससे विधर्मी दल के लोग भी इनसे सहानुभूति रखते थे। इस अनुभव ने इनके जीवन में बड़ा काम किया है और इसी के कारण दिन दिन इनमें सत्य और अहिंसा का भाव दृढ होता गया है।

'इण्डियन ओपीनियन' में दिन दिन घाटा बढ़ता जा रहा था। इधर गांधी के पास काम बहुत बढ़ गया था इसलिए उन्होंने श्री वेस्ट नामक अंग्रेज सज्जन को उसका कार्य भार सँभालने को भेजा। पत्र-सचालक मदनजीत उन दिनों प्लेग इत्यादि के कारण रोगियों की परिचर्या में लगे थे। उनकी जो रिपोर्ट आई उससे मालूम हुआ कि पत्र का काम सुव्यवस्थित नहीं है और उसमें आगे भी बहुत घटी की सभावना है। पत्र की व्यवस्था की जाँच करने वह नेटाल रवाना हुए। चलते समय, स्टेशन पर, रेल में पढ़ने के लिए पोलक ने इन्हें रस्किन की 'अन टु दिस लास्ट' नामक पुस्तक दी। इस पुस्तक का इनके जीवन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। जिन शक्तियों ने इनके जीवन पर स्थायी प्रभाव डाला है उनमें इस पुस्तक का स्थान बड़ा ऊँचा है। वह स्वय लिखते हैं—" मेरे जीवन में यदि किसी पुस्तक ने तत्काल महत्वपूर्ण रचनात्मक परिवर्तन कर डाला हो तो वह यही पुस्तक है। मेरा विश्वास है कि जो चीज मेरे अन्तर में बसी हुई थी उसका स्पष्ट प्रतिबिम्ब मैंने रस्किन के इस ग्रथ रत्न में देखा और इस कारण उसने मुझपर अपना साम्राज्य जमा लिया और अपने विचारों के अनुसार मुझ से आचरण करवाया।" इस पुस्तक से इन्होंने ये सिद्धान्त निकाले—

'अनटु दिस लास्ट'

१ सब के भले में अपना भला है।
२ वकील और नाई दोनों के काम की कीमत एक सी होनी चाहिए क्योंकि आजीविका का हक दोनों को एक सा है।

३ सादा, मजदूर एव किसान का, जीवन ही सच्चा जीवन है।

पहली और दूसरी बात का भान तो इन्हें था पर तीसरी बात अभी तक इनके विचार म न आई थी। इस पुस्तक से इन्हे उसकी उपयोगिता मालूम हुई और इन्होंने निश्चय कर लिया कि सत्य के साधक के लिए सादा जीवन एव शरीर श्रम अनिवार्य हैं।

उधर शहर में रखने से 'इडियन ओपीनियन' मे अपव्यय हो ही रहा था अत शहर से दूर एक आश्रम बसाने की बात इन्हे जँच गई।

'फिनिक्स सेटिलमेंट'

दूसरे ही दिन वेस्ट से इन्होंने चर्चा की कि शहर के बाहर पत्र को ले चला जाय, वहाँ सब एक साथ रहें, एक सा भोजन खर्च लें, खेती करें। वेस्ट को यह बात पसन्द आई। सारी बातें तै हो गईं। फिनिक्स नामक स्थान में १०० एकड़ जमीन ले ली गई। शीघ्र ही मकान तैयार हो गये और प्रेस तथा पत्र वहाँ लाया गया। अब इनका विचार स्थायी रूप से वहीं बस जाने का हुआ क्योंकि यह उपर्युक्त सिद्धान्तों के अनुसार सीधा सादा परिश्रमपूर्ण जीवन बिताना चाहते थे। काम से जब यह जोहान्सबर्ग लौटे और इन्होंने पोलक को उनकी दी हुई किताब के प्रभाव तथा नई सस्था की बात बताई तो पोलक के आनन्द की सीमा न रही और वह भी 'क्रिटिक' की नौकरी छोड़ फिनिक्स में रहने लगे और बहुत जल्द वहाँ के सीधे सादे जीवन के अभ्यस्त हो गये। परन्तु गाँधीजी की इच्छा पूरी न हुई। शीघ्र ही सार्वजनिक कार्य-वश इनको जोहान्सबर्ग जाना पड़ा और पोलक को भी वहीं बुला लिया।

यहाँ आये भी थोड़े ही दिन बीते थे कि 'जुलू' विद्रोह (१९०६) का समाचार आया। 'जुलू' वहाँ की एक पुरानी वीर जाति है। असल में

'जुलू' बलवा

तो अग्रेजों का पक्ष ही अन्यायपूर्ण था पर उस समय भी अग्रेजी राज्य की न्यायपरायणता में इनका विश्वास था अत इन्होंने गवर्नर को पत्र लिखा कि "घायलों की सेवा-शुश्रूषा के लिए मैं हिंदुस्थानियों की एक टुकड़ी लेकर जाने को तैयार हूँ।"

गवर्नर ने तुरन्त इसे स्वीकार कर लिया। फलत २४ आदमी की टुकड़ी लेकर यह सेवा-कार्य के लिए चल दिये। इन्हें 'सार्जेण्ट मेजर' का अस्थायी पद दिया गया। इस टुकड़ी ने ६ सप्ताह तक बड़ी लगन से सेवा की। सच पूछें तो इसमें विद्रोह जैसा कुछ न था। 'जुलू' निरपराध थे। उनके एक सरदार ने जुलू लोगों पर बैठाये गये नये कर को न देने की सलाह दी थी और कर वसूली को गये एक सर्जेण्ट की हत्या कर डाली थी। इसी पर गोरे उन्हें पीसने के लिए चढ़ दौड़े थे। इसलिए गांधी का हृदय तो जुलू लोगों की तरफ था। इन्होंने जुलू घायलों की तन मन से सेवा की। कभी कभी इनकी टुकड़ी को २५ २५, ३० ३० मील चलना पड़ा। इन कार्यों की स्वयं गवर्नर ने तारीफ की और इन लोगों को मेडल भी दिये गये।

आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रत

इस सेवा कार्य से लौटते ही इन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्य पालन का व्रत ले लिया क्योंकि दिन दिन इनका यह अनुभव दृढ होता जाता था कि ब्रह्मचर्य हीन जीवन पशुवत् है और सेवा परायण सत्यार्थी की इसके पालन बिना गति नहीं। सार्वजनिक सेवा में समय लगानेवाले लोक सेवक का मार्ग इससे सरल हो जाता है, उसकी सेवा निस्वार्थ होने की अधिक संभावना रहती है और घरेलू कठिनाइयाँ कम हो जाती हैं। इस ब्रह्मचर्य व्रत का स्वाभाविक फल यह हुआ कि इन्होंने तपस्वी का जीवन अंगीकार कर लिया। खान पान केवल शरीर रक्षा के भाव से करते और शरीर को अधिकाधिक कष्ट सहन के योग्य बनाते। उन दिनों संयम की दृष्टि से इन्होंने दूध, दाल और नमक का भी त्याग कर दिया था।

सत्याग्रह का आरम्भ

स्थान स्थान पर हम यह बात लिख चुके हैं कि दक्षिण-अफ्रीका के गोरे भारतीयों को फूटी आंखों न देखते थे और समय समय पर उनको दबाने का कानून बनवाने की प्रबल चेष्टा करते रहते। १८८५ में

ही ट्रांसवाल में एक कानून बना था जिसके अनुसार यह निश्चित हुआ था कि जो एशियाई इस देश में व्यापार करें वे एक निश्चित फीस देकर अपनी रजिस्ट्री करा लें और नगरों के कुछ विशिष्ट भागों में रहें (जिससे उनके संसर्ग से गोरों में किसी प्रकार का रोग न फैले)। यद्यपि बीच में इन नियमों का पालन कड़ाई से नहीं होता था पर गोरे काले का भेद दिन दिन बढ़ता जाता था। बोअर युद्ध के समय साम्राज्य सरकार ने बीच में पड़कर कहा था कि भारतीयों की शिकायतें दूर कर दी जायँगी। पर युद्ध समाप्ति के बाद भारतीयों ने आश्चर्य एवं दुःख के साथ देखा कि साम्राज्य सरकार के अधिकारी ही अनेक प्रकार के अपमान जनक और अनुचित कानूनों को पास कराने के लिए जोर दे रहे हैं। 'शान्ति-रक्षा-कानून' ('पीस प्रिजर्वेशन आर्डिनेंस') के अनुसार भारतीयों के वहाँ जाने में अनेक बाधाएँ खड़ी कर दी गई। और १८८५ वाला रजिस्ट्री का कानून फिर से जारी करने पर जोर दिया जाने लगा। १८८५ वाले तीसरे कानून का जोरों से प्रयोग होने लगा और भारतीय कुछ निश्चिष्ट स्थानों में ही रहने और व्यापार को विवश किये जाने लगे। इस पर सुप्रीम कोर्ट में अपील की गई जिससे पुराना फैसला रद्द हो गया और निश्चित हो गया कि भारतीय जहाँ चाहें रह सकते और व्यापार कर सकते हैं। इस निर्णय से गोरे बड़े क्रुद्ध हुए और तभी से वे भारतीयों की जड़ पर कुठाराघात करने के प्रयत्न में थे। अन्त में, १९०६ में आकर, उनका षड्यन्त्र सफल हुआ।

नया 'बिल'

गांधीजी को जुलू विद्रोह के सेवा-कार्य से लौटे थोड़े ही दिन हुए थे कि ट्रांसवाल-सरकार ने 'ड्राफ्ट एशियाटिक ला अमेण्डमेण्ट बिल' कौंसिल में पेश किया। इस बिल का सारांश यह था—

"ट्रांसवाल में रहने का हक रखने की इच्छा करनेवाले प्रत्येक भारतीय स्त्री पुरुष और आठ वर्ष से अधिक उम्र के बालक बालिका को

एशियाई दफ्तर में अपना नाम लिखाकर परवाना प्राप्त करना चाहिए। नाम लिखाने की अर्जी में अपना नाम, स्थान, जाति, उम्र इत्यादि लिखे जाय। नाम लिखनेवाले अधिकारी को चाहिए कि अर्जी देनेवाले के शरीर पर के मुख्य चिन्हों को नोट कर ले और उसकी तमाम उँगलियों एवं दोनों अंगूठों की छाप ले ले। उन भारतीय स्त्री पुरुषों का ट्रांसवाल में रहने का हक रद्द समझा जाय जो नियत समय के भीतर इस प्रकार अर्जी देकर अपना नाम रजिस्टर में दर्ज न करा लें। अर्जी न देना अपराध है और इसके लिए जेल या जुर्माने की सजा हो सकती है और अदालत स्वीकार करे तो देश निकाले की भी सजा दी जा सकती है। बच्चों के लिए अर्जी देने एवं उनके शरीर के निशान एवं उँगलियों की छाप दर्ज कराने की जिम्मेदारी माता पिता पर है। यदि माता पिता इस जिम्मेदारी को अदा करने में असावधानी करें तो सोलह वर्ष की उम्र होते ही बच्चे स्वयं उसे अदा करें और माता पिता को इस अपराध की जो सजा दी जायगी वही बच्चे को भी सोलह वर्ष की उम्र होने पर अर्जी न देने से दी जायगी। अर्जीदार को जो परवाना दिया जाय उसे हर समय पास रखना चाहिए और जहाँ जब कोई पुलिस अधिकारी मांगे उसे दिखाना चाहिए। उसका ऐसा न कर सकना एक जुर्म समझा जायगा जिसके लिए अदालत उसे कैद या जुर्माने की सजा दे सकती है। राह-चलते मुसाफिर से भी यह परवाना माँगा जा सकेगा। परवाना ढूँढने के लिए अधिकारी लोग भारतीयों के मकान में भी घुस सकते हैं। यह परवाना किसी भी दफ्तर में, किसी भारतीय के यहाँ काम से आने पर, मांगा जा सकता है। उसे न दिखाने या आवश्यक प्रश्नों का उचित उत्तर न देने पर भी सजा या जुर्माना हो सकता है।"

संसार के किसी हिस्से में शायद ही सभ्य मनुष्यों के लिए इससे भयंकर कानून कभी बना हो। इससे तो ट्रांसवाल से भारतीयों का अस्तित्व मिट जाने का ही खतरा उपस्थित हो गया। उँगलियों की छाप

तथा शरीर चिन्हों का नियम बिलकुल जंगली और चोर डाकुओं के साथ किये जानेवाले व्यवहार-जैसा था। इससे भारतीयों में खलबली मच गई। गाधीजी ने लोगों को एकत्र किया, उन्हें बिल का मतलब समझाया और कहा कि इसमें सम्पूर्ण भारतीय राष्ट्र का अपमान है। इसके बाद सारे ट्रासवाल के भारतीय प्रतिनिधियों को बुलाकर एक विराट् सभा की गई। उसमें यह निश्चय हुआ कि "इस बिल का विरोध करने के लिए तमाम उपायों का अवलम्बन किया जाय पर यदि इतने पर भी वह पास हो जाय तो हमें उसके आगे सिर न झुकाना चाहिए और इस अवज्ञा के फल स्वरूप जो दु ख सहने पड़ें, सहन करना चाहिए।" सबने खड़े होकर, ईश्वर को साक्षी रखकर, प्रतिज्ञा की कि चाहे जितने दु ख कष्ट पड़ें हम इस कानून को न मानेंगे।

स्थान-स्थान पर इसी प्रकार सभाएँ की गईं। एक डेपूटेशन स्थानीय सरकार के तत्सम्बन्धी विभाग के प्रधान सचिव से भी मिला।

हलचल

इस डेपूटेशन के सदस्य सेठ हाजी हबीब ने तो प्रधान सचिव से साफ कह दिया—"अगर मेरी औरत की उँगलियों की छाप लेने के लिए कोई अधिकारी आवेगा तो मैं उस अधिकारी को वहीं मार डालूँगा और मरूँगा।" सचिव ने आश्वासन दिया और कहा कि 'सरकार औरतों के सम्बन्ध की धाराएँ वापस ले लेगी। पर अन्य धाराओं के विषय में वह दृढ़ है। हाँ, कोई विशेष सूचना दें तो कहीं-कहीं हेर-फेर हो सकता है।"

भारतीयों के व्यापक विरोध के होते हुए भी, औरतों से सम्बन्ध रखनेवाली धाराओं को छोड, बिल पास हो गया। फिर भी कोई दूसरा उपाय करने के पूर्व यही निश्चय किया गया कि सब प्रकार के वैध प्रयत्न करके देख लिये जायँ। ट्रासवाल साम्राज्य-सरकार के अधीन उपनिवेश था इसलिए ट्रासवाल-कौंसिल से पास बिलों पर सम्राट एव साम्राज्य सरकार की स्वीकृति लेनी पड़ती

विलायत को डपुटेशन

थी। इस दिशा में अन्त तक प्रयत्न करके दम लेने के उद्देश्य से भार तीयों का एक डेपुटेशन इंग्लैण्ड भेजने का निश्चय हो गया। इसके लिए गाँधीजी और हाजी वजीरअली चुने गये। विलायत पहुँचते ही ये लोग अपने काम में लग गये। बल्कि रास्ते में ही लिख ली थी। लन्दन पहुँचने ही नामा भाई नौरोजी से मिले और उनके द्वारा ब्रिटिश कमेटी से मिले। मंचरजी भावनगरी से भी भेंट की। इन लोगों की सलाह से सर लेपल ग्रिफिन से भी मिले। उन्होंने इस डेपुटेशन का नेतृत्व करना स्वीकार किया। अनेक एंग्लो-इण्डियनों और पार्लमेण्ट के सदस्यों से मिले और अपना तात्पर्य उनको समझाया। लार्ड एल्गिन उपनिवेश-सचिव थे, उनसे मिले। उन्होंने सहानुभूति दिखाई और यथासंभव सहायता का वचन दिया। डेपुटेशन लार्ड मार्ले से भी मिला। पार्लमेण्ट के दीवानखाने में गांधीजी ने इस विषय में पार्लमेण्ट के सदस्यों की एक सभा में भाषण भी किया। श्री सिमण्ड्स इत्यादि कई पर दुःखकातर अंग्रेजों से इस समय सहायता मिली और इस सम्बन्ध में आन्दोलन करते रहने के लिए एक कमिटी (जिसके मन्त्री मि० रिच थे) बनाकर पाँच छः हफ्ते बाद ये लोग दक्षिण अफ्रिका लौटे। रास्ते में ही श्री रिच का तार मिला कि लार्ड एल्गिन ने सम्राट् से कानून रद्द करने की सिफारिश की है। पर जोहान्सबर्ग पहुँचने पर मालूम हुआ कि बात असल में यह न थी। १९०७ की पहली जनवरी को ट्रांसवाल को उत्तरदायित्वपूर्ण शासन दिया जानेवाला था इसलिए तबतक के लिए, ट्रांसवाल के राजदूत की सलाह से इस सवाल को स्थगित कर दिया गया। लार्ड एल्गिन ने राजदूत—सर रिचर्ड सालोमन—से कह दिया था कि स्वतंत्र होने पर ट्रांसवाल की पार्लमेण्ट इस बिल को पास कर देगी तो साम्राज्य सरकार उसे अस्वीकार न करेगी। पहले से ही ऐसा आश्वासन दे देना एक प्रकार का विश्वासघात था। पहली जनवरी को दिन ही कितने थे। ट्रांसवाल में उत्तर दायित्वपूर्ण शासन की स्थापना हुई। बजट के बाद ही वह खूनी अन्याय

पूर्ण बिल पास हुआ। भारतीयों ने अर्जियाँ दीं, विरोध किया पर कौन सुनता? कानून के अनुसार पहली अगस्त (१९०७ ई०) का दिन नये परवाने लेने के लिए निश्चय किया गया था। इसके पहले ही 'निष्क्रिय प्रतिरोध' (जिसका नाम आगे बदलकर सत्याग्रह कर दिया गया) आन्दोलन के सचालन के लिए 'पैसिव रेसिस्टेंस असोसिएशन' (अथवा 'निष्क्रय प्रतिरोध मण्डल') नामक सस्था खुल चुकी थी। स्थान स्थान पर सभाएँ हुई, प्रतिज्ञापत्र भराये गये और स्वयसेवक भरती किये गये। जुलाई का महीना समाप्त हुआ। परवाना लेने के दफ्तर खुले। हर दफ्तर पर पिकेटिंग करने के लिए स्वयसेवक तैनात किये गये। उन्हें बताया गया कि वे परवाना लेने आनेवालों को सावधान करें पर किसी के साथ जोर-जबदस्ती या असभ्यता का व्यवहार न करें। पुलिसवाले गालियाँ दें, मारें पीटें तो उसे भी सह लें और पकड़ें तो गिरफ्तार हो जायँ। जो परवाना लेना चाहें उनके लिए पूरी सुविधा कर दी गई। इस व्यवस्था के कारण बहुत ही कम लोग एशियाटिक आफिस में परवाना लेने गये। तब सरकार की ओर से यह व्यवस्था की गई कि बड़े व्यापारियों को एक अफसर रात को एक मकान पर जाकर परवाने दे दे। स्वयसेवक सावधान एव जागरूक थे इसलिए यह चाल भी सफल न हुई और एशियाटिक आफिस को ५०० से अधिक नाम न मिल सके।

पिकेटिंग

इस असफलता के कारण खीझकर सरकार ने प० रामसुन्दर नामक एक सज्जन को गिरफ्तार कर लिया। रामसुन्दर की जर्मिस्टन (एक स्थान) में कुछ प्रतिष्ठा थी पर वैसे उन्हें ज्यादा लोग न जानते थे पर सरकार की इस 'कृपा' से सारे दक्षिण आफ्रिका में उनकी प्रसिद्धि हो गई। अदालत में उनका आदर किया गया, एक महीने की सादी कैद हुई। जल में भी उनके साथ अच्छा व्यवहार हुआ, युरोपियन वार्ड में एक अलग

गिरफ्तारी

करा दिया गया एवं मिलने जुलने की भी सुविधाएँ दी गईं। खाना बाहर से जाता था। उसकी गिरफ्तारी से लोगों में और जागृति फैल गई। सैकड़ों जेल जाने को तैयार हो गये। इस समय 'इण्डियन ओपीनियन' पत्र के कारण आन्दोलन को बड़ी सहायता मिली। सरकार ने सोचा कि खास खास नेताओं को गिरफ्तार किये बिना आन्दोलन दब नहीं सकता। दिसम्बर में गांधीजी तथा कुछ साथी कार्यकर्ताओं को सजा मिली। दो दो महीने की सादी कैद हुई। इनकी गिरफ्तारी के साथ ही आन्दोलन बढ़ गया। झुण्ड के झुण्ड लोग स्वेच्छापूर्वक, कानून तोड़कर जेल जाने लगे। एक हफ्ते में १०० सत्याग्रही जेल पहुँच गये। ज्यों-ज्यों आन्दोलन बढ़ा, सरकार का रोष भी बढ़ा। सादी की जगह कड़ी सजा होने लगी। पर इससे भी लोगों के उत्साह में कमी न आई। अब सरकार को विश्वास होने लगा कि भारतीय अपने अधिकार लेकर ही छोड़ेंगे। सुलह की बातचीत होने लगी। जनरल स्मट्स की ओर से 'ट्रांसवाल

समझौता

लीडर' दैनिक के सम्पादक अल्बर्ट कार्टराइट गांधी जी से जेल में मिले। दोनों में यह तै हुआ कि 'भारतीय स्वेच्छापूर्वक परवाने बदलवा लें, उन पर कानून की कोई जबर्दस्ती न रहेगी। नवीन परवाना सरकार भारतीयों की सलाह से बनाये और यदि भारतीय उसे स्वेच्छापूर्वक ले लें तो कानून रद्द कर दिया जाय।' पर कार्टराइट ने कहा कि जेनरल स्मट्स इस पर शायद ही राजी हों। वह चले गये। दो तीन दिन बाद जोहान्सबर्ग के पुलिस सुपरिण्टेण्ट आकर जेल से गाँधी जी को जनरल स्मट्स के पास ले गये। उन्होंने समझौते का उपर्युक्त ड्राफ्ट (मसविदा) मंजूर किया। गांधी जी उसी समय छोड़ दिये गये। उसी रात को वह जोहान्सबर्ग पहुँचे। दूसरे दिन रात को सभा की गई। दो चार को छोड़ शेष ने समझौता स्वीकार किया। सुबह और सब साथी भी जेल से रिहा कर दिये गये।

पर इस बीच कुछ लोग पठानों में गलतफहमी फैला रहे थे कि गांधीजी रिश्वत लेकर सरकार से मिल गया है। पठान तो मरने-मारने वाला आदमी ठहरा। उसपर ऐसी बातों का असर बहुत जल्द होता है। १० फरवरी १९०८ को गांधी जी, इसप मियाँ तथा थाम्बी नायडू नामक तीन नेताओं ने निश्चय किया कि पहले हमें ही परवाना लेना चाहिए। जब ये लोग एशियाटिक आफिस की ओर जा रहे थे तब कुछ पठानों ने गाँधीजी पर लाठियों से आक्रमण किया। वह बेहोश होकर गिर पड़े। इतने में ही कुछ राह चलते गोरे इकट्ठे हो गये। उन्होंने पठानों को पकड़ लिया और पुलिस के सुपुर्द कर दिया। गाँधीजी की सम्मति से रेवरेण्ड डोक उन्हें अपने घर ले गये। वहाँ गाँधीजी ने एशियाटिक आफिस के अधिकारी श्री चमनी को बुलाकर सबसे पहले परवाना लिया। फिर उन्होंने एटर्नी-जनरल को तार दिलाया कि 'जिन लोगों ने मुझपर हमला किया उन्हें मैं दोषी नहीं समझता, वे छोड़ दिये जायँ।' इस तार से गाँधीजी की विशालहृदयता का पता चलता है। खैर, उस समय तो पठान छोड़ दिये गये पर बाद में गोरों के आन्दोलन करने पर कि गाँधी की इच्छा अनिच्छा के अनुसार अपराधियों का न्याय नहीं हो सकता, वे पकड़े गये और सजा हुई।

गाँधीजी पर हमला

डोक परिवार ने गाधी जी की बड़ी सेवा की, घर के लोग क्या करते? ११-१२ दिन में वह अच्छे हो गये। फिर डरबन गये। वहाँ भी कुछ पठानों में गलतफहमी थी इसलिए उसे दूर करने के उद्देश्य से वहाँ भी बहुत बड़ी सभा की गई। रात का समय था, सभा का काम प्राय समाप्त हो चुका था कि एक पठान लाठी लेकर मंच पर चढ़ा। लोगों ने बचाव के लिए गाँधी जी को घेर लिया। तबतक पुलिस आ गई। इस तरह बच गये दूसरे दिन उन्होंने पठानों को बुलाकर समझाया पर उनका शुबहा दूर न हुआ। तब उसी दिन वह फिनिक्स चले गये। पर इक्के दुक्के विरोध के रहते हुए भी समझौते को जाति ने स्वीकार कर लिया और

अधिकांश ने नये परवाने ले लिये।

पर जनरल स्मटस तो पैंतरेबाज राजनीतिज्ञ थे और मौके के अनुसार अपने शब्दों का अर्थ 'हाँ' या 'नहीं' करने के लिए वह प्रसिद्ध थे।

वचन-भंग

आज तो वह ब्रिटिश साम्राज्य के चोटी के राजनीतिज्ञों में समझे जाते हैं। दक्षिण अफ्रीका में उनका नाम ही 'स्लिम जेनी' (पकड़ में न आसकनेवाला जनी —जैनी उनका असली नाम है) पड़ गया। खैर, उन्होंने अपनी इस 'उपाधि' एवं 'प्रसिद्धि' के अनुकूल ही इस मामले में विश्वासघात किया। काला कानून को उठा लेने का जो वचन दिया था, उसका भंग किया। इससे भारतीय बहुत उत्तेजित हुए। जगह-जगह सभाएं होने लगीं। सत्याग्रह का निश्चय हुआ और भारतीयों की समिति की ओर से अन्तिम चेतावनी—चुनौती—सरकार को भेज दी गई। पर सरकार कब माननेवाली थी? इसलिए नियत दिन सभा की गई और उसमें हजारों परवाने एकत्र कर जला दिये गये और जाति ने अपने अपमान की काली बिन्दी दूर कर देने का निश्चय कर लिया। इसी समय सरकार ने 'इमीग्रेण्ट्स रिस्ट्रिक्शन ऐक्ट' पास किया। इसका मुख्य उद्देश्य नये भारतीयों को वहाँ आने से रोकना ही था। इससे सत्याग्रह आन्दोलन में और जोर आ गया। सत्याग्रह फिर शुरू हुआ। इसमें कितने ही प्रतिष्ठित सज्जन शामिल हुए। बेरिस्टरों ने कुलियों का काम किया। बहुतेरे आदमी कानून तोड़कर जेल जाने लगे। गांधी जी भी गये। छूटने पर उन्होंने देखा कि दोनों पक्ष थके-से प्रतीत होते हैं। इसलिए एक बार फिर प्रयत्न करने के उद्देश्य से इंग्लैण्ड गये। वहां प्रधान अधिकारियों से मिले। पर कुछ विशेष फल न निकला। इनके लौटने पर सत्याग्रह को जोरों से चलाने का निश्चय हुआ। इस समय तक जेल जानेवाले स्वयंसेवकों के कुटुम्बों का थोड़ा बहुत खर्च भी आन्दोलन पर पड़ रहा था। इसलिए खर्च में कमी करने एवं एक कुटुम्ब का भाव जगाने के विचार से सब को एकत्र

रखने का विचार हुआ। श्री केलेनबैक नामक जर्मन साथी ने गाधीजी को अपनी ११०० एकड भूमि (जो जोहान्सबर्ग से २१ मील—स्टशन से एक मील थी) इस काम के लिए दे दी। यहा सब लोगों ने मिलकर स्वय मकान खडे कर लिये और इस प्रकार 'टाल्सटाय फार्म' की स्थापना हुई। यहाँ गाधीजी ने रस्किन एव टाल्सटाय के सादा जीवन बिताने और कायिक परिश्रम करने के सिद्धान्त को कार्यरूप में परिणत किया। 'फीनिक्स आश्रम' और 'टाल्सटाय फार्म' में उन्होंने जो प्रयोग किये उन्हीं का विकसित रूप बाद में हम साबरमती के सत्याग्रह आश्रम में देखते हैं।

टाल्सटाय फार्म

'टाल्सटाय फार्म' में यह नियम रखा गया कि किसी प्रकार का घरू, खेती का या मकान बाधने का काम नौकरों से न लिया जाय। सब काम ये लोग स्वय करते,—पाखाना उठाने से लेकर जूता बनाने तक का। इस समाज म गुजराती, मद्रासी, उत्तर भारतीय—हिन्दू, मुसल्मान, ईसाई—सभी थे। भोजन बिल्कुल सादा होता था। शिक्षा का भी कुछ प्रबन्ध था। मतलब सीधा सादा अनाग्रहपूर्ण जीवन बिताने की शिक्षा यहा मिलती थी।

इन्हीं दिनों गोखले दक्षिण-अफ्रीका आये। इग्लैण्ड से भारत सचिव ने उनके सम्बन्ध में,—उनकी मर्यादा के सम्बन्ध में यूनियन सरकार को खास हिदायतें कर दी थीं, इसलिए गोखले का खूब स्वागत हुआ—सरकार द्वारा भी, जनता द्वारा भी। गोखले ने घूम-घूम कर भारतीयों की अवस्था देखी और फिर सरकारी अधिकारियों से मिले। अधिकारियों ने शीघ्र ही काला कानून रद्द करने, तीन पौण्डवाला कर रद्द करने और इमीग्रेशन कानून से वर्णभेद वाला हिस्सा निकाल देने का वचन दिया। गोखले ने तो अधिकारियों के वादों पर विश्वास कर लिया पर गाधीजी को पहले कडुआ अनुभव हो चुका था इसलिए उन्हें विश्वास नहीं हुआ। और अन्त में हुआ भी

गोखले का आगमन

नहीं। सरकार ने अपना वादा पूरा नहीं किया। इस से भारत में भी बड़ी

फिर चोट! उत्तेजना फैली। श्री एंड्रयूज एवं गोखले ने बड़ा प्रयत्न किया। तत्कालीन वायसराय लार्ड हार्डिंग ने भी दक्षिण अफ्रीका-प्रवासी भारतीयों के साथ खुले आम सहानुभूति प्रकट की। पर यूनियन सरकार तो जिद पर तुली थी। इस समय उस से गलतियों पर गलतियाँ हो रही थीं। दक्षिण अफ्रीका में जितने ही भारतीय ऐसे थे जिनका विवाह उनकी जातीय एवं धार्मिक प्रथाओं के अनुसार भारत में हुआ था पर अदालत के एक फैसले के अनुसार—जिसको यूनियन सरकार ने स्वीकार कर लिया—ये सब विवाह नाजायज करार दिये गये। यह फैसला हुआ कि दक्षिण-अफ्रीका के कानून में उसी विवाह के लिए स्थान है जो इसाई धर्म की रीतियों के अनुसार होता है। मतलब यह कि कानून की दृष्टि में सारी मुसल्मान एवं हिन्दू

घोर अपमान महिलाओं की कोई स्थिति न थी। कानूनी दृष्टि से इन विवाहित स्त्रियों की स्थिति रखेलियों सी हो गई। इससे बढ़कर अपमान और क्या हो सकता था? मातृ-जाति के इस अपमान ने भारत में खलबली मचा दी। १२ सितम्बर १९१३ को सत्याग्रह की घोषणा की गई। २८ सितम्बर को गाधी जी ने यूनियन सरकार को चुनौती का पत्र (Ultimatum) भेजा। उधर स्त्रियाँ भी, इस प्रकार अपना अपमान होते देख सत्याग्रह के लिए मैदान में आ डटीं और आन्दोलन ट्रांसवाल की सीमा लाँघकर नेटाल में भी फैल गया।

मजूरों की हड़ताल स्त्रियों की अपील पर खानों के मजूरों ने काम छोड़ दिया और हजारों जल जाने को तैयार हो गये। ऊपर कहीं लिखा जा चुका है कि ट्रांसवाल की सीमा में बिना नये आज्ञापत्र (परवाना) के प्रवेश करना निषिद्ध था। गांधीजी ने मजूरों की यह सेना (इसमें २०२७ पुरुष, १२७ स्त्रियाँ, ५७ बच्चे थे) लेकर कानून भंग करने के लिए ट्रांसवाल में प्रवेश करने के उद्देश्य से यात्रा

थी। ६ नवम्बर १९१३ को यात्रा शुरू हुई। यात्रा मार्ग में पहले गांधीजी गिरफ्तार हुए पर अदालत से छोड़ दिये गये और फिर यात्रा करती हुई इस मजूर-सेना से आ मिले। पर एक-दो दिन बाद ही फिर गिरफ्तार कर लिये गये, मजूरों की सारी टोली भी गिरफ्तार हो गई। उधर श्री पोलक, केलेनबेक भी गिरफ्तार हुए। इस युद्ध में कितने ही अंग्रेज एवं युरोपियनों ने सहायता की थी। जल में लोगों को काफी कष्ट दिया गया, स्त्रियों के साथ भी कोई रियायत नहीं की गई।

इस समय भारत से रुपयों की सहायता भी खूब मिल रही थी और सत्याग्रह का शान्ति-पूर्ण ढंग, उसकी कार्य शैली देख भारत सरकार तथा कितने ही अंग्रेजों की उसके साथ सहानुभूति हो गई थी। उधर गोखले ने श्री एण्डरूज और पियर्सन को सहायता के लिए दक्षिण अफ्रीका भेज दिया था। अब तक ट्रांसवाल सरकार भी परिस्थिति के गुरुत्व को समझ चुकी थी। इसलिए उसने 'प्रेस्टीज' (आत्माभिमान) की रक्षा के लिए एक कमीशन नियुक्त किया। नियुक्त होते ही कमीशन ने सिफारिश करके गांधीजी, पोलक तथा केलेनबेक को छोड़वा दिया। इस समय श्री एण्डरूज ने बड़ा परिश्रम किया। उन्होंने दोनों दलों में समझौता कराने का बड़ा यत्न किया। फलत गांधीजी एवं जेनरल स्मट्स के बीच पत्र-व्यवहार शुरू हुआ। २१ जनवरी १९१४ को गांधीजी ने जो पत्र लिखा था उसमें समझौते की निम्नलिखित आवश्यक शर्तें थीं—

समझौते की बातचीत

१ तीन पौण्ड का कर उठा लिया जाय।
२ हिन्दू, मुसलमान इत्यादि धर्मों की विधि से किये गये विवाह कानूनन जायज समझे जायँ।
३ शिक्षित भारतीय इस देश में प्रवेश पा सकें।
४ आरेंजिया के विषय में हुए इकरारों में सुधार किया जाय।
५ यह विश्वास दिलाया जाय कि प्रचलित कानूनों पर इस प्रकार

अमल किया जायगा जिससे वर्तमान अधिकारों की हानि न हो।

उसी दिन पत्र का उत्तर मिला। बंदियों को तो उसी दिन छोड़ दिया गया और अन्य बातों के बारे में कमीशन की रिपोर्ट निकलने के बाद विचार करने का वचन दिया गया। इस आश्वासन पर सत्याग्रह स्थगित किया गया।

समझौता

कमीशन की रिपोर्ट निकली और फलस्वरूप सरकार ने कानून बनाकर १ तीन पौण्ड वाला कर रद्द कर दिया, २ जो विवाह भारत में कानून की दृष्टि में जायज हों, वे यहाँ भी जायज करार दिये गये। कुछ अन्य बातों का लिखित विश्वास दिलाया गया। फलत जो युद्ध १९०६ में शुरू हुआ था वह आठ वर्ष बाद, ३० जून १९१४ को समाप्त हुआ।

× × ×

विदाई

अब दक्षिण अफ्रीका का काम खतम हो चुका था इसलिए गाँधीजी ने भारत जाने का निश्चय किया। इस समय गोखले इँग्लैण्ड में थे। वह वहाँ बीमार पड़ गये। उनकी इच्छा इनसे मिलने की थी। इधर गाँधीजी की तबियत भी अच्छी न थी। रात दिन के परिश्रम, तपश्चर्या एवं कठोर जीवन ने शरीर को कमजोर कर दिया था। फिर भी वह श्री केलेनबैक एवं पत्नी के साथ इँग्लैण्ड को रवाना हुए। उस समय दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों ने आँसू भरी आँखों से इन्हें विदा किया। ये लोग ६ अगस्त को इँग्लैण्ड पहुँचे। इससे पहले ही—४ अगस्त को—युरोपीय महायुद्ध की घोषणा हो चुकी थी।

पर इनके पहुँचने के पहले ही गोखले स्वास्थ्य-सुधार के लिए फ्रांस चले गये थे। उधर लड़ाई छिड़ गई थी। इसलिए वहां से कब आवेंगे, इसका निश्चय न था किन्तु गांधीजी को उनसे मिलना था इसलिए यह ठहर गये। इस बीच इन्होंने यह निश्चय किया कि विपत्ति के समय

साम्राज्य सरकार की सहायता करना भारतीयों का कर्तव्य है अतः वहाँ उन्होंने भारतीय विद्यार्थी स्वयंसेवकों का एक दल संगठित किया और घायल सिपाहियों की सेवा शुश्रूषा करने की इच्छा प्रकट की। लार्ड क्रू ने स्वीकार कर लिया। डाक्टरी शिक्षा के लिए डा० केण्टली की देखरेख में क्लास खोला गया और ८० स्वयंसेवक शिक्षा प्राप्त करने के लिए उनमें भरती हुए। छः हफ्ते के बाद परीक्षा हुई। ७९ पास हुए। इन लोगों को सरकारी कवायद सिखाने का भार कर्नल बेकर के सुपुर्द हुआ।

किन्तु कुछ ही दिनों बाद गांधीजी की तबियत बहुत ज्यादा खराब हो गई, पसली में दर्द रहने लगा। बहुत इलाज कराया पर अच्छा न हुआ। उस समय वह दूध इत्यादि बिल्कुल न लेते थे। अन्त में ब्रिटिश अधिकारियों की सलाह से वह भारत लौट आये। श्री गोखले पहले ही भारत लौट आये थे। श्री केलनबैक को जर्मन होने के कारण पासपोर्ट न मिला।

गाँधीजी जब बम्बई पहुँचे तो उनका खूब धमधाम से स्वागत किया गया। फिर वह गोखले के साथ पूना गये। वहाँ भी खूब आदर सत्कार हुआ। इस समय तक फीनिक्स आश्रम के उनके बहुत-से साथी भारत लौट आये थे, इसलिए सबको एक जगह रखकर आश्रम-जीवन बिताने के विचार गांधीजी में दृढ़ होते जा रहे थे। उन्होंने इन साथियों को श्री एण्डरूज के सुपुर्द कर दिया था। श्री एण्डरूज ने उन्हें कुछ दिन गुरुकुल काँगड़ी में रखा और बाद में शान्ति निकेतन भेज दिया था।

पूना से गांधीजी जब राजकोट जा रहे थे तब वीरमगाम की जकात की जाँच में होनेवाली तकलीफों की शिकायतें उनके पास तक पहुँची।

वीरमगाम की जकात

वह बम्बई के गवर्नर लार्ड वेलिंगडन (आजकल के भारत के वायसराय) से मिले। उन्होंने कहा—"भारत-सरकार की ओर से ही देर हो रही है।" फिर इन्होंने भारत-सरकार से पत्र व्यवहार शुरू किया। बाद में वायसराय लार्ड चेम्सफर्ड

से मिले। उनको तो इन बातों का कुछ पता ही न था। उन्होंने तुरत टेलीफोन करके वीरमगाम से कागज पत्र मँगवाये और थोड़े ही दिनों बाद जकात रद्द कर दी।

राजकोट से गांधीजी अपने साथियों से मिलने शान्ति निकेतन गये। वहा कुछ दिन रहने का इरादा था पर शोघ्र ही इन्हें पूना से गोखले के

गोखलेका देहावसान

देहावसान का समाचार मिला। इससे इनके हृदय पर बडी ठेस लगी। ये तुरन्त पत्नी एव भतीज स्व० मगनलाल भाई को लेकर पूना को रवाना हुए। वहाँ से फिर अपने मित्र डा० प्राणजीवन मेहता से मिलने रगून गये। वहाँ से लौटकर हरद्वार के कुम्भ में एक टुकडी लेकर यात्रियों की सेवा का कार्य किया। यह सब तो चल ही रहा था पर मुख्य बात यह थी कि यह सदा आत्म-निरीक्षण किया करते थे और फलत इनकी आत्मा दिन दिन निर्मल और पवित्र हो रही थी। जहा-जहा ये जाते, स्वागत सत्कार में बडा आडम्बर होता। यद्यपि यह फल इत्यादि सात्विक चीजें ही खाते थे पर उसमें भी तरह तरह की चीजें पकनी और लोगों को परिश्रम भी पडता था। सत्यार्थी को यह बात कैसे प्रिय लग सकती थी? इसलिए इन्होंने चौबीस घण्टों में पाच चीजों से अधिक न खाने और रात्रि म भोजन न करने का व्रत लिया और आज तक इसका पालन कर रहे हैं।

× × ×

मैं ऊपर लिख चुका हूँ कि गांधीजी का विचार अपने साथियो को लेकर एक आश्रम स्थापित करने एव उसम सरल सात्विक जीवन बिताने

सत्याग्रह आश्रम का जन्म

का था। कुछ लोगों ने हरद्वार में, कुछ ने वैजनाथ धाम मे, कुछ ने राजकोट में खोलने की सलाह दी। इसी बीच यह अहमदाबाद से गुजरे तो वहा के मित्रों ने अहमदाबाद को चुनने का आग्रह किया और आश्रम के खर्च का भार भी अपने ऊपर ले लिया। फलत अहमदाबाद जिले के कोचरब नामक

स्थान में मकान लिया गया। 'सत्याग्रह-आश्रम' नाम रखा गया क्योंकि सत्य की पूजा एवं सत्य की शोध ही उनका लक्ष्य था। २५ मई १९१५ को आश्रम की स्थापना हुई। जो लोग शामिल हुए उनमें तामिल एवं गुजराती लोगों की अधिकता थी। वे एक ही भोजनशाला में भोजन करते थे और इस तरह रहने का प्रयत्न करते थे मानो वे एक ही कुटुम्ब के हों। इसमें अछूतों को भी रखने का नियम रखा गया था। इसके कारण इसे बहिष्कार इत्यादि की कितनी ही झंझटें झेलनी पड़ीं पर अपने धर्म में गांधीजी एवं अन्य आश्रमवासी अचल रहे।

१९१४ ई० में नेटाल के गिरमिटियों पर से ३ पौण्ड का कर उठा लिया गया था पर गिरमिट प्रथा (जिसके अनुसार ५ या कम वर्ष की मजूरी के इकरार पर मजूर भारत से भेजे जाते थे) का अन्त न हुआ था। १९१६ ई० में मालवीयजी ने बड़ी धारा सभा में यह प्रश्न उठाया। फरवरी १९१६ ई० में उन्होंने इस प्रथा को उठा देने का कानून कासिल में पेश करने की इजाजत वाय सराय से मांगी पर उन्होंने न दी। इसलिए भारत में फिर आंदोलन शुरू हुआ। स्थान स्थान पर सभाएँ हुई और अन्त में सत्याग्रह करने का भी निश्चय हो गया। ३१ जुलाई तक का समय सरकार को दिया गया। सरकार झगड़ा मोल लेना नहीं चाहती थी इसलिए उसने ३१ जुलाई के पहले ही कुली प्रथा बन्द करने की घोषणा प्रकाशित कर दी।

गिरमिट प्रथा

चम्पारन की समस्या

इधर जब से गांधीजी भारत आये थे, प्रयत्न कर रहे थे कि कांग्रेस के दोनों दल—नरम गरम—मिल जायें। १९१६ ई० के दिसम्बर में लखनऊ में महासभा का अधिवेशन हुआ। उसमें दोनों दलों में समझौता हो गया। इस समय बिहार में नील की खेती करनेवाले गोरों का अत्याचार जोरों से बढ़ा हुआ था। लागों के अनुरोध से यह बिहार गये। वहाँ जाकर अच्छी तरह इस मामले की जाँच

'तीन कठिया'

थी। मालूम हुआ कि 'तीन कठिया' की प्रथा से किसानों को बड़ा कष्ट है। इसके अनुसार चम्पारन के किसान अपनी ही जमीन के $\frac{3}{20}$ हिस्से में नील की खेती जमीन के असली मालिक के लिए करने को कानूनन बाध्य थे।

पटना में राजेन्द्र बाबू और ब्रजकिशोर बाबू से सलाह करने के बाद १५ अप्रैल १९१७ ई० को यह मुजफ्फरपुर पहुँचे। वहाँ एक व्याख्यान हुआ। फिर वहाँ से १६ अप्रैल को चम्पारन के मोतीहारी शहर में पहुँचे। वहाँ जिला मजिस्ट्रेट की नोटिस मिली कि २४ घण्टे के अन्दर जिला छोड़ दो। गाँधीजी ने इसकी अवज्ञा की, मुक़दमा चला। इन्होंने वायसराय तथा मालवीयजी इत्यादि को सारी स्थिति समझाते हुए तार दे दिया था। जब मुक़दमा चल रहा था तभी सरकार की आज्ञा मिली कि गाँधी को सब स्थानों में घूमकर जाँच करने की स्वतन्त्रता दी जाय। तब गाँव गाँव घूमकर इन्होंने वहाँ की स्थिति का गहरा अध्ययन किया किसानों के बयान लिये। इस प्रकार लगभग ७००० किसानों के बयान लिये गये।

मजिस्ट्रेट का हुक्म

सबसे पहले गाँवों में बच्चों के लिए कई पाठशालाएँ खोली गईं। बम्बई से गाँधीजी ने कुछ बहनों एवं भाइयों को बुलवाया। बाबा साहब सोमण, अवन्तिका बाई गोखले, आनन्दी बाई, मणि बहन, कस्तूर बाइ, देवदास इत्यादि के नाम इनमें उल्लेखनीय हैं। दवा दारू के लिए भारत सेवक समिति से डा० देव को बुला लिया। ये लोग बच्चों को शिक्षा देते,—गाँव की सफाई करते तथा सेवा एवं शिक्षा द्वारा ग्रामवासियों में सुधार करते।

तैयारी

उधर इस हलचल से निलहे गोरे उत्तेजित होने लगे पर इससे गाधीजी का काम रुका नहीं। वह गवर्नर सर एडवर्ड गेट से मिले। उन्होंने जाँच समिति नियुक्त करने का वचन दिया। फलत सर फ्रेंक स्लाइ की अध्यक्षता में जाँच-समिति बैठी। गांधीजी भी उसके सदस्य थे। समिति ने किसानों की तमाम

जाँच समिति

शिकायतें स
निलह गोरे अ
'तीन कठिया'
विरोध किया पर

गी) ने जाच करके रिपोर्ट की थी।
चल रहा था। सरकार के पास
था। इस समय गांधीजी
इसलिए सभा की ओर
दिये पर बदले
स्पष्ट थी।
साल

कष्ट निवारण

गोरों के राज्य का
दिन बिहार में और
को दूर करने का
की जनता में उनका
तीस चालीस हजार आ
प्रकार धीरे धीरे यह
करते जा रहे थे।

स्थान प्राप्त

× × ×

चम्पारन का काम चल ही रहा था कि मजूर संघ के सम्बन्ध में अहमदाबाद से श्रीमती अनुसूया बहन का पत्र मिला। यह १९१८ की शायद फरवरी थी। मजूरों को वेतन बहुत कम दिया जाता था, और भी कई असुविधाएँ उन्हें थीं। मजूरों की माग थी कि वेतन बढ़ाया जाय। मजूरों के साथ सदा से गांधीजी की सहानुभूति थी। इसलिए छुट्टी पाते ही यह तुरन्त अहमदाबाद पहुँचे। जाच करने पर मजूरों का पक्ष इन्हें मजबूत मालूम हुआ। पहले इन्होंने मिल मालिकों को बहुत समझाया कि पंचायत द्वारा निर्णय करा लें पर उन्होंने इस पर ध्यान न दिया। अत इन्होंने मजूरों को हड़ताल करने की सलाह दी तथा सदा अहिंसा पर दृढ़ रहने का उपदेश किया। इस हड़ताल के सिलसिले में ही वल्लभभाई तथा शंकरलाल बैंकर से इनका परिचय हुआ। रोज मजूरों की सभा होती, जुलूस

मजदूरों की सेवा

की। मालूम हुआ कि 'तीन कठिया' की ु्श में कमजोरी आने लगी। काम इसके अनुसार चम्पारन के किसान इ भी हुई। इससे दुःखित हो गांधी जी की खेती जमीन के असली माि दिन हड़ताल का १८ वाँ दिन था। अन्त

पटना में राजेन्द्र बाबानन्द शकर ध्रुव (जो आज-कल काशी हिन्दू
१५ अप्रैल १९१७ ई प्रो वाइस-चांसलर हैं) को पंच मानना दोनों पक्षों
मजिस्ट्रेट का - ना। हड़ताल समाप्त हुई, समझौता हो गया।

धर यह सब हो रहा था, उधर कोचरब (जहा सत्याग्रह-आश्रम खोदिा) में प्लेग फैल गया। इसलिए आश्रम को वहा से हटाने की

साबरमती आश्रम की नाव

आवश्यकता मालूम पड़ी। प्रयत्न करने पर साबरमती जल के पास ही जमीन मिल गई। वहा खेमे डालकर काम निकाला जाने लगा। आगे चलकर यहीं स्थायी रूप से आश्रम की नींव पड़ी और दिन दिन उसका रूप विस्तृत होता गया।

खेड़ा में सत्याग्रह

घटनाएँ कुछ इस क्रम से घट रही थीं कि गांधी जी को कभी विश्राम न मिलता था। एक काम समाप्त होने नहीं पाता था कि दूसरा आ जाता। और ऐसा क्यों न होता? भगवान् तो उन्हें इन घटनाओं एवं कठिनाइयों में डालकर गढ़ रहा था। चम्पारन का काम समाप्त न हुआ था कि अहमदाबाद का मजूरों का काम आया और मजूरों के काम से निपटे ही थे कि दूसरा काम सिर पर आ गया। बात यह थी कि खेड़ा जिले में फसल नष्ट हो गई थी, किसान बुरी हालत में थे। ऐसी हालत में भी लगान माफ नहीं की गई। इससे उनके कष्ट बढ़ गये। चम्पारन में ही वहा आकर हालत देखने एवं राह दिखाने का संदेश गांधी जी के पास पहुँचा था। इसलिए मजूरों के प्रश्न का निपटारा होने के बाद दम मारने की भी फुरसत न मिली और खेड़ा-सत्याग्रह का काम उन्हें उठा लेना पड़ा। इस सम्बन्ध में श्री अमृतलाल ठक्कर (आज-कल

हरिजन-सेवा-संघ के प्रधान मन्त्री) ने जाँच करके रिपोर्ट की थी। कौंसिल में भी प्रयत्न चल रहा था। सरकार के पास प्रतिनिधि-मण्डल भी गया था। इस समय गांधीजी गुजरात-सभा के प्रमुख थे। इसलिए सभा की ओर से उन्होंने कमिश्नर और गवर्नर को अर्जियां दीं, तार दिये पर बदले में अपमान सहना पड़ा एवं धमकियां मिलीं। लोगों की माग स्पष्ट थी। कानून यह था कि यदि फसल चार आने से कम हो तो उस साल जमीन-कर माफ होना चाहिए। सरकारी अफसर कहते थे कि फसल चार आने से अधिक हुई है। पर फसल वास्तव में कम हुई थी। लोगों ने इसके प्रमाण दिये पर सरकार क्या मानने लगी? अन्त में सब तरफ से दौड़ धूप कर लेने के बाद गाँधी जी ने सत्याग्रह की सलाह दे दी।

वैध प्रयत्न में असफलता

लोगों ने सत्याग्रह की प्रतिज्ञा ली। गांव-गांव घूमकर लोगों को सत्याग्रह का रहस्य समझाया जाने लगा। देखते-देखते आन्दोलन ने उग्र रूप धारण किया। सरकार भी दमन पर तुल गई। बहुतों के ढोर बेच दिये गये, घर का जो माल मन में आया उठा ले गये और किसी किसी गाँव की सारी फसल जब्त करली गई। लोग गिरफ्तार किये गये। अब सरकार ने देखा कि दमन से यह आन्दोलन न दबेगा तो वह इस बात पर राजी हो गई कि धनी किसान अपने लगान दे दें और गरीबों का लगान माफ कर दिया जाय। इस बात पर सत्याग्रह समाप्त हुआ। इस सत्याग्रह से गुजरात के किसानों में जागृति आई और उन्हें अपनी शक्ति का भान हुआ।

सत्याग्रह

इन दिनों युरोपीय युद्ध जोरों पर था। गाँधीजी को लगा कि आपत्ति के समय सरकार की सहायता करनी चाहिए। इसी समय वायसराय लार्ड चेम्सफर्ड ने विशेषरूप से परामर्श करने के लिए इन्हें दिल्ली बुलाया। यह गये। इन्होंने सहायता करना तो स्वीकार कर लिया पर वायसराय को एक

महायुद्ध में सरकार की सहायता

पत्र लिखकर लोकमान्य तिलक एवं अली-बंधुओं के इस सभा में न बुलाने के बारे में खेद प्रकट किया तथा जनता की राजनीतिक एवं मुसलमानों की खिलाफत सम्बन्धी माँगों का उल्लेख किया।

रंगरूटों की भरती के लिए इन्हें गाँव-गाँव दौड़ना पड़ता था। रात दिन के परिश्रम के कारण स्वास्थ्य खराब हो गया। फलस्वरूप यह एकाएक बीमार पड़े। पेट दर्द और संग्रहणी का भयंकर दौरा हुआ। कमजोरी बढ़ गई। बार बार टट्टी जाने के कारण बुखार आ गया, बेहोशी भी रहने लगी। डाक्टर आये पर इतने खतरे के बीच भी इन्होंने दवा लेने से इन्कार कर दिया। शरीर दिन दिन कमजोर होता जा रहा था। ठठरी रह गई थी। बीमारी इतनी बढ़ गई कि गाँधीजी को जीने की आशा भी न रही। फिर केलकर नामक एक सज्जन के बरफ का उपचार करने से लाभ हुआ और धीरे धीरे रोग दूर हो गया। जब यह बीमार थे तभी जर्मनी की पूरी हार हो चुकी थी। इसलिए कमिश्नर ने इन्हें कहला दिया कि अब रंगरूटों की भरती करने की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार इस चिंता से यह छूट गये।

× × ×

अफ्रीका से लौटने के बाद गाँधीजी राष्ट्रीय महासभा के कामों में भी खूब रस लेने लगे थे। जब अगस्त १९१७ में भारत में श्री माण्टेगू के आने की घोषणा हुई तो गाँधीजी द्वारा संगठित गुजरात-सभा ने नवम्बर में यह योजना निश्चित की कि काँग्रेस और होमरूल लीग की ओर से उन्हें एक अर्जी दी जाय जिस पर अधिक से अधिक आदमियों के दस्तखत लिये जायँ। काँग्रेस एवं लीग को यह प्रस्ताव पसन्द आया और फलतः दिल्ली में श्री माण्टेगू को यह अर्जी भेंट की गई। इसमें हजारों आदमियों के दस्तखत थे।

माण्टेगू को अर्जी

इसी प्रकार १७ सितम्बर १९१७ को उन्होंने 'बाम्बे को आपरेटिव कान्फ्रेंस' और ३ नवम्बर को गुजरात राजनीतिक सम्मेलन एवं गुजरात

शिक्षा-सम्मेलन के सभापति का कार्य किया। दिसम्बर में कलकत्ता काँग्रेस के साथ समाज-सेवा संघ का पहला अधिवेशन हुआ। उसके भी यही अध्यक्ष थे।

× × ×

महायुद्ध की समाप्ति हो रही थी। उधर सरकार ने भारतीयों की सेवाओं का उचित पुरस्कार देने के बदले कतिपय हत्याकाण्डों एवं षड्यन्त्रों का बहाना लेकर जनता के अधिकारों में और कमी करने का निश्चय कर लिया था। इसके लिए रौलट कमेटी बैठी और रौलट बिल कौंसिल में पेश हुआ। उसका एक स्वर से सम्पूर्ण भारत में विरोध हुआ था। विरोध की सभाओं की धूम मच गई। एक तहलका मचा हुआ था। जनता की आशाओं पर यह तुषारपात था। उसने आज के दिन पर बड़ी-बड़ी आशाएँ लगा रक्खी थीं। पर ऐसे ही समय वज्रपात हुआ, निराशाओं के बादल छा गये। जब भारत पुरस्कार की आशा करता था तब उसे दण्ड मिला। भारत की सेवा का यह अद्भुत जवाब था। दुनिया के इतिहास में ऐसे उदाहरण इने गिने हैं। पर विधाता को ऐसी ही विषमताओं के बीच तपाकर भारत का भाग्य गढ़ना था। अस्तु, इस भारतव्यापी विरोध की भी सरकार ने उपेक्षा की।

रौलट ऐक्ट

कानून बन गया। गाँधीजी ने वायसराय को बहुत लिखा, आर्जू मिन्नत की पर उसका कुछ खयाल न किया गया। अन्त में विवश होकर सत्याग्रह का निश्चय करना पड़ा। बम्बई में गाँधीजी की अध्यक्षता में केन्द्रीय सत्याग्रह समिति स्थापित हुई। २८ फरवरी १९१९ को गाँधीजी ने वह प्रसिद्ध प्रतिज्ञापत्र निकाला जिसमें इस कानून को न मानने की घोषणा थी। इसपर लोगों के दस्तखत लिये गये। गाँधीजी जनता को तैयार करने के लिए सारे देश में दौरा कर रहे थे। सभाओं की धूम थी। गाँधीजी जहाँ जाते लोगों को सत्याग्रह का मर्म समझाते। पहले ३० मार्च को

सत्याग्रह का निश्चय और तैयारी

सत्याग्रह का दिन निश्चित किया गया था पर बाद में बदलकर ६ अप्रैल की तारीख रखी गई। इस दिन हड़ताल करने, उपवास करने एवं सभा करके इस कानून के प्रति विरोध प्रकट करने का कार्यक्रम रखा गया था। सारे देश में जोरों से हड़ताल हुई। बम्बई, दिल्ली इत्यादि में जनता का जोश देखने लायक था। केन्द्रीय समिति ने जब्त किताबें बेचकर कानून तोड़ने का भी कार्यक्रम रखा। गाँधीजी ने 'सत्याग्रही' नामक एक पत्र बिना रजिस्ट्रेशन दिये निकाला। इसको तथा अन्य जब्त पुस्तकों को (जिनमें उनकी 'सर्वोदय' एव 'हिंद स्वराज्य' नामक पुस्तकें थीं) जोरों से बिक्री हुई। लोगों ने पचास पचास रुपये देकर उन्हें खरीदा और यह सब आय सत्याग्रह के काम में लगाई गई।

हड़ताल और कानून भंग

तिथि परिवर्तन की सूचना देर से पहुँचने के कारण दिल्ली में ३० मार्च को ही हड़ताल हुई थी। उस समय से दिल्ली एवं पंजाब के कार्यकर्ता गाँधीजी को तुरन्त आने के लिए लिख रहे थे। ७ अप्रैल की रात को वह बम्बई से दिल्ली के लिए रवाना हुए। १० तारीख को प्रातःकाल कोसी में ट्रेन में ही शान्ति भंग की सम्भावना बताकर पंजाब एवं दिल्ली की सीमा में प्रवेश न करने की आज्ञा उनपर तामील की गई। उन्होंने आज्ञा मानने से इन्कार किया। फलतः गिरफ्तार करके वह बम्बई लाये गये और वहाँ छोड़ दिये गये। वहाँ उन पर यह आज्ञा तामील की गई कि बम्बई प्रान्त के अन्दर ही अपना कार्यक्षेत्र सीमित रखें। उधर उनकी गिरफ्तारी से देश में बड़ी उत्तेजना फैली। कई स्थानों में दंगे हो गये। गांधीजी ने शुद्ध सत्य के पालन की दृष्टि से अहिंसा को आन्दोलन का मूलाधार रखा था। इसलिए इस प्रकार दंगे होने के कारण उन्होंने १८ अप्रैल को आन्दोलन स्थगित कर दिया। बहुतेरे साथी इससे नाराज भी हुए पर सत्याग्रही तो अपने धर्म को कैसे छोड़ सकता था? इस समय इन्होंने इन दंगों के कारण तीन दिन का उपवास। भी कीया।

पंजाब में प्रवेश निषेध

पंजाब हत्याकाण्ड

इधर यह सब हो रहा था उधर पंजाब में जो दंगे हुए उसके कारण सरकार ने वहाँ फौजी कानून जारी कर दिया। अमृतसर के जलियाँवाला बाग की सभा में अनेक शान्त निर्दोष व्यक्ति जनरल डायर की गोलियों से भून दिये गये। जमीन निरपराधों के रक्त से रँग गई। स्त्रियों पर भी अत्याचार किये गये। लोगों को नाक के बल चलवाया गया। ऐसा मालूम होता था मानो मध्ययुग का बर्बर शासन पंजाब की भूमि पर उतर आया हो और नंगा नाच रहा हो। इस कत्लेआम की बातें एवं डायर की काली करतूतें ब्रिटिश जाति के मुख पर स्याही की भाँति पुत गई हैं और सदा के लिए पुत गई हैं। खैर, देश विदेश में इन कारनामों के कारण हाहाकार मच गया, बड़ा व्यापक विरोध हुआ। फलत सरकार की ओर से जाँच के लिए हण्टर-कमेटी बैठी। राष्ट्रीय महासभा ने उसका बहिष्कार किया और स्व० मोतीलालजी, देशबन्धु, गांधीजी, अब्बास तैयबजी और श्री जयकर की एक स्वतन्त्र कमेटी जाँच के लिए नियुक्त की। इस कमेटी ने बड़ी सावधानी से जाँच की और जब इसकी रिपोर्ट निकली तो ऐसे रोमांचकारी कृत्यों का पता लगा जो मानव-जाति के इतिहास की अत्यन्त घृणित घटनाओं में गिने जायँगे।

सैनिक शासन

फौजी कानून के अनुसार सैकड़ों पंजाबियों को जेल भेजा गया था। दमन जोरों से हो रहा था पर सार्वजनिक विरोध के कारण सरकार ज्यादा दिन तक वह नीति कायम न रख सकी। फलत दिसम्बर के पहले बहुत से कैदी छोड़ दिये गये। उधर नवीन सुधारों की घोषणा प्रकाशित हो चुकी थी पर वह अत्यन्त असंतोषजनक थी। फिर भी गांधीजी का श्री माण्टेगू में विश्वास था। महासभा के पहले कैदियों को छोड़ देने एवं अली-बंधुओं की रिहाई से उन्होंने समझा था कि सरकार को अपने कार्यों पर पश्चात्ताप

सुधारों का समर्थन

है। इसीलिए अमृतसर कांग्रेस में उन्होंने सुधारों को अपर्याप्त बताते हुए भी उनका समर्थन किया था, यद्यपि देशबंधु, तिलक इत्यादि विरुद्ध थे। पर शीघ्र ही गाँधी को मालूम हो गया कि यह बात गलत है। खिलाफत के मामले में मुसलमानों के साथ अन्याय हुआ था, उधर

स्वप्न भंग

इंग्लैण्ड में जनरल डायर की निन्दा करने की जगह उसका स्मारक बनाया जा रहा था और उसे थैलियाँ भेंट की जा रही थीं। कांग्रेस का नया संगठन किया गया। सितम्बर १९२० की कलकत्ता की विशेष कांग्रेस में उन्होंने असहयोग आन्दोलन का कार्यक्रम पेश किया जो पास हो गया और दिसम्बर में नागपुर-कांग्रेस ने उस पर स्वीकृति दे दी। फलतः १९२० से देश की स्वाधीनता के इतिहास में स्वावलम्बन के एक नये युग का आरम्भ हुआ।

असहयोग-आंदोलन

गांधीजी इतने दिनों से जो तपस्या एवं साधना कर रहे थे वह सार्वजनिक जीवन में गंगा की पावन धारा की भाँति प्रवाहित हो

अभूतपूर्व जागृति

उठी। वह तूफान आया, वह सामूहिक जागृति दिखाई दी जो भारत के इतिहास में बिल्कुल नई और आश्चर्यजनक थी। अनेक वकीलों ने वकालत छोड़ दी, विद्यार्थियों ने स्कूल-कालेजों का पढ़ा छोड़ा, कौंसिलों एवं अदालतों का जबर्दस्त बहिष्कार हुआ। लोगों ने अपनी उपाधियाँ लौटा दीं। प्रिंस ऑव् वेल्स के आगमन के समय जबर्दस्त हड़ताल हुई। हजारों आदमी जेल गये। इसके पहले से ही गाधीजी 'नवजीवन' और 'यंग इण्डिया' पत्र अहमदाबाद से निकालने लगे थे।

इस बीच मालवीयजी ने वायसराय से मिलकर समझौते का बड़ा प्रयत्न किया पर वायसराय टस से मस न हुए। १९२१ में अहमदाबाद में कांग्रेस हुई। और उसमें गाधीजी सत्याग्रह-आन्दोलन के सर्वेसर्वा (डिक्टेटर) बनाये गये। १४ जनवरी १९२२ ई० को बम्बई में नेताओं

की एक कान्फ्रेंस हुई। इसमें गाँधीजी शामिल हुए पर ऐसी कान्फ्रेंसों से कुछ नतीजा निकलता न देख बारडोली में सत्याग्रह-संग्राम आरंभ करने के निश्चय की सूचना देते हुए भारत सरकार को उन्होंने चुनौती भेज दी।

बारडोली में सत्याग्रह की तैयारियाँ हो ही रही थीं कि युक्तप्रान्त के गोरखपुर जिले में चौरीचौरा का हत्याकाण्ड हो गया। उत्तेजित

चौरीचौरा

जनता ने पुलिस की कार्रवाइयों से त्रस्त हो थाने में आग लगा दी। पुलिस के २२ आदमी मारे गये। गाँधी जी ने, जो अपना प्रत्येक काम अन्तरात्मा की प्रेरणा और प्रभु की साक्षी से करते थे, देखा कि जनता की ऐसी हिंसात्मक मनोवृत्ति के बीच आन्दोलन नहीं चल सकता। और इस घटना को ईश्वरीय चेतावनी समझ, महासभा की कार्य समिति की सलाह से, बारडोली सत्याग्रह स्थगित कर दिया।

गाँधी जी की गिरफ्तारी होने की अफवाह तो बहुत दिनों से फैल रही थी। यहाँ तक कि उन्होंने 'यंग इण्डिया' में राष्ट्र से विदाई भी ले

गाँधी जी की गिरफ्तारी

ली थी और लोगों से अपने निश्चय पर दृढ़ रहने की अपील की थी। अन्त में अफवाह सच्ची हुई। १० मार्च (शुक्रवार) १९२२ को वह साबरमती आश्रम से, 'यंग इण्डिया' के प्रकाशक श्री शंकरलाल बैंकर के साथ, गिरफ्तार कर लिये गये और 'यंग इण्डिया' में प्रकाशित चार लेखों को लेकर उन पर राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया। ११ ता० को मुकदमे की पेशी हुई। मुकदमा सेशन सुपुर्द हुआ। १८ मार्च को सेशन जज श्री सी० एन० ब्रूमफील्ड के सामने मुकदमे की पेशी हुई। इस मुकदमे की तुलना ईसामसीह के मुकदमे से की गई है। गाँधीजी ने स्वयं जुर्म कबूल कर लिया। जज ने उनके दर्शन से अपने को धन्य माना पर कर्तव्य-वश छः वर्ष की सजा दी। जेल में गाँधी जी का जीवन सच्चे सत्याग्रही और तपस्वी का जीवन था।

देश के अँधेरे कोने में पड़े हुए चर्खे को सार्वजनिक जीवन में लाकर भारत के सब से शक्तिमान धंधे को पुनर्जीवित करने एवं हजारों लाखों गरीब भाई-बहनों के पेट में रोटी डालने का श्रेय गाँधीजी को ही है। अपनी सहकर्मिणी गंगा बहन की सहायता से असहयोग आन्दोलन के पहले इन्होंने गाँवों से चर्खे की खोज निकाला और धीरे धीरे इतना विस्तृत खादी आन्दोलन देश में खड़ा कर दिया। आज उसका देशी उद्योग में जो महत्त्व है, उसे सब जानते हैं। वह स्वयं तो अपने एवं अपने साथियों के लिए नित्य कताई को यज्ञ एवं व्रत रूप मानते हैं।

खादी-आन्दोलन

× × ×

महात्मा गाँधी के जेल जाने के बाद धीरे धीरे आन्दोलन शिथिल हो गया। देश में शुरू से एक ऐसा दल था जो राष्ट्रीय कार्य में कौंसिलों का उपयोग करना चाहता था। फलतः देशबन्धु एवं मोतीलाल जी ने स्वराज दल की नींव डाली। इससे बहुत दिनों तक तो कांग्रेस में बड़ा चलन-सी रही और परस्पर कलह का तूफान उठ खड़ा हुआ पर बाद में समझौता हो गया।*

गाँधीजी को जेल में रहते प्रायः दो वर्ष बीते थे कि उनका स्वास्थ्य पुराना हो गया और धीरे धीरे पेट में फोड़ा (अपेण्डाइसिटीज) हो गया। अवस्था ऐसी हो गई थी कि सरकार ने आप्रेशन की जिम्मेदारी अपने पर लेने से इन्कार कर दिया। गाँधीजी ने अपनी जिम्मेदारी पर सासून अस्पताल (पूना) में कर्नल मेडक से आप्रेशन कराया। यह जनवरी सन् १९२४ की बात है। इसके बाद ही वह छोड़ दिये गये।

पेट में फोड़ा और रिहाई

---

* इस दल का वर्णन मोतीलालजी एवं देशबन्धु के चरित्रों में किया गया है।

पर इस समय तक देश की अवस्था बहुत खराब हो गई थी। जहाँ हिन्दू-मुसलमानों में एकता की मधुर कल्कलरविनी बहती थी वहाँ ईर्षा द्वेष का तूफान आया। अनेक स्थानों में दंगे हुए। इनका प्रभाव गाँधीजी के हृदय पर पड़ा। उनके दिल में बड़ी व्यथा हुई। उन्होंने राष्ट्र के प्रायश्चित्त-स्वरूप स्वयं २१ दिन के उपवास की घोषणा की। ११ सितम्बर १९२४ को यह घोषणा प्रकाशित हुई थी जिसे पढ़ कर सारा भारत काँप गया। इस निश्चय की घोषणा, उन्हीं के शब्दों में, यह है—

उपवास की घोषणा

"हाल की घटनाएँ मेरे लिए असहनीय साबित हुई हैं। मेरी असहायता उससे भी असहनीय है। मेरा धर्म मुझे सिखाता है कि जब कोई बहुत अस्थिर एवं दुःखी हो और उस दुःख को दूर न कर पाता हो तो उसे उपवास एवं प्रार्थना का आश्रय लेना चाहिए। मैंने अपने अत्यन्त प्रियजनों के सम्बन्ध में भी ऐसा किया है।

"अब तो मैं यह भी देखता हूँ कि मेरे हर तरह के लिखने और कहने से भी हिन्दुओं और मुसलमानों में एकता नहीं हो सकती। इसीलिए मैं आज से २१ दिन का उपवास आरंभ करता हूँ। ८ अक्तूबर बुधवार को यह पूरा होगा। अनशन के दिनों में पानी और उसके साथ नमक लेने की छूट मैंने रखी है। यह अनशन प्रायश्चित्त के रूप में भी है और प्रार्थना के रूप में भी। यदि केवल प्रायश्चित्त रूप होता तो इसे सर्व साधारण के सामने प्रकाशित करने की आवश्यकता न होती परन्तु इस बात के प्रकट करने का केवल एक ही प्रयोजन है। मुझे आशा है कि मेरा प्रायश्चित्त हिन्दू मुसलमानों से, जो आज तक मेल मिलाप से काम करते आये हैं, आत्मघात न करने के लिए, एक सफल प्रार्थना रूप हो जायगा। मैं तमाम जातियों के नेताओं से, जिनमें अंग्रेज भी शामिल हैं, प्रार्थना करता हूँ कि वे धर्म और मनुष्यता के लिए लाञ्छन रूप इन झगड़ों को मिटाने के लिए एकत्र होकर विचार करें। आज तो ऐसा जान

पडता है मानो हमने ईश्वर को सिंहासन से उतार दिया हो। आइए, हम फिर अपने हृदय रूपी सिंहासन पर उसे अधिष्ठित करें।"

१७ सितम्बर को उपवास शुरू हुआ। इस समय वह दिल्ली में मौलाना मोहम्मदअली के अतिथि थे। इस उपवास की घोषणा से मित्र घबड़ा गये। हकीम अजमलखाँ, मोहम्मदअली, डा॰ अंसारी इत्यादि ने समझाया पर गाँधीजी का कहना था कि 'मेरा अनशन मेरे और प्रभु के बीच का झगडा है। वह टूट नहीं सकता।' इसके साथ ही उन्होंने यह भी लिखा—"मेरा प्रायश्चित्त एक विदार्ण और क्षत-विक्षत हृदय की, अनजान में किये पापों के लिए, क्षमा प्रार्थना है।

अनशन का आरंभ

इन पंक्तियों में गाँधीजी का निर्मल हृदय बोल रहा है, यहाँ हम उनकी साधना का श्रेष्ठ रूप देखते है। इस उपवास का परिणाम यह हुआ कि दिल्ली में सब धर्मों के प्रतिनिधियों का ऐक्य सम्मेलन हुआ। इसमें भारतीय ईसाइयों के धर्म गुरु (मेट्रोपालिटन ऑव् इण्डिया) भी शामिल हुए थे। इससे स्थायी फल तो कुछ न निकला पर तात्कालिक परिणाम यह जरूर हुआ कि भिन्न भिन्न धर्मानुयायियों को एक दूसरे को समझने एवं सम्पर्क में आने का मौका मिला। उपवास निर्विघ्न समाप्त हुआ। यद्यपि इस उपवास ने शारीरिक दृष्टि से गाँधीजी को बहुत कम जोर कर दिया पर उनकी आत्मिक ज्योति और पूँजी बहुत बढ़ गई।

दिसम्बर १९२४ में गाँधीजी बेलगाँव कांग्रेस के अध्यक्ष हुए। उनका भाषण शब्दाडम्बर से बिल्कुल मुक्त, छोटा और काम-काज की बातों से भरा हुआ था। उन्होंने कांग्रेस के दोनों दलों (परिवर्तन-वादी, अपरिवर्तन वादी) में समझौता भी कराया। यहाँ गाँधीजी के प्रयत्न से एक विधायक कार्य क्रम स्वीकृत हुआ। खादी, अस्पृश्यता निवारण और हिन्दू मुस्लिम ऐक्य इसके मुख्य अंग थे। असहयोग आन्दोलन स्थगित हो गया।

बेलगाँव कांग्रेस

गाँधीजी ने अपनी शक्तियाँ विधायक कार्यक्रम की पूर्ति में लगा दीं और उनके प्रयत्नों से खादी कार्य में बड़ी उन्नति हुई। मलाबार में हरिजनों का (वैकम) सत्याग्रह चल रहा था। गाँधीजी के प्रयत्नों से वह भी शान्त हुआ।

उधर मोतीलालजी एवं सर सप्रू के प्रयत्न से सब दलों के नेताओं की एक कान्फ्रेंस हुई। और उसने एक उप समिति इस बात के लिए बनाई कि सर्व सम्मति से राष्ट्रीय माँग, भारत के भावी शासन विधान की रूप रेखा के रूप में, तैयार करे।

राष्ट्रीय माग

फलतः नेहरू रिपोर्ट निकली और लखनऊ के सर्वदल सम्मेलन में स्वीकृत हुई। इसमें औपनिवेशिक स्वराज्य की माग की गई थी। उधर युवक दल पूर्ण स्वतत्रता से कम में सन्तुष्ट होने के लिए तैयार न था। दिसम्बर १९२८ में, मोतीलालजी की अध्यक्षता में, कलकत्ता में कॉंग्रेस का जो अधिवेशन हुआ उसमें यह भेद स्पष्ट दिखाई पड़ा। जवाहरलालजी इत्यादि इस प्रकार की प्रार्थनाओं एवं माँगों से असन्तुष्ट थे पर गाँधीजी के प्रयत्न से यह समझौता हुआ कि यदि एक वर्ष के अन्दर—३१ दिसम्बर १९२९ तक—सरकार राष्ट्र की इस निम्नतम माग को पूरा न कर दे तो कांग्रेस का ध्येय बदलकर पूर्ण स्वतंत्रता कर दिया जाय।

गाँधीजी ने देश में दौरा शुरू किया। कलकत्ता में महात्माजी ने विदेशी कपड़ों की होली जलाई। पुलिस ने उनका चालान किया। मजिस्ट्रेट ने नाममात्र का जुर्माना किया, जो गाँधीजी के बिना पूछे न जाने किसने जमा कर दिया। उस समय गाँधीजी ने कहा कि 'मेरे पास जुर्माना देने के लिए अपना कुछ नहीं है। इसलिए जिसने भी जुर्माना अदा किया हो उसे हम मित्र नहीं कह सकते।'

इधर ये सब घटनाएँ हो रही थीं, उधर मई १९२९ में इंग्लैंड में पार्लमेण्ट का नया चुनाव हुआ। मजूर दल के हाथ में शासन आया। इससे भारत में लोगों की आशाएँ बढ़ गईं क्योंकि वह सदा से भारतीय

आकांक्षाओं के साथ मौखिक सहानुभूति दिखाता आ रहा था। १८ उसने भारत के विषय में कुछ दूरदर्शिता न दिखाई।

साइमन कमीशन

इधर कांग्रेस की दी हुई एक साल की अवधि पूरी होने को आ रही थी। लोगों में असन्तोष बढ़ रहा था। इस समय वायसराय—लार्ड इरविन—सलाह मशविरे के लिए, खास तौर पर, इंग्लैंड गये थे। वहाँ से लौटकर ३१ अक्तूबर १९२९ को उन्होंने घोषणा की कि 'भारत में ब्रिटिश नीति का उद्देश्य धीरे-धीरे भारत को उपनिवेशों की पंक्ति में लाना है।' यह भाषण गोलमाल था, इससे लोगों को सतोष कैसे होता? उधर भारतीय सुधार की समस्याओं की जाँच करने के लिए साइमन कमीशन बैठाया गया, उसमें एक भी भारतीय के न रहने के कारण उसका देशव्यापी विरोध एवं बहिष्कार हुआ। इस विरोध में लिबरल भी शामिल थे। कांग्रेस के नेता चाहते थे कि वायसराय या ब्रिटिश सरकार यह विश्वास दिला दें कि कमीशन की रिपोर्ट निकलने के बाद जो गोलमेज सम्मेलन ('राउण्ड-टेबुल कान्फ्रेंस') होगा उसका उद्देश्य स्वतंत्र औपनिवेशिक मर्यादा के शासन तंत्र की योजना बनाना ही होगा और सरकार उसका समर्थन करेगी। गांधीजी इस सम्बन्ध में २३ दिसम्बर १९२९ को वायसराय से मिले भी पर कुछ तै नहीं हुआ। फलतः दिसम्बर के अन्त में लाहौर कांग्रेस हुई। वे तूफानी दृश्य देखने लायक थे। कांग्रेस ने अपने वचन के अनुसार ३१ दिसम्बर की आधी रात तक प्रतीक्षा की। जब सरकार की ओर से कोई आश्वासन नहीं मिला तो उसने पूर्ण स्वातंत्र्य का प्रस्ताव पास कर दिया। कांग्रेस ने कौंसिलों के बहिष्कार का प्रस्ताव भी पास किया।

२५ जनवरी १९३० को असेम्बली में वायसराय का भाषण हुआ। २६ जनवरी को सारे देश में स्वतंत्रता दिवस मनाया गया जिसमें स्वतंत्रता की घोषणा दोहराई गई। यह

गांधी की ग्यारह शर्तें

कांग्रेस के निश्चय पर देश की स्वीकृति की मुहर थी। वायसराय के भाषण के

उत्तर में गांधीजी ने उनके सामने ११ माँगें रक्खीं। जिनमें मुख्य ये थीं— (१) मादक द्रव्यों का पूर्ण निषेध (२) विनिमय की दर १ शिलिंग ६ पेंस से १ शिलिंग ४ पेंस कर दी जाय। (३) जमीन के लगान में कम से कम ५० प्रतिशत की कमी। (४) नमक-कर हटा दिया जाय। (५) सैनिक व्यय कम से कम ५० प्रतिशत कम कर दिया जाय। ये शर्तें गांधीजी ने पारसी श्री योमनजी को भी लिख भेजी था जो पहले से ही प्रधान मन्त्री श्री रैमसे मैकडानल्ड से समझौते की बातें कर रहे थे।

१९३० का महान् सत्याग्रह-आदोलन

पर इन बातों से क्या होना-जाना था? गाँधीजी इसे जानते थे। अतः उन्होंने राष्ट्र को तैयार करना शुरू किया। १५ फरवरी को अहमदाबाद में कॉंग्रेस-कार्यकारिणी की बैठक हुई। उसने महात्माजी को आन्दोलन के सम्बन्ध में सर्वाधिकार दे दिया। गाँधीजी का पहला काम वायसराय को पत्र लिखना था। यह पत्र उन्होंने रेजीनाल्ड रेनाल्ड नामक एक अंग्रेज युवक के हाथ भेजा। इस कार्य से उन्होंने प्रकट किया कि अंग्रेजों से उनका व्यक्तिगत कोई द्वेष नहीं है। लड़ाई शासन प्रणाली से—सरकार से है। इस पत्र में उन्होंने वायसराय से भारत की माँगों के विषय में अन्तिम अपील की थी और कहा था कि 'यदि १० मार्च तक इसका उत्तर न मिला तो १० मार्च को नमक-कानून भंग करने के लिए मैं कुछ साथियों के साथ आश्रम से प्रस्थान करूँगा।' वायसराय ने अपने उत्तर में गाँधीजी के इस निश्चय पर खेद प्रकट किया और ऐसे खतरनाक पथ पर न चलने की चेतावनी दी। महात्माजी ने उस पर टीका करते हुए लिखा—मैंने घुटने टेककर रोटी की भिक्षा मांगी थी पर मुझे उत्तर में पत्थर का टुकड़ा मिला। अंग्रेज जाति केवल बल के आगे ही झुकना जानती है।"

वायसराय का पत्र

गाँधीजी ने इस यात्रा के लिए आश्रम के केवल ऐसे आदमियों को चुना था जो प्रत्येक दशा में अहिंसात्मक रह सकते थे। इस टुकड़ी में

सब प्रांतों के लोग लिये गये थे। गांधीजी ने प्रतिज्ञा की कि स्वराज मिलने के पहले अब मैं रहने के लिए आश्रम को न लौटूँगा।

महायात्रा

१२ मार्च को, ७९ साथियों के साथ, दाँडी-यात्रा शुरू हुई। यह अद्भुत् दृश्य था। किसी की समझ में न आता था कि यह दुबला पतला आदमी चंद निरख साथियों के साथ ब्रिटिश साम्राज्य से कैसे लड़ाई करेगा। जहाँ-जहाँ यह दल पहुँचता तहाँ-तहाँ सभाएँ होतीं, गांधीजी लोगों को सत्याग्रह का मर्म समझाते। दाँडी पहुँचने तक तो सारा देश उत्साह से भर गया।

इस बीच २१ मार्च को भारतीय कांग्रेस-कमिटी की बैठक हुई जिसने देश को आदेश किया कि महात्माजी की गिरफ्तारी के बाद या ६ अप्रैल से (जो पहले हो) सत्याग्रह शुरू कर दिया जाय।

कानून भंग

६ अप्रैल को दांडी में गांधीजी एवं उनके दल ने नमक कानून भंग किया। सारे देश में सत्याग्रह की धूम मच गई। गिरफ्तारियाँ होने लगीं। अनेक स्थानों में पुलिस ने नमक बनाने में काम आनेवाले बरतनों को फोड़ दिया। कहीं-कहीं जलता नमक सत्याग्रहियों पर डाला गया पर इन सबको स्वयंसेवकों ने वीरता पूर्वक सहन किया। लाठी चार्ज तो साधारण बात हो गई। बम्बई ने इस बार कमाल कर दिया। सैकड़ों मन नमक समुद्री क्यारियों पर धावा बोलकर सत्याग्रही उठा लाते और बाजार में खुले आम बेचते। पैदल एवं अश्वारोही पुलिस की मार से इस कार्य में कितने ही घायल हुए। एक दो जगह गोलियाँ भी चल गईं। ५ मई

गांधीजी की गिरफ्तारी

को गांधीजी गिरफ्तार हुए पर इससे देश में और उत्साह फैल गया। अभी तक केवल नमक कानून भंग किया जा रहा था। कई प्रान्तों में जंगल सत्याग्रह ने जोर पकड़ा। अब अनेक प्रकार के अनुचित कानून तोड़े जाने लगे। कहीं जंगल सत्याग्रह, कहीं नमक सत्याग्रह, कहीं जब्त पुस्तकों की बिक्री, कहीं मादक द्रव्य एवं अंग्रेजी माल पर पिकेटिंग करके लोग

धड़ाधड़ जेल जा रहे थे। सरकार दमन पर तुल गई थी। विशेष कानून (आर्डिनेंस) बनाकर अखबारों के मुँह बंद कर दिये गये, राष्ट्रीय संस्थाएँ गैर-कानूनी करार दी गईं। पर इन सब बातों से आन्दोलन दब न सका। स्त्रियों में इस आन्दोलन से ऐसी जागृति हुई और उन्होंने इस वीरता से अपना हिस्सा लड़ाई में दिया कि भारतीय इतिहास के अत्यन्त गौरवपूर्ण पृष्ठों में उसका वर्णन किया जायगा। जो काम वर्षों का था वह दिनों में हुआ। स्त्रियों ने परदा फाड़ फेंका और उच्च घराने की कोमलाङ्गी बहनें मैदान में निकल आईं। इनसे भारतीय नारी की अत्यन्त तेजस्विनी मूर्ति हमारे बीच प्रकट हुई। उसने अपनी वीरता, कष्टसहिष्णुता और त्याग से पुरुषों को लज्जित कर दिया। यह उन्हीं का उत्साह था जिसने असंभव को संभव कर दिया। शराब ताड़ी इत्यादि की बिक्री नाम मात्र को रह गई। बहुत जगह तो इनके ठेके ही नहीं उठे और जहाँ उठे भी वहाँ बहुत थोड़ी बोली में। कितनी जगह—जैसे दिल्ली में—शराब की दुकानों पर ऐसी पिकेटिंग हुई कि वे प्रायः बंद ही रहीं। विदेशी कपड़ों की बिक्री बिल्कुल घट गई। ज्यादातर प्रान्तों में तो वस्त्र विक्रेताओं का विदेशी स्टाक कांग्रेस की मुहर लगाकर बंद कर दिया गया। इस समय तो ऐसा मालूम होता था मानों देश में कांग्रेस का ही राज है। सरकार को करोड़ों रुपयों का घाटा होने लगा। उधर खीझकर वह आर्डिनेंस पर आर्डिनेंस निकालने लगी। पर इससे आंदोलन में कोई कमी न हुई। अंत में सप्रू जयकर के प्रयत्नों से जेल में ही गाँधीजी, मोतीलालजी, जवाहरलालजी इत्यादि में सलाह मशविरा हुआ। अन्त में वायसराय ने कांग्रेस-कार्यकारिणी के सब सदस्यों को बिना किसी शर्त के छोड़ दिया।

गांधी इर्विन समझौता

इस समय तक करीब एक लाख आदमी जेल जा चुके थे। अस्तु, अन्त में गाँधीजी और लार्ड इर्विन की कई दिन की बातचीत के बाद सरकार और कांग्रेस के बीच समझौता हुआ। सत्याग्रही कैदी छोड़ दिये गये, कराची में

धूम धाम से काग्रेस हुई और उसके निश्चयों के अनुसार काँग्रेस के एक मात्र प्रतिनिधि की हैसियत से गांधीजी द्वितीय गोलमेज-सम्मेलन में सम्मिलित हुए।

पर सरकार की मनोवृत्ति तो वही थी। उसमें कोई परिवर्तन न हुआ था। अकेले लार्ड इर्विन के भले आदमी होने से भारत-शासन में क्या उलट फेर हो सकती थी? उधर गांधीजी इंग्लैण्ड गये, इधर युक्तप्रांत के किसानों की लगान में कमी करने की माँगों को ठुकराकर, तथा सीमाप्रान्त और बंगाल में आर्डिनेंस जारी कर, सरकार ने स्थिति विषम कर दी। इससे युक्तप्रांत में किसानों का आर्थिक सत्याग्रह जारी करना पड़ा। इतने दिनों तक महात्माजी गोलमेज सम्मेलन के सम्बन्ध में इंग्लैण्ड में रहे। यों तो कितने ही भारतीय प्रतिनिधि सम्मेलन में गये थे पर जिस निर्भीकता से गांधीजी ने काम लिया और विषय एवं परिस्थिति को स्पष्ट शब्दों में व्यक्त करने और कराने की जो आकांक्षा एवं उत्कण्ठा उन्होंने प्रकट की, वह किसी दूसरे में देखी न गई। इंग्लैण्ड में उनका खूब स्वागत हुआ। जनता ने, मजूरों ने उन्हें खूब अपनाया। बड़े बड़े मनीषी एवं प्रत्येक क्षेत्र के प्रतिष्ठित पुरुषों के सम्पर्क में आये पर इन सब बातों के होते हुए भी उनपर यह तो स्पष्ट हो ही गया कि सरकार भारत को वास्तविक अधिकार देने को उत्कण्ठित नहीं है कोरे शब्द-जाल को लेकर वह चलती है। वहाँ से वह बहुत निराश होकर लौटे। वस्तुतः वह युरोप के अन्य देशों में भी जाना चाहते थे पर भारत से उनके शीघ्र लौट आने के लिए पत्र और तार मिल रहे थे अतः फ्रांस में प्रसिद्ध शान्तिप्रिय कलाविद् और विचारक रोम्याँ रोलाँ से मिलकर वह भारत लौट आये।

गांधीजी इंग्लैंड में

गांधीजी के लौटने पर तुरन्त ही काग्रेस-कार्यकारिणी की बैठक बम्बई में करने का निश्चय हुआ था। यद्यपि युक्तप्रांत में किसानों का सत्याग्रह चल रहा था और उधर कई प्रांतों में दमन भी चल रहा था पर गांधीजी की इच्छा

लौटने पर

शान्ति पूर्वक दोनों पक्षों का ठीक ठीक भाव प्राप्त करने की थी। इसी समय कांग्रेस-कार्यकारिणी की बैठक में शरीक होने के लिए बम्बई जाते समय जवाहरलालजी गिरफ्तार कर लिये गये। उनपर इलाहाबाद न छोड़ने की आज्ञा तामील की गई थी पर यह अनुचित थी क्योंकि उनकी पत्नी बम्बई में बहुत ज्यादा बीमार थीं, दूसरे कांग्रेस के प्रधान मंत्री होने के कारण कांग्रेस सम्बन्धी अधिकांश पत्र उन्हीं के पास थे। युक्त प्रान्त की समस्या पर ठीक तौर से विचार करने के लिए युक्तप्रान्तीय कांग्रेस कमिटी के अध्यक्ष श्री शेरवानी भी बम्बई जा रहे थे, उन्हें भी जवाहरलाल की भाँति ही, उसी जुर्म में गिरफ्तार किया गया। इससे बड़ी उत्तेजना फैली। लोगों ने समझा कि सरकार अपने वादों पर स्थिर नहीं है और दमन पर उतारू हो गई है। इतना सब होते हुए भी

फिर सत्याग्रह

गाँधीजी ने वायसराय (लार्ड विलिंगडन) से मिल कर देश एवं सरकार की स्थिति पर बातचीत करने की इजाजत माँगी। यह इजाजत भी नहीं मिली। वस्तुतः सरकार ने लड़ाई की सब तैयारी पहले से ही कर ली थी। मजबूर होकर कांग्रेस को फिर सत्याग्रह आन्दोलन जारी करना पड़ा। इस बार सरकार ने बड़े वेग एवं कड़ाई से दमन आरम्भ किया। न केवल कांग्रेस संस्थाएँ—वरन् सब प्रकार की राष्ट्रीय संस्थाएँ जिनसे किसी प्रकार की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सहायता कांग्रेस के काम में मिलती थी—गैर-कानूनी करार दे दी गईं। बहुतेरे छात्र संघ, स्वदेशी संघ, खादी भण्डार तक इस लपेट में आ गये। गैर-कानूनी करार देकर ही सरकार रह गई हो सो बात भी नहीं, इनमें से अधिकांश पर उसने कब्जा कर लिया। सत्याग्रहियों को भाड़े पर मकान देने के लिए कितने ही आदमी गिरफ्तार किये गये, हड़ताल करने के कारण कितने ही दुकानदारों पर जुर्माना किया गया। अखबारों में सत्याग्रह की खबरें छापना, सत्याग्रहियों की तस्वीर छापना जुर्म करार दिया गया। युक्त

वस्था के शासन की जगह भय और आतंक का राज्य शुरू हुआ। यह कॉग्रेस के संगठन एवं जनता पर उसके अधिकार का द्योतक है कि ऐसे घोर दमन के युग में भी बराबर आन्दोलन चलता रहा। डेढ़ वर्ष में (१९३२ के मई तक) साठ हजार से अधिक आदमी जेल गये।

अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक अवस्था की खराबी, किसानों की दुर्बल स्थिति, देश में व्यापार की गिरी दशा के कारण १९३३ से सत्याग्रह आन्दोलन की गति धीमी पड़ने लगी। इसका एक मुख्य कारण नेताओं की अनुपस्थिति थी और दूसरा कारण यह कि सरकार ने युक्तप्रान्त में किसानों की इच्छा की बहुत करके पूर्ति कर दी। फिर इतने लम्बे युद्ध में सदा एक से उत्साह की आशा ही कैसे की जा सकती है? फिर इस बार आन्दोलन में प्रदर्शनों के अभाव एवं कानूनी बाधाओं के कारण सच्ची खबरें न मिलने से भी जनता अन्धकार में रही। तब भी किसी न किसी रूप में आन्दोलन हुआ। १९३३ में कलकत्ता में श्रीमती नेली सेन गुप्त की अध्यक्षता में कांग्रेस हुई। मालवीयजी इसके अध्यक्ष चुने गये थे पर वह रास्ते में ही गिरफ्तार कर लिये गये। इस सम्बन्ध में और भी बहुत सी गिरफ्तारियाँ हुई पर प्रायः सब आदमी कुछ दिनों बाद छोड़ दिये गये। कांग्रेस का आन्दोलन तो चलता रहा पर कानूनी बाधाओं के कारण उसका रूप बड़ा विकृत एवं गुप्त हो गया।

१९३३ में

× × ×

अस्पृश्यता को गाँधीजी सदा से हिन्दू धर्म एवं मनुष्यता का कलंक मानते रहे हैं। उनका कहना है कि सवर्ण हिंदुओं ने उनके साथ ऐसा जनक एवं घृणास्पद व्यवहार करके अपने को नीचे गिरा लिया है, उन्हें इसका प्रायश्चित्त करना चाहिए। जहाँ तक गाँधीजी का सम्बन्ध है उन्होंने अपने जीवन में कभी अस्पृश्यता को स्थान नहीं दिया। आश्रम में हरिजनों को कुटुम्बी की तरह उन्होंने अपनाया था। उनकी सेवा उन्हें बड़ी प्रिय थी। उनके प्रयत्नों से

हरिजन सेवा

१९२४ से ही कांग्रेस ने अस्पृश्यता निवारण को अपना एक मुख्य विधायक कार्यक्रम बनाया था। धीरे धीरे काम चल रहा था पर संतोषजनक नहीं था। १९३१ में जब वह गोलमेज-सम्मेलन में गये थे तब (१३ नवम्बर १९३१) अल्प-संख्यक जातियों के विशेष प्रतिनिधित्व पर बोलते हुए उन्होंने हरिजनों को—अछूतों को—अलग प्रतिनिधित्व देकर सदा के लिए हिंदुओं से उनका अलगाव कर देने की नीति की जबर्दस्त टीका की और यह भी कह दिया कि ऐसे किसी प्रयत्न का मैं प्राणों की बाजी लगा कर भी विरोध करूँगा। पर उस समय किसी ने इस बात पर ज्यादा ध्यान न दिया था और सरकार ने तो बिल्कुल न दिया। इधर जब दूसरे सत्याग्रह आंदोलन के सिलसिले में गांधी जी जेल में थे तभी उन्हें पता चला कि सरकार शीघ्र ही जातिगत प्रतिनिधित्व के बारे में निर्णय करेगी। इसलिए ११ मार्च को उन्होंने भारत सचिव सर सेमुएल होर को पत्र लिखा जिसमें अस्पृश्यों की समस्या पर विशेष चिन्ता प्रकट करते हुए यह सूचना दी कि यदि सरकार अपने निर्णय में इन 'अस्पृश्य' जातियों के लिए अलग प्रतिनिधित्व की व्यवस्था करेगी तो मैं अपनी पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार आमरण उपवास शुरू करूँगा।

प्रायोपवेशन का आरम्भ

अगस्त में ब्रिटिश सरकार की ओर से प्रधान मन्त्री श्री रैमजे मैकडानल्ड का निर्णय प्रकाशित हुआ, जिसमें अस्पृश्यों के लिए गोलमोल योजनाएं थीं। नमक मिर्च भर लगा था पर रूप वही था जिसके विरुद्ध गांधीजी ने अपनी सम्मति प्रकट की थी। इसलिए १८ अगस्त को उन्होंने प्रधान मन्त्री को पत्र लिखकर सूचित किया कि २१ सितम्बर से मेरा आमरण अनशन शुरू होगा। और तबतक वह भंग न होगा जबतक कि उस निर्णय को सरकार बदल न दें। प्रधान मंत्री ने भी गोलमोल उत्तर दिया और निर्णय में परिवर्तन करने से इन्कार कर दिया। इसलिए २० सितम्बर को १२ बजे दिन से यह आमरण उपवास—प्रायोपवेशन—

अब्बास तैयबजी की लड़की द्वारा बनाये हुए निम्न लिखित भजन के साथ आरम्भ हुआ—

उठ जाग मुसाफिर भोर भया, अब रैन कहाँ जो सोवत है ?
जो जागत है सो पावत है, जो सोवत है सो खोवत है। उठ० ॥
टुक नींद से अँखियाँ खोल जरा
और अपने रब से ध्यान लगा
यह प्रीति करन की रीति नहीं, रब जागत है तू सोवत है।
उठ जाग मुसाफिर भोर भया, अब रैन कहाँ जो सोवत है ?
जो कल करना है आज करलें,
जो आज करना है, अब करले
जब चिड़ियों ने चुँग खेत लिया, फिर पछताये क्या होवत है ?
उठ जाग मुसाफिर भोर भयो, अब रैन कहाँ जो सोवत है ?

ज्योंही सारा पत्र—व्यवहार प्रकाशित हुआ सारे भारत में तहलका मच गया। मित्रों का आग्रह गाँधीजी को उनके पथ से विचलित न कर सका। उधर सरकार भी तनी हुई थी। इस

हलचल

बीच एक मात्र उपाय यही था कि उच्चवर्ग के हिंदुओं एवं अछूतों के विभिन्न दलों के नेताओं पर परस्पर महात्माजी के संतोष के लायक समझौता हो जाय क्योंकि सरकार ने अपना निर्णय करते समय कहा था कि यह निर्णय तबतक के लिए है जबतक तत्सम्बन्धी जातियों या दलों के नेता स्वयं कोई समझौता न कर लें। बड़ी दौड़ धूप के बाद पूना में सवर्ण हिंदू नेताओं और अछूत नेताओं के बीच एक

पूना का समझौता

समझौता हुआ। इसके अनुसार प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओं में सारे भारत से कुल १४८ (बंगाल ३०, बम्बई सिन्ध १५, मद्रास ३०, युक्तप्रांत २०, पंजाब ८, बिहार उड़ीसा १८, मध्यप्रांत २०, आसाम ७) सदस्य चुनने का अधिकार अस्पृश्य जातियों को दिया गया और संयुक्त निर्वाचन की शर्तें रखी गईं।

यद्यपि इसमें भी स्थान सुरक्षित रखा गया था और यह समझौता भी गांधीजी की शर्तों की पूर्णत पूर्ति नहीं करता था फिर भी इसकी अन्त भावना उनकी माँग के अनुकूल थी। इसलिए उन्होंने इसे स्वीकार कर लिया और २६ सितम्बर को सरकार ने भी इसे स्वीकार कर, स्वीकृति की सूचना गाधीजी को दे दी। यह सूचना गाधीजी को ४ बजे मिली। इस समय श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर भी पहुँच गये थे। उनके तथा अन्य मित्रों एव स्नेहियों के सामने २६ सितम्बर को ५ बजे गाँधीजी ने उपवास भग किया। सरकार ने माता कस्तूर बा को उपवास काल में गाँधीजी की सेवा के लिए पहले ही छोड दिया था। उपवास भग के लिए श्रीमती कमला नेहरू ने दो मीठे नीबुओं का रस निचोडकर कस्तूर बा को दिया। उन्होंने गाँधीजी को दिया। उसे काँपते हाथों से धीरे धीरे गाँधीजी पी गये। इस प्रकार यह उपवास समाप्त हुआ। इसके बाद अस्पृश्यता निवारण का आन्दोलन करने के लिए गाँधीजी को सब प्रकार की सुविधा भी जेल में ही, सरकार ने दे दी और जेल के भीतर से ही वह आन्दोलन चलाने लगे। उनके उपवास के समय ही बम्बई में हिन्दू नेताओं की एक सभा हुई थी और उसके निश्चय के अनुसार श्री घनश्यामदास बिडला की अध्यक्षता में भारतीय अस्पृश्यता निवारण सघ (जिसका नाम बदलकर पीछे हरिजन सेवा-सघ कर दिया गया) स्थापित हुआ। इसका प्रधान कार्यालय दिल्ली में रखा गया और भिन्न भिन्न प्रान्तों में प्रान्तीय सघों तथा उनकी देखरेख मे जिला एव नगर सघों का निर्माण हुआ। इस प्रकार गाँधीजी की प्रेरणा से इस दिशा मे सगठित कार्य शुरू हुआ। जेल के अन्दर से गाँधीजी इसका नेतृत्व करते रहे। सैकडों मन्दिर और कुएँ अछूता—हरिजनों के लिए खोल दिये गये जगह-जगह स्कूल खोले गये, उनकी गदी बस्तियों के सुधार की योजनाएँ बनाई गई। कई राज्यों ने घोषणा निकालकर उनकी असुविधाएँ दूर कर दीं। जो काम युगों मे न हो सका था, वह महीनों में हुआ।

पर उन्होंने देखा कि यह आन्दोलन भी पूर्ण सचाई एवं पवित्रता के साथ नहीं चल रहा है। सवर्ण हिंदुओं का दिल जैसा बदलना चाहिए, नहीं बदला है और कई कार्यकर्ता शुद्ध भावना से इसमें शामिल नहीं हुए हैं। इन बातों से उन्हें स्वभावत ही दुःख हुआ और इसे अपनी आत्मिक अपूर्णता मानकर उन्होंने बिना किसी शर्त के ८ मई १९३३ से २१ दिन का उपवास करने की घोषणा की। उन्होंने यह भी प्रकट कर दिया कि 'किसी खास कारण से मैं यह उपवास नहीं कर रहा हूँ। इसलिए इसमें पहले की भाँति कोई शर्त नहीं रखी गई है। इसे मैं अपने आत्मिक विकास के लिए ही कर रहा हूँ।' पर ऊपर जो कारण लिखे हैं वे इसके मूल में अवश्य काम करते थे। गाँधीजी का स्वास्थ्य अच्छा न था। पिछली बार के उपवास में ६ दिन में ही उनकी हालत खराब हो गई थी। इसलिए न सरकार को, न जनता को यह आशा थी कि वह २१ दिन का उपवास कर सकेंगे। सरकार ने उन्हें छोड़ दिया। छूटने पर भी पूना ('पर्णकुटी' नाम के संगमर्मर के विशाल प्रासाद) में रहकर उन्होंने अपना उपवास जारी रखा। इस बार भी प्रभु ने उन्हें बचा लिया और इस तपस्या की आग से वह चमकते खरे सोने की तरह बाहर निकले।

फिर अनशन

× × ×

जब उन्होंने उपवास शुरू किया तो सारे देश के प्राण उनमें अँटक गये। लोगों का सारा ध्यान उधर ही खिंच गया। देश में हाहाकार मच गया। इसलिए गाँधीजी ने काँग्रेस के स्थानापन्न अध्यक्ष श्री अणे से अनुरोध किया कि वह छः सप्ताह के लिए आंदोलन स्थगित कर दें। दूसरी ओर सरकार से भी उन्होंने अनुरोध किया कि अब भी सम्मानपूर्ण समझौते के लिए जगह है और यह चाहे तो यहाँ से फिर बात-चीत आरंभ हो सकती है जहाँ से गोलमेज सम्मेलन से लौटने पर टूटी थी। पर सरकार ने इसपर तबतक विचार

सत्याग्रह स्थगित

करने से इन्कार कर दिया जबतक कि कांग्रेस स्थायी रूप से सत्याग्रह का पथ न छोड़ दे। इसके साथ ही गाँधी जी ने अपने वक्तव्य में यह भी कहा कि जिस प्रकार गुप्त रीति से आन्दोलन चलाया जाता रहा है यह सत्याग्रह की प्रेरणा के विपरीत है। और स्थानापन्न राष्ट्रपति ने छः सप्ताह के लिए आंदोलन स्थगित कर दिया। पर महात्माजी की दुर्बलता इतनी बढ़ गई थी कि इस अवधि के बाद भी वह देश-दशा पर भली भाँति विचार करने के योग्य न हुए। इसलिए छः सप्ताह अर्थात् ३१ जुलाई १९३३ तक के लिए फिर आन्दोलन स्थगित किया गया।

गाँधी जी की अवस्था सुधरने पर १४ जुलाई को पूना में कांग्रेस के नेताओं तथा प्रान्तीय प्रतिनिधियों की एक अनियमित पर गुप्त बैठक हुई। इसमें देश की अवस्था पर विचार किया गया। अंत में कांग्रेस के स्थानापन्न अध्यक्ष श्री अणे ने एक वक्तव्य निकाल कर—

पूना सम्मेलन

१—सामूहिक सत्याग्रह स्थगित कर दिया।

२ सब कांग्रेस संस्थाएँ तोड़ दीं। (क्योंकि आफिस रखने से आन्दोलन गुप्त रीति से ही चल सकता था।)

३ अपनी अपनी जिम्मेदारी पर व्यक्तिगत सत्याग्रह जारी रखने का आदेश किया।

× × ×

इस निश्चय के बाद गाँधीजी ने अपने १८ वर्ष के सतत परिश्रम से निर्मित सत्याग्रह आश्रम को तोड़ दिया। उनका यह कार्य उनके उज्ज्वल त्याग का सब से बढ़िया नमूना है। यह चीज उन्हें संसार में सब से ज्यादा प्रिय थी क्योंकि यह उनके जीवन की प्रयोगशाला थी। तोड़ने की सूचना उन्होंने बम्बई-सरकार को दे दी और अपना यह निश्चय भी उसे लिख भेजा कि १ अगस्त को मैं अपने आश्रम के ३२ साथियों (१६ स्त्रियाँ, १६ पुरुष) के साथ

निश्चय के बाद

गुजरात के 'रास' गाव की ओर प्रस्थान करूंगा, जहाँ जाकर किसानों की स्थिति का अवलोकन करना और आवश्यकतानुसार उनको सलाह देना हमारा उद्देश्य है। ३१ की रात को डेढ़ बजे के लगभग ये सब लोग गिरफ्तार कर लिये गये।

गिरफ्तारी और सजा

गाँधीजी पूना (यरवदा जेल) भेज गये। बाद में ४ अगस्त को जेल से छोड़ दिये गये और उनको आज्ञा दी गई कि पूना शहर की सीमा में चले जायँ और उस सीमा के बाहर न जायँ। गाँधीजी ने आज्ञा भग की। फलतः वह फिर गिरफ्तार किये गये, जेल में उनका मुकदमा हुआ और एक वर्ष की सादी सजा हुई। इस समय वह यरवदा जेल में 'ए' क्लास के कैदी हैं।

× × ×

पता नहीं इस आन्दोलन का भविष्य क्या होगा? गाँधीजी की गिरफ्तारी के बाद, मतभेद होते हुए भी, अनेक कार्यकर्ता—जिनमें स्त्रियों की संख्या अधिक है—जेल जा रहे हैं। पर इन सब बातों के होते हुए भी भविष्य अनिश्चित है। इस बार सरकार गाँधीजी के साथ साधारण कैदियों का-सा व्यवहार कर रही है और संभव है वह उन्हें जेल के भीतर से हरिजन आन्दोलन करने की सुविधा न भी दे। यदि ऐसा हुआ, और ईश्वर न करे कि ऐसा हो, तो संभव है स्थिति फिर भयंकर हो जाय। क्योंकि महात्मा जी के इधर के आश्रम इत्यादि तोड़ने के कार्यों के पीछे उनके किसी प्रबल निश्चय का आभास मुझे मिल रहा है। संभव है यह मेरा अनुमान ही हो पर बिना किसी कारण के ही इस बार मेरी आत्मा काँप रही है और ऐसा मालूम होता है कि इस बार गाँधीजी का जीवन खतरे में है।

× × ×

इस तरह शुरू से अन्त तक हम देखते हैं कि गाँधीजी का जीवन एक तपस्वी का जीवन है। वह सदा सत्य की शोध करते रहते हैं और

उनका जीवन आत्म परीक्षाओं का जीवन है। जो दिन दिन प्रिय और प्रियतर होता जा रहा है, और आज तो वह न केवल भारत वरन् संसार की सर्वश्रेष्ठ विभूतियों में है।

पुनश्च—

यह जीवन कथा एक महीना पहले लिखी गई थी। कापी प्रेस में देते समय ५ अगस्त तक की घटनाएँ जोड दी गई थीं। आज (२२ अगस्त) देखता हूँ कि गाँधीजी के प्रति सरकार के व्यवहार के सम्बन्ध में, जो निष्कर्ष इस जीवन-कथा के अन्त में हमने १५ दिन पूर्व निकाला था वह सत्य हो रहा है। हरिजन आन्दोलन करने के लिए सरकार—द्वारा पहले-जैसी सुविधाएँ न मिलने के कारण १६ अगस्त से गांधीजी ने आमरण उपवास शुरू किया है। उनको अस्पताल में रखा गया है और उनकी सेवा के लिए श्रीमती गाँधी छोड दी गई हैं। कमजोरी बढती जा रही है। ऐसी आशा है कि जब तबियत ज्यादा खराब होगी तो वह, डाक्टरी सिफारिश के अनुसार, छोड दिये जायँगे और अगली बार यदि उन्होंने सत्याग्रह किया तो गिरफ्तार करके पहले की तरह 'स्टेट प्रिजनर' के रूप मे रखे जायँग और उनको हरिजन आंदोलन करने की सुविधाएँ पूर्ववत् दी जायँगी।

इस बीच दीनबन्धु ऐण्डरूज, गाँधीजी और बम्बई सरकार के होम सेक्रेटरी श्री मेक्सवेल के बीच बातें चल रही है। श्री एण्डरूज प्रयत्न कर रहे हैं कि सरकार और गाँधीजी के बीच कुछ समझौता हो जाय। और फलत कांग्रेस—सरकार युद्ध का सम्मानपूर्ण अन्त हो। देखें, इसका फल क्या होता है।

"You can not say, this is he or that is he All you can say with certainty is that he is here, he is here Everywhere his influence reigns his authority rules, his elusive personality pervades This must be so for it is true of all great men that they are incalculable beyond definition" ❀

—H Polak

—तीन—

जीवन का रहस्य

ससार की एक शक्ति

गॉधी आज ससार की एक शक्ति है। शत्रु मित्र, शासक और शासित सब इसे मानते हैं। कोई उसकी तुलना बुद्ध और ईसा से करता है, और कोई उसे असभव क्रान्तिकारी मानता है पर सब उसकी असाधारणता के कायल हैं। उसने भारत में एक जीवन फूक दिया है और प्रत्येक क्षेत्र में चर्चा, अनुमान और कल्पना का विषय बन गया है। घोर जगली भील से लेकर, जिसने उसे देखा नहीं, सुना नहीं, ससार के महापण्डित एव तत्ववेत्ता तक

❀ "तुम यह नहीं कह सकते कि गाधी यह चीज है, वह चीज है। निश्चय के साथ तो तुम इतना ही कह सकते हो कि वह यहाँ है, वह यहाँ है। हर जगह उसका प्रभाव शासन करता, उसका अधिकार राज करता है, उसका व्यक्तित्व हर जगह फैल गया है। और ऐसा तो होना ही चाहिए क्योंकि यह बात सभी महापुरुषों के लिए सत्य है कि वे परिभाषा के पर और अगम्य हैं।"

—हनरी पोलक

उसे अपने अपने ढग से देखते हैं और सब उसकी महानता स्वीकार करते हैं—उससे मतभेद भले ही रखें।

तब फिर वह क्या चीज है जिसने उसे ऐसे अजय, ऐसे शक्तिमान रूप में हमारे सामने ला खडा किया है? यह एक प्रश्न है और गूढ प्रश्न है।

किसी महापुरुष की अन्त प्रेरणा का ऊहापोह करना खेल नहीं। वह बधन में बँध नहीं सकता, वह सकुचित नहीं है, वह महान् है और जगत् की साधारण नाप से नापा नहीं जा सकता। फिर गाँधी तो अनेक टेढ़ी मेढ़ी लाइनों से बना है। और साधारण आदमी तो उसे सब ओर से पूरा का पूरा देख भी नहीं सकता।

फिर भी जब हम दुनिया की गति से, उसके ढग से गाँधी का मिलान करते हैं तो वह अपने आप चमक उठता है,—अधकार में चन्द्रमा की भाँति। इस द्वेष और कलुष से भरे ससार में, जहाँ भाई भाई का गला काटने की तैयारी में लगा है, जहाँ ससार के महान कहे जानेवाले राष्ट्र, मुँह से शान्ति की मीठी-मीठी बातें करते हुए भी मौका पाते ही दूसरे को खा जाने की ताक में हैं, वहाँ—उस दुर्वह अन्धकार में गाँधी अपने-आप चमकता है। वह दिखता है क्योंकि वह साधारण के बीच खडा हुआ असाधारण है।

वह आप चमकता है।

× × ×

पाश्चात्य सभ्यता ने जीवन को उन्माद से भर दिया है। लोग एक जल धारा के तिनके की भाँति बहे चले जा रहे हैं;—अपनी शक्ति से नहीं, एक प्रबल धारा के वेग से। मनुष्य मशीन बन गया है। उसने अपना आत्म विश्वास, अपना [illegible] है और असहाय सा, अपनी इच्छा [illegible] कहाँ [illegible] सभ्यता ने सब से बड़ा

अकल्याण—जिसे पाप कहने में भी अत्युक्ति न होगी—जो क्रिया है व यह कि उसने मनुष्य को बिल्कुल अचेत कर दिया है और उसकी असीम दैवी सम्भावनाओं (possibilities) को हर लिया है। आज किसी से ब्रह्मचर्य की बातें करो, वह अविश्वास की हँसी हँस देगा—'यह हम-जैसे साधारण मनुष्य का काम नहीं'। जीवन-हीन, मूर्च्छना से भरे ये शब्द क्यों? मनुष्य, जो जगत् का श्रेष्ठ उपादान है, जो भगवान् की श्रेष्ठ विभूति है, उसके मुख से ऐसे दीनता, दुर्बलता और असहायता के शब्द क्यों?

बात यह है कि जीवन की बाह्य गुलकारियों में हम भूल गये, आधुनिक सभ्यता के विष ने, हमारे अन्दर जो दिव्य ईश्वरीय विरासत थी उसे गदा मारकर चकनाचूर कर दिया है। उसने हमें रेलगाड़ियाँ दीं, हवाई जहाज दिये, उसने घर में बैठे हुए पृथ्वी के उस छोर तक हमारी आवाज मिनटों—क्या सेकण्डों—में पहुँचाई। उसने सुबह कलकत्ता में और शाम को हमें बगदाद में लेजाकर बैठाया। यह मायाविनी बिजली में चमकती है, वायुयानों पर हवा खाती है, मोटरों में दौड़ती है, तोपों में दहाड़ती और अट्टहास करती है। उसकी मुस्कराहट पर हम भूल बैठे, उसके आलिंगन ने हमारा विवेक हर लिया। हम उसकी सुविधाओं का गान गाते हैं पर हम यह भूल गये कि हमारा जो कुछ परमतत्व था, हम में जो जीवित मनुष्य था वह निष्प्राण हो गया है। उसने हमें विश्व के सम्रहालय में—ससार की प्रदर्शनी में—मोहक रूप में सजाये मुर्दे की भाँति रख छोड़ा है। सुविधाएँ बढ़ीं पर सुख न बढ़ा, जीवन न बढ़ा हमारे दु:ख बढ़ गये हैं सारी मानसिक, नैतिक एव शारीरिक शक्तियाँ बरफ की भाँति गल गई हैं। मानवता दु:ख, दंभ, ईर्ष्या-द्वेष के अंधकार में भटक रही है। करोड़ों गरीबों की हड्डियों पर बड़े-बड़े साम्राज्य खड़े किये गये हैं और उन्होंने अपनी जगमगाहट और चकाचौंध से हमारी दिव्य दृष्टि को धुँधला कर दिया है।

ऐसी दुनिया म, आत्म विश्वास खोकर असुख, दैन्य से भरे हुए ऐसे जन समूह में हम एक मनुष्य को देखते ह जो असीम आत्म विश्वास के

इस दैन्य के बीच

स्तभ की भाँति शान्ति के साथ खड़ा होकर हमें अगुली से मार्ग दिखा रहा है। वह हमें आकर्षित करता है—गरीब उसकी ओर त्राता की तरह देखते ह, धनी और अधिकारी उसकी हिम्मत पर आश्चर्य करते ह। यह कैसा आदमी है!—पर यही गाँधी है। आत्म विश्वास की मूर्ति, मानवता के दु ख से दु खी और उसे अधकार से प्रकाश मे लाने को उद्यत!

पहली बात जो गाँधी के जीवन म प्रकाश रेखा के समान चमकती ह और जो उसके जीवन मे आदि से अन्त तक व्याप्त है, उसकी दिव्य

जीवन की साधना

साधना है। आरम्भ से लेकर अन्त तक उसका जीवन साधनामय है। वह उठता है, गिरता ह, फिर उठता है और आगे बढ़ता जाता है। और साधना किसकी? सत्य की। अहिंसा उसकी नीति ह, अन्त करण उसकी कसोटी है अपना निजी एव भारत का सार्वजनिक जीवन उसकी प्रयोगशाला है। इस दृष्टि से वह राजनीतिक नेता नहीं, साधक है जो सत्य की शोध म चला जा रहा है। राजनीतिक प्रयोग इस साधना का एक अग ह। गाँधी भारत के राजनीतिक क्षेत्र में इसलिए नहीं आया कि उसे स्वराज लेना है—स्वराज राजनीतिक अर्थ में, बल्कि इसलिए कि उसने जिन सिद्धान्तों को, जिस साधना को अपने जीवन में अपनाया है उसे विशाल जन समूह के जीवन में भी वह लाना चाहता है और वह इसलिए कि हमने, जीवन नीति प्रधान होना चाहिए, इसे भुला दिया है। वह प्रत्येक ऐसे बन्धन का विरोधी है जो आत्मा को मूर्छित करता है, जो अन्त करण की आवाज को दबा देता है। वह पाश्चात्य सभ्यता का विरोधी ह क्योंकि वह जीवन में कृत्रिमता लाती है मनुष्य में स्वार्थ को प्रबल करती है—फलत मानव समाज म शारीरिक—भौतिक—सुखों के लिए होड उत्पन्न करती है और दूसरी ओर

इस दृष्टि से अहिसा विश्व की अभिन्नता, एकात्मरूपता की अनुभूति का आवश्यक उपादान है और इस अर्थ म, एक प्रकार से, वह स्वय अपरिणत सत्य ही है। इसमें अपन एव दूसरे के जीवन नाश की सबसे कम सभावना ह। इससे शक्ति का क्षय नहीं होता, इससे आत्म शक्ति जागृत करने वाली भावनाओं को उत्तेजन मिलता है। इसलिए अहिसा तात्विक एव व्यावहारिक दोनों दृष्टियों से उसकी साधना का सबसे महत्वपूर्ण अग है।

इस अहिसा को अपने सतत प्रयोगों से खोज माँजकर उसने अत्यन्त दिव्य रूप में हमारे सामने रखा है। उसने अपने जीवन के प्रत्येक क्षण में उसे प्रकाशित कर उसपर युग-युग से पड़ी काई को काट दिया है और उसे निर्मल बना दिया है। केवल जीव के नाश न करन म ही उसकी अहिसा का अन्त नहीं हो जाता, उसे किसी प्रकार की शारीरिक या मानसिक पीड़ा न दना, न देने की भावना करना, तथा उसके कल्याण की कामना एव चेष्टा करना भी, उसी म आ जाता है। इस भाव की परिणति तब तक सभव नहीं है जब तक साधक म ईर्ष्या द्वेष, लोभ, भय इत्यादि असात्विक—तामसिक भाव भरे हुए है। इसलिए सत्य का साधक जब अहिसा-मार्ग का अवलम्ब लता है तो स्वभावत उसे प्रारभ म ही तमस् का त्याग कर देना पड़ता ह। ज्यों ज्यों उसकी अहिसा शुद्ध एव निर्मल होती है त्यों-त्यों जीवन की अभिन्नता एव अविच्छिन्नता की अनुभूति के कारण सत्य उसके सामने स्पष्टतर होता जाता है।

× × ×

नीति का प्रवक्ता

बुद्ध के बाद जीवन म नीति की प्रधानता पर इतना जोर देनेवाला दूसरा महापुरुष हमारे बीच नहीं आया। (कबीर की याद हम हे पर वह केवल आध्यात्मिक भक्ति म व्यक्त होनेवाले नीतिवाद के ही प्रवक्ता थे।) और यह स्पष्ट है कि जिसने जीवन को नीतिमय कर डाला है वह किसी एक क्षेत्र मे ही

उसका उपयोग करके चुप नहीं रह सकता। जीवन का प्रवाह अविच्छिन्न है। उसके टुकड़े नहीं किये जा सकते। जब वह प्रत्येक क्षेत्र में एक-रस होकर प्रवाहित होता है तभी वह जीवन है। गांधी ने अपने जीवन की साधना को विश्व के राजमार्ग पर ला खड़ा किया है और प्रत्येक को उसे अपनाने का निमन्त्रण दिया है। अप्रतिकार या अहिंसा का यह व्यापक प्रयोग हो—जो आज वह भारतीय राजनीति के व्यापक क्षेत्र में कर रहा है—उसका विश्व राजनीति पर असर पड़ रहा है।

× × ×

'मारल बैरोमीटर'

यहाँ इसे फिर से कहने की जरूरत है कि अन्तःकरण की स्वीकृति ही उसके प्रत्येक कार्य की कसौटी है। वह इसी तराजू पर सब बातों को तौलता है। इस आत्मिक स्वीकृति के सिवाय उसके कार्यों को नियमित करनेवाला कोई अधिकारी नहीं, कोई तन्त्र नहीं। और दूसरों से भी उसकी यही आशा है कि अन्दर का आत्म शासन ही सब मानें। इसलिए जनता की सम्मति असम्मति, यश निन्दा, लोक-प्रियता एवं विरोध, सरकार की इच्छा अनिच्छा का जीवन के विशेष अवसरों पर उसके निर्णय के बीच स्थान नहीं। वह एक नैतिक—आध्यात्मिक अराजकवादी है। जनता ने विरोध किया, नेताओं ने बुरा-भला कहा पर उसने चौरीचौरा के बाद बारडोली-सत्याग्रह बंद कर दिया। लोग तिलमिलाकर, कुड़कुड़ाकर रह गये पर उसने अन्तःप्रेरणा के अनुसार राष्ट्रीय आन्दोलन के बीच अस्पृश्यता की समस्या लाकर खड़ी कर दी। उसके जीवन का, उसके प्रत्येक कार्य का निर्णायक उसका अन्तःकरण है। इस बात पर उसने इतनी प्रधानता दी है कि वह हमारे समय का नैतिक—'मारल'—बैरोमीटर बन गया है।

इस साधना एवं साधना की इस कसौटी के कारण ही राजनीति में भी वह राजनीतिज्ञ के रूप में नहीं, राजनीतिक तत्त्ववेत्ता ('पोलीटिकल फिलासफर') के रूप में आया है। राजनीतिज्ञ जनता को संगठित

करने का अधिक ध्यान रखता है, राजनीतिक तत्त्ववेत्ता या प्रवक्ता ('प्राफेट') अपने जीवन में कुछ सिद्धान्तों को प्रकाशित कर राष्ट्र की आत्मा को चैतन्य करता है। उसका सम्बन्ध ऊपरी नहीं, गूढ़ बातों से है। जहाँ राजनीतिज्ञ केवल शासन प्रणाली के परिवर्तन के उद्देश्य को लेकर चलता है वहाँ तत्त्ववेत्ता जीवन के ध्येय, जीवन के तत्त्वज्ञान को—समाज एवं व्यक्ति दोनों में—निर्मल एवं विशुद्ध रूप में प्रकट करना चाहता है।

राजनीतिज्ञ नहीं, राजनीतिक तत्त्व-वेत्ता

गांधीजी की सारी हस्ती जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में होनेवाले आत्म स्वत्व-नाशक कार्यों के विरुद्ध एक स्थायी—अविच्छिन्न नैतिक विरोध है। जहाँ कानून मनुष्य की आत्मा के विकास को सुविधा नहीं देता, उल्टे उसे धुँधला कर देता है वहाँ कानून का मानना पाप है, जहाँ 'धर्म' विवेक को छोड़ देता है, व्यक्ति एवं समाज की आत्मिक—नैतिक—उन्नति में बाधक होता है वहाँ वह त्याज्य है। इस प्रकार के नैतिक अत्याचार को न सहन करना सत्य शोधक का कर्तव्य है। और इस कर्तव्य में जो कष्ट दिये जायँ उसे शुद्ध हृदय से सहन कर लेना उसका धर्म है। यदि तुम संसार को प्रेम द्वारा बदलना चाहते हो तो तुम्हें उसके द्वारा पीड़ित होने, घृणा किये जाने, बहिष्कृत होने को तैयार रहना चाहिए। इस विरोधाभास से अपने आप शुभ परिणाम निकल आते हैं। क्योंकि इस प्रकार का सत्याग्रही के विरुद्ध किया हुआ फैसला, अनजान में, स्वयं अपनी ही प्रणाली के दूषण को स्पष्ट करता है। एक गाँधी का अपना अपराध स्वीकार करना ही वर्तमान समाज व्यवस्था पर जबरदस्त टीका है। इसे देखकर दर्शक के मन में यह विचार आये बिना नहीं रह सकता कि जो समाज व्यवस्था डायर के लिए पेंशन का प्रबन्ध करती है और एक साधु पुरुष को छः वर्ष के लिए जेल भेज कर उसका मुँह बंद कर देती है, उसके मूल में अवश्य कुछ दोष होगा। *

* When a Gandhi pleads guilty it is the existing political

इस तरह प्रतिक्षण अपने जीवन से, अपने कष्ट-सहन से वह उस कभी न रुकनेवाले युद्ध को प्रकाशित करता है जो उसके अन्त करण और आत्मा को दबानेवाली, उसकी सत्ता की अवहेलना करनेवाली प्रत्येक शक्ति के साथ चल रहा है। जब शरीर-बल राज शक्ति का स्थायी आधार मान लिया गया है तब वह अपनी, एव उसके द्वारा एक राष्ट्र की, आत्म शक्ति को जागृत करके शरीर-बल पर अधिष्ठित ससार के सबसे शक्तिशाली एव साधन सम्पन्न राष्ट्र को चुनौती देता है। वर्तमान समय का यह अद्भुत युद्ध, जिसका ससार के इतिहास में दूसरा उदाहरण नहीं मिलता, विश्व के लिए और गहरी सैनिकता के बोझ से जिसकी हड्डियाँ टूट रही हैं, उस पीड़ित मानवता के लिए एक आशा, एक प्रकाश है। यह गाधी की, और उसके द्वारा भारत की, मनुष्यजाति को सबसे बड़ी देन है।

अपूर्व युद्ध विश्व का देन

और इस युद्ध ने ही ससार का ध्यान उसकी ओर आकर्षित कर दिया है—और इसके कारण ही इस समय ससार की प्रयोगशाला में उसके साथ बैठाया जा सके, ऐसा दूसरा आदमी दिखाई नहीं पड़ता।

× × ×

एक दुबला पतला बूढा आदमी, जिसके रूप में कोई आकर्षण नहीं और जिसका शरीर जीवन के युद्ध में खोखला-सा हो गया है, जिसके प्रेम के आगे साँप भी निर्भय होकर, उसके आश्रम में विचर सकता है,—इस ढेढ हड्डी पसली के आदमी के अगुली उठाते ही सरकार कॉप उठती है और भारत में एक कोने से दूसरे कोने तक अद्भुत कम्पन

सरकार का भय क्यों महाराष्ट्र का आरोप क्यों ?

system that seems to be condemned Men feel in the depths of their souls that there is surely something inherently wrong with a social arrangement which continues to pay a pension to Dyre but silences a saint for six years."

Conscience of A Nation Gagan Vihari Mehta, Page 6

होता है। ऐसा क्यों? इस जरा से आदमी से, जिसने अपना प्राण लेने वाल शत्रु को भी निर्भय कर दिया है, इतना डर क्यों और दूसरी ओर एक महाराष्ट्र का इतना गहरा आकर्षण क्यों?

पहले प्रश्न का जवाब दूसरे प्रश्न म अपने आप प्रकाशित है। इस शरीर से दुर्बल, बाहर से आकर्षण-हीन पुरुष ने एक विशाल राष्ट्र की सारी चेतना और श्रद्धा अपने अन्दर केन्द्रित कर ली है। ब्रिटिश सरकार चाहे जितना इन्कार करती जाय पर अपनी खण्डनात्मक अगणित विज्ञप्तियों के रहते हुए भी वह जानती है कि गांधी मे भारत की शक्ति केन्द्रित है। भारत में जो कुछ सूक्ष्म, रहस्यमय और विशाल है और जिससे लोहा लेने का कोई साधन युरोप के पास नहीं है, उन सबके प्रतीक रूप म वह विश्व के क्षितिज पर उदय हुआ है। गाँधी यदि हमारी राजनीति में आता और अन्य नेताओं की भाँति—राजनीतिज्ञों की भाँति सरकार की शासन प्रणाली के दोष दिखाकर, उसके लिए जनता में आंदोलन करता, उसको सगठित करता तो बहुत सभव यह है कि वह सरकार के लिए इतना भय प्रद न हो उठता पर उसने तो भूल हुए शेर को शेर बना दिया है, उसने राष्ट्र की कमजोरी के उस मूल में ही आघात किया है जिसके कारण सब प्रकार की पराधीनता का उसमें जन्म होता है। उसने लेनिन की भाँति एक विचार—'आइडिया'—को, जीवन की एक 'फिलासफी' को लेकर अपना काम शुरू किया है और लेनिन की भाँति ही वह वर्तमान साम्राज्यवाद के लिए एक खतरनाक विरोधी हो उठा है!

फिर उसने अपन युद्ध का अस्त्र—अहिंसा—ऐसा निकाला जिसके प्रयोग की सर्वोत्तम विधि वही जानता है। विरोधी को इस अस्त्र का कुछ ज्ञान नहीं। फिर हिंसात्मक प्रवृत्तियों को लेकर लडनेवाला अहिंसा और प्रेम के सामने, युद्ध म भी, नगण्य सा हो जाता है। उसका भौतिक बल इस नैतिक अस्त्र के सामने तुच्छ है अत हिंसक के लिए अहिंसक बडा भयप्रद प्रतिद्वन्द्वी है। सारा रोमन साम्राज्य एक अहिंसक ईसा की फूँक

में उड़ गया, उसके रक्त की बूँदों से वह ज्वाला निकली जिस में विरोधी जल गया, विरोधी के अन्दर जो भ्रमी था, जो सत्य था, वह अमर रह गया।

और इसी प्रश्न की समीक्षा भी हम पहले कर चुके हैं—यदि उसे समीक्षा कह सकें, क्योंकि ठीक ठीक अर्थ में तो ऐसे प्रश्नों की समीक्षा की नहीं जा सकती। भारत का इस पुरुष में इतना आकर्षण क्यों? उससे बड़े मेधावी हमने देखे, उससे कहीं श्रेष्ठ वक्ताओं के शब्द आज भी हमारे कानों में गूँज रहे हैं, उससे कुशल राजनीतिज्ञ अपनी दाँव पेंच की अद्भुत कला की स्मृतियाँ हमारे पास छोड़ गये हैं। फिर इसमें ऐसी क्या बात, जिसने सब की स्मृति को धुँधला कर दिया है?

भारत की आत्मा का प्रतिष्ठापक

इसका यदि हो सके तो एक मात्र यही उत्तर हो सकता है कि उसने भारत की आत्मा को पहचाना है, उसने भारत के हृदय की मूर्च्छित दिव्य शक्ति को चैतन्य किया है, उसने हमारी मनुष्यता की मरहम पट्टी करके उसे सचेत किया है—वह हमारे हृदय के अत्यन्त रहस्यमय खण्डों को समझकर उनको उभार सका है। औरों ने जहाँ राष्ट्र के शरीर के रोगों को दूर करने का प्रयत्न किया वहाँ उसने उसके हृदय की व्यथा को समझा है। और उसके युग-युग से सञ्चित संस्कार में जो कुछ सर्व श्रेष्ठ है उसे निकालकर—मथ कर उस मथन को ही उसके उद्धार का साधन बनाया है। बहुत-से लोग जिन्होंने गांधी के टुकड़े देखे हैं पर गांधी को पूरा का पूरा देख नहीं पाये हैं, धार्मिक एवं सामाजिक क्षेत्र में उसके हस्तक्षेप पर उत्तेजित हैं पर गांधी का अंध भक्त न होकर भी मैंने सब तरफ से उसे देख देखकर और अत्यन्त निर्दय कसौटियों पर उसे कस-कसकर पाया है कि उलटे राजनीति की अपेक्षा इन क्षेत्रों में हस्तक्षेप करने के वह अधिक योग्य अतः अधिक अधिकारी है। क्योंकि तत्वतः वह भारत का राजनीतिक नेता नहीं, सांस्कृतिक नेता है। हमारी संस्कृति की 'स्पिरिट' को जितनी गहराई से उसने समझा है, कदाचित् ही किसी दूसरे भारतीय ने समझा हो। वह हमारी पशु

हिन्दू संस्कृति का परा है। उसने उसे उठाकर फिर विश्व की सभ्यताओं की दौड़ में ला खड़ा किया है और उसका सारा जीवन ही मानों अन्य संस्कृतियों की असारता को चुनौती दे रहा है।

इसलिए वह, जाति के—राष्ट्र के हृदय में पैठकर भारतीय मजूर को, भारतीय किसान को पहचान सका है, इसीलिए भारतीय नारी का तात्विक महत्व उसने समझा है और इसीलिए वह हमारी सभ्यता की इन महत्व-पूर्ण इकाइयों को, पूँजीपतियों, राजाओं, व्यापारियों तथा शिक्षित एवं 'प्रतिष्ठित' लोगों से, जो फालतू श्रृंगार के रूप में आ गये हैं, अधिक महत्व देना चाहता है—अपने जीवन में तो देता भी है! और यही कारण है कि बिना देखे सुने काठियावाड़ का भील, मध्यप्रांत का गोंड़ और आसाम के वन्य मनुष्य ने भी अपना जीवन उसके जीवन से जोड़ लिया है। यह भारतीय हृदय पर उसके असाधारण अधिकार का कारण है!

गांधी की सफलता का दूसरा कारण यह कि उसके अन्दर आदर्शवादी और व्यवहारवादी मिलकर एक हो गया है। बीसवीं शताब्दी के संसार ने

आदर्श और व्यवहार

रोम्यॉरोलाँ से आदर्शवादी और स्व० लेनिन से अद्भुत कर्मनिष्ठ महापुरुष को देखा है पर गाँधी से उनकी भी तुलना नहीं की जा सकती-क्योंकि गाँधी, रोम्याँ रोलाँ की भाँति, प्रथम श्रेणी का आदर्शवादी है, जहाँ मानव जीवन के उच्चतम आदर्श को उसने जीवन का ध्रुवतारा बनाया है तहाँ वह कर्म में स्वयं ओत प्रोत हो गया है। इस विषय में—आदर्श और व्यवहार की एकता में—वह वर्तमान संसार में बेजोड़ है और निश्चय ही संसार के महत्तम कर्मयोगियों में उसे स्थान मिलेगा।

और इसका कारण है। वह जीवन को उसकी सम्पूर्णता में ग्रहण

एक कारण

करता है। हम लोगों की तरह जीवन के खण्ड खण्ड करके उन्हें नहीं अपनाता। इसीलिए हम लोगों में से जहाँ कोई राजनीतिज्ञ, कोई समाज सेवक, कोई आदर्शवादी

और कोई व्यावहारिक बनकर बैठता है तहाँ वह राजनीतिज्ञ, समाज सेवक आदर्शवादी और व्यावहारिक सब एक म हीं है। जीवन के इस प्रकार टुकडे नहा किये जा सकते कि जो उच्च सिद्धान्त एक क्षेत्र में ठीक हो वही दूसरे मे अनुचित,—अभी तक तो ऐसा ही रहा है पर अपने दिव्य प्रयत्नों द्वारा वह सभी क्षेत्रा का मेल मिला रहा है। पहले राजनाति म धर्म को स्थान न था पर अब उसकी सतेज वाणी कहती है—"वह कौन सा क्षेत्र है जहाँ धर्म को स्थान नहीं ?" जीवन के भिन्न दृष्टिकोणों के कारण ही यह सकुचितता पैदा होती है। यदि हम एक प्रश्न को चारों ओर से देख सकें तो यह सकुचितता कैसे रहे ? जैसे गांधीजी के लिए राजनीति सर्वसाधारण के कल्याण का साधन है। इस कल्याण का स्थूल तात्पर्य तो सबके लिए रोटी और कपडे की समुचित व्यवस्था होना है। अब इस रोटी और कपडे को ही लें तो राष्ट्र या राज्य की दृष्टि से यह राजनीति एव अर्थ नीति का प्रश्न है। समाजशास्त्री की दृष्टि से समाज में धन का न्यायपूर्ण बँटवारा और उचित समाज व्यवस्था का प्रश्न है और मानवता की दृष्टि से नीतिशास्त्र, तत्त्वज्ञान एव धर्म का प्रश्न है। इसीलिए इन अलग-अलग दृष्टि-कोणों से विचार करनेवाले, इन क्षेत्रों को अलग अलग लेकर चलने वाले, जहाँ उसे एक सकुचित रूप म ग्रहण करते ह वहाँ गाधी उसे धर्म भी मानता है, राजनीति भी मानता है आर समाज-सुधार भी। इन तीनों को मिलाकर वह एक में—उस प्रश्न की परिपूर्णता में—उसे देखता है। इसीलिए गाधी वतमान ससार में अपन ढग का अकेला ही आदमी है। और इसीलिए अमेरिका के पादरी होम्स के शब्दों में कहना चाह तो कहा जासकता है—"जब मैं रोलाँ का खयाल करता हूँ तो मुझ टाल्सटाय का ध्यान आता है। जब मैं लेनिन की बात सोचता हूँ तो नेपोलियन का खयाल आता है पर जब मैं गाधी का ध्यान करता हूँ तो मुझे क्राइस्ट का ध्यान आता है।"*

* When I think of Rolland I think of Tolstoi. When I think

जन्म से बनिया, आदर्श से ब्राह्मण गांधी में भारतीय समाज की व्यवस्था पूर्णतः प्रतिबिम्बित है। धर्म और आदर्श की प्रतिष्ठा में लगनेवाला उसका त्याग और तपस्या का जीवन आदर्श 'ब्राह्मण' का जीवन है। इस आदर्श को कर्ममय बनाने में उसका उत्साह, उसका युद्ध, उसकी लगन एक आदर्श 'क्षत्रिय' को प्रकाशित करती है। उसकी सहिष्णुता, उसका परिश्रम, उसकी समझौते की व्यावहारिक बुद्धि, उसके श्रेष्ठ वैश्यत्व का उदाहरण है और मजदूर के प्रति, अछूत के प्रति उसका असीम प्रेम, उसका निरन्तर सेवामय जीवन, उसका अपने को 'भंगी' कहने की उत्सुकता और किसान मजूर जैसा स्वच्छ सीधा-सादा परिश्रमी जीवन बिताने की भावना उसे श्रेष्ठ शूद्र के रूप में हमारे सामने लाती है। इस प्रकार वह भारतीय सभ्यता का शुद्ध समाहरण एवं समन्वय है।

भारतीय समाज-व्यवस्था का प्रतिबिम्ब

× × ×

इसके अलावा भी गांधी को पूर्णतः समझने के लिए उसके जीवन को बहुत विस्तार और गहराई से देखने की जरूरत है। और थोड़ी-सी जगह में यह सम्भव नहीं। 'उसे एक वाक्य में प्रकट नहीं किया जा सकता। क्योंकि एक वाक्य में गांधी का संक्षेप करना—निचोड़ निकालना एक सम्पूर्ण तत्त्वज्ञान, नीतिशास्त्र, धर्म, अर्थनीति एवं राजनीति का निष्कर्ष निकालने—जैसा है।'*

of Lenin I think of Napoleon But when I think of Gandhi I think of Jesus Christ He lives His life, he speaks His word he suffers strives, and will some day nobly die for His kingdom upon earth ' — From a Sermon By Rev Dr H Holmes

* If anyone could sum up Gandhi in a paragraph that would be a great achievement But that is well nigh impossible, for to sum up Gandhi is to sum up a whole philosophy, religion ethics economics and politics '

— Pattabhisitaramiah Gandhi the Judge unto Him'

पर एक बात तो उसके जीवन से स्पष्ट है और वह यह कि वह जीवन के साधारण उपकरण—'स्टफ'—को लेकर धीरे धीरे गढ़ा गया है। एक

सतत् प्रयत्न से गढ़ा हुआ महापुरुष

श्रेष्ठ मूर्तिकार जिस पत्थर से अत्यन्त श्रेष्ठ मूर्ति का निर्माण करता है—जिसमें जीवन बोलता हो, उसी से एक साधारण संगतराश टेढ़ी मेढ़ी आकृतियाँ ही बना पाता है। गांधी ने अपने आत्मिक उपकरणों को तराश तराश कर उसे अपने सतत् निरीक्षण परीक्षण से आज एक दिव्य रूप दे दिया है। महापुरुषों की भी दो श्रेणियाँ होती हैं। एक वे जो अपने संचित दिव्य संस्कारों के कारण एकाएक हमारे सामने ज्योतिर्मय रूप में प्रकट होते हैं। उनका निर्माण आरम्भ से ही कुछ असाधारण होता है—स्वामी रामतीर्थ ऐसे ही एक महापुरुष थे। दूसरे वे जो निरन्तर की साधना एवं प्रयत्नों से तिल तिल करके गढ़े जाते हैं, जो साधारण मनुष्य के उपकरण लेकर गिरते-पड़ते उठते आगे बढ़ते जाते हैं और अन्त में अपने अन्दर की कमजोरियों को दूर कर दिव्य रूप में हमारे सामने आते हैं। वे धीरे धीरे गढ़े जाते हैं। गांधी ऐसा ही महापुरुष है। सब न रामतीर्थ हो सकते हैं, न गांधी पर सब जहां गांधी का अनुकरण कर सकते हैं वहां सब रामतीर्थ के पथ पर नहीं चल सकते। इस दृष्टि से भी वर्तमान युग में गाँधी हमारे अनुकरण के लिए सर्वोत्तम महापुरुष है। वह प्रत्येक क्षेत्र में काम करनेवाले ईमानदार कार्यकर्ता के लिए ध्रुवतारा के समान मार्ग-दर्शक है।

× × ×

आज जब हिंसा का दैत्य मानवजाति, को निगलने के लिए अपना भयानक मुख फैलाता जा रहा है, जब मानवता की लाशों पर राष्ट्रों की झूठी समृद्धि के महल खड़े किये जा रहे हैं जब दुनिया के श्रेष्ठ पर गरीब मनुष्य प्राणी के दैन्यमय जीवन को पिटाकर उस पर विनाश मग्न (ताण्डव) नृत्य कर रहा है, जब घायल, पीड़ित, अपमानित एवं दर्द से कराहती हुई मनुष्यता सघनतम अन्धकार में छटपटा रही है तब उसको

एक-मात्र आशा गाँधी के रूप में क्षितिज पर फूट रही है। इस दुबले पर अत्यन्त शक्तिमान महापुरुष में विश्व की आशा और मानव-जाति का निकट भविष्य, बड़ी दूर तक, केन्द्रित है। इसीलिए यदि उसका अहिंसा का व्यापक प्रयोग असफल हुआ तो संसार के लिए बड़ी भयप्रद बात होगी।

इस समय तो वह हमारी आशा का पक्ष है। वह हमारी जीवन-निशा का दीपक है। वह विश्व की आध्यात्मिक साहसिकता का प्रतीक है। इस घोर अंधकार में उसकी डेढ़ हड्डी पसली की मूर्ति ध्रुवतारे की तरह चमक रही है।

गाँधी—अपने विविध रूपों में

O White Innocence !
That thou shouldst wear the mask of guilt to hide
Thine awful and serenest countenance
From those who know thee not !

—SHELLY

—चार—

तपस्वी गांधी

गाँधी के सारे जीवन में ही साधना और तपस्या ओत प्रोत है। ज्यों ज्यों उसमें सत्य की प्रेरणा निश्चित एवं स्पष्ट रूप पकड़ती गई त्यों त्यों जीवन में सादगी, कष्ट सहन और अपरिग्रह को उसने बढ़ाया है। ब्रह्मचर्य, अस्वाद और अपरिग्रह को, जो एक तपस्वी जीवन की आधार शिला है, उसने सम्पूर्ण आग्रह से अपना लिया है और बार-बार अपने हृदय को उलट पुलट कर देखा करता है—उसे कसौटी पर कसा करता है कि कहीं उसमें शिथिलता तो नहीं आ रही है—कहीं भूल तो नहीं हो रही है। इस विषय में वह अत्यन्त निर्दय परीक्षक है,—ऐसा निर्दय जिसकी निर्दयता की मिसाल नहीं।

निर्दय आत्म परीक्षक

खाने के लिए बकरी का दूध और वह चीजें, जो गरीबों के घर में भी मिल सकें, उसके लिए बस है। उसमें भी मिर्च नहीं, मसाले नहीं, प्यार के नाम पर जुर्म जैसा है। कपड़े के नाम पर एक लँगोटी और एक चादर! इसी से सैकड़ों मील लम्बा सफर तीसरे दर्जे में करता है। पाखाना साफ करने और जूता बनाने से लेकर वायसराय के बराबर बैठकर बातें करनेवाले इस अद्भुत पुरुष

अनावृत जीवन

ने विधवा की निस्पृह सरलता और तपस्या-वृत्ति को जीवन मे अपना लिया है। वह सदा जागरूक रहता है। ईर्ष्या द्वेष, दभ एव क्रोध को उसने अपने मन से निकाल फेंका है। फिर भी अपनी अपूर्णताओं पर, पश्चात्ताप दग्ध प्रेमी की भाँति उसका हृदय जल रहा है।

× × ×

जन सेवा की गहरी भावना

१९१५ ई० की बात है। गाँधी ने गोखले के एक चित्र का उद्घाटन किया था। उद्घाटन के पहले एक भजन गाया गया। जब उद्घाटन करने के लिए गांधी खड़े हुए तो भजन का उल्लेख करते हुए कहा—"मैंने भजन मे पाया कि प्रभु उनके साथ है जिनके वस्त्र फटे एव धूल धूसरित है। मेरा ध्यान तुरत अपने वस्त्र के निचले भाग पर गया। मैंने देखा कि वह धूल-धूसरित नहीं है और जीर्ण शीर्ण भी नहीं है। वह बिना एक धब्बे के—बिलकुल साफ है। ईश्वर मुझ मे नहीं है!" इस भाषण मे गांधी की तपस्या की भित्ति स्पष्ट दीख पड़ती है। उसका हृदय सदा दीन-दुखिया एव ग़रीबों के बीच रहता है। वह सदा उनकी सेवा, उनकी रक्षा, उनकी सहायता में लगा रहना चाहता है। इस सम्बन्ध मे सतत जागरूक रहने के लिए वह अपने को (और अपने द्वारा सब ईमानदार कार्य-कर्त्ताओं को) पुकारकर कहता है—"दीन दुखियों की निष्काम सेवा से बढ़कर पवित्र और प्रभु को प्रिय कोई पूजा नहीं है।" और—"ईश्वर इन्हीं गरीबों के बीच रहता है क्योंकि वे उसे अपनी एक मात्र शरण एव रक्षक के रूप में अगीकार करते है। इसलिए उनकी सेवा करना ईश्वर की सेवा करना है।" उसने दरिद्रनारायण के साथ अपना जीवन मिला दिया है। कोई कार्य, कोई सेवा, कोई विषय उसे इतना प्रिय नहीं जितना दरिद्रों की सेवा। किसानो का दु ख उसे द्रवीभूत कर देता है। चम्पारन, खेड़ा, बारडोली सब उसकी इस सवेदनशीलता का परिचय देते है।

उसने गरीबी को सूम के धन की तरह अपना लिया है और इसलिए वह गरीब को अपने अन्दर देख सका—पा सका है और इसीलिए गरीब भी उसे पा सके हैं। एक पैसे की फजूलखर्ची उसे चोरी करने के समान मालूम पड़ती है। एक बार की बात है कि साबरमती आश्रम के उनके कमरे में एक मोखे से धूप आती थी और उनके मुख पर पड़ती थी। इससे उनको तकलीफ होती थी इसलिए उन्होंने उसे बन्द करने की इच्छा प्रकट की। एक आदमी बढ़ई को बुला लाया और उसने 'शटर' (बन्द करने और खुलनेवाला रोशनदान) लगवा दिया। गाँधीजी की सम्मति से ही यह काम हुआ पर उस समय अन्य कामों में लगे रहने के कारण उन्होंने बारीकी से इस प्रश्न पर विचार नहीं किया था। बाद में जब विचार किया तो उन्हें मालूम हुआ कि मैंने पैसे का अपव्यय और दुरुपयोग किया है और यह काम एक दफ्ती या कपड़े का टुकड़ा कीलें द्वारा लगा देने से भी हो सकता था। उस दिन शाम की प्रार्थना में पश्चाताप दग्ध वाणी में उन्होंने अपनी दुर्बलता स्वीकार की।

इसी प्रकार एक दूसरे अवसर पर एक फौजदारी मुकदमे में आश्रम के सदस्य श्री छगनलाल जोशी को गवाह के तौर पर अदालत के सामने उपस्थित होने का सम्मन आया। अदालत का स्थान बहुत दूर था और सम्मन के साथ राह खर्च न आया था। आश्रम के सदस्य की हैसियत से छगनलाल के पास अपना पैसा या समय न था। उन्होंने मामला गाँधीजी के सामने रखा। गाँधीजी ने निर्णय किया कि आश्रम का धन सार्वजनिक धन है और ऐसी बातों में खर्च नहीं किया जा सकता। फलतः छगनलाल गवाही देने न जा सके। इस जुर्म में गिरफ्तार हुए पर पीछे जब अदालत को अपनी भूल मालूम हुई तो छोड़ दिये गये।

दूसरी घटना

दांडी-यात्रा के समय भी साथियों-द्वारा कुछ अपव्यय होने पर उन्होंने बड़े दुःख के साथ कहा था—"आह! हम ईश्वर के नाम पर यह

यात्रा कर रहे हैं और भूखों, नंगों एवं बेकारों के नाम पर कार्य करने का दावा करते हैं !"

पर यह गरीबी,—यह अपरिग्रह ही तपस्या का सब-कुछ नहीं है। उसमें संयम का प्रकाश होना चाहिए। गांधी ने इस पर बहुत ध्यान दिया है। ब्रह्मचर्य का निरन्तर अभ्यास उसके जीवन में चल रहा है। शरीर, मन और जिह्वा (अस्वाद व्रत द्वारा) पर विजय प्राप्त करने की साधना उसके जीवन का स्थायी अंग बन गई है। इसने जीवन में त्याग को महत्व दिया है और उसे त्याग से महिमामय बना दिया है।

संयम का प्रकाश

पर तपस्या के कंटकाकीर्ण पथ का पथिक इतने ही से सफल नहीं हो सकता। मार्ग में अनेक कठिनाइयां हैं, अनेक प्रलोभन हैं। हिंसक वासनाएँ उसे निगलने को तैयार। दोनों ओर खाईं है,—जरा फिसले और नीचे गिरे। इसलिए तपस्वी का अपने और अपने प्रभु में पूर्ण विश्वास होना चाहिए। गांधी को वह विश्वास असीम मात्रा में प्राप्त हुआ है। यह श्रद्धा ही उसकी लाठी है, यही उसका कवच है। यह श्रद्धा पहाड़ की तरह अचल है, आंधी जिसे हिला नहीं सकती और तूफानी बादल जिससे टकराकर स्वयं चूर-चूर हो जाते हैं। उसके ये शब्द अविश्वास के अंधकार और कोहरे को भेद कर वायु की सतह पर तैर रहे हैं—"अपनी छाती पर हाथ रखकर मैं कह सकता हूँ कि अपने जीवन के एक क्षण में भी मैं ईश्वर को नहीं भूलता। इन २० से भी अधिक वर्षों में मैंने जितने भी कार्य किये हैं सब इस तरह किये हैं मानों ईश्वर के सामने हूँ।" वह अपने दाता को, अपने मालिक को कभी नहीं भूलता। और वह मालिक भी उसकी अन्तःप्रेरणा में उससे बोलता है, उसके साथ हँसता है—उसे कष्ट में, दुःख में, अंधकार में रास्ता दिखाता है।

प्रभु में अगाध श्रद्धा

भगवान् ने अपनी चिर-सत्यवाणी—

'सब धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज'

में आत्मार्पण का जो आदेश किया है उसे इस बूढ़े दुबले पतले तपस्वी ने सम्पूर्ण सचाई के साथ ग्रहण कर लिया है। सर्वस्वार्पणकारी को भगवान् ने जो आश्वासन—

अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।

दिया था, उसके अनुसार ही उसने इस तपस्वी भक्त को अपना लिया है। फिर भी उसकी नम्रता, उसकी गरीबी देखो, जो वह व्यथित वाणी में, रह रहकर पुकार उठता है—

'मो सम कौन कुटिल खल कामी!'

यह सतत् आत्म निरीक्षण, अन्त र्व्यथा और प्रायश्चित्त भी उसकी तपस्या के अंग हैं। वह पूर्णत देव पर चढ़ा हुआ जीवन है। वह सेवा, त्याग एवं निःस्वार्थता का एक उपदेश है। उपवास और प्रार्थना उसके दो पहरेदार हैं। उसका जीवन सतत उपासना का जीवन है जिसको प्रार्थना ने, विनय ने माँज माँजकर उज्ज्वल बना दिया है। यह प्रार्थना भी कैसी? —"भिक्षा नहीं, आत्मा की आकुलता, अपनी दुर्बलताओं की दैनिक स्वीकृति अपने कर्त्तार के साथ मिलकर एक हो जाने की हृदय विह्वलता।" यह प्रार्थना उसकी शक्ति है और इसके बल पर वह तपस्या का कण्टकाकीर्ण पथ अद्भुत शान्ति से तै कर रहा है।

—पाँच—

तत्वज्ञानी के रूप में

अपने सत्य अहिंसा (सत्याग्रह) के जीवन व्यापी प्रयोग कर-करके गाँधी ने उसे एक सम्पूर्ण तत्वज्ञान के रूप में परिणत कर दिया है। उसका जीवन आदि से अन्त तक सत्य की एक चिर साधना है। 'रोम्याँ रोला' के 'ज्याँ क्रिस्तोफ' का नायक जैसे अनेक क्षेत्रों से गुजरता है पर जीवन के प्रत्येक रंग में वह एक साधक है, जिसके अन्दर सत्य प्रत्येक अनुभव के साथ पनपता और विकास पाता है, उसी प्रकार गाँधी के प्रत्येक कार्यक्रम में सत्य की अबाधित साधना निरन्तर चलती रही है और आज भी उसी प्रकार चल रही है। उसके कार्यक्रम बदलते रहे हैं, उसका क्षेत्र बदलता रहा है, उसके बाह्य आवरण में उतार चढाव होते रहे हैं पर इन सबके बीच गाँधी की दिशा ज्यों की त्यों—एक—रही है।

जैसा कि सत्यालोक के प्रत्येक दर्शन में होता है, गाँधी का जीवन सत्य भी किसी देश या जाति की सीमा में बँधा नहीं है। वह स्वयं कहते हैं—"मेरे धर्म में कोई भौगोलिक बंधन नहीं है।" गाँधी का सम्पूर्ण तत्वज्ञान नीति प्रधान है।

नीति की प्रधानता

आत्मानुभव की दृष्टि से जो सदाचरण आवश्यक है उन्हें ही वह धर्म मानते हैं और इसीलिए नीति और धर्म में अन्तर नहीं देखते। जीवन के प्रत्येक पग पर वह शुद्ध नैतिकता पर जोर देते हैं। वस्तुतः उनका तत्वज्ञान ही आध्यात्मिक की अपेक्षा नैतिक अधिक है। नैतिकता से स्वयं आध्यात्मिकता का जन्म होता है, यह उनके जीवन से ही स्पष्ट है। उनका धर्म व्यावहारिक आदर्शवाद पर निर्भर है। शुद्ध निःस्वार्थ सेवा इस धर्म का साधन है, सार्वदेशिक प्रेम इस सेवा का साध्य है। इसीलिए उनके धर्म के,

लिए जाति या देश की मर्यादा आवश्यक नहीं। प्रत्येक श्रेणी और मर्यादा का आदमी उसे कर सकता है। भगवान् बुद्ध के बाद धर्म की तात्विक भावना को इतने सुगम रूप में जगत् के सामने और किसी ने न रखा।

सत्य गाँधी के तत्त्वज्ञान का ध्रुवतारा है और वही उसका लक्ष्य भी है। अहिंसा इस सत्य की सिद्धि का साधन है। अहिंसा का विकसित और परिणत रूप प्रेम है। उस प्रेम से सब कुछ संभव है, इस आधार को लेकर ही गाँधी चलता है। ऐसी अहिंसा—प्रेम—एक प्रकार का अपरिणत सत्य ही है। वह विरोधी का प्रहार हँसते हँसते सहन करती है और तब तक सहन करती है जबतक उसका क्रोध हार नहीं जाता। इस प्रकार अक्रोध से क्रोध को जीतकर अहिंसा का प्रयोक्ता अपना और विरोधी दोनों का कल्याण करता है। और फलतः दोनों के बीच प्रेरणा की एकता (आत्मैक्य की भावना) आती है। इसके अवलम्ब से ईर्ष्या द्वेष भय लोभ इत्यादि का—तमस् का—लोप होता है और ज्यों-ज्यों अहिंसा पूर्णतर प्रेम में परिणत होती है त्यों-त्यों सत्य का अनुभव अधिक स्पष्ट होता है। तमस् एवं रजस के क्रमिक लोप और सत् के क्रमिक विकास के साथ स्वभावतः आध्यात्मिक अनुभूति का जन्म होता है। ज्यों-ज्यों साधक में सत्यानुभव की अधिक शक्ति आती है त्यों-त्यों उसके आत्म दर्शन की क्षमता बढ़ती है। वह जगत् को आत्ममय देखने लगता है। यह सर्वात्म-भाव ही विश्वात्मानुभव की कुंजी है।

तत्वज्ञान का ध्रुवतारा

इस प्रकार सत्य और अहिंसा दोनों सामान्य एवं सर्वश्रुत शब्दों को गाँधी ने अपने जीवन की साधना में अत्यन्त दिव्य और तात्विक रूप दे दिया है। उनके लिए जो सत्य है वही परमेश्वर है। यह सत्य सर्वव्यापक है—उसके बिना किसी चीज की स्थिति नहीं। अतः उसका प्रयोग प्रत्येक क्षेत्र में किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में गाँधी मानव जीवन के विकास की

गांधी फिलासफी कैसे चलती है ?

अधिक से अधिक सुविधा देता है। क्योंकि सत्य के साथ अहिंसा मिली रहने से, जहाँ एक आदमी अपने आत्मिक विकास की सुविधा पाता है वहाँ उसका उपयोग करने म उसे दूसरो के विकास के लिए भी सुविधाओं का खयाल रखना पडता है। मेरा खयाल है कि गाँधी का यह मानना ह कि बिना इस दृष्टि के कुछ व्यक्तियो के विकास का दरवाजा तो खुला रहता है पर ऐसी सार्वदेशिक परिस्थिति पैदा हो जाती है जिससे सामूहिक रूप से मनुष्य का विकास रुक जाता है और अन्त में इसका परिणाम यह होता है कि व्यक्ति और समाज दोनों सच्चे विकास एव सुख की सुविधा से वचित रह जाते ह। इस प्रकार भारतीय और युरोपीय तत्वज्ञान के दो दृष्टि बिन्दुओं को उन्होंने मिला दिया है। और आत्म शोध एव समाज-सेवा का अद्भुत समन्वय अपने जीवन एव तत्वज्ञान में किया है।

यों अहिंसा, उनके तत्वज्ञान मे, स्वय एक अपरिणत सत्य ह फिर भी प्रमाद न हो इसलिए वह उसपर अलग से जोर देते ह। लक्ष्य के विषय में प्रमाद न हो इसलिए उन्होंने सत्य को जहाँ लक्ष्य बनाया और अहिंसा को उसका साधन वहाँ साधक की पवित्रता की रक्षा और उसे प्रलोभनों से बचाने के लिए कुछ और शर्तें भी उन्होंने लगा दी ह। इनमें अपरिग्रह मुख्य है। उनकी फिलासफी मे समाज की दृष्टि से भी इसका बडा महत्त्व है। जितनी चीजों के बिना जीवन यात्रा चल ही न सके उतनी ही चीजें ग्रहण करने का व्यक्ति को अधिकार है। इसलिए अपरिग्रही देश-सेवक के लिए यह डर नहीं है कि वह देश प्रेम के उन्माद में विश्व को भुला देगा। फिर इस अपरिग्रह के पहरेदार के रूप म उन्होंने अस्तेय और अस्वाद को लगा दिया है। यों तो शुद्ध अपरिग्रह म ये दोनों ही बातें आ जाती ह परन्तु जोर देने के खयाल से इनको अलग ही रखा है। इस अपरिग्रह तथा व्यक्तिगत साधना एव जाति तथा समाज के उचित विकास के लिए ब्रह्मचर्य एक बहुत

अपरिग्रह

अपरिग्रह के दो पहरेदार

आवश्यक और महत्त्वपूर्ण शर्त है। उनका अस्वाद उनके ब्रह्मचर्य म भी आ जाता है। धार्मिक प्रमाद भी साधक के पथ म बड़ी बाधा है इसलिए सर्वधर्मों के प्रति आदर भाव रखना भी उनकी 'फिलासफी' म एक जरूरी शर्त है। इस प्रकार सत्य के लिए अहिंसा, अहिंसा के लिए अपरिग्रह, अपरिग्रह के लिए ब्रह्मचर्य, ब्रह्मचर्य के लिए अस्वाद, अस्वाद के लिए अस्तेय आवश्यक है और गाँधीजी का नीतिशास्त्र या तत्त्वज्ञान इन्हीं सिद्धान्तों पर आश्रित है।

इस प्रकार गाँधी ने अपने नीति धर्म को आत्म साक्षात्कार के सुश्रृंखल तत्त्वज्ञान के रूप म जगत् के सामने रखा है।

—छः—

समाज-परिष्कारक गाँधी

यों गाँधी के सारे कार्यों ने ही समाज पर असर डाला है और उसके दोषों का दूर तक परिष्कार किया है, किन्तु इसके अलावा और भी काम उसने किये हैं जिनके द्वारा सीधे-सीधे समाज-सुधार का प्रश्न हल हुआ है। इसम अस्पृश्यता निवारण, स्त्रियों की जागृति एव खान पान म जातीय भेद का निवारण मुख्य हैं।

अस्पृश्यता निवारण

अस्पृश्यता निवारण के कार्य को तो उसने अपने जीवन का मुख्य कार्यक्रम बना लिया है। जो आत्म साक्षात्कार के लिए निकले है और जो सर्वात्म भाव को लेकर जीवन म सत्य की साधना कर रहा है उसके लिए यह सभव ही कैसे हो सकता है कि वह मनुष्य मनुष्य के बीच घृणा फैलानेवाली अस्पृश्यता की कुत्सित प्रथा का समर्थन करे। इसीलिए उसकी दृष्टि में 'अस्पृश्यता हिन्दू धर्म का कलङ्क है।' और 'हिन्दू धर्म ने अस्पृश्यता को स्वीकार कर पाप किया है। और हमें साम्राज्य म अछूत बना दिया है।' गाँधी चाहता है कि यदि उसका दूसरा जन्म हो तो भगी के घर हो, जिससे

यह उनके बीच रहकर, उन्हीं का होकर उनकी सेवा कर सके। १९२१ में उसने अपने एक व्याख्यान में कहा था कि जिन दो आकांक्षाओं ने मुझे जीवित रखा है उनमें एक अस्पृश्यता निवारण है और दूसरी गो-रक्षा। जीवन के आरम्भ से ही हम देखते हैं कि अस्पृश्यता को उसके हृदय ने कभी कबूल नहीं किया। दक्षिण अफ्रीका में उसने इसे क्रियात्मक रूप दिया और इसके कारण कुटुम्ब में जो तूफ़ान उठे, उनका सामना किया। जब कोचरब में सत्याग्रह आश्रम खुला तब अस्पृश्यता निवारण के कार्य को उसने अपने जीवन में स्थायी रूप से ग्रहण किया और तब से लक्ष्मी (एक अछूत कन्या, जिसका विवाह इसी वर्ष—१९३३ ई० में—हुआ है) उनकी पुत्री के रूप में आश्रम में पलती रही है। १९२० से कांग्रेस कार्यक्रम में भी उसने अस्पृश्यता निवारण को महत्वपूर्ण स्थान दिलाया। हिन्दू दृष्टि-कोण छोड़ दें, तो मनुष्यता की दृष्टि से भी, और राष्ट्रीय दृष्टि से भी, अस्पृश्यता भारत के लिए एक बड़ा खतरा है। इसलिए कांग्रेस के विधायक कार्यक्रम में उसका मुख्य स्थान है। और अब तो इस समस्या के लिए दो बार वह अपने जीवन की बाजी भी लगा चुका है। दो बार प्रभु से लड़ाई लड़ी है। उसका उपवास एकाएक हमारे सामने आया और सोते हुए हिन्दू अन्तःकरण को उसने झकझोरकर जगा दिया। जिस राक्षस ने हमारे सुधारकों को युगों तक तंग किया, जो हमारे सब प्रयत्नों पर सदा उपेक्षापूर्ण अट्टहास करता रहा, जिसने हमें विदेशी बाजारों में—'मेयो' इत्यादि की किताबों में—अपमानित किया वह आज इस असाधारण पुरुष के प्रहारों से दम तोड़ रहा है।

एक दिन जो मन्दिर स्वच्छता और पवित्रता के केन्द्र थे, जहाँ से हमें आत्मिक प्रकाश मिलता था और संसार-यात्रा में थके, निराश जनों को जहाँ श्रद्धा जीवन देती थी वहाँ आज अस्पृश्यता ने मानव धर्म को बलि

४ इस समय जो उपवास चल रहा है, उसे लेकर तीन बार कहना चाहिए।

दान कर दिया है, वे जोर जबर्दस्ती के अड्डे हो रहे हैं। लोग यह भूल गये हैं कि धर्म आत्माओं को नियोजित करता है, पृथक् नहीं। और जो मिलाता है, वृद्धि करता है, विकसित करता है, वही सत्य है—वही धर्म है। श्रद्धा अन्ध विश्वास नहीं है, यह मानवी अन्तःकरण का पक्ष है, यह आत्मिक सत्यों को ग्रहण करनेवाली मानव हृदय की उदार भावना है। धर्म के नाम पर आज जो हो रहा है, यह कितना व्यथाकारी है? वस्तुतः अस्पृश्यता की समस्या तो सामाजिक समस्या है, धर्म से उसका कुछ सम्बन्ध नहीं। गाँधी ने इस अमानुषिक प्रथा को दूर करने के लिए अपने सत्याग्रह में, अपनी तपस्या से कार्य शक्ति की एक लहर हिन्दू समाज के अन्दर उत्पन्न कर दी है। और आशा की जाती है कि हिन्दू समाज इस चिर-सचित गंदगी को इस लहर में धो डालेगा।

स्त्रियों की जागृति

स्त्रियों की अभूतपूर्व जागृति में गाँधी एक मुख्य कड़ी है। उसने सत्याग्रह-आन्दोलन का सचालन इस ढंग से किया कि जो बातें दो साल पहले अनहोनी समझी जाती थी, वे सभव हो गई। शत-शत बहनों ने परदे को तोड़कर मातृभूमि की वेदी पर अपनी पूजा, अपनी भेंट अर्पित की है और इन बहनों के त्याग, कष्ट सहन और वीरता की गाथाएँ हमारे इतिहास के उज्ज्वलतम पृष्ठों में स्थान पायेंगी। दो वर्ष के इस युद्ध में भारतीय नारी ने अपनी शक्ति, अपनी असीम सभावनाओं को अच्छी तरह पहचान लिया है। वह जान गई है कि वह न केवल अपने बच्चों की माता और अपने पति की चिरसंगिनी है, वह न केवल कुटुम्ब को अपने चिर स्नेह के अमृत से सींच सकती है वरन् देश और समाज के भविष्य निर्माण के कार्य में भी किसी से पीछे नहीं है। अभी तक अबला, दुर्बल, शिथिल, दबी और दबाई हुई तथा दयनीय इत्यादि अनेक अनुपयुक्त विशेषणों से पुकारी जानेवाली भारतीय नारी का अत्यन्त दिव्य और तेजस्वी रूप सत्याग्रह-युद्ध में प्रकट हुआ है। और इसका श्रेय, बहुत बड़ी मात्रा में, गाँधी को है।

पर गाँधी की भारतीय नारी आँखो मे चश्मा, हाथ मे बग लेकर आफिस जानेवाली नारी नहीं है, न वह पाउडर-भूषित मुख और 'लिपस्टिक'—रजित ओठो तथा बार बार 'वैनिटी बाक्स' क उपयोग द्वारा लोगो का ध्यान अपनी ओर—अपने रूप को ओर आकर्षित करने वाली रमणी ह। वह नारीत्व के प्रकाश और मातृत्व की दिव्य आभा से दमकती हुइ, पुरुष को सच्ची सहचरी है। उसके हृदय में सहानुभूति है, दया है। वह अन्नपूर्णा है, वह कुटुम्ब को स्नेह दान करनेवाली ह और यही उसका असली क्षेत्र है। जगद्धात्री की प्रतिनिधि रूपा यह भारतीय नारी, जिसमें श्रद्धा है, विश्वास ह, तज है, सेवा ह, धर्म है, गाँधी की आदर्श नारी है।

परदा प्रथा हटाने, विवाह प्रथा को शुद्ध धार्मिक सस्कार का रूप देने और उसम आदर्श सादगी लाने का प्रयत्न गाँधी की ओर से बराबर होता रहा है। खान पान म असाधारण स्वच्छता और पवित्रता का पालन करते हुए उसने जातिगत

अन्य सुधार

छूत-छात को दूर भगाने का काम भी, एक सीमा तक, किया है। आश्रम में शुरू से विभिन्न देशों, वर्णों एव जातियों के भाइ-बहन साथ बैठकर खाते हैं तथा दूसरे हजारों राष्ट्रीय एव सामाजिक कार्यकर्ता इस पद्धति का पालन अपने जीवन म करते ह।

अपने पुत्र देवदास का विवाह ब्राह्मण कन्या लक्ष्मीदेवी (श्री राज गोपालाचार्य की पुत्री) से करके गाँधी ने विवाह प्रथा का क्षेत्र बहुत विस्तृत कर दिया ह। यद्यपि वह वर्ण को मानता है पर शुद्ध स्नेह की अवस्था म जाति, वर्ण और प्रांतीयता के बधनों को तोडकर भी विवाह करने को वह धर्म सम्मत मानता है। उसके लिए धर्म की प्रेरक भावना (स्पिरिट ऑव् रिलीजन) मुख्य है, आचारों का निर्णय उसीके अनुसार होना चाहिए।

इस प्रकार गाँधी ने समाज-सुधारक के रूप म भी इतना काम किया ह, जिससे उसका नाम हमारे सर्वश्रेष्ठ समाज-सुधारकों के साथ लिया जा सकता है।

—सात—

लेखक और कलाकार गाँधी

बहुत कम लोग इस बात को जानते हैं कि गुजराती साहित्य को उसके वर्तमान रूप में लाने का कितना श्रेय गाँधी को है। गुजराती भाषा, आज जो, एक नूतन विचार प्रवाह का साधन बन गई है, आज उसमें जो शक्ति हम पाते हैं, आज उसमें जो एक नूतन प्राणोन्मेष है, वह मुख्यत गाँधी और काकेल्कर की देन है। पर गुजराती ही क्या अंग्रेजी भाषा पर भी उसकी छाप पड़ रही है। क्या गुजराती में, क्या अंग्रेजी में गाँधी की लेखन शैली एक उच्चकोटि के कलावन्त की शैली है। एक शब्द भी व्यर्थ नहीं, नपे-तुले शब्द अपने अपने स्थान पर ठीक। आडम्बर नहीं, शृंगार नहीं। फिर भी वह इस सादगी में शैली को अद्भुत सौन्दर्य विकीर्ण करता है। कभी-कभी छोटे छोटे वाक्यों में वह

शैली और भाव का राजा

असीम भाव सौन्दर्य भर देता है। गो पर, विधवा पर, भारतीय नारी पर लिखे हुए उसके वाक्य उच्च श्रेणी के गद्य काव्य-से लगते हैं। "गाय दया की एक कविता है" (Cow is the poem of pity) इस छोटे वाक्य में इस प्राणी के जीवन को उसने थोड़े में कह डाला है और उस कहने में कितना भावोद्रेक, कितनी करुणा है! इसी प्रकार "घृणा सदैव घातक होती है, प्रेम कभी नहीं मरता" या "सत्याग्रह आलसियों या कायरों का आनन्द है। आत्मवीर अकेले लड़ने में आनन्द पाता है" या "विवाह वह बाड़ है जो धर्म की रक्षा करती है" या 'प्रेम बोलता नहीं, जो बोले वह प्रेम नहीं।'

उनकी लिखी-पुस्तकें, उनके लिखे लेख और 'नवजीवन' तथा 'यंग इण्डिया' में उनकी कलम से निकली अजस्र विचार धारा से भाषा पर

उनके अधिकार का पता चलता है। अनेक अंग्रेज यात्रियों एव लेखकों ने उनकी अंग्रेजी की प्रशंसा की है। बात यह है कि उनकी विचार शक्ति बहुत सूक्ष्म और तीव्र है, इसलिए भाषा अपने आप उनके दिव्य विचारों का अनुकरण करती है।

पर जब हम उन्हें कलाकार कहते है तब हमारा यह अभिप्राय नहीं कि उन्होंने कोई सुन्दर चित्र बनाया है, या कविता लिखी है, या सुन्दर गायक या वादक है। जब उन्हें कलाकार कहते है तो हम कला को उसके अत्यन्त विकसित रूप में

एक सदेह काव्य

लेते है। उनका सारा जीवन ही श्रेष्ठ कला का नमूना है। वह एक सदेह काव्य है। उसकी आत्मा सतत झंकृत वीणा है जिससे आत्मार्पण की रागिनी निकलती है और जो उसके कभी न रुकनेवाले कर्ममय जीवन के मृदंग पर उछल-उछल कर जगत् को उत्साहित करती है। गाँधी एक श्रेष्ठ कर्म-कलाविद् (Artist in Action) है। वह कहता है—"भूखा जन समूह केवल एक कविता चाहता है—प्राणदायक भोजन।" उसने काव्य को क्रियात्मक मानवी करुणा से ओत प्रोत कर दिया है। और चूँकि उसके हृदय से सदा करुणा की अमृत निर्झरिणी बह रही है इसलिए उसके कार्यों में काव्य का सौष्ठव हम देखते हैं। दांडी यात्रा की योजना सिवाय गाँधी के दूसरा न बना सकता था। इस योजना पर ही एक श्रेष्ठ कलाकार की छाप है। एक कवि के अतिरिक्त कौन इसे कर सकता था?

गाँधी कला कला के लिए' सिद्धान्त का समर्थक नहीं, वह वर्डस्वर्थ की भाँति कला की नैतिक कीमत का पूजक है। वह कला को नैतिक प्रेरणाओं, नैतिक शक्तियों का विकासक मानता है। उसके मत से सब प्रकार की कला आत्मा की—मनुष्य की आन्तरिक दिव्यता को प्रकट करती है

प्रकृति सौन्दर्य का पुजारी

और इस प्रकार आत्मानुभव में सहायक होती है। वर्डस्वर्थ की भाँति ही

गाँधी भी प्रकृति म अनन्त रमणीयता—अनन्त सौन्दर्य देखता है। प्रकृति के इस सौन्दर्य में नहाकर उसकी मानसिक क्लान्ति दूर हो जाती है और आत्मा का तेज शरच्चन्द्र की निर्मलता के साथ प्रकट होता है। वह स्वय कहता है—"जब मैं सूर्यास्त की सुषमा या चन्द्रमा के सौन्दर्य को देखता हूँ तो मेरा अन्तःकरण प्रभु की पूजा में फैल जाता है।" वह उस श्रेणी का कवि है जो एक हँसती कली देखकर मुग्ध हो जाता है और उसमें भगवान् की मुस्कराहट को प्रत्यक्ष देखता है। एक दिन रात को जब मीरा बहन (मिस मेडलीन स्लेड) धुनकी के काम में लाने के लिए बबूल की पत्तियों का एक गुच्छा तोड कर लाई तो गाँधी ने देखा कि प्रत्येक पत्ती सिमटी हुई गहरी नींद म पडी है। दुःखभरी आँखों से मीरा बहन की ओर देखकर कवि बोला—"वृक्ष हमारी ही तरह प्राणी है। उनमे जीवन है, वे साँस लेते है, वे खाते पीते है और हमारी ही तरह उनको नींद की जरूरत होती है। इसलिए रात के समय, जब वृक्ष सो रहे हों, पत्तियों को तोडना निर्दयता है। निश्चय ही कल की सभा में मेरा भाषण तुमने सुना होगा जिसमें मैं बेचारे फूलों के बारे में बोला था कि लोग मेरे ऊपर फेंकने या गले में डालने के लिए हल्की-हल्की कोमल कलियाँ के गुच्छे तोडकर लाते हैं, उससे मुझे कितना दुःख होता है। हम अपने एव शेष प्राणिजगत् के बीच जीवित सम्बन्ध का अनुभव करना चाहिए।"

× × ×

शुद्ध सगीत का वह अनन्य प्रेमी है और उसने इसे आश्रम की व्यवस्था में स्थान भी दिया है। उसके ही शब्दों म देखें तो उसका कहना है—"सगीत ने मुझे शान्ति दी है। सगीत ने मेरे क्रोध पर विजय पाने म सहायता की है। ऐसे अनेक अवसर मैं याद कर सकता हूँ जब एक भजन मेरे अन्तःकरण में पैठ गया है, जब वे ही भाव गद्य म मुझे स्पर्श करने म असफल रहे।" एक बार स्व० द्विजेन्द्रलाल राय के सुपुत्र गायक दिलीपकुमारराय

सगीत का प्रेमी

से गाँधीजी ने कहा था—"मैं संगीत के विरुद्ध हो ही कैसे सकता हूँ ? मैं तो संगीत बिना भारत के धार्मिक जीवन के विकास का ख्याल ही नहा कर सकता। मैं तो संगीत की तरह तमाम कलाओं का प्रेमी हूं। हाँ, कला के नाम से आजकल अनेक चीजों का परिचय कराया जाता है, उनके खिलाफ जरूर हूं। कला के लिए हृदय चाहिए, इसका रहस्य समझने के लिए शिक्षा और ज्ञान की जरूरत नहीं।" "तपस्या जीवन में सबसे बड़ा कला है। जीवन समस्त कलाओं से श्रेष्ठ है। मैं तो समझता हूँ कि जो अच्छी तरह जीना जानता है वही सच्चा कलाकार है। उत्तम जीवन की भूमिका बिना कला किस प्रकार चित्रित की जा सकती है ? कला के मूल्य का आधार है जीवन को उन्नत बनाना। जीवन ही कला है। कला जीवन की दासी है। और उसका काम यही है कि वह जीवन की सेवा करे। कला विश्व के प्रति जाग्रत होनी चाहिए, कला जीवन के प्रति जाग्रत होनी चाहिए।"

उसके विचार से सत्य म अद्भुत सौन्दर्य समाहित है। और सत्य के द्वारा ही सच्चा सौन्दर्य-दर्शन हो सकता है। सुन्दर में सत्य और शिव खोजने की जगह वह सत्य मे ही सुन्दर और शिव खोजता है। इस प्रकार वह एक नैतिक (एव उपयोगितावादी) कलावन्त है। उसका सारा जीवन आत्म सौन्दर्य से जागृत है और श्रेष्ठ कला का एक सुन्दर प्रतीक है।

दीनबंधु गांधी

गाँधी दीनों की लाठी है। उसने इनकी सेवा में ही अपनी सार्थकता मानी है। वह इनकी सेवा को ईश्वरोपासना का सर्वोत्कृष्ट रूप मानता है। उसने दरिद्र को नारायण बना दिया है। उसे रात दिन इस दरिद्रनारायण का ध्यान रहता है और उसने अपने को उनमें मिला दिया है।

—और इन दीनों ने भी उसे समझा है और हम शिक्षितों से अधिक उसे अपनाया है। वे उसका नाम सुनकर उसी प्रकार चमत्कृत होते हैं जैसे तुलसीदास का नाम सुनकर। उनके लिए वह कोई असाधारण पुरुष है, कोई सन्त महात्मा है।

—और गांधी ने निश्चित रूप में भी उनके लिए क्या कुछ कम किया है? अछूतों के लिए प्राण देनेवाला यह महापुरुष उनको खूब समझता है और उनकी हित चिन्ता में उसने ब्रिटिश साम्राज्य की दृढ़ दीवारों को हिला दिया है। इसी प्रकार भारत की गरीबी की मूर्ति—से, चारों ओर से दुरदुराये हुए, हमारे अभागे किसान को उसने धनियों का 'अन्नदाता' कहकर घोषित किया। उनके पल्ले दो पैसे पड़ें इसके लिए उसने भारत के गावों में चरखा ला खड़ा किया है और उसकी मंद रागिनी से उनमें आत्म विश्वास का अद्‌भुत बल पैदा कर रहा है। यह चरखा, जो भारतीय उद्योग का प्रतिबिम्ब है, धीरे धीरे उनके जीवन में स्थान पा रहा है। शहरातियों में से भी बहुतों को उसने सादगी और पवित्रता प्रदान की है।

यह चरखा गाँधी का सहचर है। यात्रा में, जल में, सर्वत्र 'भारत के लिए विष्णु रूप' यह चरखा उपस्थित है। चरखे के पीछे वह पागल है क्योंकि इसमें वह भारतीय किसान का उद्धार देखता है। उसे खादी में भारत की स्वतंत्रता के, भारतीय नारी के शील के, स्वराज्य और सतयुग की स्थापना के दर्शन होते हैं। यह बात सुनकर कोई सोचने लगता है, कोई

हँसता है, कोई विमूढ़ हो उसकी ओर ताकता है पर उसका चर्खा तो इन सब के बीच अबाध गति से चल रहा है।

यह चरखा न केवल भारतीय किसान का सहारा है वरन् पश्चिम की यान्त्रिक औद्योगिकता के प्रति विद्रोह का प्रतीक है। यह उद्योग एवं जीवन में सादगी लाता है जिसे हम ग्रहण करलें तो यान्त्रिक उद्योगवाद से उत्पन्न श्रेणी-युद्ध (पूंजीपति और मजूर के झगड़े) से बच सकते हैं। इस दृष्टि से देखें तो चरखे का अन्तर्राष्ट्रीय महत्व भी कुछ कम नहीं है और जब गाँधी ने कहा था कि अमरिका के प्रति भी यह चर्खा ही हमारा संदेश है तो उसका ध्यान इसी बात पर था। यह चरखा पश्चिम की औद्योगिकता से उत्पन्न होड़ और कलह के बीच शान्ति की संदेश-वाहक पताका की भाँति खड़ा है और सच्चे रास्ते का निर्देश करता है।

× × ×

इन रूपों के अतिरिक्त देश भक्त, विद्रोही, धर्मिक अनेक रूपों में हम गाँधी को देखते हैं पर इन रूपों से जनता इतनी जानकारी रखती है कि उनके वर्णन एवं विवरण की यहाँ आवश्यकता नहीं। वह मनुष्यों का प्रेमी है। उसकी विनोद वृत्ति (sense of humour) और उसका मुक्त हास्य सार्वजनिक क्षेत्र में अफवाह की भाँति प्रसिद्ध हैं। इस विनोद वृत्ति के कारण ही वह इतनी कठिनाइयों, दुःखों के बीच भी जीवित रह सका है। इस विनोद वृत्ति में विरोधी के विरोध का विष बह जाता है और इस साधक को बच्चे की भाँति निर्दोष कर जाता है। जब उसके हृदय में आँधी चल रही हो तो वह हंस सकता है। जो कोई उसके सामने आता है, उसे वह प्रेम की शक्ति से अपना लेता है। उसने प्रेम को एक कला बना दिया है। शिष्टाचार इस कला का सब से उपयोगी एवं आवश्यक अंग है।

इस प्रकार अपने विविध रूपों में प्रकट होकर मोह निशा में ज्ञान के प्रकाश-स्तंभ की भाँति वह हमें मार्ग दिखा रहा है।

—नव—

कतिपय स्मरणीय प्रसंग

गाँधीजी का जीवन उनके विशेष गुणों को व्यक्त करनेवाले प्रसंगों से भरा पड़ा है। जो व्यक्ति प्रतिक्षण अपने सिद्धान्तों के अनुसार चलने में सचेष्ट है, उसके जीवन में ऐसे प्रसंगों की कमी क्या? वे सब लोग, जो उनके सम्पर्क में आये हैं, दो चार उदाहरण अवश्य बता सकेंगे। यहाँ कतिपय स्मरणीय प्रसंगों का उल्लेख किया जाता है।

दक्षिण अफ्रीका का गाँधीजी का जीवन एक तेजी से बन रहे साधक का जीवन था। उस साधना में अद्भुत भावावेश भी था। और यह उनके पवित्र भावावेश तथा साधना का ही परिणाम था कि उस समय सब धर्मों, जातियों एवं देशों के इमानदार साथी उन्हें मिले थे। यह उनके सत्याग्रह का ही प्रभाव था कि कई यूरोपियन इसाई बन्धुओं ने भी भारतीयों का साथ दिया और यातनाएँ सहन की थीं। इस सत्याग्रह ने प्रवासी भारतीय स्त्रियों में भी त्याग की लौ जगाई थी। उन्होंने अपने कष्टों को उदाहरणीय धीरता के साथ सहन किया था। पर गाँधीजी तो उनके दुखों का कारण भी अपने को ही समझते थे और उनके कष्टों को अपनी आत्मिक सहानुभूति से दूर करते थे। २२ दिसम्बर १९१३ का दिन दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह में महत्वपूर्ण था। डरबन में पारसी रुस्तमजी का मकान भारतीयों से भर गया था। सैकड़ों सत्याग्रही अपने बाल बच्चों सहित बैठे थे। इनमें वे लोग भी थे जिन्हें गोलियाँ लगी थीं। शहीदों की विधवा स्त्रियाँ अपने बच्चों को गोद में लिये बैठी हुई थीं। सन्ध्या समय, लगभग ४ बजे, गाँधीजी वहाँ आये। दो ही दिन पहले वह जेल से छूटकर

"शीश चढा चुका हूँ।"

आये थे। वह उस तरफ गये जहाँ परलोकगत सुआई और सेलवनी (जो सत्याग्रह-युद्ध में गोली से शहीद हुए थे) की विधवाएँ बैठी थीं। गाँधीजी को देख उन्होंने आँखों में आँसू भरकर उनके चरणों पर सिर रख दिया। गाँधीजी ने बड़ी कठिनाई से सिर हटाया और एक विधवा बहन के कंधे पर हाथ रखकर एक टक उसकी ओर देखने लगे। विधवा की आँखें भरी हुई थीं और गाँधीजी के हृदय में भी व्यथा-राशि उमड़ रही थी। गाँधीजी को ऐसा मालूम हो रहा था, मानों भारत माता ही उस विधवा बहन के दीन वेश में सामने खड़ी है। ये बहनें तामिल थीं। अतः उन्होंने एक तामिल दुभाषिये को बुलाकर उसके द्वारा इन बहनों से कहा—

"माता तुम चुप रहो; रोओ मत। तुम्हारा रोना सुनकर मुझसे रहा नहीं जाता। तुम्हारा पति अत्याचारियों के हाथ मारा गया है। आज वह भगवान् की गोद में बैठा हुआ है। उसने देश के लिए अपना शरीर दिया। वह अमर हो गया। यदि वह किसी रोग से मरा होता तो मैं आज इस तरह तुम्हारे सामने खड़ा न होता। संसार को उसकी मृत्यु की खबर भी न होती। यह उसके लिए बड़े भाग्य की बात है कि उसको इस अच्छे काम में मौत मिली। जिस दिन तुम्हारी तरह हजारों माताएँ और बहनें विधवा बनेंगी उसी दिन भारत माता का उद्धार होगा। मैं अपना सिर भारत-माता के चरणों पर चढ़ा चुका हूँ। अगर ज़ुल्मी सरकार उसे धड़ से अलग कर दे और तुम्हारी तरह मेरी स्त्री भी एक निराश्रित विधवा हो जाय, तो मैं समझूँगा कि मेरी प्रतिज्ञा पूरी हुई। तभी मेरी अन्तरात्मा को शान्ति मिलेगी। माता, तुम दुःखित न हो। मैं अपना सिर तुम्हारी गोद में देता हूँ। तुम्हारे विधवा होने का कारण मैं ही हूँ। मुझे क्षमा करो और शान्त हो।"

इतना कहने के बाद गाँधीजी ने एक बार फिर प्रणाम किया और वहाँ से चल गये। जो लोग वहाँ मौजूद थे, गाँधीजी की ये स्नेहपूर्ण बातें सुनकर रोने लगे। बहुतों से दिल हिला देनेवाली यह घटना देखी न गई

तो वहाँ से चले गये। हमारे अन्य नेताओं में इतना स्नेह कहाँ दिखाई पडता है ?

× × ×

१९०८ में जब दक्षिण अफ्रिका में कई पठानों ने गलतफहमी के कारण, गाँधीजी को इतना मारा कि यह मरणासन्न हो गये थे तब भी भय

अभय

इनके पास फटक नहीं सका था। उस समय पादरी डोक और उनकी पत्नी ने रात दिन सेवा करके इनकी जान बचाई थी। पर अच्छे होने के बाद भी कई अदूरदर्शी लोग उनको मारने की ताक में रहते थे। महात्माजी के साथ रहनेवाले कई मनुष्यों को यह बात मालूम थी और वे उन्हे सदा सचेत किया करते थे। जब जब यह बात उनके कानों में पडती वे सिर हिलाकर हँस देते। जब अकसर यह बात सामने आने लगी तो एक दिन बोले—"ऐसा क्यों न हो ? उनका भी तो इस शरीर पर अधिकार है ? अगर मुझे अपने देश बधुओं के सामने जाते डर लगे तो मुझे इसी क्षण नेतृत्व को नमस्कार करना चाहिए। जिन लोगों की सेवा करने का मैं दम भरता हूँ, यदि डर के मारे उनसे दूर भगूँ तो मुझ-सा डरपोक और कौन होगा ? देशबधुओं के हाथ से मार खाना जिसके भाग्य में बदा हो वही सच्चा पुण्यात्मा है। इसके सिवा उनकी समझ में मेरी देश-सेवा में कोई भूल होगी तभी वे मुझे दण्ड देना चाहते हैं। इसमें उनकी नेकनीयती ही है। फिर भला मैं उन्हे कैसे दोष दे सकता हूँ ?"

वस्तुत शरीर के सम्बन्ध में जरा भी भय करना गांधीजी को नास्तिकता प्रतीत होती है। जिसने अपना जीवन जन-सेवा में अर्पित कर दिया है और जो प्रभु की शरण में जा चुका है उसे मृत्यु का भय क्या ? वह मरे तो, जिये तो, उसका शरीर प्रभु का सदेश-वाहक है। वह तो हथेली पर सिर लेकर घूमता है। गाँधीजी की निर्भयता और अहिंसा का एक और उदाहरण लीजिए —

गाँधीजी के एक मित्र एव सहयोगी श्री केलेनबैक थे। वह जर्मन थे और दक्षिण अफ्रीका में एक प्रसिद्ध इजीनियर थे। गाँधीजी के साथ रहकर उनका जीवन भी बिलकुल बदल गया था, वह भी साधु प्रकृति के हो गये थे। वह प्राय गाँधीजी के साथ रहते थे। जब उन्हे मालूम हुआ कि कुछ लोग गाधीजी को मारने की ताक में हैं तो वह सदा परछाई की तरह गाँधीजी के साथ रहने लगे। कुछ दिन बाद गाँधीजी को उनके ऊपर सन्देह हुआ और अनुमान से उन्होंने सब बातें जान ली। एक दिन उन्होंने केलेनबैक की जेब में हाथ डाला तो उसमें एक तमचा मिला। उन्होंने कडकर पूछा—"हैं! क्या महात्मा टाल्सटाय के शिष्य भी शस्त्र साथ रखते हैं?"

केलेनबैक ने धीरे से कहा—"जरूरत होने पर रखना ही पडता है।"

गाधीजी ने और कडककर पूछा—"तमचा साथ रखने की कौन-सी आवश्यकता आ पडी है?"

केलेनबेक ने कुछ घबराहट के साथ उत्तर दिया—"मुझे समाचार मिला है कि कुछ लोग आप पर आक्रमण करनेवाले हैं, इसीसे मैं तमचा रखता हूँ।"

गाँधीजी ने कहा—"मेरी रक्षा की जिम्मेदारी तुमने अपने ऊपर ले रखी है! क्या इस तमचे से तुम मेरी रक्षा करोगे?"

केलेनबैक चुप रहे। गाधीजी बोले—"और यदि इस तमचे से ही मेरी रक्षा होती हो तो मैं अभी इसीसे अपने शरीर के टुकडे कर डालता हूँ। तब तुम क्या करोगे? मेरे मित्र, यदि तुम मेरे सच्चे स्नेही होते तो इस शरीर पर तुम्हारा इतना मोह होना सम्भव ही नहीं था। स्नेह केवल शरीर की ही रक्षा नहीं करता, आत्मा की भी रक्षा करता है। शरीर आज नहीं तो कल अवश्य नष्ट हो जायगा। स्नेह के लिए ऐसी क्षण भगुर वस्तु पर आसक्ति रखना अनुचित है। उसे अमरत्व की अभिलाषा रखनी चाहिए। यदि तुम मेरे सच्चे मित्र हो तो तमचे से मेरी रक्षा करने का विचार छोडकर इसे फेंक दो।"

उस दिन से केलेनबैक ने तमंच को छुआ तक नहीं।

सत्याग्रह की अन्तिम लड़ाई में गाँधीजी डरवन से जोहान्सबर्ग जाने वाले थे। तब यह बात मालूम हुई कि कुछ लोगों ने मार्ग में उनकी हत्या करने का षड्यन्त्र रचा है। एक सत्याग्रही ने सब बातें गांधीजी से कहीं और प्रार्थना की कि जोहान्सबर्ग न होकर बाहर बाहर नेटाल जायँ।

और उदाहरण

इस पर गांधीजी ने कहा—"यदि मरने के भय से जोहान्सबर्ग न जाऊँ तो मैं सचमुच ही जीवित रहने के योग्य नहीं। मैं वहां जाऊँ और मारनेवालों की योजना सफल हो जाय तो मुझे संतोष होगा। शायद ईश्वर की यही इच्छा हो कि मैं अपना काम पूरा कर चुका और अब बुला लिया जाऊँ।"

केलेनबैक इस अवसर पर जोहान्सबर्ग में ही थे। उन्होंने यह बात सुनी तो उस आदमी से, जिसने उन्हें यह बात सुनाई थी, कहा—"हम लोगों की अपेक्षा गांधीजी ज्यादा अच्छी तरह अपनी रक्षा करने में समर्थ हैं। और उनसे भी ज्यादा ईश्वर उनकी रक्षा करता है।"

गांधीजी जोहान्सबर्ग गये। वहाँ लोगों ने उनका खूब स्वागत किया। १९०८ में जिन चार पठानों ने गाँधीजी पर आक्रमण किया था उनमें से एक—जिसका नाम मीर था—यहाँ उपस्थित था। उसे जब इस षड्यंत्र की खबर मिली तो उसने गाँधीजी की रक्षा की जिम्मेदारी ली और उनके पहुँचते ही उनके चरणों पर लोटने लगा।

अभय और आत्म-बल की यह महिमा है! इनसे क्या नहीं हो सकता?

× × ×

'बा' (गाँधीजी की धर्मपत्नी) सदा बीमार रहती थीं। कई पुस्तकों के अध्ययन से गांधीजी का खयाल हो गया था कि नमक से रक्त का शोधन नहीं होता, उल्टे वह पतला हो जाता है। एक दिन उन्होंने पत्नी से कहा—"तुम्हारा स्वास्थ्य

करके दिखाओ!

ठीक नहीं रहता है। अगर तुम नमक छोड़ दो तो बहुत जल्द तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक हो जाय।"

कस्तूर बाई बोलीं—"नमक न खाने से कैसे काम चलेगा। उसके बिना अन्न पेट में कैसे जायगा?"

गाँधीजी ने पूछा—"पर नमक न खाया जाय तो क्या हो?"

कस्तूर बाई—"एक बार आप ही उसे छोड़ देखिए, तब आप समझ जायँगे।"

गाँधीजी—"तो लो, तुम्हारे साथ मैं भी इसी समय नमक खाना छोड़ता हूँ।"

उस दिन से गाँधीजी ने नमक खाना छोड़ दिया।

× × ×

एक बार गाँधीजी के सब से छोटे लड़के देवदास ने आठ दिन तक अलोना भोजन करने की आज्ञा माँगी। आज्ञा मिल गई। इसके दो-तीन

बाल-हठ पर विजय

दिन बाद की बात है, कस्तूरबा सब को नियमानुसार भोजन परस रही थीं। बढ़िया नमकीन तरकारी देखकर देवदास के मुँह में पानी भर आया। पर व्रत भंग होगा इसलिए तरकारी उसे नहीं दी गई। तब उसने कोई अलोनी चीज खाने को नहीं ली और रोने लगा। गाँधीजी ने भी भोजन नहीं किया और प्रतिज्ञा की कि जब देवदास मुख से कहेगा कि पिताजी, मैं भोजन करता हूँ, आप भी कीजिए, तभी मैं करूँगा।' बात अड़ गई। एक तरफ बाल-हठ, दूसरी तरफ आत्म-बल। उस समय सभी साथियों ने बहुत समझाया पर देवदास अड़ गया। पर सन्ध्या होते होते उसे अपने कार्य के अनौचित्य का बोध हुआ। वह पिता के पास पहुँचा और नम्रतापूर्वक बोला—"पिताजी, मैं अलोना ही भोजन करता हूँ, आप भी कीजिए।" तब पिता पुत्र ने साथ बैठ कर भोजन किया।

व्रत और प्रतिज्ञा का निर्वाह कठिनाइयों एव प्रलोभनों की परवा न करके करना ही चाहिए, यह शिक्षा इस प्रसग से मिलती है।

× × ×

आत्म शोध और आत्म सुधार गाँधीजी की साधना के मुख्य उद्देश्य रहे हैं। इन बातों पर उन्होंने सदा ध्यान रखा। यदि उनके साथियों या सहयोगियों से कोई गलती हो जाती है तो उसे वे अपनी ही कमजोरी समझते हैं और कहते हैं कि मुझमें ही इतना असत्य भरा है इसीलिए मेरे साथी मेरे असत्य का ग्रहण कर लेते हैं। निष्पाप मनुष्य के सामने पापी ठहर नहीं सकता।

प्रतिज्ञा पालन

दक्षिण अफ्रीका के फीनिक्स आश्रम की बात है। एक बार एक लड़के ने जान-बूझकर कोई गलती की। गाँधीजी को दु ख हुआ। उन्होंने १५ दिन का उपवास करने की घोषणा की। इस समय कस्तूरबा बहुत बीमार थीं, हड्डियाँ दिखाई देने लगी थीं। गाँधीजी की प्रतिज्ञा से लोगों को शका होने लगी कि ऐसी अवस्था में शायद ही कस्तूर बा बच सकें क्योंकि वह कैसे अन्न ग्रहण करेंगी। स्वय गाँधीजी को भी यह शका थी। शाम की प्रार्थना के समय लोग इकट्ठे हुए और अपनी आशका प्रकट की। उस समय का प्रभाव शाली वर्णन एक आश्रम वासी ने अपनी डायरी में यों लिखा है—

"पू० बापूजी ने अपनी प्रतिज्ञा पालन करने का निश्चय किया है। मैंने कहा—'बापूजी, यदि आज से ही उपवास न आरम्भ करके आप कुछ दिन पीछे उसे आरम्भ करें तो क्या कोई हर्ज हो? मेरी प्रार्थना है कि आप ऐसा ही करें।'"

"वह बोले—तुम जो कहते हो वह ठीक है। उसकी (कस्तूरबा की) तबियत इस समय ठीक नहीं है। उसका हृदय बड़ा कोमल है। मैं १५ दिन तक उपवास करूंगा, यह सुनकर उसे बड़ा दु ख होगा और कदाचित इससे उसका प्राणान्त भी हो जाय। परन्तु मैं इससे क्यों डरूँ? इसें इस बात का भी मोह क्यों हो कि वह जीती ही रहे? जैसी ईश्वर की इच्छा होगी, वैसा होगा। उसी में उसका कल्याण है। दूसरी

बातों पर विचार करना मेरा कर्तव्य नहीं है। मोहासक्ति छोड़कर अपने धर्म का पालन करना ही मेरा कर्तव्य है। फिर इस देह का भरोसा क्या ? यदि दो दिन बाद उस पर मृत्यु का अधिकार हो गया तो क्या मेरी प्रतिज्ञा व्यर्थ ही नष्ट नहीं होगी ? प्रतिज्ञा-पालन करते हुए मरना धर्म है। प्रतिज्ञा पालन के पहले ही यदि मृत्यु आ जाय तो जीव की अधोगति ही होगी। इसलिए की हुई प्रतिज्ञा तत्काल पालन करनी चाहिए। यह सब समझकर भी यदि मैं उपवास करना कुछ दिनों के लिए स्थगित कर दूँ तो यह मेरी दुर्बलता ही कही जायगी। ये सब बातें उसे (कस्तूर बा को) समझाई जा सकें तो अच्छा ही है।"

"यह उत्तर सुन लोग चुप हो रहे। बापू ने फिर कहना आरम्भ किया—'आप सब लोगों में यह इच्छा होनी चाहिए कि प्रतिज्ञा पालन करने पर भी मेरी शक्ति बनी रहे। ऐसा होने का एक उपाय है। यदि आप लोग मेरी प्रतिज्ञा भग कराने का हठ करेंगे तो उससे मेरे बल का ह्रास होगा। मैं अपनी प्रतिज्ञा तो भग करूँगा ही नहीं पर आप लोगों का दुराग्रह देखकर मेरे हृदय में असह्य वेदना होगी। यदि आप लोग भी मेरी ही तरह उपवास करने लगें तो आपका उपवास निरर्थक—तामसी - होगा। उसका मुझ पर कुछ भी असर न होगा और आप लोगों को भी उससे कोई लाभ होने की सभावना नहीं। उल्टा अकल्याण ही होगा क्योंकि छापाखाना, पाठशाला और खेती बाड़ी के काम बन्द रहेंगे और इससे अधर्म होगा। इसलिए मेरी रक्षा करने का एक ही उपाय है। वह यह कि आनन्द और उत्साह के साथ अपने काम करते रहिए, उनमें जरा भी फर्क न आने दीजिए। इससे मुझे आनन्द होगा और मुझे मालूम ही न पड़ेगा कि मैं उपवास कर रहा हूँ। आप के हँसते चहरे और उत्साह देखकर मेरे पन्द्रह दिन बात की बात में बीत जायँगे।"

तदनुसार ही कार्य हुआ। सोलहवें दिन गांधीजी ने पारण किया। पहले 'वैष्णवजन' भजन गाया। बाद में एक नारङ्गी और पपाते के रस में थोड़ा नीबू का रस निचोड़ कर मिलाया गया। इसीके एक-दो चम्मच उन्होंने पिये।

इस उपवास के समय गांधीजी ने अपने और अपने साथियों के कार्यों एवं प्रवृत्तियों पर खूब विचार किया। इसका वर्णन भी उक्त आश्रम वासी की डायरी से नीचे दिया जाता है।

साधना और तपस्या की निष्ठुरता

इससे मालूम होगा कि वह प्रत्येक कार्य का कैसा सूक्ष्म विचार करते थे और कितने जागरूक रहते थे। एक-एक क्षण अपने सिद्धान्तों की रक्षा में बिताते थे और बार बार आत्म निरीक्षण करके तथा दूसरे साथियों की प्रवृत्तियों पर ध्यान देकर देखते रहते थे कि हम किधर जा रहे हैं।

वैशाख कृ० १४ शनिवार स० १९७०

"आज बापूजी का उपवास समाप्त हुए सात दिन हो गये। उन्हें बड़ा ही क्लेश हुआ। वह मृतप्राय-से हो गये थे। इस उपवास में उन्होंने बहुत अधिक विचार किया। अपने मार्ग और वर्तमान रहन-सहन में वह और दृढ़ हो गये। अब उन्हें शरीर की सज धज नरक सी जान पड़ती है। सजावट के दृश्य उन्हें मजाक जान पड़ते हैं। भोग विलास की सामग्री देख उन्हें कै आने लगती है। यह सब उनके कल के कार्य से प्रकट हुआ है। परसों पूज्य   से आये। बापूजी ने देखा कि उनकी जीभ उनके वश में नहीं है और उनका भोजन बहुत व्यय-साध्य हो गया है। बापूजी ने ये तथा अन्य बातें उनसे कहीं। वह उनपर बहुत नाराज़ हुए। कल सन्ध्या की प्रार्थना के समय उन्होंने सबको सुनाते हुए कहा—"आज मुझपर चोट पर चोट पहुँचाई जा रही है। पिछले २४ घण्टों में ऐसी अनेक बातें हुई हैं जिनसे मेरा हृदय व्यथित हो रहा है। दिन भर मेरा मन सन्तप्त रहा है। किसी की बात मुझे अच्छी नहीं लगती। कल रात

को मैंने ' '' को बड़ा धिक्कारा। मैं इतने जोर से बिगडा कि बेचारे छोट बालक की तरह रोने लगे। मैंने उनसे कह दिया कि 'यदि उसी तरह काम करना हो तो मेरे पास से दूर हो जाओ। मुझसे ऐसा स्नेह मत रक्खो। तुम्हारी विलासिता की रहन-सहन मुझसे नहीं सही जायगी। मेरे पास रहना तो तलवार की धार पर चलना है।' आज सबेरे को भी मेरे निकट रोना पड़ा। इन बातों से आपको अच्छी तरह मालूम हो गया होगा कि (इस समय) मैं बड़ा ही कठोर बना हुआ हूं। पर यह सब आप लोगों के लिए ही है। फीनिक्स में जीवन बिताना अब बड़ा कठिन है। इसलिए छोटे बड़े सब लोगों से मेरा कहना है कि आप लोग सब बातों को सोच समझकर और ध्यान में रखकर यहाँ रहिए। श्री गोखले, एण्डरूज, पियर्सन आदि बड़े-बड़े लोगों ने इस आश्रम की प्रशंसा की है। इस का कारण यहाँ की शिक्षा ही है। आप लोगों के गीता के श्लोक मात्र पाठ कर लेने से मुझे सन्तोष न होगा। इन बातों की मुझे कुछ चिन्ता नहीं कि आप लोग इतिहास पढ़ते हैं या नहीं, अंक लिखते हैं या नहीं, संस्कृत का अध्ययन करते हैं या नहीं। परन्तु आप लोगों के लिये संयम की वृत्ति धारण करना आवश्यक है। मुझे इसी की आवश्यकता है। मैं एक बार मनुष्य का गुलाम होना स्वीकार कर लूँगा परन्तु अपने मन का गुलाम कदापि न होऊँगा। मन की गुलामी के बराबर पाप दूसरा नहीं है। इसलिए आप लोग इन बातों का ध्यान रखिए और मन को वश में रखना सीखिए। तभी आप लोग मेरे पास रह सकेंगे। अन्यथा मुझे किसी की आवश्यकता नहीं है। मैं आप लोगों का गुरु बनने का अभिमान नहीं करता। मेरे पास एक शिष्य है। उस एक ही शिष्य को शिक्षा देना बड़ा कठिन है। पर उसको शिक्षित कर लेने से मैं आपका, भारत का और सम्पूर्ण मानव-जाति का कल्याण कर सकूंगा। वह शिष्य मैं स्वयं ही हूँ। इसी तरह यदि आप सब लोग आप ही अपने शिष्य बनें या बनने के लिए हृदय से प्रयत्न करें तभी आप लोग

यहा रहने के अधिकारी हो सकते हैं। ऐसी रहन सहन जिसको पसद न आती हो उसका यहाँ न रहना ही अच्छा है। इसी में उसकी भलाई है। परन्तु जीवन का यथार्थ रहस्य न समझते हुए निर्जीव यन्त्र की तरह उन्हें बिताने को मैं पाप समझता हूँ और मैं नहीं चाहता कि आप लोगों के द्वारा इस प्रकार का पाप हो।"

× × ×

जीवन कथा में इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि १९१९ ई० में ट्रासवाल-सरकार ने वहा के बहुत से भारतीय सत्याग्रहियों को निर्वासित किया। वे भारत लाकर छोड़ दिये गये। इनका जन्म अफ्रीका में ही हुआ था और भारत में उनका सगा सम्बन्धी कोई न था। इसलिए उन्हें बड़ा कष्ट भोगना पड़ा। १०४,६० और १२६ के तीन दल भारत लाकर छोडे गये। पहले दो मद्रास और तीसरा बम्बई में। पीछे आन्दोलन करने पर इस प्रकार का निर्वासन बद हुआ। इनके स्त्री-बच्चे दक्षिण अफ्रीका में ही थे। पर गाँधीजी पर उनका ऐसा विश्वास था कि उनके सम्बन्ध में वे बिलकुल निश्चिन्त थे। गाधीजी ने भी उनके स्त्री-बच्चों की सेवा अद्भुत लगन से की। ये लोग 'टालस्टाय फार्म' में रहते थे। उस समय गाधीजी का परिश्रम और उनकी सेवा देखने योग्य थी। बड़े तड़के उठते, उठकर विद्यार्थियों को पढ़ाते थे। फिर अपने ही हाथों स्त्रियों के पाखाने साफ करते थे। इसके बाद वह स्त्रियों के स्थान पर जाकर पूछते—"क्या आप लोगों के पास मैले कपड़े हैं?" "कृपया औरों के मैले कपड़े भी ला दीजिए, मैं उन्हें धो लाऊँ।" सब मैले कपडे उनके हवाले किये जाते। वह पास के नाले से उन्हें धो लाते और सुखाकर सब के कपड़े दे देते। वह इन लोगों का इतना ध्यान रखते कि अपने निर्वासित पतियों एव पिताओं की उनको याद भी बहुत कम आती थी।

परिश्रम और सेवा

गाँधीजी किसी काम को छोटा नहीं समझते। उनके नजदीक प्रत्येक कार्य पवित्र है। अध्यापक और भंगी के काम को वह एक-सा महत्त्व देते हैं। इसलिए किसी भी काम को स्वयं अपने हाथ से करने में उन्हें बड़ा आनन्द आता है। अब तो कार्याधिक्य वश बहुतेरे काम वह दूसरों से भी ले लेते हैं पर पहले तो भावना की प्रारंभिक अवस्था में वह इसका बहुत ख्याल रखते थे। इस सम्बन्ध में बम्बई की सौ० अवन्तिका बाई गोखले (जो गाँधीजी के सम्पर्क में अनेक बार आई हैं) लिखती हैं—"लखनऊ की महासभा के समय गाँधीजी से मेरी अनेक बार मुलाकात हुई। उस समय उन्होंने एक बार आश्रम आने का मुझे निमन्त्रण दिया। लौटती बार एक दिन सुबह हम अहमदाबाद पहुँच गये। सामान इत्यादि वेटिंग रूम में रख आश्रम की खोज में चले। उन दिनों आश्रम पुल के उस पार शहर के बाहर कोचरब के एक बँगले में था। गाँधी जी ने प्रेमपूर्वक स्वागत किया। मेरे साथ पूना के दो गृहस्थ भी थे। थोड़ी देर बाद हमने विदा माँगी तो बोले—"मैं समझता हूँ कि तुम्हें थोड़े दिन तो रहना चाहिए। अगर रहना न हो सके तो भोजन करके तो जाना चाहिए।" हमसे नहीं न कहा गया। थोड़ी देर बाद उन्होंने पूछा कि नहाने के लिए गरम या कैसा पानी चाहिए। मैंने कहा—"ठण्डे पानी से मेरा काम चल जायगा पर एक गृहस्थ को गरम पानी चाहिए', इतना सुनते ही गाँधीजी घड़ा लेकर पानी लेने गये। पानी भरकर लाये और आग जलाकर उसपर पानी गरम किया और लाकर गृहस्थ को दिया। उस बेचारे के मन में आया कि मैंने कहाँ से गरम पानी के लिए कहा।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि सेवा के छोटे से छोटे काम में भी वह उतना ही रस लेते। उन दिनों तो वह सब को खिलाकर तब खाते थे।

× × ×

गाँधीजी दक्षिण अफ्रीका से आये ही थे। उनके सम्मान में हीराबाग (बम्बई) में एक सभा हुई थी। इस सभा में बहुत लोग आये थे।

इतने में पुलाबाही पगड़ी पहन और दुपट्टा लगाये एक सज्जन व्यास पीठ की तरफ आते दिखाई दिये। महात्मा गाँधी ने लोकमान्य समझकर साष्टाग नमस्कार किया। लोग आश्चर्य-चकित हो गये। वस्तुत लोकमान्य के प्रति उनके हृदय म बड़ी श्रद्धा थी।

लोकमान्य के प्रति आदर

× × ×

राष्ट्र भाषा के प्रचार और समुत्थान म गाँधीजी का जितना हाथ है उतना और किसी का नहीं। मद्रास जैसे प्रान्त में उन्होंने हिंदी की पताका फहराई है। मद्रासियों से बार-बार उन्होंने हिन्दी सीखने का आग्रह किया। उनके हिन्दी व्याख्यानों को सुनने के लिए सैकड़ों ने हिन्दी सीखी। हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के इन्दौर अधिवेशन के यह अध्यक्ष भी थे।

हिन्दी प्रेम

स्व० लोकमान्य तिलक, आरम्भ म, हिन्दी के प्रेमी न थे, न उनकी तार्किक युक्तियों के आगे कोई उनसे हिंदी के लिए कहने की हिम्मत करता था। एक बार की बात है कि कलकत्ता की एक बड़ी, सभा में देश के अनेक नेता उपस्थित थे। गाँधीजी भी मौजूद थे। लोकमान्य का व्याख्यान होनेवाला था। लोकमान्य उठे और उन्होंने अंग्रेजी में व्याख्यान दिया। व्याख्यान समाप्त होने पर गांधीजी उठे और श्रोताओं से बोले—"आप लोगों म से जिस जिसने लोकमान्य का व्याख्यान समझा हो, हाथ उठावें।" बहुत थोड़े आदमियों ने हाथ उठाया। गांधीजी ने फिर कहा—"अब वे लोग हाथ उठावें जिन्होंने व्याख्यान नहीं समझा।" बहुत लोगों ने हाथ उठाया। तब गाँधीजी ने हाथ जोड़ कर लोकमान्य से कहा—"इसीलिए हिन्दी सीखने की आवश्यकता है। यदि लोकमान्य आज हिन्दी मे बोले होते तो हमारे अधिक भाई उनके व्याख्यान का लाभ उठाने से वंचित न रह जाते। अंग्रेज को समझाने के लिए हमें अपनी मातृभाषा छोड़कर अंग्रेजी सीखने की जरूरत नहीं।

अगर उसे हमारी बात समझने की गरज होगी तो वह खुद हिन्दी पढ़ेगा या दुभाषिया रक्खेगा।" लोग कहते हैं कि लोकमान्य पर इस बात का इतना असर पड़ा कि उन्होंने उसी समय प्रतिज्ञा की कि "मैं दो महीने में हिन्दी सीख लूँगा।"

× × ×

गाँधीजी यों तो किसी के प्रति भी शरीर बल का प्रयोग करने के विरुद्ध हैं पर वह इसपर ज्यादा जोर देते हैं कि विद्यार्थियों को कभी दण्ड न देना चाहिए। एक बार की बात है कि उन्होंने सब को कोई विशेष काम करने का निषेध किया था। फिर भी कुछ ने वह काम किया। अन्त को बात खुल गई। पर भय के कारण पूछने पर भी कोई स्वीकार न करता। यह देख गाँधीजी को बड़ा दुःख हुआ। विद्यार्थियों के सामने ही उन्होंने अपने गालों पर दो-तीन तमाचे मारे और कहा—"अवश्य मुझी में कोई दोष होगा, इसीसे तुम लोग सची बात कहने से डरते हो।" इसका असर लोगों पर ऐसा पड़ा कि उन्होंने सची बात कह दी।

आत्म शासन

× × ×

फीनिक्स में रहते समय एक दिन सवेरे ९ बजे एक तार आया। डाक (जिसमें तार भी था) रावजी भाई नाम के एक सज्जन के हाथ में थी। वह उसे गाँधीजी के पास ले जा रहे थे कि रास्ते में गाँधीजी के द्वितीय पुत्र मणिलाल मिले। उन्होंने तार हाथ में ले लिया। कुछ ही दिन पहले गाँधीजी के बड़े भाई की हालत खराब होने का समाचार मिला था। इसलिए मणिलाल तार का समाचार जानने को उत्सुक थे। उन्होंने तार खोला और पढ़कर बन्द करके उसी तरह चुपचाप रख दिया। उसमें उनके चचा की मृत्यु का ही समाचार था। सारी डाक महात्माजी के सामने आई। सब लोग समझते थे कि तार पढ़ गाँधीजी पाठशाला के बाहर आ जायँगे पर वैसा

आत्म संयम

कुछ न हुआ । दिन भर सब काम, रोज की तरह ही, शान्ति-पूर्वक हुए । शाम की प्रार्थना समाप्त होने पर उनके चेहरे पर दुःख के चिह्न दिखाई पड़े । उस समय उन्होंने लोगों को यह समाचार बताया और कहा—"नित्य के कामों में रुकावट न पड़े, इसलिए मैंने हृदय का वेग दबाकर सब काम यथाक्रम होने दिया । निश्चित कार्य क्रम में गड़बड़ करने का मुझे क्या अधिकार है ? अतएव मैंने निश्चित किया कि मुझे अपना मन इस प्रकार स्थिर रखना चाहिए जिससे किसी को जरा भी सन्देह न हो ।"

कैसा आत्म-संयम है ? और फिर यह घटना तो लगभग २० वर्ष की पुरानी है । तब से तो वह इस पथ पर बहुत आगे बढ़ गये हैं । दिन दिन स्थितप्रज्ञ की अवस्था के निकट पहुँचते जा रहे हैं ।

× × ×

गाँधी जी जहाँ कर्तव्य में अत्यन्त निष्ठुर हैं वहाँ अपने सहकारियों के प्रति उनका स्नेह भी अद्भुत ही होता है । उनके आश्रमवासियों को उनके

अद्भुत वात्सल्य

वात्सल्य का अनुभव तो सदा ही होता रहा है । उनकी उपस्थिति से रोगी को ऐसा मालूम होता है मानों माँ की गोद में बैठे हैं । उनमें स्त्रियोचित गुणों की प्रधानता है इसीलिए हिन्दू नारी की नाई जहाँ उनमें असीम त्याग, कष्ट-सहन और कर्तव्य पालन का उदाहरण मिलता है वहाँ उसके स्नेह से भी उनका हृदय भरा है । एक आश्रमवासी ने १९२२ की एक घटना का जिक्र किया है जिससे उनके अद्भुत वात्सल्य का परिचय मिलता है—

"बापू जी के गिरफ्तार होने के कोई चार मास पहले एक आश्रम वासी को खेत में झोंपड़ी बनाकर एकान्तवास करने की इच्छा हुई । बापू जी ने उसे समझाया कि ऐसा न करो, पर उसने न माना । अन्त को उन्होंने इजाजत दे दी । पर शर्त रखी—मैं जब चाहूँ तब मिल सकूँ । उस भाई को एकान्त-सेवन की इच्छा इतनी तीव्र हो गई थी कि अत्यन्त संकोच के साथ उसने इसे स्वीकार किया । उसने यह भी सोचा कि यह

रे बहु-धंधी आदमी, कौन बार-बार मिलने आवेंगे ? पर जबतक उस भाई ने उनसे मिलने की छुट्टी रखी तबतक कभी ऐसा नहीं हुआ कि बापू जी आश्रम में रहे हों और उससे मिलने न गये हों। चाहे अपना मौन दिन हो, उपवास दिवस हो, कितने ही लोग दूर से आकर बैठे हों, सब बातों को एक ओर रखकर लकड़ी के सहारे अपने इस पुत्र से मिलने के लिए चल देते। एक बार अनेक कार्यों में लगे रहने के कारण ११-१२ बजे तक वह न जा पाये। न तो स्नान ही कर पाये और न भोजन ही। फिर भी पहले वहाँ जाकर अपने उस पुत्र से मिले और आकर बाद में भोजन किया। जब मिलकर आते तब उन्हें ऐसा आनन्द मालूम होता मानों कोई महान् कार्य सफल हुआ हो। प्रार्थना के स्थान पर इस भाई के विषय में सब आश्रमवासियों को समाचार सुनाते। "उसे नींद अच्छी तरह पड़ी थी, उसका चित्त शान्त था।" ऐसी-ऐसी बातें कहकर एक पुत्र—दीवानी माता के वात्सल्य का परिचय देते। यात्रा से लौटते ही पहले उसके समाचार पूछते। जेल में जो लोग उनसे मिलने के लिए जाते थे उनसे उसकी खबर सब से पहले पूछना वह नहीं भूले। महासभा की धूम धाम के समय आप 'खादी नगर' में रहते थे और उस भाई की इच्छानुसार मिलना बंद रखा था। तो भी वह उसके हाल-चाल पूछना भूलते न थे। बारडोली में सविनय-भंग की शुरूआत करने के लिए गये थे, अनेक महत्वपूर्ण कार्यों में जी लगा हुआ था, महासभा-समिति की बैठक की गड़बड़ी थी। उन्हें खबर लगी कि उस आश्रम-वासी की भाभी कहीं नजदीक ही है। बस तुरन्त उनके देवर की खबर देने को उत्सुक हो गये। मानों सारा रचनात्मक कार्यक्रम उस भाई के आरोग्य और मानसिक शान्ति पर ही अवलम्बित हो, इस तरह सब बातों को अलग रखकर उसकी भाभी को बुलाया और समाचार सुनाने लगे।"*

---

* 'हिन्दी नवजीवन' (जयंति अंक) से।

जब गाँधी इर्विन समझौते की बात चल रही थी और गाँधी जी तथा

प्रलोभन 'मुक्त'

अन्य नेता दिल्ली में डा० अंसारी के यहाँ ठहरे हुए थे तब एक दिन एक अमरिकन पत्रकार ने गांधीजी से पूछा—"क्या आप निकट भविष्य में अमेरिका जायँगे ?"

गांधी जी ने कहा—"तबतक नहीं जबतक इससे मेरे देश का कोई विशेष हित न हो।"

पत्रकार फिर अपने अमेरिकनशाही ढंग पर बोला—"यदि दस लाख डालर (लगभग तीस लाख रुपये) की सहायता मिले तो भी नहीं ?"

गांधीजी ने बिना उत्तेजना के शांति पूर्वक उत्तर दिया—"नहीं !"

यह सुनकर उस अमेरिकन की आँखें कपार पर चढ़ गई। बेचारे को क्या मालूम था कि जिस दुबले पतले व्यक्ति से वह बात कर रहा है उसके लिए, उसकी आध्यात्मिक साधना के सामने, तीस लाख रुपये क्या, समस्त पृथ्वी का वैभव तुच्छ है।

ये तो थोड़े से प्रसंग हैं, वैसे उनके जीवन का प्रत्येक दिवस स्मरणीय प्रसंगों से भरा हुआ है। इन प्रसंगों में उनका रूप रह रहकर हमारे सामने प्रकाशित हो उठता है।

जीवन-तालिका

१८६९	२ अक्तूबर	गाँधीजी का जन्म (पोरबन्दर में)। प्रारंभिक शिक्षा घर पर तथा एक मामूली पाठशाला में हुई।
१८७६		पिता एवं परिवार के साथ राजकोट आये। वहाँ एक वर्नाक्यूलर स्कूल में भरती।
१८७९		काठियावाड़ हाईस्कूल में प्रवेश।
१८८३		विवाह।
१८८५		पिता का शरीरान्त।
१८८६		मैट्रिक परीक्षा में पास हुए।
१८८७		भावनगर के श्यामलदास कालेज में प्रवेश।
१८८८	४ सितम्बर	बैरिस्टरी की शिक्षा के लिए इंग्लैंड-यात्रा।
१८९१	१० जून	बैरिस्टरी की परीक्षा पास की।
	१२ जून	बैरिस्टर होकर भारत लौटे।
१८९३	अप्रैल	दक्षिण-अफ्रिका की यात्रा।
१८९४	मई	'नेटाल इंडियन कांग्रेस' की स्थापना।
१८९६		भारत लौटे।
		फिर दक्षिण-अफ्रिका की यात्रा।
१८९७ ९९		अंग्रेज-बोअर युद्ध, उसमें सेवा शुश्रूषा।

१९०१	भारत–आगमन ।
१९०२	दक्षिण-अफ्रीका को रवाना हुए । श्री चेम्बरलेन को अरजी (मेमोरियल) दी।
१९०३	'ट्रांसवाल ब्रिटिश इण्डियन असोसिएशन' स्थापित किया । 'इण्डियन ओपीनियन' निकाला ।
१९०४	जोहान्सबर्ग में प्लेग फैला, उसमें बड़ी सेवा की ।
१९०५ २२ नवम्बर	लार्ड सेल्बर्न के पास डेपुटेशन ले गये।
१९०६	नेटाल में 'जुलु'–विद्रोह के समय घायलों को ढोने और शुश्रूषा का काम किया । 'एण्टी एशियाटिक ला' के विरुद्ध निष्क्रिय प्रतिरोध आन्दोलन करने की प्रतिज्ञा ली।
१९०७ १ अगस्त	प्रवास कानून (एमीग्रेशन ऐक्ट) पर सम्राट् की स्वीकृति ।
१९०७ २६ दिसम्बर	जोहान्सबर्ग में एमीग्रेशन कानून के विरुद्ध सभा की और भाषण किया। गिरफ्तारी ।
१९०८ फरवरी	जेल में जेनरल स्मट्स से समझौता। रिहाई, स्वेच्छा–पूर्वक परवाने लेने का समर्थन । पठानों द्वारा पीटे गये । लन्दन गये ।
१९१२	गोखले को दक्षिण अफ्रीका बुलाया।
१९१३ सितम्बर	३ पौण्ड का टैक्स, सत्याग्रह-आन्दोलन का पुनरारम्भ । स्मट्स-गाँधी समझौता ।

१९१४	जनवरी	दक्षिण अफ्रीका की सरकार से सन्धि ।
	३० जून	सत्याग्रह का अन्त ।
	जुलाई	'इण्डियन रिलीफ ऐक्ट' पास हुआ ।
	६ अगस्त	गोखले से मिलने लन्दन पहुँचे । वहाँ महायुद्ध में ब्रिटेन की सहायतार्थ 'भारतीय स्वयंसेवक दल' का संगठन किया ।
१९१५	जनवरी	भारत लौटे । सरकार ने 'कैसरे हिन्द' पदक प्रदान किया ।
	२५ मई	अहमदाबाद (कोचरब) में सत्याग्रह-आश्रम स्थापित किया ।
१९१६	४ फरवरी	हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना के समय व्याख्यान । उसमें उपस्थित राजाओं को उनकी वेशभूषा और विलासिता के लिए फटकारा ।
१९१७	अप्रैल	चम्पारन में गिरफ्तारी ।
		कांग्रेस-लीग योजना का समर्थन ।
	१७ सितम्बर	'बम्बे को आपरेटिव कान्फ्रेंस' की अध्यक्षता ।
	३ नवम्बर	गुजरात राजनीतिक सम्मेलन की अध्यक्षता ।
१९१८		अहमदाबाद मिल मजूरों की हड़ताल, उस सम्बन्ध में उपवास और उसका सफल अन्त ।
	अप्रैल	दिल्ली युद्ध सम्मेलन में उपस्थिति ।
१९१९	फरवरी	रौलट ऐक्ट जारी हुआ ।
	२८ फरवरी	रौलट ऐक्ट के विरुद्ध सत्याग्रह की प्रतिज्ञा ।
	१० अप्रैल	दिल्ली जाते हुए गिरफ्तारी । बम्बई ले जाकर छोड़ दिये गये ।

	१८ अप्रैल	सत्याग्रह स्थगित कर दिया। उपवास।
१९१८-१९		खिलाफत और पंजाब के अन्यायों के विरुद्ध आन्दोलन।
१९१९	नवम्बर	ग्रानटंसन कमीशन (दक्षिण-अफ्रीका)।
१९२०	१४ जून	लार्ड चेम्सफर्ड (वायसराय) को पत्र लिखा।
	१ अगस्त	'कैसरे हिन्द' मेडल लौटा दिया। असहयोग का आरंभ।
	सितम्बर	कलकत्ता में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन।
	दिसम्बर	नागपुर कांग्रेस। असहयोग का कार्यक्रम पास हुआ।
१९२१	फरवरी	ड्यूक ऑव् कनाट के नाम खुली चिट्ठी।
	मई	नये वायसराय लार्ड रीडिंग से मुलाकात।
	सितम्बर	अली-बन्धुओं की गिरफ्तारी।
	नवम्बर	'प्रिंस ऑव् वेल्स' का बम्बई में आगमन। बम्बई में दंगा।
	दिसम्बर	लार्ड रीडिंग से मालवीय-डेपूटेशन मिला।
१९२२	१४ जनवरी	बम्बई में नेताओं का सम्मेलन।
	जनवरी	लार्ड रीडिंग को चुनौती (अल्टिमेटम)।
	१४ फरवरी	चौरीचौरा-काण्ड।
	१० मार्च	अहमदाबाद में (गांधीजी की) गिरफ्तारी।
	१८ मार्च	६ वर्ष की सजा।
१९२४	फरवरी	जेल से मुक्ति।
	१७ सितम्बर	दिल्ली में २१ दिन का उपवास। दिल्ली सम्मेलन।
	दिसम्बर	बेलगाँव कांग्रेस की अध्यक्षता।

१९२७	दिसम्बर	मद्रास कांग्रेस ने पूर्ण स्वतन्त्रता को लक्ष्य बनाया।
१९२८	दिसम्बर	कलकत्ता कांग्रेस में सरकार को राष्ट्रीय माँग स्वीकार करने के लिए एक वर्ष का समय दिया गया।
१९२९	मार्च	कलकत्ता में कपड़ों की होली। उस सम्बन्ध में गाँधीजी पर जुर्माना।
	मई	ब्रिटेन में पार्लमेण्ट का चुनाव। मजूरदल की विजय।
	३१ अक्तूबर	वायसराय की घोषणा। नेताओं की घोषणा।
	२३ दिसम्बर	वायसराय से मुलाकात।
	३१ दिसम्बर	लाहौर कांग्रेस ने पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रस्ताव पास किया।
१९३०	२६ जनवरी	सारे देश में स्वतन्त्रता दिवस मनाया गया।
	१५ फरवरी	भारतीय कांग्रेस कमिटी ने गांधीजी को डिक्टेटर नियत किया और सत्याग्रह आंदोलन के सम्बन्ध में उन्हें सर्वाधिकार दिये।
	४ मार्च	लार्ड इरविन के नाम पत्र।
	१२ मार्च	दाँडी-यात्रा।
	६ अप्रैल	दाँडी में नमक-कानून भंग किया।
	१७ अप्रैल	वायसराय ने प्रेस आर्डिनेन्स जारी किया।
	२५ अप्रैल	श्री विट्ठलभाई पटेल ने असेम्बली की अध्यक्षता से इस्तीफा दिया।

५ मई	गाँधीजी की गिरफ्तारी । १८२७ के रेगूलेशन २५ के अनुसार यरवदा जेल में नजरबंद।
१६ मई	कोंग्रेस कार्य-कारिणी की बैठक ।
२० मई	यरवदा जेल में श्री स्लोकाम्ब की गाँधीजी से मुलाक़ात
२१ मई	धरासणा पर धावा ।
२२ मई	श्रीमती सरोजिनी नायडू की गिरफ्तारी और सजा ।
२४ मई	वडाला की नमक की क्यारियों पर सार्व जनिक धावा ।
२७ मई	मालवीयजी की गिरफ्तारी और रिहाई ।
१० जून	साइमन-कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित हुई।
२० जून	स्लोकाम्ब की मोतीलालजी से मुलाकात ।
३० जून	मोतीलालजी की गिरफ्तारी और सजा ।
४ जुलाई	मालवीयजी भारतीय कॉंग्रेस-कमटी के सदस्य नामजद हुए ।
२० जुलाई	जयकर-सप्रू और वायसराय में समझौत की बात-चीत का आरभ ।
२३ जुलाई	जयकर सप्रू जेल में गाधीजी से मिले ।
३१ जुलाई	वायसराय ने मोतीलालजी एव जवाहर लालजी को जेल में गांधीजी से मिलकर सुलह के बारे में सलाह-मशविरा करने की आज्ञा दी ।
३ अगस्त	बम्बई में वल्लभभाई और मालवीयजी की गिरफ्तारी ।

	७ अगस्त	मौ० अबुलकलाम आजाद स्थानापन्न कॉंग्रेस-अध्यक्ष हुए।
	९ अगस्त	मालवीयजी की रिहाई।
	१३ अगस्त	यरवदा में जयकर-सप्रू की उपस्थिति में नेहरू द्वय की गाँधीजी और सरोजिनी देवी से मुलाकात।
	२१ अगस्त	मौ० आजाद की गिरफ्तारी और सजा।
	२६ अगस्त	कॉंग्रेस कार्य-कारिणी गैर-कानूनी घोषित की गई।
१९३०	२७ अगस्त	गाँधीजी के प्रस्तावों को लेकर जयकर-सप्रू वायसराय (लार्ड इर्विन) से मिले।
	२८ अगस्त	कांग्रेस कार्य-कारिणी की बैठक। मालवीय जी, विट्ठल भाई और डा० अन्सारी की गिरफ्तारी।
	५ सितम्बर	समझौते की बात-चीत भंग। पत्र व्यवहार प्रकाशित।
१९३१	२५ जनवरी	वायसराय की घोषणा।
	२६ जनवरी	घोषणा के अनुसार कार्य-कारिणी के सदस्य जेलों से छोड़ दिये गये। कांग्रेस संस्थाओं को गैर-कानूनी करार देने की आज्ञा हटा ली गई।
	१६ फरवरी से ४ मार्च तक	गाँधीजी और वायसराय के बीच समझौते की बातें।
	५ मार्च	भारत-सरकार और कॉंग्रेस के बीच समझौता। सत्याग्रह-आंदोलन बन्द।

		आर्डिनेन्स उठा लिये गये और कैदी छोड दिये गये ।
	२८ मार्च	कराची में कांग्रेस का अधिवेशन ।
	२९ अगस्त	गोल्मेज-सम्मेलन में शामिल होने के लिए गांधीजी की इग्लैण्ड-यात्रा ।
	१२ सितम्बर	लदन पहुँचे ।
	५ दिसम्बर	लदन से फ्रांस के लिए प्रस्थान ।
	६ दिसम्बर	रोम्यॉरोलॉ से मुलाकात ।
	६ से ११ तक	रोम्याँरोलाँ के साथ रहे ।
	१२ दिसम्बर	मुसोलिनी से मुलाकात
	१४ दिसम्बर	ब्रिंडसी से बम्बई के लिए प्रस्थान ।
	२८ दिसम्बर	बम्बई पहुँचे ।
१९३२	२८ दिसम्बर १९३१ से ४ जनवरी १९३२ तक	वायसराय लार्ड वेलिंगटन से तार द्वारा पत्र-व्यवहार । वायसराय का रूखा व्यवहार । कांग्रेस कार्य-कारिणी की बैठक । सत्याग्रह का आरंभ ।
	११ मार्च	सर सेमुएल होर को, आवश्यकता होने पर आमरण उपवास द्वारा अछूतों का जातिगत प्रतिनिधित्व मिटाने के संबंध में पत्र लिखा ।
	अगस्त	प्रधान मंत्री द्वारा जातिगत प्रतिनिधित्व सम्बन्धी निर्णय की घोषणा ।
	१८ अगस्त	प्रधान मंत्री को उपवास की सूचना ।
	२१ सितम्बर	आमरण उपवास का आरंभ ।
	२६ सितम्बर	पूना का समझौता और सरकार द्वारा उसकी स्वीकृति ।

	अक्टूबर	भारतीय अस्पृश्यता निवारण संघ (बाद में हरिजन सेवा संघ) का संगठन।
१९३३ ई०	८ मई	२१ दिन के, किसी शर्त पर भंग न होने वाले, उपवास का आरंभ।
	९ मई	गाँधीजी बिना शर्त छोड़ दिये गये। स्थानापन्न राष्ट्रपति श्री अणे द्वारा छ सप्ताह के लिए सत्याग्रह-आन्दोलन स्थगित।
	१७ जून	फिर छ सप्ताह—३१ जुलाई तक—के लिए आंदोलन स्थगित।
	१२ १३ जुलाई	पूना में नेता सम्मेलन।
	१५ जुलाई	गाँधीजी,ने मिलकर, समझौते के सम्बन्ध में बात करने के लिए वायसराय से तार-द्वारा आज्ञा माँगी।
	१७ जुलाई	वायसराय ने मिलने से इन्कार कर दिया।
	जुलाई	स्थानापन्न राष्ट्रपति श्री अणे की घोषणा। सामूहिक सत्याग्रह स्थगित। गुप्त आफिस तोड़ दिये गये, पर व्यक्तिगत सत्याग्रह का कार्यक्रम रखा गया।
	२५ जुलाई	सत्याग्रह-आश्रम तोडने का निश्चय किया गया।
	३० जुलाई	गाँधीजी ने १६ स्त्री एवं १६ पुरुष सदस्यों-द्वारा १ अगस्त को 'रास'-यात्रा का निश्चय किया।
	३१ जुलाई	रात को डेढ़ बजे गाँधीजी, कस्तूर बा तथा अन्य सत्याग्रहियों की गिरफ्तारी।

४ अगस्त	यरवदा जेल से ,गाँधीजी छोड़े गये और उनको आज्ञा दी गई कि तुरत पूना शहर में चले जाओ। गाँधीजी ने आज्ञा अमान्य की, गिरफ्तार हुए। एक साल की सजा। 'ए' क्लास में रखे गये।
१६ अगस्त	सरकार ने पूर्ववत् हरिजन आंदोलन की सुविधा न दी। इससे उन्होंने आमरण उपवास शुरू किया
२० अगस्त	गाँधीजी जेल से सासून अस्पताल ले जाये गये।
२१ अगस्त	कस्तूर बा जेल से बिना किसी शर्त्त रिहा कर दी गई और गाँधीजी की सेवा-सुश्रूषा की आज्ञा उन्हें मिली।
२३ अगस्त	शाम को, ३ ४५ पर, गाँधीजी बिना किसी शर्त छोड दिये गये।



देशबन्धु चित्तरञ्जनदास

चित्तरंजन दास

[देशबन्धु]

जन्म

५ नवम्बर १८७० ई०

मृत्यु

१६ जून १९२५ ई०

'Man truely reveals himself through his gift, and the best gift that Chitta Ranjan has left for his countrymen is not any particular political or social programme, but the creative force of a great aspiration that has taken a deathless form in the sacrifice which his life represented

RABINDRA NATH TAGORE

× × ×

"वस्तुत व्यक्ति अपनी देन के द्वारा ही अपने को प्रकट करता है, और चित्तरंजन अपने देशवासियों के लिए जो सर्वोत्तम देन छोड़ गये हैं वह कोई विशेष राजनीतिक या सामाजिक कार्यक्रम नहीं है वरन् एक महान् आकांक्षा की सृजनकारी—उत्पादक—शक्ति है जो उनके जीवन द्वारा निरूपित त्याग में अमर हो गई है।"

—रवीन्द्रनाथ।

O God ! whose heavenward face beaming
With passionate loveliness is a light
For all ages ! O Thou whose angel heart
Has wept many a bitter tear over
The wrongs of much-opressed humanity

—*C R Das*,

हे देव ! तुम्हारा स्वर्गोन्नत मुख, जो भावमय सौन्दर्य से दीप्त है, सभी युगों के लिए प्रकाश देने वाला है। हे देव ! तुम्हारे सुन्दर हृदय ने दलित मानवता के अन्यायों पर कितने ही आँसू बहाये हैं।

—चित्तरंजनदास।

—एक—

उन्हें देखा था—

कैसे आश्चर्य की बात है कि यह अंग्रेजी कविता, जो ऊपर दी गई है और जो स्वयं देशबन्धु ने अंग्रेज कवि शेली के प्रति लिखी थी (पर उनके जीवन-काल में प्रकाशित न हो सकी), उन्हीं के जीवन की ओर इशारा कर रही है। देशबन्धु भारतीय रंगमंच पर कई रूपों में आये। अपनी प्रतिभा से जिधर गये, आँधी की तरह गये और आसमान

२८

पर छा गये। पर इन सब रूपों और प्रकारों के भीतर उनका अत्यन्त मानवी जो एक रूप था वह अन्त तक जगमगाता रहा और आज जब हमें उसकी याद आती है तो छाती फूलती हुई-सी और आँखें भरती—उमड़ती हुई सी मालूम पड़ती है। मैंने उन्हें कई बार देखा। पहली बार असहयोग-काल के आरम्भिक दिनों में—काशी में, शायद *'क्लार्क' या 'होटेल द पेरी' में ठहरे थे। उनका चेहरा लोगों को चुम्बक की नाईं आकर्षित करता था। ऐसा मालूम होता था कि इस व्यक्ति में ऐसा भी कुछ है जो इसके द्वारा होनेवाले राजनीतिक कार्यों से ऊपर है—, इसीलिए विरोधी और समर्थक दोनों उसकी ओर खिंचते हैं। कैसा व्यक्तित्व है इसका! जैसे सब आग ही आग है! मुर्दे को छुआ और उसमें जान आई! भाषण दिया और जनता में नशा चढ़ा। बड़े-बड़े जन-समूहों के साथ इस तरह खेलनेवाला जैसे हवा डालियों को हिलाती, पत्तों से खेलती और फूलों में एक सिहर पैदाकर, एक जान डालकर चली जाती है! जो कुछ बुरा भला बंगाल में है, वह सब उसका है। बंगाल का ऐसा पूर्ण प्रतिनिधि, ऐसा जो उसकी बुराई-भलाई सबको ज्यों का त्यों लेकर विकसित हुआ हो, विगत ५० वर्षों में तो कोई हुआ नहीं! वह चैतन्य, वह भावुकता, वह तेजस्विता, वह तूफानी स्वभाव, वह उदारता, वह प्राकृतिक देन, वह अस्थिरता,—सुजलाँ सुफलाँ बंगभूमि मानो इस व्यक्ति में हाड़-माँस का रूप धारण कर अवतीर्ण हुई हो!

आधुनिक भारतीय राजनीति में—मेरा मतलब १९२० के बाद के भारतीय जागरण-काल की राजनीति से है—जो चार व्यक्ति (गांधी, दास, मोतीलाल, जवाहरलाल) युग निर्माता हुए हैं और जिन्होंने हमारे सामने मानव-सेवक और देश सेवक के चार निश्चित 'टाइप'—नमूने, प्रकार रखे, उनमें कई दृष्टियों से गाँधीजी के बाद ही देश-बन्धु का नाम

* काशी के दो प्रसिद्ध होटलों के नाम।

आता है। पाच छ वर्षों में उन्होंने बगाल को इतना बढ़ाया जितना वह पचासों वर्षों में नहीं बढ़ा था। श्री पी० सी० रायने ठीक ही कहा है— "देशबधु बीसवीं शताब्दी के (प्रथम चतुर्थांश में) सबसे बड़े बगाली थे।"

पर इसके पहले कि इस राष्ट्र निर्माता के जीवन की समीक्षा करके हम उससे कुछ निष्कर्ष निकालें या उसके व्यक्तित्व को खोलकर पाठक के सामने रख, यह आवश्यक मालूम पड़ता है कि उसकी नींव में जो ईंटें दिया डाली गई थीं और जिनपर जीवन की सारी इमारत खड़ी है, उनकी थोड़ी चर्चा करलें और उसके जीवन मन्दिर की एक परिक्रमा भी करलें। इससे समझने में अच्छा रहेगा।

"Deshbandhu's life was a song and a passion a Vaishnavite rhapsody of suffering and sacrifice × × A poet he imagined richly A patriot he dared immensely A warrior he lived and died heroically A leader he swept all obstacles before him."

—LIBERTY

—दो—

जीवन-कथा

जन्म और संस्कार

चित्तरंजन का जन्म ५ नवम्बर १८७० ई० को, मध्य कलकत्ता के पटलडांगा स्ट्रीट में हुआ था। चित्तरंजन के पिता श्री भुवनमोहनदास सालिसिटर थे और चित्तरंजन के जन्म के कई वर्ष पहले कलकत्ता में बस गये थे। असल में ये लोग विक्रमपुर (ढाका) के तेलीरबाग गाँव के एक प्रसिद्ध वैद्य कुटुम्ब के थे और वहा से कलकत्ता आये थे। यह विक्रमपुर एक समय बंगाल का बौद्धिक संस्कृति का केन्द्र था और आरंभिक मध्यकाल में सेन राजाओं की राजधानी भी रह चुका था।

पीछे जब इसकी आबादी बहुत बढ़ गई और जीविका का प्रश्न कठिन हो गया तो यहाँ लोगों के मन में, स्वभावत, खेती के अलावा कोई दूसरा धन्धा करने का भाव पैदा हुआ। एक प्रकार की मानसिक अशान्ति फैल गई और इसी मानसिक अशान्ति के संस्कार लेकर चित्तरंजन पैदा हुए थे,—यह अशान्ति, यह प्यास जिसे दबाने के लिए एक दिन भारत के एक वायसराय—लार्ड कर्जन—को बंगाल के टुकड़े कर देने का निश्चय करना पड़ा था।

एक बात और। विक्रमपुर से दास-कुटुम्ब के कुछ लोग (चित्तरंजन के दादा—पिता के चाचा आदि) जाकर बारीसाल बस गये थे। भौगोलिक स्थिति और विशेष संस्कारों ने बारीसाल के निवासियों को सामान्य बंगाली से भिन्न कर रखा था। यहां के लोगों में एक प्रकार की दृढ़ता, त्याग एवं कष्ट-सहिष्णुता पाई जाती है। अपने पूर्वजों के द्वारा यह संस्कार चित्तरंजन में भी आया, जैसा कि बड़ा होने पर हम उनके जीवन में देखते हैं।

ऊपर मैं कह चुका हूं कि चित्तरंजन के पिता (श्री भुवनमोहन दास) सालिसिटर थे। पर इसके साथ ही वह पत्रकार भी थे। अपने समय में

चित्तरंजन के पिता और चचा

वह ब्रह्मसमाज के एक विशिष्ट पुरुष माने जाते थे। ब्रह्म-समाज के मुखपत्र 'ब्रह्मो पब्लिक ओपीनियन' के भी वही सम्पादक थे। धीरे धीरे इसमें उन्होंने राजनीति का भी समावेश किया। एक बार तो उनपर राज विद्रोह का मुकदमा चलते चलते रह गया। उनकी इस राजनीतिक प्रवृत्ति से बहुत-से ब्रह्म-समाजी बंधु डरकर अलग हो गये। तब भुवनमोहन ने कुछ ही दिनों बाद 'बंगाल पब्लिक ओपीनियन' नामक पत्र निकाला। इस कार्य में उन्होंने अपने को फकीर बना लिया। इन सब बातों का चित्तरंजन पर जो असर पड़ा उसे हम उनके राजनीतिक जीवन में स्पष्ट देखते हैं।

पर चित्तरंजन के पिता जहाँ राजनीतिक विचारों में इतने आगे बढ़े हुए थे वहाँ सामाजिक एवं धार्मिक विषयों में वह समाज का नेतृत्व न कर सके। उनके बड़े भाई दुर्गामोहनदास ने इस विषय में समाज का नेतृत्व किया। ब्रह्मसमाजी सिद्धान्तों में उनका प्रबल विश्वास था और यह न केवल जबान से वरन् कार्य से एक प्रबल समाज-सुधारक थे। उनकी बड़ी लड़की की शादी कूचबिहार के युवराज से ठीक हो चुकी थी पर चूँकि लड़की १४ चौदह वर्ष से छोटी थी और ब्रह्मसमाज के नियम १४ वर्ष से पहले लड़की का विवाह करने के विरुद्ध थे इसलिए

> *"Deshbandhu's life was a song and a passion—a Vaishnavite rhapsody of suffering and sacrifice × × A poet he imagined richly A patriot he dared immensely. A warrior he lived and died heroically A leader he swept all obstacles before him."*
>
> —LIBERTY

—दो—

जीवन-कथा

जन्म और संस्कार

चित्तरंजन का जन्म ५ नवम्बर १८७० ई० को, मध्य कलकत्ता के पटलडांगा स्ट्रीट में हुआ था। चित्तरंजन के पिता श्री भुवनमोहनदास सालिसिटर थे और चित्तरंजन के जन्म के कई वर्ष पहले कलकत्ता में बस गये थे। असल में ये लोग विक्रमपुर (ढाका) के तेलीरबाग गाँव के एक प्रसिद्ध वैद्य कुटुम्ब के थे और वहाँ से कलकत्ता आये थे। यह विक्रमपुर एक समय बंगाल की बौद्धिक संस्कृति का केन्द्र था और आरम्भिक मध्यकाल में सेन राजाओं की राजधानी भी रह चुका था।

पीछे जब इसकी आबादी बहुत बढ़ गई और जीविका का प्रश्न कठिन हो गया तो यहाँ लोगों के मन में, स्वभावत, खेती के अलावा कोई दूसरा धन्धा करने का भाव पैदा हुआ। एक प्रकार की मानसिक अशान्ति फैल गई और इसी मानसिक अशान्ति के संस्कार लेकर चित्तरंजन पैदा हुए थे,—यह अशान्ति, यह प्यास जिसे दबाने के लिए एक दिन भारत के एक वायसराय—लार्ड कर्जन—को बंगाल के टुकड़े कर देने का निश्चय करना पड़ा था।

एक यात और। विक्रमपुर से दास-कुटुम्ब के कुछ लोग (चित्तरजन के दादा—पिता के चाचा आदि) जाकर बारीसाल बस गये थे। भौगोलिक स्थिति और विशेप सस्कारों ने बारीसाल के निवासियों को सामान्य बगाली से भिन्न कर रखा था। यहाँ के लोगों म एक प्रकार की दृढ़ता, लगन एव कष्ट-सहिष्णुता पाई जाती है। अपने पूर्वजों के द्वारा यह सस्कार चित्तरजन मे भी आया, जैसा कि बडा होने पर हम उनके जीवन में देखते हैं।

ऊपर मैं कह चुका हूं कि चित्तरजन के पिता (श्री भुवनमोहन दास) सालिसिटर थे। पर इसके साथ ही वह पत्रकार भी थे। अपने समय म वह ब्रह्मसमाज के एक विशिष्ट पुरुष माने जाते थे। ब्रह्म-समाज के मुखपत्र 'ब्रह्मो पब्लिक ओपीनियन' के भी वही सम्पादक थे। धीरे धीरे इसमें उन्होंने राजनीति का भी समावेश किया। एक बार तो उनपर राज विद्रोह का मुकदमा चलते चलते रह गया। उनकी इस राजनीतिक प्रवृत्ति से बहुत-से ब्रह्म-समाजी बधु डरकर अलग हो गये। तब भुवनमोहन ने कुछ ही दिनों बाद 'बगाल पब्लिक ओपीनियन' नामक पत्र निकाला। इस कार्य में उन्होंने अपने को फकीर बना लिया। इन सब बातों का चित्तरजन पर जो असर पड़ा उसे हम उनके राजनीतिक जीवन में स्पष्ट देखते हैं।

चित्तरजन के पिता और चचा

पर चित्तरजन के पिता जहाँ राजनीतिक विचारों में इतने आगे बढ़े हुए थे वहाँ सामाजिक एव धार्मिक विषयों में वह समाज का नेतृत्व न कर सके। उनके बड़े भाई दुर्गामोहनदास ने इस विषय में समाज का नेतृत्व किया। ब्रह्मसमाजी सिद्धान्तों म उनका प्रबल विश्वास था और वह न केवल जबान से वरन् कार्य से एक प्रबल समाज-सुधारक थे। उनकी बड़ी लड़की की शादी कूचविहार के युवराज से ठीक हो चुकी थी पर चूँकि लड़की १४ चौदह वर्ष से छोटी थी और ब्रह्मसमाज के नियम १४ वर्ष से पहले लड़की का विवाह करने के विरुद्ध थे इसलिए

उन्होंने उपयुक्त अवस्था के पहले विवाह करने से इन्कार कर दिया। ब्रह्मसमाज के प्रसिद्ध नेता केशवचन्द्रसेन इसी प्रश्न पर, प्रलोभन में पड़ गये और अपनी लड़की १४ वर्ष से कम अवस्था होते हुए भी राज कुमार को ब्याह दी। तभी से दुर्गामोहन एवं उनके अन्य साथियों ने 'साधारण ब्रह्म समाज' नाम से दूसरे समाज की स्थापना की। दुर्गामोहन दास इस समाज के प्राण थे। यद्यपि फौजदारी के वह अच्छे वकील थे फिर भी समय निकालकर वह सदा समाज की सेवा करते रहे। उन्होंने अपनी युवती विमाता के विधवा होने पर उनका विवाह (विधवा विवाह) भी कर दिया। इससे बंगाल में बड़ा तहलका मचा पर दुर्गामोहन बड़े दृढ़ स्वभाव के समाज सुधारक थे। यह तूफान सहकर भी वह अपने, पथ पर चलते रहे।

यह बंगाल का उत्क्रान्ति काल था। ऐसे समय चित्तरंजन पिता की देश भक्ति, गंभीरता एवं हिचकिचाहट और चचा की विद्रोहवृत्ति तथा असंतोष लेकर पनपने लगे।

पर चित्तरंजन पर उनकी माता निस्तारिणीदेवी का प्रभाव भी कुछ कम न पड़ा था। निस्तारिणीदेवी यद्यपि राममोहनराय की अनुयायिनी थीं पर सामाजिक एवं घरेलू विषयों में उनके विचार हिन्दुओं से अधिक मिलते-जुलते थे। वह पुराने ढंग की एक उदार, दयाशीला एवं कर्तव्यपरायण हिन्दू माता का नमूना थीं। उनके इन गुणों का चित्तरंजन के मानसिक निर्माण में बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा था। इसीलिए हम चित्तरंजन के जीवन में ब्राह्म और हिन्दू का अपूर्व मिश्रण पाते हैं। यही नहीं, चित्तरंजन के माता पिता, अन्य ब्रह्मसमाजियों की भाँति अपने गोत्र एवं कुटुम्ब के उन लोगों से घृणा नहीं करते थे जो पुराने सनातनी विचारों पर चलना ठीक समझते थे। ब्रह्मसमाजी युरोप की नकल करने के इतने आतुर [illegible] रहे थे कि उन्होंने इस देश की प्रत्येक प्रथा का बहिष्कार किया था। चित्तरंजन

और माता ?

के माता पिता इस कोटि के न थे। उन्होंने अपना प्रेममय सम्बन्ध एवं सम्पर्क अन्य लोगों से कायम रक्खा। इसीलिए चित्तरंजन में बंगाली प्रकृति की सब समष्टिगत विशेषताएँ मिलती हैं।

चित्तरंजन के पिता समाज के लिए कविताएँ एवं गान भी बनाया करते थे। चित्तरंजन ने यह वृत्ति भी पिता से पाई जो पीछे बंगाल के साहित्यिक कलाकारों के संसर्ग से विकसित हुई। चित्तरंजन में जो भावुकता हम बड़ा होने पर पाते हैं, वह उनमें माता पिता से नहीं आई थी। वह ब्रह्म-समाज के अनेक स्त्री-पुरुषों के सम्पर्क एवं संसर्ग का परिणाम थी।

मैं पहले कह चुका हूँ कि यह बंगाल का उत्क्रान्ति का जमाना था। सामाजिक क्षेत्र की तरह राजनीतिक क्षेत्र में भी परिवर्तन हो रहे थे। लार्ड रिपन के वायसराय होने के बाद बंगालियों में एक प्रकार का उत्साह फैल गया। लोग जगने लगे। इस समय कलकत्ता में लोगों के प्रयत्न से कई शिक्षा-संस्थाएँ खुलीं, कई समाचारपत्र निकले। जनता में जीवन आने लगा। इन सब बातों का तथा इलबर्ट बिल से पैदा हुए जातीय विद्वेष—गोरे-काले के भेद—का भी चित्तरंजन पर प्रभाव पड़ा क्योंकि इस समय चित्तरंजन लगभग १२ वर्ष के थे।

इस प्रकार पिता, चचा, माता, बंगाल की तात्कालिक सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति ने मिलकर चित्तरंजन का निर्माण किया। बहुत से लोग समझते हैं कि पीछे चित्तरंजन एकाएक राजनीति के क्षेत्र में आये। ऐसा नहीं, लड़कपन से ही उनपर जो संस्कार पड़े थे उनमें उनका विकसित होकर पीछे इस रूप में प्रकट होना अनिवार्य था।

बालपन और शिक्षा

सन् १८७८ ई० में चित्तरंजन भवानीपुर (कलकत्ता) के 'लन्दन मिशनरी सोसायटी इन्स्टीट्यूशन' में भरती हुए। उनके पिता पहले

का मकान छोड़कर अब इसी मुहल्ले में रहने लगे थे। शुरू से ही चित्तरंजन की बुद्धि तो तीव्र थी पर वह अन्य लड़कों की तरह रट्टू एवं किताब के कीड़े न थे,—हँसोड़, प्रसन्न और उत्साही थे। १८८५ ई० में इसी स्कूल से उन्होंने एण्ट्रेंस की परीक्षा पास की।

प्रारम्भिक शिक्षा

एण्ट्रेंस परीक्षा पास करने के बाद वह प्रेसीडेंसी कालेज में भरती हुए। यहाँ 'बंगाली' के भूतपूर्व सम्पादक श्री पृथ्वीशचन्द्रराय के साथ उन्होंने 'अण्डरग्रेजुएट असोसिएशन' का संगठन किया जिसका उद्देश्य बंगला भाषा को भी एण्ट्रेंस के मैट्रिक विषयों में स्थान दिलाना था। उस समय इन लोगों ने इस सम्बन्ध में प्रयत्न किया था पर डा० सर गुरुदास बनर्जी (जो बाद में कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्रथम भारतीय वाइस चांसलर हुए) के इस भय से विरोध करने पर कि इससे संस्कृत शिक्षा को आघात पहुँचेगा, उस समय इन्हें सफलता न मिली। बाद में तो सर आशुतोष ने एफ० ए० तक बंगला को शिक्षा का माध्यम बना दिया।

कालेज में

पीछे चलकर बंगाल के युवक छात्रों की 'स्टूडेण्ट्स असोसिएशन' नामक संस्था का संगठन किया गया। चित्तरंजन इसके मुख्य कार्यकर्ताओं में थे। यह उस समय की बात है जब सुरेन्द्रनाथ बनर्जी इण्डियन सिविल सर्विस से अलग कर दिये गये थे। वह छात्रों की इस संस्था के प्रथम अध्यक्ष चुने गये और इसके द्वारा उन्होंने उनमें देश प्रेम के भावों को भरना शुरू किया। चित्तरंजन ने जन-सेवा एवं देश-सेवा का पहला प्रत्यक्ष पाठ सुरेन्द्रनाथ के चरणों में बैठकर ही पढ़ा। यह एक दुःख की बात है कि अन्तिम दिनों में शिष्य और गुरु का भेद भाव बढ़ता ही गया।

सन् १८९० ई० में चित्तरंजन ने बी० ए० पास किया। उसके बाद ही उनके पिता ने उन्हें भारतीय सिविल सर्विस की परीक्षा में बैठने के

लिए इंग्लैण्ड भेजा। १८९२ ई० में वह परीक्षा में बैठे पर सफलता न मिली। कुछ लोगों का कहना है कि सफलता न मिलने का कारण उनके राजनीतिक विचार थे। परीक्षा देने के पूर्व, उन्होंने पार्लमेण्ट में दी हुई जेम्स मैक्लीन की इस बात का सभा में विरोध किया कि 'अंग्रेजों ने भारत को तलवार से जीता और तलवार के जोर से ही वे उसे काबू में रख सकते हैं।' इसके साथ ही उन्होंने दादाभाई नौरोजी की पार्लमेण्ट की सदस्यता का जोरों से समर्थन किया था। उस समय काले-गोरे का वर्ण भेद इंग्लैण्ड में व्यापक था। यहाँ तक कि रानी विक्टोरिया के प्रधान मन्त्री लार्ड सेलिसबरी ने दादाभाई के लिए 'काला आदमी' शब्द का प्रयोग किया था। संयोग-वश दादाभाई लार्ड सेलिसबरी की अपेक्षा कहीं ज्यादा गोरे थे अतः इसे व्यक्तिगत अपमान न समझकर जातीय विद्वेष का उदाहरण समझा गया और चित्तरंजन के समर्थन तथा अन्य कई कारणों का मतदाताओं पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि दादाभाई पार्लमेण्ट के सदस्य चुन लिये गये। जो हो, इस बात का पता लगाना मुश्किल है कि अपने राजनीतिक विचारों के कारण चित्तरंजन को सफलता नहीं मिली या किसी और कारण से।

इंग्लैण्ड में—

सिविल सर्विस की परीक्षा में सफल न होने पर चित्तरंजन ने उसी वर्ष बैरिस्टरी की परीक्षा पास की। सन् १८९३ ई० में भारत लौट और उसी वर्ष कलकत्ता हाइकोर्ट में भरती हो गये। उस समय चार्ल्स पाल, जान उड्रफ, मनमोहन घोष जैसे मेधावी वकील वहां मौजूद थे। उनके सामने दूसरे नये उम्मेदवारों की कहाँ चलती! चित्तरंजन का भी वही हाल हुआ। बैठाले दिन बीतने लगे। इधर सफलता न मिलने के कारण वह साहित्य की ओर आकृष्ट हुए। १८९५ ई० में उनकी पहली कविता पुस्तक—'मालञ्च'—प्रकाशित हुई। इस पुस्तक के कारण सारा ब्रह्म समाज उनके विरुद्ध-सा हो गया इसलिए कुछ दिनों के लिए उन्होंने कविता लिखना भी छोड़ दिया।

बैरिस्टर चित्तरंजन

३ दिसम्बर १८९७ ई० को ब्रह्मसमाजी विधि से विजनी स्टेट (आसाम) के दीवान (स्व०) बरदानाथ हाल्दार की कन्या बसन्ती देवी के साथ उनका विवाह हुआ। ब्रह्मसमाज के पुरोहितों ने शादी में भाग नहीं लिया क्योंकि उनके विचार से चित्तरंजन नास्तिक और परम्परा विरुद्ध (Bohemian) विचारों के हो गये थे।

विवाह

सन् १९०६ ई० तक यों ही दिन बीतते गये। किसी भी क्षेत्र में उन्होंने कोई विशेष सफलता न प्राप्त की। उनके पिता पर कर्ज हो गया था। उन्होंने एवं उनके पिता ने एक मित्र की ४००००) चालीस हजार की जमानत—'सीक्योरिटी'—ली थी पर वह मित्र रुपया न दे सके। इधर इन लोगों के पास भी रुपया न था। इसलिए पिता को जून १९०६ ई० में दिवालियेपन की दरख्वास्त देनी पड़ी। पर इससे चित्तरंजन निराश नहीं हुए।

इस समय बंगाल के जीवन में एक तूफान आने की पूर्व सूचना मिल रही थी। उग्र राष्ट्रवाद के पुरोहित अरविन्द ने अंग्रेजी में 'वन्देमातरम्' और बँगला में 'संध्या' एवं 'युगान्तर' नामक पत्र निकालकर युवकों में जीवन डालना शुरू किया था। इन प्रयत्नों में भी चित्तरंजन का हाथ था, यद्यपि वह उस समय सामने नहीं आये थे।

'वन्देमातरम्'

संयोग की बात कि इसी समय एक ऐसी घटना हुई जिससे उनका भाग्य चमक गया। चित्तरंजन के छोटे भाई वसन्तरंजन को उनके धनी चचा कालीमोहनदास ने गोद लिया था। बसन्त रंजन एकाएक बीमार पड़े, बचने की कोई आशा न रही। मरने के पहले वह अपनी सारी सम्पत्ति अपनी माँ के नाम लिख गये। माँ से यह सम्पत्ति चित्तरंजन को मिली। इसमें से कुछ हिस्सा उनके दूसरे छोटे भाई प्रफुल्लरंजन का भी था जिसे पीछे उन्होंने खरीद

भाग्य चमका!

लिया। रसारोड (भवानीपुर) का १४८ नम्बर का बड़ा मकान (जिसमें अन्त तक वह रहे और) जिसे मृत्यु के समय भारतीय महिलाओं की चिकित्सा-सम्बन्धी शिक्षा के लिए देश को दे गये, इसी प्रकार उन्हें मिला था। पर भाग्य चमकने पर भी वह किसी को न भूले। अन्य ब्रह्मसमाजियों के समान वह सम्मिलित कुटुम्ब प्रथा के विरोधी नहीं थे— वरन् उसके प्रेमी थे। यह संस्कार उनके माता पिता से उन्हें मिला था। उनके कुटुम्ब में उनकी विधवा बहनें तथा अन्य कितने ही प्राणी थे और सबके साथ उनका स्नेहमय सम्बन्ध था। शुरू से ही उनमें उदारता थी और वह समृद्धि एवं सफलता के साथ दिन दिन बढ़ती ही गई।

× × ×

१९०५ में बंगाल में एक नया युग आरम्भ हुआ। तात्कालिक वायसराय लार्ड कर्जन ने, भारतमंत्री की राय लेकर, बंगाल को दो हिस्सों में विभाजित कर दिया। उस समय बंगाल प्रान्त में बिहार, उड़ीसा, बंगाल, आसाम सब सम्मिलित थे। लार्ड कर्जन का कहना था कि शासन की सुविधा के लिए ऐसा किया जा रहा है। जनता की समझ में यह बात नहीं आई। यह खयाल फैल गया कि सरकार ने बंगाल और उसमें उठते हुए राष्ट्रवाद को दबाने के लिए यह तरीका इख्तियार किया है। इस घटना का वह परिणाम हुआ जो वर्षों के प्रचार, सेवा और उपदेश से होना संभव न था। पहले पूर्व और पश्चिम बंगाल के लोगों में एक-दूसर के लिए उपेक्षा के भाव थे पर सरकार द्वारा बंग भंग होते ही सारा भेद भाव उड़ गया। ७ अगस्त १९०५ को सरकार ने घोषणा की। सारे बंगाल में जैसे तूफान उठ खड़ा हुआ। छोटे बड़े, जमींदार किसान सभी इस विरोध प्रदर्शन में शामिल हुए। कासिम बाजार के महाराज सर मणीन्द्रचन्द्र नन्दी की अध्यक्षता में, कलकत्ता के नागरिकों की पहली विराट सभा हुई। उसमें प्रतीकार की भावना से सब प्रकार की विदेशी चीजों के बहिष्कार का

उस तूफानी युग में—

निश्चय हुआ। रवीन्द्रनाथ की सलाह से १६ अक्तूबर—जिस दिन से नया विधान लागू हुआ—सारे बंगाल में 'रक्षाबन्धन दिवस' के रूप में मनाया गया। दोनों बटे हुए भागों ने एक-दूसरे को आश्वासन दिया। सब लोग एक-दूसरे को राखी बाँधते फिरते थे और 'हम एक हैं', यह भाव चारों ओर समुद्र के ज्वार की भाँति फैलता जा रहा था। राष्ट्रीय महासभा के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री आनन्दमोहन बोस (जो उस समय बंगाल के सब से आदरणीय नेता थे) बीमार थे। उन्हें स्ट्रेचर पर उठाकर ले जाया गया और राखी-बंधन के दिन कलकत्ता के अपर सर्कुलर रोड मुहल्ले में, बंगाल के दोनों भागों की एकता के स्मारक में, एक हाल की नींव डलवाई गई। स्थान स्थान पर सभाएँ हुईं। कोई ऐसा स्थान न था जहाँ जनता का विरोध, सामूहिक रूप में न प्रकट किया गया हो। सारे बंगाल में, बाजार के चौराहों पर, गाड़ी के गाड़ी विदेशी कपड़े एकत्र करके जलाये जा रहे थे। सैकड़ों विद्यार्थियों ने, अपने-आप, सरकारी स्कूलों का बहिष्कार किया। कलकत्ता विश्वविद्यालय का प्रचलित और लोकप्रिय नाम 'गुलामखाना' पड़ गया। राष्ट्रीय शिक्षा की योजना बनाई गई, जो आगे अगस्त १९०७ ई० में भलीभाँति, दृढ़ नींव पर, 'बंगाल की राष्ट्रीय शिक्षा-सभा' ('नेशनल काउंसिल ऑव् एजूकेशन ऑव् बंगाल') के नाम से स्थापित हुई।

उस समय के नेताओं ने जनता के इस उत्साह और भाव प्रवाह का सदुपयोग किया। आन्दोलन को संगठित रूप से चलाने का भार सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने अपने हाथ में लिया। * सभाओं में नियमित रूप से

* सन् १८७६ ई० में श्री सुरेन्द्रनाथ और श्री आनन्दमोहन बोस ने कलकत्ता में 'इण्डियन असोसिएशन' नाम की एक संस्था स्थापित की थी। बंग-भंग आन्दोलन का अधिकांश कार्य इसी संस्था द्वारा होता था। १८७६ से १९२० तक इस संस्था ने बंगाल की बड़ी सेवा की।

घोषणाएँ की गईं और प्रतिज्ञा पत्र भरवाये गये। राष्ट्रीय घोषणा का यह रूप था —

"चूँकि बंगाली जाति के सार्वभौमिक विरोध पर भी सरकार ने बंग भंग का निश्चय किया है, हम प्रतिज्ञा और घोषणा करते हैं कि हम एक जाति की हैसियत से, हमारे अन्दर जो भी शक्ति होगी, उसके द्वारा अपने प्रान्त के इस प्रकार टुकड़े किये जाने के बुरे प्रभाव को दूर करने की कोशिश करेंगे और अपनी जाति की एकता क़ायम रखेंगे। प्रभु हमारी सहायता करें।"

इसी प्रकार स्वदेशी की प्रतिज्ञा यह थी —

"सर्वशक्तिमान जगदीश्वर को साक्षी करके, और भावी सन्तति के सामने खड़े होकर, हम आज यह पवित्र प्रतिज्ञा करते हैं। यथासंभव, हम अपने देश की बनी चीज़ों का उपयोग करेंगे और विदेशी वस्तुओं के उपयोग से दूर रहेंगे। हे प्रभु, हमारी सहायता कर।"

सभाओं में, तथा यों भी, दोनों प्रान्तों के लेफ्टनेंट गवर्नरों (छोटे लार्डों) का मज़ाक़ उड़ाया जाता था और जगह-जगह सरकारी आज्ञाएँ एवं सूचनाएँ तोड़ी जा रही थीं। मिटन का, अंग्रेज जाति का, जो भी प्रभाव लोगों के दिल पर था वह देखते-देखते 'छू-मन्तर' हो गया। जो बंगाली कल तक गोरों और पुलिस मैनों को देखकर डरते थे, वही आज उनके सामने इस प्रकार तनकर खड़े हुए कि आश्चर्य होता था,—मानों पुरानी, मरी हड्डियों से किसी ने नई जाति की सृष्टि कर दी हो। पूर्वी बंगाल के बारीसाल ज़िले में जन पक्ष के नेता श्री अश्विनीकुमारदत्त की आज्ञाएँ इतनी पूर्णता के साथ मानी गईं कि नये लेफ्टनेंट गवर्नर सर बैमफील्ड फुल्लर के आगमन का भी बहिष्कार हुआ और लिवरपुल के नमक तथा मैन्चेस्टर के कपड़ों का आना कतई बन्द होगया। कुछ ही महीनों में अवस्था ऐसी हो गई कि जिन बंगालियों पर पहरेवाले पुलिस मैनों और युरोपियनों का रोब ग़ालिब था, वे सीधे सादे बंगाली को देखकर डरने लगे। विदेशी शासन के विरुद्ध लोगों में इतनी ज़बर्दस्त भावना पैदा होगई थी कि

सुरेन्द्रनाथ बनर्जी को 'बंगाल का सर्वमान्य नेता' की विधिपूर्वक दीक्षा दी गई।

साहित्य समाज का दर्पण है। उसमें उसका मुँह चमकता है, और हृदय भी। तात्कालिक बंगला-साहित्य में उस युग के भावों का प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखाई देता है। लेखकों एवं कवियों ने जनता में राष्ट्रीय भावों का प्रचार करने में बड़ा काम किया। बंकिमचन्द्र के 'आनन्दमठ' (उपन्यास) का खूब प्रचार हुआ। उसका 'वंदेमातरम्' गीत तो ऐसा प्रचलित हुआ कि आज तक भारत के राष्ट्रगीत के रूप में गाया जाता है। द्विजेन्द्रलालराय के नाटकों, रवीन्द्रनाथ, द्विजेन्द्र, सरलादेवी चौधरानी तथा रजनीकान्त सेन के राष्ट्रीय गानों ने भी बड़ा काम किया। नये दृष्टि-कोण से इतिहास ग्रन्थ लिखे गये जिनमें मुसलमान नरेशों के विरुद्ध होनेवाले आरोपों का खण्डन किया गया। श्री अक्षयकुमार मैत्रेय का 'सिराजुद्दौला' इसका एक उत्कृष्ट उदाहरण है। इस आन्दोलन से साहित्य को और साहित्य से इस आन्दोलन को बड़ा बल मिला। रायबहादुर दीनेशचन्द्र और बंगीय साहित्य परिषद् ने पुराने ग्राम्य गीतों का उद्धार किया। बँगलाभाषा द्वारा शिक्षा दी जाय, इस पर चारों ओर जोर दिया जाने लगा। कितने ही पत्र-पत्रिकाएँ निकलीं।

साहित्य में भावों की परछाईं

साहित्य की भाँति ही चित्रकला में भी अवनीन्द्रनाथ और गगनेन्द्रनाथ ठाकुर ने एक नये प्राच्य 'स्कूल' की स्थापना की। इस 'स्कूल' ने नाग घरकर सर्वश्री गांगुली, नन्दलाल बोस, असित हल्धर इत्यादि कितने ही अच्छे चित्रकार पैदा किये और आज तो संसार की चित्रकला में इसका एक खास स्थान हो गया है। इसी प्रकार विज्ञान के क्षेत्र में जगदीशचन्द्र बसु (जो चित्तरंजन के साले होते हैं) ने अभूतपूर्व आविष्कार किये।

अन्य क्षेत्रों में—

मतलब यह कि १८५७ ई० से विदेशी शासन के कारण जो असन्तोष लोगों में पैदा हो रहा था, और वर्ण भेद तथा व्यापारिक नीति के कारण जो बढ़ता गया था, वह सब इस आन्दोलन में, जिसे स्वदेशी युग कहा जाता है, दिखाई पड़ा।

असन्तोष

मजिस्ट्रेटों पर पुलिस का ऐसा प्रभाव था कि न्याय से लोगों का विश्वास उठने लगा था—यहाँ तक कि न्याय-पद्धति की खुद उसी समय के कई जजों ने कड़ी टीका की है।* बात-बात पर उच्च सरकारी कर्मचारियों द्वारा भारतीयों का अपमान किया गया। लार्ड मेकाले ने तो यहाँ तक कह दिया कि 'जैसे मधुमक्खी में डंक होता है, भैंस के सींग होता है वैसे ही बंगाली में विश्वासघात की आदत होती है।' इन सब बातों के कारण, लगातार एक पर एक कोई न कोई दुःख पूर्ण घटना होती रहने से बंगाल का हृदय क्षुब्ध हो रहा था।

इन नव जागरण को दबाने के लिए सरकार दमन, धर-पकड़ करती रही पर प्रवाह नहीं रुका। इसी समय लार्ड कर्जन और लार्ड किचनर (भारतीय सेनापति) में विरोध होने के कारण लार्ड कर्जन को इस्तीफा देना पड़ा। लार्ड मिण्टो नये वायसराय होकर आये। उन्होंने इस जटिल स्थिति को सुधारने की कोशिश की। पर कुछ फल न हुआ। दमन से लोग इतने त्रस्त हो रहे थे कि कुछ क्रान्तिकारी युवकों ने गुप्त समितियाँ बना लीं। कई जगह बम-काण्ड हुए। शारीरिक शक्ति सुधारने के लिए अनुशीलन समितियाँ बनाई गई। गीता धर्म का प्रचार होने लगा। अरविन्द के बौद्धिक नेतृत्व से उग्र युवकदल को ऐसा उत्साह प्राप्त हुआ कि दो-तीन वर्ष के अन्दर उनमें एक सशक्त क्रान्तिकारी दल प्रकट हो गया।

जब देश में यह तूफान उठ रहा था तभी लाला लाजपतराय और सरदार अजीतसिंह को देश निकाला हुआ। पूना के नाटो बन्धुओं का

* जैसा कि श्री आबरी पर्सिवल पेनेल के फैसलों से प्रकट है।

भी निर्वासन हो चुका था। बंगाल के तीसरे रेगुलेशन के अनुसार कित
ही युवक पकड़े गये।

उस समय चित्तरंजन दास की बैरिस्टरी चमकी, उन्होंने अनेक मामलों की पैरवी करके अपनी प्रतिभा का लोगों को अच्छा परिचय दिया।

वकालत में सफलता

मैं ऊपर लिख चुका हूँ कि लार्ड मिंटो के वायसराय होकर आने के बाद भी तूफान उसी तरह जारी रहा। इस समय उग्रवादी-दल के अनेक समाचारपत्र साफ साफ सरकार का विरोध करने लगे थे। सरकार ने इन पत्रों को दबाने का निश्चय किया। पहला वार अंग्रेजी दैनिक 'वन्देमातरम्' पर हुआ। इसे चित्तरंजन, सुबोध मल्लिक तथा उनके एक और मित्र ने मिलकर निकाला था। इसका सम्पादन एक कमेटी करती थी जिनमें श्री अरविन्द घोष मुख्य थे। अरविन्द बाबू बहुत छोटी अवस्था में शिक्षा प्राप्त करने के लिए इंग्लैण्ड भेजे गये थे। वहाँ लंदन के सेण्ट पाल स्कूल में शिक्षा प्राप्त करने के बाद वह कैम्ब्रिज गये और वहाँ से समय पर, 'क्लासिकल ट्रिपोज' में प्रथम श्रेणी में पास हुए। यह सम्मान अभी तक केवल एक और भारतीय को मिला है। इसके बाद वह सिविल सर्विस परीक्षा में बैठ, उसमें भी पास हुए पर अश्वारोहण में निपुण न होने के कारण जगह न मिली। बाद में बड़ौदा कालेज के वायस प्रिंसपल की हैसियत से स्वदेश लौटे। जब बंग भंग आन्दोलन शुरू हुआ तो वह कलकत्ता चले गये, और वहाँ जाने के कुछ ही दिन बाद 'वंदेमातरम्' के सम्पादकीय विभाग में काम करने लगे। उस समय तक वह बँगला का एक शब्द भी न जानते थे, न बंगालियों के जीवन का उन्हें कुछ ज्ञान था। फिर भी भारतीय संस्कृति के अनुसार ही उन्होंने अपना जीवन बनाया था। 'सादा जीवन ऊँचे विचार' उनका लक्ष्य था। इस समय तक उनके हृदय में वेदान्त के पुनरुत्थान का भाव जागृत हो चुका था,

अरविन्द और 'वन्देमातरम्'

यद्यपि उस समय वेदान्त के विषय में उनका ज्ञान बहुत थोड़ा था। पर उनके हृदय में 'वेदान्त' शब्द और उसके आध्यात्मिक स्वर के प्रति एक ऐसा अद्भुत आकर्षण पैदा हुआ और उसे उन्होंने राजनीतिक आकांक्षाओं के साथ कुछ इस प्रकार मिला दिया कि युवक हृदय पर उसका बड़ा प्रभाव पड़ा। 'वन्देमातरम्' में 'नया मार्ग' (The New Path—दि न्यू पाथ) के नाम से वह इन राष्ट्रीय वेदान्त धर्म पर लिखने लगे। ऐसे ही समय सरकार ने उसपर मुकद्दमा चलाया पर सरकार को सफलता न मिली। इस मुकद्दमे से अरविन्द बाबू और उनके वकील चित्तरंजन का नाम जनता में और भी फैल गया।

ऊपर कहीं इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि अंग्रेजी 'वन्देमातरम्' के साथ, 'सन्ध्या' और 'युगान्तर' नाम के दो और पत्र बंगला में

'सन्ध्या' और 'युगान्तर'

क्रमशः श्री ब्रह्मबान्धव उपाध्याय और श्री भूपेन्द्रनाथ दत्त के सम्पादन में निकल रहे थे। इन दोनों पर भी सम्पादक की हैसियत से राजद्रोह का मुकद्दमा चलाया गया। ब्रह्मबान्धव बाबू यद्यपि एक ईसाई घराने में पैदा हुए थे और स्वयं भी ईसाई धर्म उन्होंने ग्रहण किया था फिर भी इस समय वह नवीन हिन्दू शक्ति के समर्थक और सरकार के प्रबल विरोधी थे। भूपेन्द्रनाथ दत्त स्व० स्वामी विवेकानन्द के भाई थे। उन्होंने कतिपय प्रतिभाशाली युवक लेखकों के सहयोग से क्रान्ति का भाव बंगाल के युवकों में फैलाना शुरू कर दिया था। ब्रह्मबान्धव बाबू और भूपेन बाबू दोनों की कलम में बड़ी ताकत थी और दोनों बड़ी प्रभावशाली बँगला लिखते थे। जब इनपर मुकद्दमा चला तो इनकी ओर से चित्तरंजन पैरवी करने को नियुक्त हुए। ब्रह्मबान्धव बाबू तो मुकद्दमा समाप्त होने के पहले ही चल बसे। भूपेन्द्र बाबू की पैरवी में चित्तरंजन ने जिस प्रतिभा का परिचय दिया उससे मजिस्ट्रेट और जनता दोनों को दंग होना पड़ा। यद्यपि इस मामले में भूपेन बाबू को एक वर्ष की कड़ी कैद की सजा हुई पर चित्तरंजन

की योग्यता का सिक्का लोगों पर बैठ गया।

इन दिनों विद्रोह के जिन भावों का प्रचार हो रहा था उनका युवक हृदय और मस्तिष्क पर प्रभाव पड़ने लगा था। ३० अप्रैल १९०८ ई० को खुदीराम बोस और प्रफुल्ल चाकी नामक दो युवकों ने मुजफ्फरपुर (बिहार) के जिला जज श्री किंग्सफर्ड की गाडी का अनुमान कर एक गाडी पर बम फेंका। श्री किंग्सफर्ड पिछले साल, कलकत्ता के चीफ प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट की हैसियत से कई पत्र सम्पादकों को कड़ी सजा दे चुके थे और उन्होंने सुशील नामक एक लड़के को कोड़े भी लगवाये थे। ये लोग उसी का बदला लिया चाहते थे। पर जिस गाडी को उन्होंने श्री किंग्सफर्ड की समझा वह असल में उस समय के लोक प्रिय यूरोपियन श्री प्रिंगल केनेडी की थी और इस बम काण्ड से उनकी पत्नी और पुत्री की हत्या हुई। इस घटना से बड़ा तहलका मचा। पुलीस ने शीघ्र ही इन्हें गिरफ्तार किया, तथा तलाश करने पर पुलिस को मानिकतल्ला (कलकत्ता) के ३२ मुरारीपुकर रोड में एक बम फैक्टरी का भी पता चला। २ मई को इस सम्बन्ध में, अरविन्द के छोटे भाई, बारीन्द्रकुमार घोष, जो उस क्रान्तिकारी संगठन के मुख्य नेता बताये गये, तथा अन्य कुछ युवक गिरफ्तार किये गये। कुछ ही दिनों के अन्दर और भी कितने ही आदमी गिरफ्तार हुए—इनमें श्री अरविन्द घोष भी थे। मुजफ्फरपुर के बम-काण्ड और मानिकतल्ला बम फैक्टरी के सम्बन्ध में ३९ युवक गिरफ्तार हुए। इस भण्डाफोड़ से जनता में एक अजीब तहलका मचा क्योंकि अब तक जनता को ऐसी बातों का पता न था। इन युवकों में से कुछ ने कई बातें स्वीकार कर लीं। अभियुक्तों पर सम्राट के विरुद्ध युद्ध करने एवं उसके लिए षड्यन्त्र करने का चार्ज लगाया गया। १९ मई को अलीपुर के मजिस्ट्रेट श्री बीचक्राफ्ट के सामने मुकदमा आरम्भ हुआ। अक्तूबर १९०८ ई० में मामला सेशनजज के सामने

विस्फोट

मानिकतल्ला केस में चित्तरंजन

आया। अरविन्द की सम्मति से चित्तरञ्जन ने उनकी पैरवी का काम अपने जिम्मे लिया। इस मुकदमे में चित्तरंजन ने अपनी प्रतिभा और ज़िरह करने की अपूर्व शक्ति का ऐसा परिचय दिया कि जज, जनता और वकील सब दंग रह गये। यह एक अत्यन्त जटिल और बड़ा मुकदमा था। इसमें २०६ गवाह तलब किये गये, ४००० चीजें 'फाइल' की गईं। बम, पिस्तौल तथा अन्य प्रदर्शित वस्तुएँ—एक्जहिबिट्स—ही ५०० थे। अरविन्द के विरुद्ध उनके भाषणों, लेखों एवं पत्रों के बल पर अभियोग लगाया गया कि वह षड्यन्त्र-कारियों के मन्तव्य को उत्तेजन देने के खयाल से भारत की पूर्ण स्वाधीनता के भावों का प्रचार करते रहे हैं। सुप्रसिद्ध श्री ई० नार्टन सरकार की तरफ से मुकदमा चला रहे थे। चित्तरंजन ने बहस में कहा कि "अरविन्द की रचनाओं का बिलकुल गलत ढंग पर अर्थ लगाया गया है। वह एक आध्यात्मिक प्रवृत्ति के पुरुष हैं, वेदान्तवाद के पुनरुत्थान के लिए प्रयत्न कर रहे हैं। उनके राजनीतिक विचार भी इसी वेदान्तवाद पर आश्रित हैं। वह स्वतंत्रता का उपदेश करते हैं। उनका कहना है कि 'मनुष्य की मुक्ति उसी के अन्दर से हो सकती है क्योंकि उसके अन्दर ही ईश्वरत्व प्राप्त करने की शक्ति मौजूद है। इसी प्रकार उनका विश्वास है कि राष्ट्र की भी एक आत्मा होती है—देश के अन्दर भी उसका अपना एक व्यक्तित्व होता है। उसे देश स्वयं ही विकसित कर सकता है, कोई दूसरी बाहरी शक्ति उसे नहीं प्राप्त करा सकती, कोई विदेशी इसमें सहायक नहीं हो सकता। राष्ट्र अपने आप, अपनी स्फूर्ति और सहायता के बल पर ही विकसित होता है।' यही अरविन्द की शिक्षा का उद्देश्य है। उसमें हिंसा को नहीं, निष्क्रिय प्रतिरोध की शिक्षा है। उनके मत से बम नहीं, कष्ट-सहन और त्याग से देश का उद्धार होगा। वह गुप्त षड्यन्त्रों और हिंसा का विरोध करते और युवकों का कष्ट-सहन करने का आदेश करते हैं। उन्होंने अपने किसी भाषण में, किसी रचना

अरविन्द की शिक्षा

म, हिंसा का आश्रय लेने को नहीं कहा। उनका कहना इतना ही है कि 'यदि तुम समझते हो कि सरकार के किसी कानून से तुम्हारे या राष्ट्रीय विकास म बाधा पडती है तो उसे भग करो और उसका दण्ड प्राप्त करो, उसके लिए कष्ट सहो। तुम अपने अन्त करण के सामने, अपने ईश्वर के सामने इसके लिए जवाब देह हो।' अरविन्द की शिक्षा का सार यही है। क्या ऐसी शिक्षा सारे ससार म जहा दी जाती रही है? क्या यह केवल इसी देश को, इसी आन्दोलन को, जिसे मि० नार्टन ने ऐसे बुरे शब्दों में याद किया है, विशेषता है? क्या इगलण्ड की जनता ने बार बार इसे नहीं किया है? अरविन्द ने देखा कि विश्वास खोकर ही हमने सब कुछ खोया है इसलिए जब-जब उन्होंने स्वतत्रता का उपदेश किया तब तब यह कहा कि अपने म विश्वास रखो। जिसे अपने में विश्वास नहीं है वह कभी मुक्ति नहीं प्राप्त कर सकता। इसीलिए अरविन्द अपने देशवासियों से कहते हैं—'तुम कायर नहीं हो, तुम अयोग्य एव अशक्त मनुष्य नहीं हो, तुम्हारे अन्दर ईश्वरीय ज्योति है। अपने अन्दर विश्वास रखो और श्रद्धा के साथ अपना लक्ष्य प्राप्त करो'।"

उपस्थित किये गये विरुद्ध प्रमाणों का जिक्र करके उन्होंने कहा कि "यदि आप पहले से अरविन्द को दोषी मान लेते हैं तो उनके पत्रों में अवश्य आपको ऐसे वाक्य मिल जायेंगे जिनसे उनका अपराध प्रमाणित होगा पर यदि आप पहले से ही ऐसी धारणा बनाकर न चलें तो उनके दूसरे अर्थ भी लगाये जा सकते हैं।"

अरविन्द के विरुद्ध सबसे जबर्दस्त प्रमाण उनके छोटे भाई बारींद्र कुमार की निम्नांकित चिट्ठी थी—

Dear Brother,

Now is the time, please try and make them meet for our Conference. We must have sweets all over India ready made for imergencies. I wait here for your answer.

Your affectionate
BARINDRA KUMAR GHOSE

[अर्थात्

प्रिय बंधु,

यही समय है, कृपया प्रयत्न कीजिए और उन सबको हमारे सम्मेलन में एकत्र कीजिए। आवश्यकता के समय के लिए हम सारे भारत में मिठाइयाँ तैयार रखनी चाहिए। मैं यहाँ आपके उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

आपका स्नेह पात्र
बारीन्द्र कुमार घोष]

सरकारी वकील का कहना था कि इसमें 'स्वीट्स' (मिठाइयाँ) से मतलब बम से है जिसका समर्थन अन्य प्रमाणों से भी होता है।

पत्र जाली तो नहीं है ?

चित्तरंजन ने बहस में कहा कि 'यह पत्र जाली है। बंगाल में कोई छोटा भाई बड़े भाई को लिखे पत्र में अपना पूरा नाम नहीं देगा। इसके अलावा हमारी जातीय प्रथा के अनुसार बारीन ने अरविन्द को 'सेजदा' लिखा होता न कि 'प्रिय भाई' ('डियर ब्रदर') जैसा कि अंग्रेजों का ढंग है। इसके अलावा बारीन्द्र को अंग्रेजी की बहुत अच्छी शिक्षा मिली है। ऐसा आदमी emergencies शब्द को imergencies कभी न लिखता। जाल के इन आन्तरिक प्रमाणों के अलावा तलाशी के समय यह पत्र नहीं मिला था, पीछे से पुलीस द्वारा घुसेड़ा गया।'

चित्तरजन ने अपने अन्तिम भाषण में तात्कालिक पुलीस की कार्रवाइयों पर जजों की सम्मतियाँ उद्धृत करके दिखाया कि झूठे पत्र तैयार करना उसके बायें हाथ का खेल है। मुकदमे के अन्त में जज और असेसरों को सम्बोधन करके उन्होंने जो भाषण दिया था वह अद्भुत है। उसकी भाषा इतनी जोरदार, शब्द इतने शक्तिमान और कहने का ढंग ऐसा निराला है कि हृदय चित्तरजन की प्रतिभा पर उछलने लगता है।*

---

* My appeal to you therefore [redacted] that a man like this, who is being charged with the offence with which he has been charged, stands not only before the bar in this Court but stands before he bar of the High Court of History My appeal to you is this that long after the controversy will be hushed in silence long after this turmoil the agitation will have ceased long after he is dead and gone he will be looked upon as the poet of patriotism as the prophet of nationalism and the lover of humanity Long after he is dead and gone his words will be echoed and reechoed not only in India but across distant seas and lands Therefore I say that the man in his position is not only standing before the bar of this Court but before the bar of the High Court of History

"The time has came for you, Sir to consider your Judgement, and for you, gentlemen (addressing the Assessors) [redacted] consider your Verdict I appeal to you Sir in the name of all the traditions of the English bench that forms the most glorious chapter of English history. I appeal to you in the name of all that [redacted] noble of all the thousand principles of Law which have emanated from the English Bench and I appeal to you in the name of the distinguished judges who have administered the Law in such a manner as to compel not only obedience but the respect of all those in whose cases they have administered the law I appeal to you in the name of the glorious chapter of English history and let it not be said that an English judge forgets to vindicate justice. To you gentlemen I appeal in the name of the very ideal that Aurbindo preached and

। उनके इस भाषण का मजिस्ट्रेट पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने अरविन्द को निर्दोष कहकर छोड़ दिया और चित्तरंजन की योग्यता की बड़ी प्रशंसा की। उस समय से चित्तरंजन की गिनती देश के सर्वश्रेष्ठ वकीलों में होने लगी और उनके पास इतना काम आने लगा कि उन्हें प्रायः बहुत सा काम अस्वीकार कर देना पड़ता था। वकालत में उनकी सफलता का एक कारण यह भी है कि वह जिस मुकदमे को लेते थे उस पर रात दिन परिश्रम करते थे। प्रायः सोचते सोचते रात बीत जाती थी। उतना ही काम लेते थे जितना अच्छी तरह कर सकें। जिरह में वह अद्वितीय थे। कैसे भी प्रबल विरोधी को जिरह में वह टुकड़े टुकड़े करके फेंक देते थे। ज्यादातर वह फौजदारी के ही मुकदमे लेते थे पर जब दीवानी के मुकदमे हाथ में लेते तो उसमें भी अपनी प्रतिभा चमका देते थे। १९१७ में डुमरांव का मामला हाथ में लिया और एक मामूली गरीब आदमी को अपनी प्रतिभा के बल पर डुमरांव की गद्दी पर बैठा दिया। तबसे दीवानी के मामलों में भी उनकी योग्यता का सिक्का बैठ गया।

१९१३ में जब उनकी प्रैक्टिस—वकालत—खूब चमक गई, उन्होंने हाईकोर्ट के सामने दर्ख्वास्त दी कि हमारे दिवालियेपन की घोषणा रद्द कर दी जाय। उन्होंने पिता का और अपना पावना कौड़ी कौड़ी चुका दिया। कानूनन उन्हें एक पैसा देने की जरूरत न थी पर ईमानदारी ने उन्हें ऐसा करने पर मजबूर किया। उनके इस नैतिक कार्य का असर हाईकोर्ट के जजों पर खूब हुआ और जस्टिस फ्लेचर ने इसकी तारीफ भी की।

ईमानदारी

---

in the name of all the traditions of our Country, and let it not be said that two of his own countrymen (referring to the Assessors) were overcome by passion and prejudice and yielded to the clamour of the moment.'

महान् वकील

सन् १९२० ई० में उनकी आय प्राय ५००००) पचास हजार रुपये मासिक हो गई थी। उनमें दृढ़ इच्छा-शक्ति थी, वह जज या अपने विरोधी के सामने एक इंच नहीं झुकते थे और उनके तर्क की विजयिनी शैली के सामने विरोधी (hostile) जज भी कुछ कहते हिचकते थे और अन्त [illegible] झुक जाते थे। शक्ति के सामने झुकने का उनमें कोई चिन्ह न था। वह जजों के सामने इस तरह बोलते थे जैसे कोई अपने साथियों से बोल रहा है। जो विषय जितना ही कठिन होता उसमें वह उतनी ही अधिक मात्रा में अपनी योग्यता प्रकाशित करते।*

× × ×

दमन की लाठी

इस प्रकार जिन दिनों चित्तरंजन की प्रतिभा वकालत के क्षेत्र में दिन दिन चमकती जा रही थी उन दिनों देश का राजनीतिक वातावरण अत्यन्त अस्थिर और अशान्त हो रहा था। १९०८ में देश की जो स्थिति थी उसकी एक झलक हम ऊपर दिखा चुके हैं। १९०८ के बाद भी सरकार दमन करती ही गई। अखबारों को दबाने के लिए, विस्फोटक द्रव्यों के लिए तथा और कितनी ही बातों के लिए

* कितने ही मुक़दमों में उनके साथ सहायक की हैसियत से काम करने वाले श्रीयुक्त बी०सी० चटर्जी ने 'फारवर्ड' में लिखा था—

Some fundamental qualities underlay his advocacy He possessed an iron strength and never yielded an inch of ground either to judge or adversary and combined with it a driving power of argument before which even hostile judges faltered and ultimately fell. There was not the least trace of sycophancy in his pleading nor the faintest of tremors at the knees in the presence of authority He stood and spoke like a man to a fellow--man but gave off all the time that unconscious magnetism which generally overpowered judge and audience The most noteworthy feature of his advocacy was that its quality impressed in proportion to the difficulty of its subject matter

कानून बनाये गये। अनेक स्थानों पर सभाओं का करना गैर-कानूनी करार दिया गया। ११ दिसम्बर १९०८ ई० को 'स्पेशल क्राइम्स ऐक्ट' पास हुआ जिसके अनुसार राजनीतिक कैदियों के 'समरी ट्रायल' हो सकते थे और सभाओं का भंग किया जा सकता था। इस प्रकार के कानून तो बिना किसी रोक-टोक के बनाये जा रहे थे पर जन हितकर बिलों का विरोध होता था। गोखले का 'प्रारम्भिक शिक्षा बिल' सरकारी सदस्यों के विरोध के कारण पास न हो सका। १८१८ ई० के बंगाल रेगुलेशन की तीसरी धारा के अनुसार लोग निर्वासित किये गये। श्रीकृष्ण कुमार मित्र, श्रीअश्विनीकुमार दत्त इत्यादि की यही दशा हुई। तात्कालिक भारत मंत्री लार्ड मार्ले ने अपने 'संस्मरण' (Recollections) के दूसरे भाग में स्वयं ही उस समय की दमन नीति की निन्दा की है। उन्होंने अपनी डायरी म उस पत्र को उद्धृत किया है जो उन्होंने वायसराय को लिखा था। उसमें उन्होंने लिखा है —

"यह रूसी ढंग है कि झुण्ड के झुण्ड आदमियों को साइबेरिया भेज कर क्रान्तिकारियों के होश ठिकाने लगा दिये जायँ। यह नीति रूस में अच्छी तरह नहीं चली। उससे ट्रिपोफों के जीवन की रक्षा नहीं हुई, न वह रूस को ड्यूमा से ही बचा सकी।"

मतलब यह कि सब तरफ दमन का सहारा लिया गया। यहाँ तक कि इङ्गलैण्ड का इतिहास पाठ्य क्रम से निकाल दिया गया क्योंकि अधिकारियों ने समझा कि उसे पढ़कर विद्यार्थियों म स्वाधीनता की नवीन प्रेरणा पैदा होती है। पर इन बातों से स्वाधीनता की भावना कैसे रोकी जा सकती थी? बाढ़ जो उठी तो आग ही बढ़ती गई। जनता में राष्ट्र पूजा का एक नया भाव उमड रहा था और यह उस दिन देखने में आया जिस दिन कन्हाईलाल दत्त और सत्येन्द्रनाथ बोस को फाँसी हुई। कलकत्ता के सेण्ट्रल जेल से जब इनके शव श्मशान की ओर ले जाये जा रहे थे तो कालीघाट की सड़कों पर दोनों ओर कम से कम ५०००० पचास हजार

आदमी उनकी चरण धूलि लेने के लिए जमा थे। यह हिसकों की हिंसा का स्वागत नहीं था, उनकी शहादत के प्रति आदर प्रदर्शन था। अधिकारी देखकर दंग रह गये और तब से यह निश्चय हुआ कि ऐसे लोगों का शव संस्कार जेल में ही हो।

दुःख की बात तो यह है कि यह सब दमन एक उदार राजनीतिज्ञ और श्रेष्ठ विचारक मार्ले के मंत्रित्व काल में हो रहा था। मार्ले बड़े दृढ़ निश्चयी और दूरदर्शी राजनीतिज्ञ थे। पर उनके हाथ बँधे थे। फिर भी उन्हें यह समझते देर न लगी कि कुछ सुधार किये बिना काम न चलेगा। इसलिए उन्होंने सुधार सम्बन्धी एक बिल तैयार किया। इसके पहले वह श्रीसत्येन्द्रप्रसन्नसिंह को वायसराय की कौंसिल का (कानूनी) सदस्य बना चुके थे। यह उनका नैतिक साहस ही था जिससे इसमें सफलता मिली अन्यथा इस नई बात का वायसराय की कौंसिल ने विरोध किया, इण्डिया कौंसिल ने विरोध किया, लार्ड किचनर (भारत के सेनापति) ने प्रबल विरोध किया और भारत के कई पिछले वायसरायों ने तो विरोध का तूफान ही खड़ा कर दिया। यहाँ तक कि स्वयं सम्राट एडवर्ड सप्तम को भी यह ठीक न मालूम हुआ। इन लोगों के विरोध के मूल में यह भाव था कि वायसराय की कौंसिल के सामने सैनिक एवं शासन-नीति की कितनी ही गुप्त बातें विचार के लिए आती हैं। किसी भारतीय पर इस सम्बन्ध में विश्वास नहीं किया जा सकता। किन्तु मार्ले बड़े दृढ़ विचार के पुरुष थे, इतने विरोध के बीच भी उन्होंने इस साहसपूर्ण कार्य को कर डाला। फरवरी १९०९ में उन्होंने पार्लमेण्ट से भारतीय कौंसिलों के सुधार की योजना पास करा ली।

इस प्रकार एक ओर जब एक योग्य भारत मन्त्री सुधार की ओर बढ़ रहे थे तब वायसराय लार्ड मिण्टो एवं उनका परिषद् दमन-नीति बराबर जारी किये हुए थी। प्रेस एक्ट बनाकर भारतीय समाचार-पत्रों को दबा देने का प्रयत्न किया गया तथा कौंसिलों में जातिगत प्रतिनिधित्व का प्रथा

चलाकर भारतीय राष्ट्रीयता के क्षेत्र में उसके विनाश के बीज बोने का प्रयत्न किया गया, जिसका फल हम आज तक देख रहे हैं।

१९१० ई० के अक्तूबर और नवम्बर में क्रमशः लार्ड मिण्टो (वायसराय) और लार्ड मार्ले (भारतमन्त्री) ने इस्तीफा दे दिया। इनके स्थान पर क्रमशः लार्ड हार्डिञ्ज और लार्ड क्रयू की नियुक्ति हुई। नियुक्ति की बात चलने के समय से ही, दोनों सज्जन गुप्त रूप से यह निश्चय कर चुके थे कि बंग भंग आन्दोलन तबतक नहीं दब सकता जबतक कि दोनों टुकड़े फिर से मिला न दिये जायँ। उधर सम्राट एडवर्ड सप्तम के देहावसान के बाद वर्तमान सम्राट जार्ज पंचम गद्दी पर बैठे। वह राज्याभिषेक के उत्सव के लिए भारत बुलाये गये। उनके द्वारा घोषणा कराके बंगाल के दोनों भागों को मिला दिया गया, बिहार उड़ीसा एक स्वतन्त्र प्रान्त बनाया गया। इसी प्रकार आसाम भी एक अलग प्रान्त हुआ। राजधानी कलकत्ता से दिल्ली लाई गई।

वायसराय और भारत मन्त्री का इस्तीफा

दिसम्बर १९१२ ई० में, हाथी पर नवीन राजधानी में प्रवेश करते समय, लार्ड हार्डिञ्ज एवं लेडी हार्डिञ्ज पर बम फेंका गया। इससे दोनों घायल हुए, महावत मर गया। वायसराय तुरन्त अस्पताल पहुँचाये गये और उनके स्थान पर उत्सव का सारा काम उस समय के अर्थ-सदस्य सर गाई फ्लीटउड विल्सन ने किया।

बम-काण्ड

बंगाल के दोनों टुकड़ों के मिल जाने से बंगाल का असन्तोष कुछ कम तो हो गया पर राजधानी के इस परिवर्तन में बहुतों को मुसल्मानों के साथ सरकार का पक्षपात दीख पड़ा। उधर लार्ड सिनहा ने लार्ड किचनर से मत भेद के कारण इस्तीफा दे दिया और उनके स्थान पर श्री (बाद में 'सर') अली इमाम की नियुक्ति हुई। उन्होंने राजधानी दिल्ली लाने के प्रस्ताव का समर्थन किया।

इधर यह सब चल रहा था, उधर युरोप की राजनीतिक अवस्था बड़ी जटिल होती जा रही थी। तूफान आने के सारे लक्षण प्रकट हो रहे थे।

युद्ध का शंखनाद

वहाँ के कई राष्ट्र एक दूसरे को कुचलने के लिए वर्षों से भीतर भीतर तैयारी कर रहे थे। इसका अन्त में वही नतीजा हुआ जो होना था। युद्ध का शंख-नाद हुआ। भीषण युद्ध छिड़ गया। उस समय भी यद्यपि क्रान्तिकारियों का एक दल ऐसा था जो हर सम्भव उपाय से सरकार का विरोध करता रहा पर सब मिलाकर देश ने इस कठिनाई में ब्रिटेन का साथ दिया। हजारों आदमी अपनी युवती स्त्रियों, बूढ़ी माताओं एवं नन्हे बच्चों को छोड़कर सेना में भरती हुए, युद्ध में लड़ने गये और वहीं जूझ गये। भारतीय सैनिकों की वीरता का लोहा सभी मान गये। तोपों की मार में बढ़ बढ़कर उन्होंने शत्रुओं को परास्त किया। फ्रान्स की युवतियाँ उनकी वीरता की कहानियाँ अपने बच्चों से कहती हैं। इतने पर भी भारत की गरीबी का खयाल हमारे शासकों ने न किया। वह इस जर्जर गाय को दुहते ही गये। १९१७ ई० में कौंसिल से एक अरब पचास करोड़ रुपया भारत द्वारा युद्ध फण्ड में सहायता-स्वरूप देने का प्रस्ताव पास कराया गया। उस समय प० मदनमोहन मालवीय ने भारतीय शासन नीति की जबर्दस्त टीका करते हुए इसका विरोध किया। यह भाषण जर्मन सरकार ने अनुवाद कराके सम्पूर्ण जर्मन साम्राज्य में इस उद्देश्य से बँटवाया कि देखो स्वयं भारत ब्रिटिश शासन के बारे में क्या सोचता है?

मजा तो यह है कि जब भारत इस प्रकार आड़े समय में ब्रिटेन का साथ दे रहा था तब 'भारत रक्षा कानून ('डिफेंस ऑव् इण्डिया ऐक्ट')

फूल और त्रिशूल साथ-साथ !

के अन्तर्गत सैकड़ों युवक नजरबन्द कर लिये गये। सरकारी नीति के कारण असन्तोष बढ़ता गया और क्रान्तिकारी दल ने उसका लाभ उठाया। डकैतियाँ होने लगीं। कई अंग्रेज अफसरों को मारने और विदेशों से अस्त्र शस्त्र

मँगवाकर विद्रोह करने का भी प्रयत्न किया गया पर समय पर षड्यन्त्र की प्राय सभी योजनाएँ सरकार को मालूम हो गईं। इनका विशद वर्णन रौलट कमेटी की रिपोर्ट में मिलता है। ऐसे प्रयत्नों द्वारा स्वाधीनता प्राप्त करना सभव न था यह तो भावना का प्रवाह मात्र था।

चित्तरजन का राजनीति में प्रवेश

१९०५ ई० म भारत म जो नवीन चेतना आई और जो महायुद्ध के विकराल समय में भी बराबर बढ़ती गई वह चित्तरजन के हृदय पर बराबर असर डाल रही थी। भौतिकवाद के बढ़ते हुए प्रवाह में भारत ने धक्के पर धक्के खाकर फिर अपनी भूली हुई आध्यात्मिक चेतना को पाया। अरविन्द ने अध्यात्म को जिस प्रकार राजनीति से मिला दिया था उसका असर भी चित्तरजन पर पड़ा था। १९१७ में कलकत्ता म बगाल प्रान्तीय कान्फ्रेंस का अधिवेशन हुआ। चित्तरजन ही उसके सभापति थे। उन्होंने एक अत्यन्त उत्साहप्रद और ओजस्वी भाषण दिया जिसमें उन्होंने आधुनिक भौतिकवाद के बढ़ते हुए प्रवाह के विरुद्ध जबर्दस्त अपील की और कहा कि उपनिषद् और बुद्ध के जमाने से भारत ससार को प्रकाश देता रहा है और आज इस समय भी भारत को अपना सदेश देना होगा। बगाल के भूतपूर्व गवर्नर लार्ड रोनाल्डसे ने अपनी पुस्तक 'आर्यवर्त्त का हृदय' (Heart of Aryavarta) में चित्तरजन के इस भाषण का सार इस प्रकार दिया है—

'आर्यवर्त्त का हृदय'

"आज देश की दशा प्राचीन बगाल की दशा के बिल्कुल विपरीत है। यह दुर्दशा इसलिए है कि पूर्व और पश्चिम के आदर्शों के सघर्ष से उठी धूल म हम अपने ईश्वरत्व को, अपनी दिव्यता को भूल गये हैं और नये नये अद्भुत देवों की पूजा करने लगे हैं। जब अग्रेज हमारे देश म आये तब हमारा पतन हो रहा था, हमारी जीवन शक्ति क्षीण हो गई थी और हम प्राचीन की व्यगमय छाया के समान रह गये थे। नवद्वीप का प्राचीन पाण्डित्य और

ज्ञान केवल स्मरण की वस्तु रह गया था। जैसा कि दुर्बल के सदा होता है, हमारे साथ भी हुआ। हमने अंग्रेजों की नकल शुरू की। अंग्रेजी शासन-पद्धति, अंग्रेजी वेश भूषा-संस्कृति-सभ्यता के हम दीवाने हो गये। पर समय आ गया है जब हम माया की मोहनी दूर कर देनी होगी। बंकिम मातृमूर्ति को मातृभूमि में स्था‍ कर गये ह। उन्होंने सबको पुकारकर कहा है—'देखो, यह हमा माता है—सुजला, सुफला, मलयजशीतला, शस्यश्यामला माता इसकी पूजा करो और अपने घरो म इसे स्थापित करो।' १९० में ही स्वदेशी का शंख बज गया था। स्वदेशी-आंदोलन एक तूफान के तरह आया, यह एक शक्तिमान बाढ़ की तरह देखत देखत फैल गया और हमारे पाँव उसम विचलित हो गये। उसने हम जीवन दिया। उसके जीवनप्रद प्रभाव में फिर हम अपनी संस्कृति और सभ्यता क अर्थ समझ पाये है। एक बार फिर हमें अपने राष्ट्रीय इतिहास के क्रम का पता चला, इसलिए हमारे सामने मुख्य बात यह है कि बंगाल के इस नवजीवन में पूर्णता कैसे लाई जाय ? राष्ट्र निर्माण के इस कठिन समय म हमें सबसे पहले भोग के युरोपीय आदर्श का त्याग करना होगा और त्याग का प्राचीन आदर्श अपनाना होगा। शिक्षा,संस्कृति कृषि और व्यापार सबका पुनरुत्थान इसी प्रकाश में होगा। प्राचीन समाज-व्यवस्था के साथ इनके सम्बन्ध पर विचार करना पड़गा। इसके साथ ही हमें अपने सारे विचारों, कार्यों एव प्रयत्नों को धर्म की दृष्टि स देखना होगा क्योंकि बिना इसे सतत सामने रखे हम सब वस्तुओं को गलत रूप में देखेंगे। हमे उन्हीं बातो को स्वीकार करना चाहिए जिनका हमारे अस्तित्व के साथ सामञ्जस्य हो और उन सब बातों को पूर्णत छोड़ देना चाहिए जो हमारी आत्मा के लिए बाहरी हों। जो कुछ हमार पास पहले था, शक्ति का वह स्थायी स्रोत अब भी हमारे पास है। बंगाल की वे शक्तिमान नदियाँ, जो प्राचीन समय म बहती थीं, आज

भी उसी शान से बह रही है। प्राचीन हिमालय आज भी, स्वर्ग की ओर सिर उठाये, गौरव-पूर्वक खड़ा है। बंगाल की भूमि वही है—हमारी है। हम केवल उसमें जीवन डालना है। आत्मा को फिर से जागृत करना है। जैसा कि हमारी जातीय संस्कृति और सभ्यता का ढंग था हमें जीवन को सम्पूर्ण रूप में देखना चाहिए, टुकड़े टुकड़े करके नहीं। हमने युरोप से विचार उधार ले लिये हैं पर हम समझ भी नहीं पाये हैं कि हमने क्या उधार लिया है। हमारी असफलता का यही कारण है। जिसे हम राजनीति कहते हैं उससे सम्पूर्ण बंगाल, सम्पूर्ण बंगाली जाति का कोई जीवित सम्बन्ध नहीं रह गया है। क्या कोई हमें बतायेगा कि हमारे राष्ट्रीय जीवन का अमुक भाग तो राजनीति से सम्बन्ध रखता है, अमुक भाग अर्थ शास्त्र से और अमुक समाज शास्त्र से? क्या हमें जीवन के इस प्रकार टुकड़े टुकड़े करने चाहिएँ? हमें इस प्रकार के कल्पित जीवन-खण्डों के बीच क्या विघ्नकारी दीवारें खड़ी करनी चाहिएं? और क्या हमें अपना राजनीतिक कार्य एक कल्पित संकुचित दायरे में रोक रखना चाहिए जिसे हमने कल्पित दीवारों से घेर रखा है? क्या हमें अपने राजनीतिक मामलों पर सम्पूर्ण देशवासियों की दृष्टि से विचार न करना चाहिए? और जबतक हम जीवन को इस प्रकार उसकी सम्पूर्णता में न देखें तबतक हम सत्य को कैसे पा सकेंगे?"

यह भाषण चित्तरंजन के प्रत्यक्ष राजनीतिक जीवन का गौरवमय प्रारंभ था। इस भाषण में चित्तरंजन ने राष्ट्रीय पुनरुत्थान के लिए दस बातों का उल्लेख किया था—

राष्ट्रीय पुनरुत्थान की दस शर्तें

१ हमें इतिहास की शिक्षाओं पर ध्यान देना चाहिए।
२ युरोपीय उद्योगवाद का मार्ग हमें त्याग देना चाहिए।
३ हमें गाँवों के ह्रास को और उसके फल-स्वरूप शहरों में जनसंख्या की वृद्धि को रोकना चाहिए।

४ इसके लिए हम ग वों को फिर से बसाना चाहिए।

५ लेकिन हमारे गाँव तब बस सकते हैं जब हम उन्हें स्वच्छ और स्वा स्थ्य प्रद बनावें और कृषक को रोगमुक्त करके उन्नति का मौका दें

६ कृषकों को लाभदायक हस्तशिल्प की शिक्षा देनी चाहिए।

७ हम बंगाल की प्राचीन व्यापारिक और औद्योगिक उपज का अन्वेषण करना चाहिए।

८ हमें सारे देश में छोटी छोटी व्यापारिक संस्थाएँ खोलनी चाहिएँ जिनका उद्देश्य ऐसे गृह उद्योगों को उत्तेजन देना हो जिनमें हमारे देशवासी स्वभावत कुशल हैं।

९ हम अनिवार्य चीजा को छोड़ अन्य विदेशी चीजों का इस देश में मँगाना बंद कर देना चाहिए।

१० जिन गृह उद्योगों के बढ़ने की आशा हो उनके लिए सस्ती पूँजी मिल सके, इसका हमें प्रबन्ध करना चाहिए और इस दृष्टि से विभिन्न जिलों में बैंक खोलने चाहिएँ।

उन्होंने यह भी बताया—

"१ तुम्हारी शिक्षा सच्ची होनी चाहिए।

२ तुम्हारा ज्ञान शब्दों का नहीं, वस्तुओं का ज्ञान हो।

३ तुम्हारी शिक्षा तुम्हारी राष्ट्रीय आत्मा के अनुकूल हो और उसकी वृद्धि करनेवाली हो।

४ तुम्हारी शिक्षा का माध्यम बंगाली हो।"

चित्तरजन का राजनीति में प्रवेश यहीं से होता है। भारत में एक नये आत्म विश्वास का उदय होने लगा था। लोग समझने लगे थ कि गाँ का अभ्युत्थान जापान की भाँति आन्तरिक विकास व्य आत्म विश्वास से ही हो सकता है। इसी समय पार्लमेण्ट ने ब्रिटेन की भारतीय नीति के सम्बन्ध म घोषणा की। विधान-वादी भारतीय लिबरलों का दल इस घोषणा पर

नवीन युग के आगम की सूचना

फूल गया पर नवीन और उग्रवादी दल ने, जिसके प्रधान नेता उस समय लोकमान्य (तिलक) थे, इसकी ओर उपेक्षापूर्ण दृष्टि से देखा। इस घोषणा के बाद जब वायसराय लार्ड चेम्सफर्ड के निमंत्रण पर भारत-मंत्री श्रीमाण्टगू भारत आये तब पुराने प्रभावशाली माडरेटों में बहुत कम जीवित रह गये थे। अपने समय के शायद सबसे प्रभावशाली और विधायक राजनीतिज्ञ फीरोजशाह मेहता और दूरदर्शी राजनीतिज्ञ श्रीगोखले का देहान्त हो चुका था। भूपेन्द्रनाथ वसु और सर सत्येन्द्र प्रसन्नसिंह उच्च सरकारी पदों पर थे। इसलिए माडरेटों को सुरेन्द्रनाथ के नेतृत्व पर चलना पड रहा था। उनकी भाषण-शक्ति बेजोड थी पर उनके विचार बहुत पिछडे थे। यदि उनपर और उनके अनुयायियों पर श्रीमाण्टगू की माया न चली होती तो १९१९ के 'भारत शासन कानून' (गवर्नमेण्ट ऑव् इण्डिया ऐक्ट) का कुछ और ही रूप होता। सुरेन्द्रनाथ में राजनीतिक दूरदर्शिता की कमी थी, वह समस्या के भीतर डूबकर उसका असली रूप देख नहीं पाते थे। उनमें नैतिक साहस का भी अभाव था। इसलिए उनका दल पिछड गया और लोकमान्य एवं चित्तरंजन नये दल के नेतृत्व के लिए आगे आ गये। जब चित्तरंजन 'माण्टगू मिशन' के सामने गवाही देने गये तो उन्होंने देश की ओर से ऐसी माँग पेश की जिसे सुनकर श्रीमाण्टेगू आश्चर्य चकित रह गये। उन्होंने अपने बयान में अर्थ पर पूरा अधिकार तथा देश की सब नौकरियों पर भारतीय अधिकार की माँग की। जन रुचि बदल गई थी, लोगों ने सुरेन्द्रनाथ को चित से उतार दिया और चित्तरंजन एवं लोकमान्य के प्रति श्रद्धा और आदर से उनका हृदय भर गया। घोषणा के कुछ ही दिनों बाद हाईकोर्ट की लम्बी छुट्टियों का चित्तरंजन ने उपयोग किया और पूर्व बंगाल के जिलों में घूम घूमकर नवीन राष्ट्रधर्म की शिक्षा लोगों को दी। चटगाँव के एक भाषण में उन्होंने माडरेटों पर जबदस्त आक्रमण किया और उनके नेता सुरेन्द्रनाथ को 'ठगा हुआ' ('इम्पोस्टर'—Imposter) तक कह दिया।

अब तक राजनीतिक क्षेत्र में चित्तरंजन केवल दर्शक थे। अब वे वह उसमें बराबर भाग लेने लगे, प्रत्येक काँग्रेस में शरीक होने लगे और अपनी भाषण शक्ति एवं प्रभाव के कारण प्रायः सभी महत्वपूर्ण कमेटियों में चुने जाने लगे। इस प्रकार देश में बढ़ती हुई आत्म विश्वास की लहर का उन्होंने नेतृत्व किया। भारतीय राजनीति में अनेक भावों का उदय होने लगा और यह अपने मिश्रित भाव प्रवाह के कारण अध्ययन की एक चीज बन गई।

इस समय भारतीय राजनीति के क्षेत्र में दो भाव धाराएँ बड़े प्रबल वेग से आईं। एक तो लोगों की यह भावना कि भारत को स्वभाग्य निर्णय का अधिकार मिलना चाहिए। यह समस्त विश्व और विशेषतः एशिया में फैलती हुई स्वतन्त्रता के प्रवाह का फल था। दूसरी भावना व्यावहारिक थी और उसका उद्देश्य शासन-सम्बन्धी दोषों को दूर करना था। ऐसे मनोवैज्ञानिक अवसर पर चित्तरंजन ने अपना आत्म विश्वास और अपनी नई फिलासफ़ी लेकर राजनीति के तूफ़ानी क्षेत्र में प्रवेश किया।

राजनीति की दो भाव-धाराएँ

× × ×

साधारणतः राज्य के दो कर्तव्य माने जाते हैं। एक जनता के जानोमाल की रक्षा करना, कानून का तथा अन्य ऐसे नियमों का पालन कराना जो समाज के सगठित विकास के लिए आवश्यक हैं। दूसरा है—जनता की प्रत्येक दिशा में उन्नति करना—उसकी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, नैतिक अवस्था का विकास करना। थोड़े में प्रजा में सब प्रकार से आन्तरिक सुख और शान्ति को स्थापना। एक प्रकार से देखें तो यह दूसरा कर्तव्य पहले से भी अधिक आवश्यक है। पर अंग्रेज शासकों ने कभी इस देश के लाभ को अपना लाभ न समझा। उनका अपना दूसरा दर्जा था पहले वह उसका लाभ देखते थे। आजतक यही बात चली आ रही

राज्य के दो कर्तव्य

है। इसलिए स्वशासन में जनता की जैसी उन्नति हो सकती है, नहीं हुई। अशिक्षा, गरीबी, रोग, बेकारी, कृषकों की दुरवस्था ज्यों की त्यों बनी है बल्कि पहली बात को छोड़ अन्य बातों में तो वृद्धि होती जा रही है। इसलिए जब भारत में कांग्रेस की स्थापना हुई तब उसका उद्देश्य यही था कि जन हितकर कार्यों की ओर सरकार का ध्यान दिलावे। पर ज्यों-ज्यों देश में राष्ट्रीय भावना जागृत हुई त्यों-त्यों लोग यह समझने लगे कि विदेशी शासन में यह असंभव सा है क्योंकि दोनों के स्वार्थ टकराते हैं। १९०६ ई० की कलकत्ता कांग्रेस में दादाभाई नौरोजी ने पहली बार 'स्वराज' शब्द का उपयोग किया। उनके 'स्वराज' का अभिप्राय यही था कि साम्राज्य के अन्तर्गत भारत को स्वायत्तशासन का अधिकार मिलना चाहिए। तब से बहुत दिनों—१९२०ई०—तक आन्दोलन का ध्येय यही बना रहा। राजनीतिक जागृति के साथ लोगों में एक यह भाव भी जागृत हुआ कि बुरा हो या भला अपना शासन—स्वराज—अच्छे विदेशी शासन से अच्छा है। उन अनेक राजनीति शास्त्रियों की

विदेशी शासन से हानि

पुस्तकों एवं विचारों का भारतीय हृदय पर प्रभाव पड़ रहा था जिन्होंने प्रतिपादित किया है कि स्वराज्य सुराज्य से बढ़ कर है* क्योंकि जैसा श्री नेविंसन ने कहा है "विदेशी शासन अच्छा हो या बुरा उसका सब से बुरा फल यह होता है कि राष्ट्र का व्यक्तित्व नष्ट हो जाता है।" इस प्रकार भारत के राजनीतिक क्षेत्र में धीरे धीरे दो विचार धाराएँ आईं—एक शासन में सुधार करने को उत्सुक थी और इस दृष्टि से अच्छे आधार पर सुशासन की स्थापना के लिए शासन को भारतीय बनाना चाहती थी। १९१७ तक करीब करीब यही विचार धारा चलती रही। एक-दो आदमी दूसरी दृष्टि की ओर भी ध्यान आकर्षित करते रहे—अरविन्द इत्यादि का कुछ ऐसा ही विचार था—पर सामूहिक रूप से उस पर

*Self government is better than good government

लोगों ने ध्यान नहीं दिया। १९१९ के बाद लोकमान्य (तिलक) एवं देशबन्धु इत्यादि ने पहली भावना को बिलकुल आं

नया रास्ता

दिया और दूसरी विचार धारा को बड़े ज़ोरों से दे के सामने रक्खा। इन लोगों का कहना यही था कि 'विदेशी शासन हमारा राष्ट्रीय—जातीय—व्यक्तित्व नष्ट हो गया है। हम अपने भूल गये हैं, हम शासकों की सस्कृति की धारा में बहे जा रहे हैं।' उन्हों शासन की भी आलोचना की पर यह कहा कि 'विदेशी शासन अ भी हो तो हम उसे नहीं चाहते—हमें अपना ही शासन चाहिए। ग़लती करने का भी अधिकार चाहते हैं।' पहली भाव धारा को लिबरलों नरम दलवालों—ने और दूसरी को उग्रवादियों ने अपनाया। १९२० जब देश में असहयोग आन्दोलन चला तो दूसरी धारा बड़े प्रबल तूफ़ा एव सामूहिक रूप म देश के सामने प्रकट हुई। यहाँ से भारत एक मार्ग पर आया।

इसीलिए हम देखते हैं कि तिलक, दास और गान्धी की स्व सम्बन्धी कोई वैसी योजना नहीं है जैसी लिबरलों के पास है। प्रथम

दोनों दलों में भेद

का आन्दोलन नैतिक, मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मि आधारों पर है और दूसरे दल का—लिबरलों का— योगितावादी व्यावहारिक सिद्धान्तों पर। पहला दल मुख्यतः भाव प वर्तन पर ज़ोर देता है, वह भारतीयों म भारतीय संस्कृति सभ्यता आदर्श के अनुसार एक जातीय व्यक्तित्व, एक अपनी विचार धारा करना चाहता है। इस उद्देश्य की पूर्ति में विदेशी शासन एक बाधा है, इसलिए वह उसे दूर करना चाहता है। इसीलिए जब चित्तरंजन से 'स्वराज' की परिभाषा करने को कहा गया तब-तब उ कहा—'तुम लोग स्वराज से एक भौतिक योजना का अर्थ लेते हो। लिए तो स्वराज एक भाव है। उसे किसी शासन-योजना में सीमित क ठीक नहीं।' १९२१ के बंगाल प्रांतीय सम्मेलन (बरीसाल अधिवेश

में जब उसके अध्यक्ष विपिनचन्द्रपाल ने कहा कि "भारत 'प्रजातन्त्रवादी स्वराज' की ओर जा रहा है" तब चित्तरंजन ने जवाब दिया कि "स्वराज की कोई परिभाषा नहीं की जा सकती, "स्वराज स्वराज है ।" उस समय चित्तरंजन ने निश्चय ही स्वराज शब्द का एक राजनीतिक उद्देश्य की अपेक्षा मनोवैज्ञानिक भाव के रूप में ही प्रयोग किया था।

दिसम्बर १९२२ ई० में गया-कांग्रेस की अपनी वक्तृता में उन्होंने कहा—"यह प्रश्न कई बार पूछा गया है कि स्वराज क्या है? स्वराज की कोई परिभाषा नहीं की जा सकती, उसे किसी खास तरह के शासन विधान के अर्थ में प्रयुक्त करना ठीक नहीं। स्वराज और साम्राज्य में बड़ा अन्तर है। स्वराज, राष्ट्रीय मनोधारा का प्राकृतिक उद्गार है। इस उद्गार में राष्ट्र के जीवन का सारा इतिहास आ जाता है। "

गाँधी-युग

१९२० ई० से चित्तरंजन सारे देश के सामने राजनीति रूकर आये। कलकत्ता की सितम्बर १९२० ई० की विशेष कांग्रेस ने देश के सामने आत्म विश्वास की प्रबल धारा बहा दी। गांधीजी ने अपनी असाधारण नैतिक प्रतिभा से देखा कि न व्यावहारिक दृष्टि से और न नैतिक दृष्टि से हिंसात्मक उपायों द्वारा भारत का स्वराज प्राप्त करना ठीक होगा। यह तो उसकी सारी संस्कृति के ही विरुद्ध है। भारत की सदा अपनी एक विशेषता रही है, उसने सदा एक संदेश दिया है। पराधीनता की अवस्था में भी यह विशेषता उसके पास से जानी न चाहिए। इसलिए गांधीजी ने भारत में एक राष्ट्रीय संस्कृति और व्यक्तित्व को जन्म देने के लिए, संसार के सबसे शक्तिशाली साम्राज्य के विरुद्ध, जनता की नैतिक शक्तियों को, विरोध करने के लिए, एकत्र किया। उन्होंने आन्तरिक पवित्रता एवं आत्म शुद्धि पर जोर दिया। इस दृष्टि से यह आन्दोलन संसार के इतिहास में

राजनीति के राज पथ पर

अद्वितीय है। *

सितम्बर में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन हुआ। नवम्बर दिसम्बर में नई कौंसिलों का चुनाव होने वाला था। इसका बायकाट किया गया। बहुत ही कम वोटरों ने वोट दिये। अच्छे अच्छे कितने ही आदमियों ने देश के लिए अपनी व्यक्तिगत महत्वाकाक्षाओं का बलिदान किया, कौंसिलों में न गये। पहले चित्तरजन असहयोग कार्यक्रम के विरुद्ध थे पर पीछे महात्मा गाधी से उनका समझौता होगया और दिसम्बर (१९२०) में जब नागपुर में कांग्रेस हुई तो जनता को यह देखकर आश्चर्य और प्रसन्नता हुई कि चित्तरजन असहयोग कार्यक्रम के कट्टर समर्थकों में हैं।

× × ×

सन् १९२१ इ० में बेजवादा में भारतीय कांग्रेस कमेटी ने असहयोग का नवीन कार्यक्रम बनाया। इसमें एक करोड स्वयसेवक बनाने, एक करोड रुपया 'तिलक स्वराज्य-कोष' के लिए एकत्र करने और २० लाख चरखे चलाने का निश्चय हुआ। जुलाई के अन्त में बम्बई में विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार का निश्चय हुआ।

असहयोग-कार्यक्रम

चित्तरजन इस काम में जुट गये। बगाल में घूम घूमकर उन्होंने स्वयसेवक बनाना एव चन्दा उगाहना शुरू किया। स्वयसेवकों का जबर्दस्त सगठन हो गया। इससे सरकार घबरा गई और युरोपियन व्यापारियों के इशारे पर बगाल सरकार ने स्वयसेवक सगठनों को गैर

* 'After a hiatus of nearly fifty centuries Mr Gandhi has awakened us to the idea once again that man does not live by bread alone and has after all such a thing as a soul and that this soul holds in its ineluctable grip the fortune and destiny of Man.'
I. C. Ray

This determination to measure the strength of two different forces was an extraordinary step unprecedented not only in annals of India but in the whole history of the human race
Life and Times of C R. Das Page 15.

कानूनी करार दे दिया। अब बंगाल में, तथा और जगह भी, कानूनों को तोड़कर हजारों आदमी जेल जाने लगे। चित्तरंजन की पत्नी और बहन (बसन्ती देवी और उर्मिला देवी) दोनों खद्दर बेचते हुए पकड़ी गईं (—यद्यपि बाद में छोड़ दी गईं)। १९२१ के असहयोग आन्दोलन में सम्पूर्ण देश ने पहली बार राष्ट्रीय चेतना का अनुभव किया था पर दुर्भाग्य-वश हर स्थान पर जनता को पूर्ण अहिंसक न रखा जा सका। फलस्वरूप दो-तीन स्थानों पर पुलिस से जनता की मुठभेड़ [redacted] गई। इनमें चौरीचौरा (गोरखपुर) का काण्ड सबसे भयानक था। उसमें कई पुलिसवाले मारे गये, भीड़ ने थाने में आग लगा दी। जब यह समाचार गांधीजी के पास पहुँचा तो उन्होंने एवं उनकी सलाह पर कांग्रेस ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन स्थगित कर दिया। इसके बाद उसका विधायक कार्यक्रम रह गया—कांग्रेस के सदस्य बनाना, चरखे एवं खादी का प्रचार, राष्ट्रीय विद्यालयों की स्थापना, अछूतोद्धार, मद्यपान के विरुद्ध प्रचार, पंचायतों का संगठन, 'तिलक स्वराज्य-कोष' के लिए चन्दा एकत्र करना।

चौरीचौरा

फरवरी १९२२ में चित्तरंजन गिरफ्तार हुए, [redacted] महीने की सजा हुई। मार्च १९२२ में गाँधीजी गिरफ्तार हुए और उन्हें राजविद्रोह के जुर्म में ६ वर्ष की सजा हुई। गाँधीजी के जेल जाने के बाद देश को कोई ऐसा नेता नहीं मिला जो उनके प्रोग्राम—कार्यक्रम—के अनुसार जनता को चला सकता। १९२३ में फिर कौंसिलों का चुनाव होनेवाला था। जेल में रहते हुए चित्तरंजन ने यह सोचा कि सरकार ने कौंसिलों का मोह-जाल पसार रखा है और भारतीय मन्त्रियों के नाम पर जो चाहती है करती है, इसलिए उसके गढ़ में घुसकर ही उसे पटकनी देनी चाहिए। छूटने के बाद उन्होंने इस ओर ध्यान दिया। कांग्रेस वादियों में एक कौंसिलवादी दल पैदा हो गया; चित्तरंजन इसके नेता थे।

गाँधीजी जेल में

कौंसिल बहिष्कार बनाम कौंसिल प्रवेश

कौंसिल प्रवेश की बात लेकर कांग्रेस में बड़ा तूफान मचा। परिवर्तन और अपरिवर्तनवादियों के दो दल बन गये। गया कांग्रेस में यह विरोध स्पष्ट दीख पड़ा। लोग अपने-अपने विचार के प्रतिनिधि भेजने लगे पर गया में भी अपरिवर्तनवादियों की ही विजय रही। इससे चित्तरंजन और मोतीलालजी हताश नहीं हुए। १ जनवरी १९२३ को चित्तरंजन ने भारतीय कांग्रेस कमेटी की अध्यक्षता से इस्तीफा दिया और स्वराज दल की नींव डाली तथा घोषणा की कि ६ महीने के अन्दर मैं अल्पमत को बहुमत में बदल दूँगा। देशबन्धु के अन्दर जो अद्भुत कार्य शक्ति थी उसके दर्शन उस समय हुए थे। सारे देश को भावना, घोषणाओं तथा कार्यक्रमों से उन्होंने डुबा दिया, जैसे देश के सार्वजनिक जीवन में एक बाढ़ आ गई। कांग्रेस के दोनों दलों के बीच विरोध का ऐसा तूफान पैदा हुआ कि लोग अपने मार्ग से भटक गये। पारस्परिक मत भेद, व्यंग विरोध और हिन्दू मुस्लिम दंगों से कारण देश में एक दुखमय परिस्थिति पैदा हो गई। पर चित्तरंजन जो कहते उसे कर दिखानेवालों में थे। परस्पर का विरोध शायद इतना तीव्र न होता पर अपरिवर्तनवादियों में श्री राजगोपालाचार्य जैसे व्यंग के आचार्यों के रहने और उधर मोतीलालजी तथा चित्तरंजन जैसे किसी के सामने न झुकनेवाले व्यक्तियों के कारण मामला तूल पकड़ता गया। चित्तरंजन और मोतीलालजी दोनों शाही प्रकृति के आदमी थे, दोनों को लड़ने में, आक्रमण में मजा आता था।

दुखद स्थिति

समझौते का प्रयास

जब मैं मत भेद की तीव्रता और कटुता की यह बात कह रहा हूँ तब मेरा यह मतलब नहीं है कि यदि ज्यादा नम्र आदमी होते तो यह मत भेद प्रदर्शित न होता। नहीं, स्वराज दल का आविर्भाव तो बिल्कुल स्वाभाविक था, यह तो होना ही था। हमारी राजनीति में यह एक प्राकृतिक—स्वाभाविक घटना

है। पर उस समय विरोध का जो दु:खमय प्रकार, विरोध की भाषा में शब्दों का जो दु:खद प्रयोग दिखाई पड़ा वह न दिखाई पड़ता। पर इस दु:खद परिस्थिति के कारण ही कांग्रेस में एक मध्य दल की सृष्टि हुई जिसको दोनों दलों में सचाई दीख पड़ी और जिसको दोनों के पारस्परिक झगड़ों के कारण वेदना थी। इस दल के लोगों, मुख्यत श्रीमती सरोजिनी, के प्रयत्न से मई १९२३ ई० में बम्बई की भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में कौंसिल प्रवेश के विरुद्ध सब प्रकार का प्रचार बंद कर देने का एक प्रस्ताव पास हुआ। किन्तु इस प्रस्ताव से देश में शान्ति होने की बात तो दूर रही, उल्टे इस बात पर गहरा विवाद उठ खड़ा हुआ कि कांग्रेस के किसी प्रस्ताव को बदलने का भारतीय कांग्रेस कमेटी को कहाँ तक अधिकार है? इससे अनुचित मत भेद ही नहीं, कांग्रेस में अनुचित दलबन्दी और अनुशासन की कमी तथा अव्यवस्था भी हो गई। ऐसा मालूम होता था कि संस्था का जीवन ही खतरे में है। विशेष कांग्रेस का करना अनिवार्य हो उठा।

१९२३ के सितम्बर के तीसरे हफ्ते में दिल्ली में मौलाना अबुलकलाम आजाद की अध्यक्षता में यह अधिवेशन हुआ। इस में मौलाना मुहम्मदअली के आग्रह से बम्बई वाले प्रस्ताव का कांग्रेस ने समर्थन किया। इस प्रस्ताव में कांग्रेसवालों को कौंसिल में जाने एवं वोट देने की छूट दी गई। इस प्रस्ताव के पास होते ही चित्तरंजन अपने काम में लग गये और जब चुनाव हुआ तो बंगाल, मध्य प्रान्त एवं बड़ी कौंसिलों के लिए स्वराजी बहुत अधिक संख्या में चुने गये। यहाँ से भारतीय राजनीति में स्वराजदल का दृढ़ भित्ति पर जन्म हुआ। यह भारत में पार्लमेण्टरी ढंग पर संगठित प्रथम दल था और अपने क्षेत्र और समय में इसने काम भी खूब किया।

कांग्रेस से स्वीकृति

देशबन्धु स्वयं बंगाल कौंसिल के लिए खड़े हुए। चुने गये। स्वराज दल के ४० सदस्य चुने गये। पहली ही बार और बहुत थोड़े दिनों के

प्रथम के देखते हुए यह एक बड़ी सफलता थी। सर सुरेन्द्रनाथ और बगाल-कौंसिल मे एस० आर० दास जैसे लोग उसके मुकाबले में हार गये। बगाल के गवर्नर लार्ड लिटन ने सब से बड़े दल के नेता की हैसियत से चित्तरजन को मन्त्रिमडल का सगठन करने के लिए आमत्रित किया। पर १६ दिसम्बर १९२३ को चित्तरजन ने गवर्नर को इस विषय में अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए इन्कारी का पत्र लिख दिया।

इसके बाद नौकरशाही पर उन्होंने आक्रमण बोल दिया। १९२४ ई० मे दो बार तथा १९२५ ई० में एक बार मन्त्रियों की नियुक्ति एव वेतन का सरकारी प्रस्ताव अस्वीकृत कराया। उस समय सरकार और स्वराज्य दोनों के बीच जो राजनीतिक चालें होती थीं उनमे सरकार ने सदा पटकान खाई। जून १९२४ ई० में मन्त्रियों के वेतन का प्रस्ताव अस्वीकृत हो चुका था जिसे गवर्नर ने अपने अधिकार से फिर कौंसिल मे विचारार्थ भेज दिया। लोकमत का यह अपमान चित्तरजन से सहन न हुआ। उन्होंने हाइकोर्ट में इस विषय पर अपील की कि प्रेसीडेण्ट को यह प्रस्ताव कौंसिल मे रखने से रोक दिया जाय। इस बात में चित्तरजन को सफलता मिली। फलस्वरूप भारत सरकार को कौंसिल के नियमों में परिवर्तन करना पड़ा तथा पुनर्विचार की सुविधा देनी पड़ी। जब अगस्त १९२४ ई० मे प्रस्ताव कौंसिल मे पेश हुआ तब सरकार द्वारा लोकमत की अवहेलना होने के कारण सदस्यों मे इतना असन्तोष था कि वह अस्वीकृत हुआ और इस बार भी सरकार को गहरी हार खानी पड़ी। यही मार्च १९२५ ई० में फिर हुआ।

इस समय तक कलकत्ता कार्पोरेशन के लिए नया कानून पास हो चुका था। ब्रिटिशसाम्राज्य में लन्दन के बाद कलकत्ता सबसे बडी महानगरी है। उसकी आय निजाम को छोडकर और किसी भी भारतीय राजा के राज्य की आय से अधिक है। साथ ही भारत की सब म्युनिसि-

पदवियों से उसे अपने आन्तरिक कार्य में अधिक स्वाधीनता है। इसलिए

कलकत्ता कार्पोरेशन पर अधिकार

चित्तरंजन ने देखा कि यदि कार्पोरेशन को हाथ में कर लिया जाय तो कांग्रेस और स्वराजदल को बंगाल में एक स्थायी सहारा प्राप्त हो सकता है, ठोस नगर-सेवा का मौका भी मिल सकता है और राष्ट्रीय विचार के योग्य कार्यकर्ताओं की जीविका की समस्या भी, थोड़ी बहुत मात्रा में, हल हो सकती है। इसलिए १९२४ में जब चुनाव का समय आया तो स्वराज दल ने, कार्पोरेशन के लिए अपने उम्मीदवार खड़े किये और इसमें उसे बड़ी सफलता मिली। ७५ निर्वाचित सदस्यों में ५५ स्वराजदल के चुन गये। चित्तरंजन मेयर (अध्यक्ष) निर्वाचित हुए। तब से आज तक बराबर कार्पोरेशन में राष्ट्रीय दल का बहुमत रहा है।

पर इन सब संघर्षों में पड़कर चित्तरंजन अपनी वैष्णवता, अपनी आध्यात्मिकता भूलते जा रहे थे या यों कहना ज्यादा ठीक होगा कि उसे

वर्त्तमान पर

विकसित करने का समय उन्हें नहीं मिल रहा था। सत्य के सूर्य पर माया के बादल छा गये थे। १९१७ ई० में चित्तरंजन ने पश्चिमीय प्रणाली की औद्योगिकता के विरुद्ध जबर्दस्त आवाज उठाई थी और उसे 'हमारी संस्कृति का नाशक' बताया था पर समय चक्र ने, पश्चिमी प्रणाली पर व्यवस्थित सरकार के निरन्तर सम्पर्क एवं संघर्ष में आते रहने के कारण, सैद्धान्तिक नहीं तो व्यावहारिक रूप में ही, उन्हें समझौता करने को बाध्य किया। समय चक्र ने ६ वर्ष के अन्दर ही पाश्चात्य उद्योगवाद के इस विरोध की प्रणाली में बहुत परिवर्तन कर दिया। १९२३-२४ तक तो वह व्यापार-संघ (ट्रेड यूनियन) के नेता हो गये। १९२१ ई० में बम्बई में पहली ट्रेड यूनियन कांग्रेस हुई—१९२२ ई० में झरिया में दूसरी। यह पश्चिमी ढंग पर, मजूरों के संगठन का पहला प्रयत्न था। १९२३ ई० में लाहौर में जो अधिवेशन हुआ उसके अध्यक्ष चित्तरंजन ही थे। अपने भाषण में उन्होंने कारखाना

एव उद्योग धन्धों के सम्बन्ध में कानून बनाने की योजना रखी। दूसरे ही साल भारतीय धारा सभा से 'मजूर मुआवजा कानून' (Workmen's Compensation Act) पास हुआ। इससे कारखाने के मजूरों के कष्टों म तो कोइ कमी नहीं हुई पर खतरे—चोटचपट लग जाने, जल जाने अग भग हो जाने,—की हालत मे मुआवजा मिलने की किंचित व्यवस्था हुई। दूसरे साल फिर चित्तरजन कलकत्ता अधिवेशन के सभापति हुए। किन्तु प्रत्येक आन्दोलन में फूट की जो अमर बेल फैलकर जीवन-सत्व के पोधों की जड को खोखला कर देती हे, वही यहाँ भी फैली। ट्रेड यूनियन कांग्रेस म तब से जो दलबन्दी हुइ वह, समझौता एव सहयोग क अनेक प्रयत्नों क बीच भी, आजतक ज्यों की त्यों लहलहा रही है।

× × ×

हुगली जिले म तारकेश्वर का प्रसिद्ध मन्दिर है। लाखों की सम्पत्ति इस मन्दिर के साथ लगी हुई हे। इस मन्दिर की कुव्यवस्था एव महन्त सतीशगिरि के असयत जीवन के कारण १९२३ में हिन्दुओ में असन्तोष फैलने लगा। साल का अन्त होते होते यह असन्तोष इतना प्रबल हो गया कि लोगों के जोर देने एव स्वामी विश्वानन्द के आग्रह से सत्याग्रह किया गया। यह १९२४ का आरम्भ था। बगाल के विभिन्न जिलों से कितने ही छात्र आ आकर महन्त के हाते म 'मदाखलत बेजा'—अनधिकार प्रवेश—सम्बन्धी कानून भग करने क लिए सत्याग्रह आन्दोलन में शामिल होने लगे। ये सब, जिसमें चित्तरजन का एकमात्र पुत्र चिररजन भी था, गिरफ्तार करके जल म ठूँस दिये गये। कइ महीनों यह लडाइ चली। अन्त में दोनों दलों में समझौता हुआ। इसके अनुसार महन्त सतीशगिरि अलग हो गये और सारी सम्पत्ति एक ट्रस्ट क अधीन करदी गई। पर कुछ ही दिनों बाद फिर अदालत मे मामला गया। और एक सरकारी अफसर उसके प्रबन्ध के लिए नियुक्त हुआ।

तारकेश्वर सत्याग्रह

पीछे, चित्तरजन की मृत्यु के पश्चात्, जनवरी १९२६ में सतीशगिरि ने नीची अदालत के उस निर्णय के विरुद्ध, जिसके अनुसार प्रबन्ध सरकारी हाथों म चला गया था, हाईकोर्ट में अपील की। हाईकोर्ट ने फैसला दिया कि इस जायदादका बहुत सा हिस्सा सतीशगिरि का व्यक्तिगत है, मन्दिर का नही। फलस्वरूप जायदाद दो हिस्सों म बट गई। एक के मालिक सतीशगिरि हुए, दूसरे का प्रबन्ध सरकारी हाथोंमें आया।

× × ×

नौकरशाही के साथ चित्तरजन की मुठभेड और उसमें उनकी विजय पर विजय, तारकेश्वर सत्याग्रह की सफलता तथा कलकत्ता कार्पोरेशन की विजय ने चित्तरजन और स्वराजपार्टी को भारतीय राजनीति म अत्यन्त शक्तिमान बना दिया। इसी समय एक और घटना हो गई जिससे सरकार के प्रति बगाल की हिंदू जनता म घोर असन्तोष फैला और स्वराजदल के प्रति लोगों की सहानुभूति बढ़ गई। बात यह है कि फरीदपुर (बगाल) जिले के मदारीपुर सब डिवीजन के अन्दर चारमनियार में १९२४ ई० के प्रारम्भ में दगा हो गया। कहा जाता है कि इसमें महिलाओं के साथ पुलिस द्वारा बडा बुरा व्यवहार किया गया और उनकी इज्जत पर भी आक्रमण किया गया। यह इल्जाम लगाने के कारण कांग्रेस-स्वराजदल का एक कार्यकर्ता गिरफ्तार कर लिया गया और जब नवम्बर म ढाका में पुलिस दरबार हुआ तब गवर्नर लार्ड लिटन ने पुलिस की सफाई देते हुए कहा कि इल्जाम झूठा है और कई स्त्रियो ने, पुलिस को लोगों की निगाह से गिराने के लिए, स्वय अपने साथ जोर जबर्दस्ती किये जाने की बात गढ़ ली है।

हिन्दू महिलाओं पर आक्षेप

यह बात बगाल के मर्मस्थल पर जाकर लगी। सारे बगाल म तूफान आ गया। जो हिन्दू स्त्रियाँ अपने सतीत्व के लिए हँसते-हँसते चिता में जल मरने को तैयार हो जाती हैं वे अपने सतीत्व पर झूठ-मूठ ही कलक

का धब्बा लगाकर पुलिस पर झूठा इल्जाम लगायँगी, इस कल्पना मात्र से हिन्दू हृदय को कितनी चोट लग सकती है, यहलार्ड लिटन शायद न जानते थे। वे एक कल्पना प्रधान उपन्यासकार के पोते थे इसलिए घटनापूर्ण कल्पना का सस्कार उनके अन्दर भी मोजूद था।

घोर असन्तोष

इस वक्तव्य के विरुद्ध बगाल में स्थान-स्थान पर सभाएँ हुई। कलकत्ता टाउनहाल के मैदान की सभा में इतनी भीड हुई कि ३ स्थानों से भाषण करने पड़े। इस बात को लेकर जो असन्तोष फैला उसका अन्दाज़ नहीं लगाया जा सकता। समाचारपत्र कड़ी टिप्पणियों से भरे होते थे। अपनी ही बात कहू, मैंने 'स्वदेश' म इस विषय पर दो कालम का छोटा सा पर कडा लेख लिखा जिस पर प्रातीय सरकार को कड़ा चेतावनी देने की आवश्यकता मालूम पडी। इसी से उस समय के असतोष का अदाज लगाया जा सकता है। जनता म इतना व्यापक असन्तोष देख सरकार घबराइ। फल-स्वरूप लार्ड लिटन ने माफी माँगी और सफाई दी। इस घटना के कारण जो असन्तोष पैदा हुआ उसका उपयोग चित्तरजन ने स्वराजदल की वृद्धि और उसके अनुकूल वातावरण तैयार करने म कर लिया।

इधर जनता में जो असन्तोष बढ रहा था उसके कारण फिर से क्रान्तिकारियों की शक्ति बढ़ने लगी। गाँधीजी के प्रभाव एव अहिंसात्मक आन्दोलन से ये दब से गये थे पर इस समय असहयोग आन्दोलन शिथिल हो गया था इसलिए फिर जगह जगह हिंसात्मक काण्ड होने लगे। १९२४ की जनवरी में गोपीमोहन साहा नामक एक किशोर युवक ने मि० ड की हत्या की और ऐसा जोशीला और भाव मय बयान दिया कि जनता में एक सनसनी फैल गइ। क्रान्तिकारियों का जोर बढ़ता देखकर, मूल कारणों को दूर न करके, सरकार ने अपनी चिर परिचित दमन का साधा

आर्डिनेंस का चक्र

संभाली। अक्तूबर १९२४ ई० में वायसराय की स्वीकृति से बगाल सरकार ने आर्डिनेंस जारी किया। इसके अनुसार ८० प्रभावशाली युवक (जिनमें अधिकाश स्वराज-दल के थे), किसी अदालत के सामने अपराधी प्रमाणित हुए बिना ही नजरबन्द कर दिये गये। इनमें सुभाष बसु जैसे* चित्तरजन के दाहिने हाथ भी थे। चित्तरजन को समझते देर न लगी कि इसमें स्वराजदल की बढ़ती शक्ति को कुचलने का भाव भी काम कर रहा है। उन्होंने जोरों से इसका विरोध किया पर सरकार की यह नीति जारी रही और १९२५ ई० के अन्त तक नजरबन्दों की सख्या २०० तक पहुँच गई।

पर इस दमन के कारण, जैसा कि इतिहास में सदा हुआ है, परिस्थिति सभली नहीं। दिन दिन वातावरण क्षुब्ध होता गया। इधर

चारों ओर से दमन

आर्डिनेंस का छ महीने का समय † समाप्त हो रहा था इसलिए बगाल सरकार के होम मेम्बर सर ह्यू स्टीफेंसन ने ७ जनवरी १९२५ को 'बगाल क्रिमिनल-ला अमेण्डमेण्ट बिल' पश किया। इस समय चित्तरजन एव स्वराज दल का ऐसा प्रभाव था कि सरकार के बहुत प्रयत्न करने पर भी बिल कौंसिल से पास न हो सका। पक्ष में ५७ पर विरोध में ६६ मत आये। किन्तु इससे क्या? शासकों ने शासितों के भावों की रक्षा करना कब सीखा है? गवर्नर लार्ड लिटन ने १८ जनवरी को अपने विशेषाधिकार से बिल को ५ वर्ष के लिए कानून के रूप में पास कर दिया।

बगाल आर्डिनेंस में कुछ ऐसी धाराएँ थी जिनका पास करना बगाल कौंसिल के अधिकार के बाहर था—जैसे कलकत्ता हाईकोर्ट के अधिकार पर कुठाराघात। इसलिए भारत के गृहसचिव सर अलेकजण्डर मुडीमन

* स्वास्थ्य की खराबी के कारण नये गवर्नर सर स्टेनली जेक्सन द्वारा १७ मई १६२७ को छोड़ दिये गये।

† प्रत्येक आर्डिनेंस की अवधि छ मास की होती है।

ने २२ मार्च १९२५ को असेम्बली में एक बिल पेश किया। वहाँ भी सरकार की हार हुई, बिल पास नहीं हुआ पर राजपरिषद् और वायसराय की स्वीकृति से कानून बन गया।

इस प्रकार स्वराजदल पर चारों ओर से आक्रमण होने लगे। भारत और इंग्लैण्ड में—दोनों जगह अधिकारियों-द्वारा उस पर इल्जाम लगाया गया कि उसकी राजनीतिक हत्याओं से सहानुभूति है। इधर देशबंधु ने देखा कि क्रान्तिकारी आन्दोलन का जोर बढ़ता जाता है। तब उन्होंने मार्च और अप्रैल १९२५ में ऐसे आन्दोलन के विरुद्ध साहस पूर्वक दो निश्चित एवं दृढ़ वक्तव्य निकाले। २१ मार्च १९२५ को उन्होंने जो वक्तव्य निकाला उसमें अंग्रेजों एवं एंग्लो इण्डियनों के मन से इस भ्रम को दूर करने की चेष्टा की कि स्वराजदल की राजनीतिक हत्याओं से कोई सहानुभूति है। उन्होंने सब तरह के हिंसाकाण्डों की निन्दा की और स्पष्ट रूप से कहा—

महत्वपूर्ण वक्तव्य

"मैंने इसे स्पष्ट कर दिया है और एक बार फिर स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि मैं सिद्धान्ततः ही राजनीतिक हत्या या किसी भी रूप और प्रकार में की गई हिंसा के विरुद्ध हूँ। यह मेरे और मेरे दल के लिए बिल्कुल ही तिरस्करणीय है। मैं इसे देश के राजनीतिक विकास में बाधक मानता हूँ। यह हमारी धार्मिक शिक्षाओं के भी विरुद्ध है।

"व्यावहारिक राजनीतिक दृष्टि से भी मैं निश्चय पूर्वक अनुभव करता हूँ कि यदि हमारे देश के राजनीतिक जीवन में हिंसा घुस गई तो यह सदा के लिए हमारे स्वराज्य के स्वप्न का अन्त कर देगी। इसलिए मैं उत्सुक हूँ कि यह बुराई ज्यादा न बढ़े और हमारे देश में राजनीतिक अस्त्र के रूप में इसका सर्वथा परित्याग कर दिया जाय।"

देशबन्धु के इस वक्तव्य का अधिकारियों पर बड़ा प्रभाव पड़ा। तात्कालिक भारत-सचिव लार्ड बर्कनहेड ने इस वक्तव्य को गम्भीरता पूर्वक ग्रहण किया और इसे सहयोग के नवीन युग का सूत्रपात माना।

इसी प्रकार बाँकीपुर से निकाले गये दूसरे वक्तव्य में भी चित्तरंजन ने हिंसा की निन्दा की पर यह भी कहा कि सरकार की दमन-नीति एवं जनता पर होनेवाले अन्यायों के कारण ही हिंसावादियों को उत्तेजन मिलता है।

अन्तिम दिन

चित्तरंजन का हृदय आरम्भ से भक्तिमूलक था, शान्तिप्रिय था। परिस्थिति एवं संस्कार ने उन्हें जीवन की हलचल में ला खड़ा किया था। वस्तुतः उनका स्थान महात्मा जी के बगल में था, हम दोनों में दयार्द्रता देखते हैं, दोनों में पाश्चात्य सभ्यता की बाढ़ से शुद्ध भारतीय संस्कृति को बचाने की इच्छा दिखाई पड़ती है। पर वह समता होकर भी दोनों दो दिशाओं में चले गये। कई बार मनुष्य अपने असली स्थान से हटकर ऐसी जगह चला जाता है जहाँ से निकल नहीं पाता। मोह के कारण भी और परिस्थिति के कारण भी। चित्तरंजन के तूफानी, प्रबल प्रभंजन-तुल्य गतिमान स्वभाव के पीछे वैष्णव शान्ति की जो अमृत निर्झरिणी छिपी थी वह जीवन के सूखे एवं निष्ठुर धरातल पर भी कभी-कभी प्रकट हो जाती थी। १९२४ तक चित्तरंजन अपनी विभूति एवं यश की पराकाष्ठा पर पहुँच चुके थे। उन्हें कभी-कभी आभास होता था कि अब मेरा काम हो गया, मृत्यु की छाया मेरे ऊपर पड़ रही है। यह ठीक है कि मनुष्य और उसके भविष्य के बीच एक ऐसा परदा है जिसको भेदकर उस पार के रहस्यों को स्पष्ट देख लेना असम्भव सा है फिर भी जब हमारे जीवन का चक्र घूमते घूमते सत्य के अत्यन्त निकट आ जाता है तब कभी-कभी मानो हमारा सारा प्राण उसके स्पर्श से उद्वेलित होकर बोल उठता है। उस समय आगे क्या होनेवाला है, इसकी धुँधली झलक भी मिल जाती है।

आत्मा की प्यास

मनुष्य के मिश्रित स्वभाव में कभी एक और कभी दूसरी प्रवृत्ति प्रबल हो उठती है। यह वह समय था कि चित्तरंजन का हृदय शान्ति के लिए, भक्ति के लिए, देव के चरणों में सर्वस्व समर्पण के लिए छटपटाता था। जीवन-समुद्र में संघर्ष का, तेज का तूफानी ज्वार शान्त हो रहा था, दिन का प्रखर आतप फीका हो रहा था, बवण्डर शीतल मलय समीर की खोज में सिर धुनता था, सन्ध्या की शान्ति—नीलिमा जीवन में फैलकर उसे ओत प्रोत कर लेना चाहती थी। रात दिन की खटपट, विरोध, युद्ध और संघर्ष से चित्तरंजन ऊबने लगे थे। युद्ध और संघर्ष का एक काल होता है और वह जीवन का बहुमूल्य काल होता है—शायद सब से कीमती, क्योंकि इसी मन्थन में मानव हृदय में छिपी अदृश्य शक्तियाँ बाहर प्रकट होती हैं। पर युद्ध और संघर्ष नित्य जीवन नहीं हो सकते—जीवन के अंग हो सकते हैं। मनुष्य का हृदय सदा संघर्ष की आग पीकर जी नहीं सकता, उसे शान्ति के स्रोत का मीठा जल चाहिए। चित्तरंजन भी कुछ दिन शान्ति चाहते थे।

शान्ति की खोज

बेलगाँव कांग्रेस से लौटते हुए जब चित्तरंजन ३ जनवरी १९२५ ई० को कलकत्ता लौटे तो उनका स्वास्थ्य खराब हो गया था। डाक्टरों ने परीक्षा करके यह सन्देह प्रकट किया कि भोजन के विष (food poisoning) का असर शरीर में मालूम पड़ता है। धीरे धीरे बीमारी इतनी बढ़ी कि डाक्टरों की आज्ञा से कोई मिलने भी उनके पास न आ सकता था, न उनको ही बिस्तर से उठने की स्वतंत्रता थी।

स्वास्थ्य की खराबी

पर उनके पूर्ण स्वास्थ्य-लाभ के पहले ही बंगाल कौंसिल की बैठक हुई जिसमें सरकार मन्त्रियों के वेतन का बजट पेश करना चाहती थी। देशबन्धु (चित्तरंजन) ने लोगों की इच्छा के विरुद्ध, न केवल अपने वोट का उपयोग करने के लिए वरन् बंगाल सरकार को पटकनी देने की

दृढ़ इच्छा से कौंसिल में जाना तै किया। उनके निवास-स्थान (भवानीपुर) से कौंसिल-भवन (टाउनहाल) प्राय तीन मील दूर है। इतनी दूर वह स्ट्रेचर पर ले जाये गये। कहने की आवश्यकता नहीं कि सरकार की बुरी तरह हार हुई।

इस घटना के कुछ दिन बाद एक ट्रस्ट बनाकर उन्होंने अपनी जो-कुछ सम्पत्ति बची थी वह भी भारतीय लड़कियों की डाक्टरी शिक्षा और महिलाओं के एक अस्पताल के लिए राष्ट्र को अर्पण कर दी। आज यह कलकत्ता में स्त्रियों के लिए सर्वोत्तम चिकित्सालय है। चित्तरंजन ने लाखों कमाये थे पर सब सार्वजनिक कार्यों में ही लगा दिया। जिस समय उन्होंने यह ट्रस्ट बनाया उनके पास केवल ३५ पैंतीस हजार रुपये बैंक में थे और अन्तिम दिनों में तो वह गरीबी की सीमा पर पहुँच गये थे।

माता के चरणों में सर्वस्व अर्पण

× × ×

पहले इसकी चर्चा की जा चुकी है कि मार्च एवं अप्रैल १९२५ में क्रान्तिकारियों के कार्यों की निन्दा करते हुए चित्तरंजन ने दो वक्तव्य निकाले थे। क्रान्तिकारियों की इस खुली निन्दा से लार्ड बर्केनहेड ने चित्तरंजन की बड़ी प्रशंसा की और उन्हें सहयोग का निमंत्रण दिया।

फरीदपुर कान्फ्रेंस से कुछ पहले की बात है। एक मित्र ने, जिनका सरकार पर भी कुछ प्रभाव था, चित्तरंजन, लार्ड लिटन (बंगाल के गवर्नर) और भारत सरकार के बीच समझौते की बात चीत चलाई थी। आरम्भ में चित्तरंजन ने इधर कुछ ध्यान भी दिया। एक अंग्रेज महिला के निमंत्रण पर वह वेलूर * के रामकृष्ण आश्रम में बंगाल के गवर्नर लार्ड लिटन से मिले। उस समय

कुछ बातें हुई थीं

* कलकत्ता से ४ मील दूर गंगा के दूसरे किनारे पर, एक छोटा उप-नगर। यहां स्वामी विवेकानन्द की समाधि है।

क्या बात चीत हुई, क्या शर्तें दोनों तरफ से रखी गईं इसका कोई लिखित या प्रामाणिक बयान इस समय प्राप्त नहीं है। कई कारणों से समझौते में सफलता न मिली। फिर भी चित्तरंजन इस आशा में रहे कि जल्द ही सरकार की तरफ से कुछ होगा। फरीदपुर कान्फ्रेंस में दूसरी मई को उन्होंने जो भाषण दिया उसकी 'स्पिरिट' से यह स्पष्ट था कि यदि सरकार सहयोग का भावना का क्रियात्मक उदाहरण रक्खे तो हमारी ओर से सहायता मिलने में उसे सदेह करने का कोई कारण नहीं। मरते दम तक उन्हें यह विश्वास रहा कि लार्ड बर्केनहेड के द्वारा भारत का कुछ हित होगा। लार्ड बर्केनहेड का सच्चा स्वरूप वह जान न सके थे।

फरीदपुर कान्फ्रेंस में ही उनके इस नूतन भाव एवं व्यवहार का, जिसमें एक ओर क्रान्तिकारियों की निन्दा थी और दूसरी ओर सरकार से कुछ शर्तों पर सहयोग की आकांक्षा झलक रही थी, कुछ साथियों एवं प्रतिनिधियों ने बड़ा विरोध किया। ऐसा मालूम होने लगा था कि स्वराजदल और उसके नेता में गहरा मत भेद उपस्थित होने का समय आ गया है। इन संघर्षों से उनका हृदय सन्तुष्ट न था। दिन दिन स्वास्थ्य खराब होता जा रहा था। फरीदपुर में ही उनकी तबियत खराब हुई, ज्वर आ गया। वहाँ से कलकत्ता आये। वहाँ डाक्टरों ने जाँच करके सलाह दी कि स्वास्थ्य बहुत गिर गया है इसलिए कुछ महीने युरोप के किसी स्वास्थ्यप्रद स्थान में जाकर रहना चाहिए पर चित्तरंजन ने यह सोचकर कि इस समय युरोप जाने का गलत अर्थ लगाया जायगा, यह विचार त्याग दिया। इसके बाद उन्होंने शिलाग या उटकमण्ड जाकर रहने की बात सोची पर अन्त में, डाक्टरों की इच्छा के विरुद्ध उन्होंने दार्जिलिंग जाना तै किया।

दार्जिलिंग में

जब मनुष्य में शान्ति की इच्छा जागृत होती है तब आध्यात्मिक प्रेरणाएँ भी प्रबल होने लगती हैं। चित्तरंजन के साथ भी यही हुआ, उनमें भी आध्यात्मिक भावनाएँ उठ रही थीं। उन्होंने अनुकूलचन्द्र भट्टाचार्य नामक एक सज्जन

को अपना गुरु भी बनाया था। दार्जिलिंग जाने के पूर्व उनसे मिलने गये और १६ मई को अपनी पत्नी के साथ 'स्टेप एसाइड' (दार्जिलिंग का एक बँगला) में पहुँचे। यहाँ आने के बाद ही रोज वह दूर दूर तक टहलने के लिए निकलते। ऊपर से स्वास्थ्य अच्छा मालूम पड़ता था पर भीतर ही भीतर शरीर खोखला होता जा रहा था। धीरे-धीरे ज्वर आने लगा और उसका एक निश्चित रूप बन गया। इस समय उनके मन में मुख्यतया दो इच्छाएँ थीं। एक तो वह इस भ्रम थे कि यहाँ कुछ दिन रहने से मेरे स्वास्थ्य पर बड़ा अच्छा असर पड़ा है इसलिए यदि कोई उपयुक्त छोटा मकान मिल जाय तो शेष जीवन जगत् के कोलाहल से दूर रहकर यहाँ बितावें। एक मकान पसन्द भी कर लिया गया था।

अप्रैल में भारत सचिव लार्ड बर्केनहेड के निमन्त्रण पर तत्कालीन वायसराय लार्ड रीडिंग इंग्लैण्ड गये। इससे चित्तरंजन ने अनुमान लगाया कि भारत को अधिकार देने के विषय में जल्द ही कुछ निर्णय होनेवाला है और इसमें मुझसे भी अवश्य राय ली जायगी पर जब कुछ न हुआ तो बड़ी निराशा हुई। स्वास्थ्य की खराबी के बीच यह निराशा भी उनके लिए घातक हुई।

इस समय तक उनमें संघर्ष का भाव बिल्कुल दब गया था। उनमें यह इच्छा भी बलवती हो चुकी थी कि सब दलों को मिलकर विचार एवं कार्य करना चाहिए और इसको क्रियात्मक रूप देने के लिए वह स्वयं राजनीतिक क्षेत्र से अलग तक हो जाने को तैयार थे। जून के आरम्भ में महात्मा गांधी उनसे मिलने आये और कई दिनों तक दोनों में स्वराज्य दल के भविष्य, कांग्रेस तथा असहयोग-आन्दोलन के सम्बन्ध में बातें हुईं। अपने 'कामनवेल्थ ऑव इण्डिया बिल' के विषय में सलाह लेने के लिए श्रीमती बेसेण्ट भी पधारीं। दो दिन के सलाह मशविरे के बाद चित्तरंजन ने बिल

महात्माजी का आगमन

का समर्थन करने से इन्कार कर दिया। क्योंकि जबतक कांग्रेस का निर्णय न मालूम होता, इस विषय में अपने को किसी प्रकार के वचन में बांध लेना वह ठीक न समझते थे।

वह दार्जिलिंग विश्राम के लिए गये थे पर देश की राजनीतिक दुरवस्था उनके दिमाग में सदा फिरती रहती थी इसलिए वहाँ भी मानसिक शान्ति उन्हें न मिली और फल-स्वरूप स्वास्थ्य दिन दिन खराब ही होता गया।

ज्यों-ज्यों जीवन की अवधि समाप्ति पर आ रही थी चित्तरंजन का स्वभाव बदलता जाता था। जिन लोगों ने उन्हें अन्तिम दिनों में देखा,

परिवर्तन

उनका कहना है कि पहले का वह तूफानी स्वभाव—वह संघर्ष एवं विजय की आकांक्षा, वह शत्रु को—विरोधी को पटकान देने, नीचे गिराने की वीर भावना उनमें से बिलकुल दूर हो गई थी। जिनके प्रति उनके मन में कटुता के भाव थे, उनके प्रति सहानुभूति के भावों का उदय हो गया और उनके स्वभाव में एक प्रकार की अप्रतिम मधुरता आ गई थी। अपने विरोधियों की भी वे निन्दा न करते थे बल्कि उनका बखान करते थे।

× × ×

बुखार बीच बीच में आता रहता था। अन्त में नियमित रूप से साप्ताहिक ज्वर आने लगा। रविवार १४ जून को उन्हें बुखार आया।

महाप्रयाण

सोमवार को सुबह तक टेम्परेचर (शरीर का तापमान) बहुत बढ़ गया और सारे दिन वह दर्द से बेचैन रहे। मंगलवार के प्रातःकाल बुखार दूर हो गया पर टेम्परेचर गिरने के साथ साथ नाडी भी डूबने लगी। एक बजे दिन के बाद दिल डूबने लगा और वह बेहोश हो गये। ५ बजकर १५ मिनट पर वह शरीर छोड़ महाप्रयाण कर गये।

ज्योंही नगर में यह समाचार फैला, लोग झुण्ड के झुण्ड इस महान् भारतीय के शरीर के अन्तिम दर्शन के लिए आने लगे। आधी रात तक दर्शकों का ताँता लगा रहा। सभी श्रेणी के लोग आये। लोगों की आखें भरी हुई थीं, मुँह बंद।

सनसनी

बुधवार को सात बजे सुबह शव सजाकर स्टेशन पहुँचाया गया। ९ बजने के कुछ पहले उसे एक पार्सल के डिब्बे में रखा गया क्योंकि साधारण मुसाफिरों के डिब्बों में रखने को जगह न थी। दार्जिलिंग से कलकत्ता तक प्रत्येक स्टेशन पर दर्शनार्थियों की जबर्दस्त भीड़ हुई। स्यालदा स्टेशन पर तो ऐसा मालूम पड़ता था मानों मनुष्यों का सागर लहरा रहा है। शव बाहर लाया गया और दो मील से भी अधिक लम्बा जुलूस साथ चला। नगर निवासी अपने नगर पति एवं हृदय के अधिपति के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट कर रहे थे। गांधीजी आगे आगे थे, उनके पीछे लगभग ३ तीन लाख स्त्री पुरुष थे। जुलूस को श्मशान घाट तक पहुँचने में छ घण्टे लगे और चार बजे सायंकाल, जब पानी बरस रहा था और सम्पूर्ण देश के ओठों पर प्रार्थना, आँख में कातरता एवं दिल में वेदना थी, शव-संस्कार हुआ।

सब बाजार, कोठियाँ, आफिस, स्कूल कालेज, थियेटर सिनेमा (भारतीय प्रबंध) बन्द थे और ब्रिटिश साम्राज्य की दूसरी महानगरी एक हिन्दू विधवा सी बिलख रही थी, जिसका सर्वस्व लुट चुका था!

—तीन—

अध्ययन-विश्लेषण

चित्तरंजन के जीवन को देखते हैं तो कैसा एक मालूम होता है। वह विद्रोह के पुरोहित थे। वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विद्रोही रहे,

विद्रोही

उन्होंने सदा स्वप्न देखे,—पर उन्हें पूरा भी किया। केवल स्वप्न की झाँकियों से ही सन्तुष्ट होनेवाले वह न थे। स्वप्न देखना और फिर उसके पीछे जी जान से पड़ जाना—यह उनका स्वभाव था। एक की पूर्ति के बाद दूसरा;—यह क्रम चलता। इस महापुरुष के मन में एक ओर विद्रोह और दूसरी ओर युद्ध में मजा पानेवाली सैनिकता बसी हुई थी। वर्तमान कुरीतियों के प्रति उनके हृदय में प्रबल रोष था। यह व्यक्ति समाज की परम्पराओं की मूर्तियों को तोड़ता, लड़ता, तर्क करता, आनन्द लूटता और लुटाता हुआ, एक अजीब मस्ती के साथ हमारे राष्ट्रीय क्षितिज पर दिखाई दिया। उसकी कार्यशक्ति अद्भुत थी—यह महाप्राण था। जबतक रहा कभी सुस्त, दुखी, निराश नहीं। जैसे आशा का एक प्रबल स्रोत, बंगाल की तूफानी जमीन से फूट पड़ा हो,—जो जिधर उमड़ पड़ा उसी को भिगो देना चाहता है, डुबा देने को उत्सुक है।

नींव की जाँच पड़ताल कौन करता है? कठिन काम है। लोग ऊपर खड़ा महल, उसकी सजावट और आकर्षण देखते हैं। सम्भव है नींव गन्दी हो पर महल अपनी भव्यता से संसार को चक्कर में डाल दे। जहाँ प्रचार और सजावट का बोलबाला हो वहाँ मनुष्य की बुद्धि भ्रम में पड़ जाय तो क्या बात? पर चित्तरंजन के व्यक्तित्व की नींव को देखना ही चाहें,—और जब ध्यान आ गया तो मन बिना देखे कैसे माने?—तो देखने के

बाद कहना पड़ेगा कि यह उनके ऊपरी जीवन से कम नहीं, शायद अधिक ही, भव्य है। उसमें फूट फूटकर उदार हृदय की विशाल हृदय की मानवता भरी गई है। एक ब्राह्म की संस्कृति और विद्रोह, एक वैष्णव का सर्वग्राही प्रेम उसमें जोड़-जोड़ कर बैठाया गया है। फिर एक युवक का कठिनाइयों को दमन कर ऊपर उठने का उल्लास उसमें प्रकाशित है। ये तीन धाराएँ इस महाप्राण पुरुष के जीवन में त्रिवेणी की तरह मिली हुई हैं। किसी ने देशबन्धु को यथार्थवादी (Realist) के रूप में देखा, किसी ने वैष्णव रूप में, किसी ने विद्रोही वीर सैनिक के रूप में। पर यह उस चीज के टुकड़े हैं, इन्हें अलग अलग कर देने और अलग-अलग देखने से वह चीज नहीं बनती जिसका नाम चितरंजन था। यह तो हाथी की सूंड है या पाँव, या पूँछ, हाथी नहीं है। चितरंजन का दिमाग, दिल और शरीर तीनों तीन धाराएँ लेकर भी एक में ऐसे मिल गये हैं कि उन्हें अलग करके देखने में कुछ रह नहीं जाता,—रह भी जाता है तो सम्पूर्ण के सामने वह न रहने के ही समान है।

ये तो उस चीज के टुकड़े हैं।

एक में मिलाकर,—टुकड़ों को नहीं, सम्पूर्ण को देखने से ही असली व्यक्ति को हम पाते हैं। जन्म के ब्राह्म, दिल के वैष्णव और शरीर के क्षत्रिय चितरंजन को इस प्रकार देखने से ही हम उन्हें देख सकते हैं। किशोरावस्था में ही उन्होंने ब्रह्मसमाज की अनेक रूढ़ियों के प्रति विद्रोह किया। महापुरुष—महाप्राण कभी बंधनों में, सम्प्रदाय की संकुचित सीमा में बँधकर रह नहीं सकता। वह वह सोता है जो फूटकर अबाध गति से बहना और सब को जल देना चाहता है। अपनी लड़कियों की शादी उन्होंने जातिबन्धन तोड़कर की—और इसी शादी में, तथा बाद में, माता पिता के श्राद्ध में, हिन्दू रीतियों का पालन किया। जहाँ जो अच्छा देखा, ले लिया। जहाँ अन्याय है, वहाँ विद्रोह भी है। एक मूर्तिभंजक

ब्राह्मण, वैष्णव और क्षत्रिय

की भाँति यह गदा लिये कुरीतियों की, अन्याय की मूर्तियों पर प्रह
करते फिरते थे। उनका सारा जीवन विश्राम हीन विद्रोह का गति
ओतप्रोत है। यह वह नाव है जो ससार सागर में किसी घाट पर रुक
नहीं चाहती।

× × ×

यह कहा ही जा चुका है कि चित्तरंजन के जीवन में तीन अलग धाराएँ मिली दिखाई देती हैं। उन तीन धाराओं को पहले अलग-अलग देख ल और फिर इस सहार से त्रिवेणी के पूर रूप को—एक में मिल-कर, एक करके और एक होकर देखें।

पहले हम उन्ह उनके यथार्थवादी रूप में लेते हैं। बगाल के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री श्री विनयकुमार सरकार ने बडे यत्न से यह सिद्ध करने का चेष्टा की है कि चित्तरंजन का यथार्थवादी रूप ही उनका असली रूप है—भावुकता इत्यादि उसमें गौण है। कानूनी दाँव पेंच में निपुण एक वकील का शुद्ध तर्कना, यथार्थ ससार को ठोस रूप में देखने की शक्ति और व्यापारी का व्यवहार ज्ञान ही, उनकी दृष्टि से, चित्तरंजन की विशेषता है और इसीलिए उन्होंने सफलता प्राप्त की। इसमें कोई सन्देह नहा कि असहयोग-आन्दोलन के उपरान्त—१९२३—में उनमें वकील की तर्कना प्रबल हो उठी थी, वह निर्दय की भाँति तर्क करते और भावों के टुकडे टुकडे कर डालते थे। रासायनिक का विश्लेषण मनुष्य की परख की कसौटी बन गया था। तर्कना की आँधी में भावों के बादल फटे जा रहे हैं, दृढाबद्ध माना भावुकता के पीछे कोडा लिये उसे फटकारते, भगाते चले जा रहे हैं। जो व्यक्ति कलकत्ता विश्वविद्यालय को तोडने और आशुतोष मुकर्जी-जैसे दाँव पेंच विशेषज्ञ से लोहा लेने के स्वप्न देखता था और जिसके मुँह से माँ की पुकार सुनकर शत शत युवक—प्रोफेसर, विद्यार्थी, वकील—आकर राष्ट्रीय पताका के नीचे खड़े हो गये थे, जिसने स्वय अपना उच्च

यथार्थवादी

वकालत, जिसके वह एकच्छत्र शासक हो सकते थे और जो सोने के अण्डे देने वाली मुर्गी के समान कीमती हो सकती थी, पर लात मार दी, वही चित्तरंजन, बंगाल का वही महाप्राण, महापुरुष जब त्रिविध बहिष्कार आन्दोलन को शिथिल होता देखता है तब निर्दय न्यायाधीश की भांति तर्क करता है—तर्क, जिसमें उसका दिमाग चिल्लाकर प्रश्न करना चाहता है—"यह त्रिविध बहिष्कार का प्रस्ताव इतना पवित्र क्यों है कि कोई काँग्रेस इसके एक शब्द को हाथ नहीं लगा सकती ? मैं आप से देश की परिस्थिति की ओर देखने की प्रार्थना करता हूं। एक तथ्य सैकड़ा पाउ से बढ़कर है। काँग्रेस मंच से पेश किये गये सैकड़ों प्रस्तावों की अपेक्षा तथ्य—घटनाएँ—facts—अधिक भाव-व्यंजक हैं।" *

× × ×

कैसा निर्दय प्रहार ! और यहीं तक नहीं—आगे और भी, एक कुशल आक्रमणकारी की भांति प्रहार पर प्रहार—"वह किस प्रकार का असहयोग है जो आज आप कर भी रहे हैं, केवल कह नहीं रहे हैं ?" यह कहने और करने का अन्तर बड़ा चोटीला, बड़ा दुःखद है। उस दुःख की कहानी फिर लो—"त्रिविध बहिष्कार क्या है ?" वह पूछता है और वही उत्तर देता है—"अदालतों का बहिष्कार ? आह ! अदालतें फूल फल रही हैं—एक हरे भरे वृक्ष की भांति फूल-फल रही हैं मुझे भय है कि आपके कागजी प्रस्तावों की हर साल की इस पुनरावृत्ति के होते हुए भी ये निगोड़ी इसी तरह फलती-फूलती जायेंगी। इसके बाद, आप स्कूल-कालेजों का बायकाट—बहिष्कार—करने को कहते हैं—पर स्कूल कालेज भरे हुए हैं। तीसरी बात है कौंसिलों का बहिष्कार ! पर वह देखो, कौंसिल—और असेम्बली भी—पूरी तरह भरी हुई है।" ज्यों ज्यों आगे बढ़ता है यह तर्क और निर्दय होता जाता है—"पर हम 'अकुमद' इन कौंसिलों में न जायँगे बल्कि कहेंगे—'ओह ! हमने त्रिविध बहिष्कार

* मद्रास, १९२३ ई०

पूरा कर लिया।' इस तरह हम अपने सीने फुला लेते हैं, संतुष्ट हो जाते हैं और फिर सो रहते हैं।"

यहाँ कवि चित्तरंजन नहीं, वैष्णव चित्तरंजन नहीं, भक्त चित्तरंजन नहीं—देश भक्त चित्तरंजन भी नहीं, केवल तार्किक चित्तरंजन है। केवल दिमाग बोल रहा है और दिमाग से बोल रहा है। एक पक्का वकील, फॅकैत, विजय पर तुला हुआ तार्किक प्रहार करता है—"आप सविनय अवज्ञा की बात कहते हैं? किन्तु यदि आज आप सविनय-अवज्ञा-आंदोलन शुरू करें तो वह पैदा होने के पहले ही मर जायगा। आप पूछते हैं 'क्यों' मैं कहता हूँ—"आप सविनय अवज्ञा को ढाल—मैनुफैक्चर—नहीं सकते।" कैसे घातक शब्द हैं! पैने छुरे के समान कलेजे तक घुसने वाले! दया नहीं, भावोद्रेक नहीं, कम्पन नहीं,—यहाँ बस प्रहार है, कटु तथ्य है। जैसे तर्क सब पर छा जाना चाहता हो।—"आप यह सोच सकते हैं कि हमने कागज़ पर तो कौंसिलों का बहिष्कार कर दिया, इसलिए कौंसिलों में न जायँगे। इसी तरह आइए, हम अवज्ञा का जोश बनाये रखने के लिए सविनय अवज्ञा, सविनय-अवज्ञा, सविनय-अवज्ञा की रट—जप—लगावें।" श्रोता हँस देते हैं—यह आक्रमणकारी ने आधा मैदान मार लिया!

पर ज्यों-ज्यों विजय का भाव—उल्लास तीव्रतर होता है, प्रहार की भीषणता, व्यंग की निर्दयता बढ़ती जाती है—"सविनय अवज्ञा मार्च के अन्त से जून के अन्त तक स्थगित कर दी गई है। मैं एतराज नहीं करता क्योंकि मैं जानता हूँ कि जून के अन्त में यह फिर दिसम्बर के लिए स्थगित हो जायगी और यदि कट्टरपन्थियों के विचार इसी तरह जारी रहे तो दिसम्बर के अन्त में फिर मार्च के लिए स्थगित हो जायगी। और फिर तीन महीने के लिए और तीन महीने के लिए ।"

इन बातों को देखते हुए इसमें संदेह कैसे करें कि स्वराज्य दल के आरम्भकाल में चित्तरंजन यथार्थवादी के रूप में सामने आये थे। प

किसी तरह करें, यह सन्देह तो उठता ही है कि क्या यह यथार्थवादी रूप ही उनका यथार्थ रूप था? और क्या उस समय भी उनमें यथार्थवादी प्रधान था? नहीं, सच बात तो यह है कि चित्तरंजन कभी तत्ववेत्ता—दार्शनिक, 'फिलासफर'—न रहे। वह एक कर्मयोगी भक्त थे। उनमें कार्य करने की जो अप्रतिम शक्ति थी और जो केवल पाँच वर्षों (जेल का समय निकाल दें तो और कम) में भागीरथी की अगणित धाराओं की भाँति बंग-भूमि और उसके द्वारा समग्र भारत में, जहाँ देखो तहाँ, अपना प्रभाव और छाप लेकर फैल गई, उसका दूसरा उदाहरण आधुनिक भारतीय राजनीति के इतिहास में नहीं है। पाँच वर्ष में एक महापुरुष इस प्रकार आँधी की भाँति आकर हमारे मानस क्षितिज पर छा गया, यह एक आश्चर्य की घटना है। पर यह तो हम दूसरी ओर जा रहे हैं,—बात चल रही थी यथार्थवादी की। हाँ, तो चित्तरंजन के इस यथार्थवाद के पीछे क्या शुद्ध तर्क है—कोरा वकील बोल रहा है? नहीं, इसमें भी एक कर्मयोगी का अनुभव, एक भक्त की व्यथा बोल रही—चीख रही है। ऊपर के भाषण को ध्यान से पढ़िए। उसमें शरीर तो है ही पर सब मिलाकर देख सकें तो देखिए उसमें एक प्राण भी है। चित्तरंजन विद्रोही योद्धा थे, शब्द जगत् उन्हें सन्तुष्ट न कर सकता था। यदि असहयोग का आदर्श पूर्ण हो गया होता, यदि अदालतें खाली हो गई होतीं, स्कूल उजड़ गये होते तो चित्तरंजन शायद सब से पहले व्यक्ति होते जिनका हृदय प्रफुल्लित हो जाता पर वैसा नहीं हो सका। आदर्श नाम की जो चीज है, उसे केवल कागज पर लिखी चीज समझकर वह संतोष न पा सकते थे। महात्माजी की गिरफ्तारी के बाद उस समय के नेतागण विक्षिप्त की नाईं घूमते रहे, जनता को कोई मार्ग न दिखा सके। आन्दोलन शिथिल हो गया। जेल से आकर चित्तरंजन ने देखा और निश्चय किया कि परिस्थिति की ओर

कर्मयोगी भक्त

इस यथार्थवाद के पीछे भी देखो।

आँखें बन्द करके चलने से न होगा। वह सेनानायक योद्धा थे समय के अनुसार हाथ बदलकर वार करता है और अपनी से विपक्षी को चकित, स्तंभित एवं परास्त कर देता है। महात्माजी अगावा इस आन्दोलन का 'टकनीक' किसी को मालूम न था इसी यहाँ कोरा वाग्युद्ध रह गया था,—इस में चित्तरजन को शान्ति न मिलती थी। इस सूखे जीवन हीन आदर्श-मोह की अपेक्षा कौंसिलों वह झूठा थियेटर, जो युद्ध-कला से जगमगाकर जीवनमय हो सकता जहाँ दो दो हाथ हो जाने, जोर आजमाने का मौका है, उन्हें ज्यादा 'अपा कर गया। आदर्श शब्द-जगत् की अपेक्षा लोगों को व्यावहारिक क जगत् में खींच लाने की भावना इस भाषण के प्रत्येक शब्द के पीछे है

दूसरी बात यह कि चित्तरजन के उत्साह का, कार्य शक्ति का स क्या? योद्धा का, युद्ध में मिलने वाला, आनन्द। खतरे को वह प्या

शक्ति का सोता कहाँ है ?

करते थे। जहाँ खतरा है, जहाँ संघर्ष है वहाँ उनक विजय करने की आकांक्षा तीव्र और तीव्रतर हाक प्रकट होती थी—वहाँ वह आँधी थे। पर बादल फटे, विजय हुई, सूर्य निकला और उनका प्राणोन्मेष शिथिल हुआ। सर्व के पूर्व के तेजस्वी चित्तरजन के सामने विजयी चित्तरजन मुर्दा था। यह भावुक राजपूत की वीरता थी। उनके बाद जवाहरलाल और वल्लभ भा दो ही ऐसे निकले जिनमें यह बात दिखाई दी। जवाहरलाल ने अप कहा था कि 'जबतक युद्ध चलता है, लड़ाई हो रही है तब तक मैं अनुभव करता हूँ कि मेरी नाड़ियों में खून बह रहा है।' छोटे से राजनीतिक जीवन के मध्याह्नकाल में चित्तरजन के लिए भी यही बात थी। उनका प्रेम, उनकी वैष्णव भावुकता युद्ध के समय अगणित प्राणियों में बहुत पाकर—अपने प्राण को फैलाकर, जीवनमय हो उठती थी। शान्ति हो जाने पर, साधारण स्थिति में, वह स्वाद नहीं, एक भारतीय की भारतीयता प्रकट करने का वह अवसर नहीं। जहाँ विरोधी तनकर खड़ा हो,

जहाँ मोर्चेबन्दी हो रही हो, जहाँ आस्तीनें चढ़ाई जा रही हों वहाँ देखो—चित्तरंजन का योद्धा रूप। गया (दिसम्बर १९२२ ई०) मे यह रूप न था,—मानो तबतक योद्धा चित्तरंजन का जन्म ही न हुआ था। पर गया कांग्रेस की उनकी हार ने उन्हे जीवन दे दिया। कुछ ही महीनों के अन्दर, मद्रास म (१९२३ ई०) में उनको हम पूर्ण विकसित योद्धा रूप में देखते है। कारण? कारण है—गया में वह राष्ट्र के देवता थे, पूजा की चीज थे, मद्रास में सैनिक थे। मद्रास में विजय करनी थी। एक से एक सेनापति सामने खडे थे। दिल बढ़ गया। यहाँ हम चित्तरंजन का वीर, उद्बुद्ध, प्राणमय, विजयोन्मुख, लड़ाकू ओर न झुकने वाला पुरुषार्थ देखते है। जैसे विरोधी दल को टुकडे टुकडे कर देने को वह आ खडा हुआ हो—जैसे एक आँधी हो जो अपने मार्ग की प्रत्येक बाधा को पीस डालना चाहती है। चित्तरंजन के समग्र जीवन में यह बात ओतप्रोत है। जहाँ अधिक से अधिक कठिनाइयाँ है वही उनका सर्वोत्तम योद्धा रूप है। लड़ने पर उद्यत चित्तरंजन एक पुरुष है—एक देव, जिसे आँखें देखना चाहती है। यह अखाडे मे उतरे पहलवान का रूप है जो आशा से भरा है, छाती फूल रही है, नथने हिल रहे है, आँखें ज्वालामयी हो रही हैं—'आँख' बन गई हैं जिसकी एक एक नस लोहा लेने को फडक रही है और विजयी चित्तरंजन एक प्राणहीन दर के समान है।*

चित्तरंजन दार्शनिक—तत्ववेत्ता, फिलासफर—की अपेक्षा योद्धा अधिक थे। इसी के कारण कभी-कभी वह यथार्थवादी रूप में प्रकट होते थे। यह हुआ उनका एक रूप।

---

* प्रो० विनयकुमार सरकार ने अपने लेख (Chittranjan And Young Asia) में ठीक लिखा है—" Chittranjan militant is a man, a giant a devil incarnate a sight for the gods But Chittranjan triumphant is a pigmy"

जरा और गहराई में

पर जब हम जरा और गहरे पानी में पैठते हैं तो कुछ और ह आता है। तब ज्यादा असली रूप की झलक मिलती है। इसलिए प कहने में हिचकिचाने की कोई जरूरत नहीं कि उनक दूसरा और ज्यादा असली रूप यह है जो उनके जीवन में सदा व्यक्त होता रहा। यह वैष्णव की प्रयणशीलता है—सर्वग्राही प्रेम है। ब्रह्मसमाज ने हिन्दू को जो एक नया रूप दिया, उसकी अच्छाइयाँ लेकर यह पौधा बढ़ा था। आगे वैष्णव, प्रेम का प्रकाश पाकर यह फूलों से भर गया। यह प्रेम ही दे के साथ देशभक्ति के रूप में, साहित्य के साथ कविता के रूप में और गरीब दुखियों के साथ सेवा के रूप में व्यक्त हुआ। चित्तरंजन जिस बा को प्यार करते थे, हृदय से करते थे। क्या उनका देशप्रेम एक यथार्थ वादी व्यावहारिक राजनीतिज्ञ का देश प्रेम था? यह ठीक है, कि उन्होंने पश्चिम के ढंग पर भारत में सब से पहली और सुसंगठित पार्लमेण्टरी पार्टी—स्वराज दल—का संगठन किया पर सच पूछें तो यह उनका असली क्षेत्र न था। इसमें चौंकने की बात नहीं है। इस क्षेत्र में, भी उन्होंने अद्भुत सफलता पाई—केवल इसलिए कि उनमें जो महाप्राणता, जो तेज था, वह जिधर झुका, उधर ही ले बीता—उधर ही विजय हुई। पर कौन कह सकता है कि यदि वह कुछ वर्ष और जीवित रहते तो उनका वैष्णव रूप राजनीति में भी खिल न उठता। और अपने तई तो मैं अब भी यही मानता हूँ कि उन्होंने जो एक नये दल का संगठन किया वह इसीलिए कि वह निराशा और अकर्मण्यता के भाटे में रह न सकते, वे रहते तो यह उनके लिए बड़ा भारी बोझ हो जाता, उनकी जीवनी-शक्ति क्षीण हो जाती। उन्हें जीवन में सदा ज्वार चाहिए था। वह ज्वार जबतक असहयोग में रहा वह उसकी अगली पंक्ति में रहे, जब उसमें शिथिलता आई और परिस्थिति ऐसी हो गई कि उसका वैसा ही रूप तत्काल न बन सका तो उस अवस्था में जो हो सकता था, उसे खोज निकाला

राजनीति में देशबंधु —चित्तरंजन— को केवल एक धुन थी और वह थी—'भारतशासन कानून' (गवर्नमेण्ट आव् इण्डिया ऐक्ट) को छिन्न भिन्न कर देना। जब शरीर चारों ओर रस्सियों से कस और जकड़ लिया गया हो तो हम उस बंधन को तोड़कर अपना करतब दिखाने में विशेष आनन्द आता है। यह मानव हृदय का मनोवैज्ञानिक झुकाव है। रस्सियों में जकड़ा हुआ नट जब बाहर निकल आता है तब हम अपने हृदय का सारा विस्मय आँखों में भरकर उसकी ओर देखते हैं। सरकार ने कौंसिलों को कानूनी दाँव पेंच से जकड़ रखा था। उसके अन्दर भी अपनी थेघतर बुद्धि से दो दो हाथ हो जाय, इस भाव से चित्तरंजन इधर प्रेरित हुए। पर उनका देश प्रेम अगाध था, वह मातृ भूमि को एक वैष्णव भक्त की तरह चाहते थे, उनके लिए वह एक भौगोलिक सीमा नहीं, एक जीवित वस्तु थी। उनका हृदय स्वतंत्रता के लिए वैसे ही छटपटाता था जैसे एक विरहिणी ब्रजांगना, भारतीय साहित्य में, कृष्ण के लिए तड़पती रही है। जिस हृदय से ये—नीचे देखिए—वाक्य निकले हों उसे शुद्ध यथार्थवादी—'रियलिस्ट'—के रूप में देखने का दावा कौन कर सकता है?—

"I have loved this land of mine with all my heart, from childhood, in manhood, through all my manifold weakness, unfitness and poverty of soul I have striven to keep alive its image in my heart, and to-day, on the threshold of age, that image has become truer and clearer than ever"

('बचपन से ही मैंने अपने इस देश को अपने सम्पूर्ण हृदय से प्रेम किया है, मैंने उसे यौवनकाल में अपनी विविध दुर्बलताओं, अयोग्यता और आत्मा के दैन्य के बीच प्यार किया है। मैंने अपने हृदय में उसकी मूर्ति जीवित—जाग्रत रखने की सदा चेष्टा की है, और आज, आयु की

देहली पर यह मूर्ति सर्वाधिक सत्य और स्पष्टतर हो गई है।")

× × ×

एक ओर भक्ति-विह्वलता और दूसरी ओर वकील की तर्कना और व्यवहार-बुद्धि इन दोनों का संघर्ष, चित्तरंजन के जीवन में बड़ा मनोरंजक है। इसीलिए अनेक स्थानों पर वह सीधा रास्ता छोड़कर टेढ़े-मेढ़े मार्ग से चलते दिखाई देते हैं। वह नौकरशाही शासन के कट्टर विरोधी थे, किन्तु साथ ही पाश्चात्य पार्लमेण्टरी संस्थाओं के अन्ध समर्थक भी न थे। वह एक 'डेमोक्रैट' (प्रजातन्त्रवादी) थे, किन्तु वर्तमान प्रजातन्त्र के सिद्धान्तों की अनिवार्यता को स्वीकार न करते थे। शिक्षा और संस्कार दोनों दृष्टियों से उनका स्वभाव एक अनियन्त्रित मनुष्य—'आटोक्रैट'—का स्वभाव था। इसीलिए वह अपनी आलोचना सहन न कर सकते थे, न उस आदमी को क्षमा कर सकते थे जो उनके अधिकार और पद मर्यादा का विरोध करता था। गांधीजी के हृदय की उदारता उनमें नहीं थी, जो अत्यन्त स्वाभाविक रूप में, मानवी प्रकृति के एक अंश की तरह, प्रकट होती है;—जो अपने विरोधी के प्रति अति उदार है। उनकी उदारता एक रईस की उदारता थी जो दीन दुखी पर पानी पानी हो जाती है पर प्रतिद्वंद्वी के सामने, सूक्ष्म अहंकार के शीत से जमकर, हिमवत् हो जाती है। इस बारे में वह मोतीलालजी से मिलते-जुलते थे। वह प्रेरणा और प्रवृत्ति से वैष्णव थे पर उनमें वैष्णव धर्म की शान्ति और आत्मार्पण न था। सिद्धान्ततः उनकी सहानुभूति साम्यवाद की ओर थी, किन्तु उन्होंने बंगाल के स्थायी बन्दोबस्त (Permanent Settlement) को तोड़ने अथवा उसमें परिवर्तन करने की आवाज तक न उठाई। इसी प्रकार व्यापार-संघों (Trade Unions) के सम्बन्ध में भी वह धनवाही प्रभावों से ऊपर न उठ सके।

दो धाराओं का संघर्ष

इन सब बातों को मिलाकर जब हम देखते हैं तो मालूम होता है कि चित्तरंजन में भावना ही प्रधान थी। इसीलिए विधायक की अपेक्षा संहारक के रूप में वह अधिक प्रबल हो उठे थे।

भावना प्रधान

विधायक राजनीतिज्ञता (Constructive Statesmanship से अभिप्राय है) में वह गोखले और फीरोजशाह के तथा विचक्षणता में तिलक के पीछे रह गये। निर्दय प्रहार, तीव्र मेधा और तर्कना में मोतीलालजी उनसे आगे निकल जाते हैं पर राजनीतिक आदर्शों के लिए अपने त्याग में, एक दल के संगठन के लिए स्वास्थ्य और जीवन को खतरे में डालने में, लगन, भावों की सचाई और दृढ़ता में वह इन सब से आगे थे। इसी प्रकार विशाल जन समूहों को हिला देने, उद्वेलित कर देने, में वह मोतीलालजी से कहीं बढ़कर थे। बंगालियों में से देखें तो उनके समय के दूसरे महान् बंगाली भूपेन्द्रनाथ बसु से, कई बातों में, उनका स्वभाव मिलता था। भूपेन्द्रनाथ की तरह ही उनमें सामाजिकता के सब गुण थे;—उनमें सभी तरह के आदमियों में से मित्र बना लेने की प्रबल शक्ति थी। भूपेन्द्रनाथ की ही तरह वह अपने मित्रों को एक स्नेह के बंधन में बाँधकर उनको एकत्र एवं संगठित कर सके थे। इस विषय में, अपने स्वभाव की मधुरता, अपने सहायकों की वफादारी में उनका विश्वास, उनकी विचक्षणता सब अद्भुत थी और बंगाल के क्या, शायद दूसरे प्रान्तों के किसी आदमी से उनकी तुलना नहीं हो सकती।

भूपेन्द्रनाथ से समानता

जहाँ समानताएँ हैं वहाँ असमानताएँ क्यों न होंगी? भूपेन्द्रनाथ में एक बड़ा गुण यह था कि वह अपने समय के प्रतिभावान आदमियों को एकत्र कर सके थे, उनके मित्रों एवं सहायकों में बड़े बड़े प्रतिभावान् मनुष्य थे। मात्रा के लिहाज से चित्तरंजन में यह बात बहुत कम थी बल्कि अनेक बार कितने ही

असमानताएँ

प्रतिभाशाली मनुष्य उनके द्वारा उपेक्षित भी हुए। इस विषय में वह सुरेन्द्रनाथ से मिलते जुलते थे। इसी प्रकार भूपेन्द्रबाबू के समान आदमी पहचानने की शक्ति भी चित्तरंजन में न थी। इस विषय में भी वह सुरेन्द्रनाथ की ही तरह थे। कौन सच्चा साथी है, कौन चापलूस है, इसकी पहचान उन्हें न थी। इस कारण जब तक वह जीवित रहे उनकी असाधारण व्यक्तिगत प्रतिभा तथा आकर्षण से लोग दब रहे परन्तु उनके मरते ही कलह और फूट का बोलबाला हुआ। आज बंगाल का बहुत-सा कलह उनकी इस कमी के कारण ही है।

सुरेन्द्रनाथ और गोखले से समानता

सुरेन्द्रनाथ और गोखले से तीन बातों में उनमें समानता थी। तीनों ने राजनीति को बड़ी सचाई से अपनाया था। तीनों ही अपनी आलोचना सहन न कर सकते थे,—इस विषय में 'सेन्सिटिव' थे। यहाँ तक कि जो उनके निर्णय को न माने या उनके अधिकार के सामने न झुके उससे बोलना भी पसन्द न करते थे। तीनों ही विनोदवृत्ति (सेंस ऑव् ह्यूमर) से सर्वथा हीन थे।*

पाँच बातें !

इतनी बातें कर लेने के बाद अब हम चित्तरंजन के विषय में किस निष्कर्ष पर आना चाहते हैं। पहली बात तो यह कि उनकी शिक्षा और उनके संस्कार, मोतीलालजी की भाँति, शासक कोटि के—रईसाना—थे दूसरी बात यह कि उनमें वर्तमान कुरीतियों, परिस्थितियों के प्रति विद्रोह का भाव विकसित हुआ था। यह विद्रोह की भावना पिता से एवं ब्रह्म समाज के संस्कारों से उन्हें मिली, लड़कपन की परिस्थिति ने तलवार की धार पर शान दे दिया। तीसरी बात यह कि चित्तरंजन आरंभ से वैष्णव भावना की ओर आकर्षित हुए—जिस क्षेत्र में गये उसमें एक तूफानी उत्साह, एक

* देखिए Chittaranjan Das His Achievements and Failures —P C Ray

अप्रतिहत गतिमान एवं सतेज भावना, एक 'पेशन' साथ ले गये। यह उनके द्रवणशील प्रेमी हृदय का परिणाम था। चौथी बात यह कि चित्तरंजन में, यह वैष्णव भावना देशभक्ति के अत्यन्त प्रबल और तूफानी रूप में व्यक्त हुई थी। पांचवां—विरोधी को हराने, उसका उद्देश्य विफल करने की ,उनमें अद्भुत दृढ़ता थी। इसके सामने वह सब भूल जाते थे।

यदि उनमें यह भावप्रवणता न होती तो वह मोतीलालजी होते, यदि उनमें इस भावप्रवणता के साथ वकील की यथार्थवादी तर्कना न होती तो वह गाँधीजी के समीप होते। यों—जैसे थे वैसे—वह दोनों के मिश्रण थे। आशुतोष मुकर्जी-जैसी मेधा उनमें न थी और न उनमें उस गंभीर राजनीतिज्ञ की कला थी जो अपने विरोधी की उछल कूद पर मुसकराता है और बिना अस्थिर हुए उसी के अस्त्रों से उसको काटता जाता है। यह बात आशुतोष बाबू में थी। वह ब्राह्मणसुलभ शान्ति के साथ शत्रु को छकाने में होशियार थे। गवर्नमेण्ट हाउस से आनेवाली चेतावनियों को वह चुटकी बजाकर उड़ा देते थे। दाँव पेंच में ऐसी कुशलता सिवाय मोतीलालजी और विट्ठलभाई के तीसरे हिन्दुस्तानी में देखी न गई।

× × ×

पर चित्तरंजन जो थे, उसी रूप में महान् थे। उनकी दुर्बलताएँ ही उनकी शक्तियाँ हैं। उनमें प्रेम शक्ति अद्भुत थी और वह प्राणशक्ति के रूप में प्रकट हुई थी। वह शक्ति के, उत्साह के, कर्मण्यता के पुंज थे। जब वह बोलते थे तो ऐसा जान पड़ता मानो ज्वालामुखी से अग्निमय 'लावा' निकल रहा है। उनमें जान थी, वह जिये, उन्होंने प्रेम किया, लड़े और कष्ट सहा। उनमें गतिशीलता इतनी अधिक थी कि उनका आक्रमण, उनकी गति को रोकना कठिन हो जाता था। एक प्रकार की आँधी उनके हृदय में उठती और सब जगह छा जाती। ऐसा महाप्राण महापुरुष इधर तो बंगाल में

इसी रूप में महान

कोई हुआ नहीं। वह भाव के पुंज थे, तर्कना के खिलाड़ी थे, विद्रोह और कार्यशक्ति के अवतार थे। लगन के, धुन के पक्के थे। अपने अधिकार के प्रति दूसरों का उँगली उठाना वह सहन नहीं कर सकते थे, इस विषय में वह बड़े ही 'सेन्सिटिव' थे। यही उनका दुर्गुण था। और भी कमजोरियाँ उनमें थीं,—पर उनके साथ भी वह महान् थे। कम से कम एक महान बंगाली तो थे ही। और सब मिलाकर जब हम देखते हैं तो उनको 'देशबन्धु' की उपाधि बिल्कुल ठीक मालूम होती है।

—चार—

साहित्यकार चित्तरंजन

बंगाल के अतिरिक्त अन्य प्रान्तों के राजनीतिक कार्यकर्ताओं में ऐसे बहुत थोड़े होंगे जो यह जानते हों कि चित्तरंजन एक अच्छे कवि भी थे। और सम्भव है उनके कवि होने की बात लोग जानते भी हों पर वह एक उच्च-कोटि के कहानी लेखक थे, इसे तो बंगाल में भी बहुत कम लोग जानते हैं।

चित्तरंजन ने काव्य की वीणा बहुत थोड़े समय के लिये हाथ में ली थी पर उतने समय में भी उन्होंने अपने हृदय के प्रेम को ऐसा प्रवाहित किया कि हृदय का आँचल उससे भीग गया। किशोरकाल की व्यावहारिक जीवन की असफलता, निराशा, वेदना तथा प्रेम सभी इसमें प्रकट हुए हैं। उनके कुछ भक्तों का तो यहाँ तक कहना है कि उनकी कविताओं का स्थान रवीन्द्रनाथ से भी ऊँचा है। इसे मानना तो कठिन है क्योंकि न काव्य और न कल्पना की विशदता की दृष्टि से वह रवीन्द्रनाथ तक पहुँच सके पर हाँ, यह कहा जा सकता है कि कुछ कविताएँ बहुत ही सुन्दर हुई हैं और यदि इस क्षेत्र की ओर वह अग्रसर होते तो एक ऊँचे कवि का स्थान पाने में उनके लिए कोई कठिनाई न होती।

कवि चित्तरंजन

बँगला का प्राचीन काव्य साहित्य हिन्दी के इतना सम्पन्न नहीं है। फिर भी उसमें वैष्णव भक्त कवियों ने जो कुछ लिखा है उसमें एक प्रकार की अपूर्व भक्ति विह्वलता है। इन भक्तों ने अनन्त प्रेम की ज्वाला से काव्य को प्रकाशित किया है और उनके हृदय से जो अमृत मंदाकिनी प्रवाहित हुई है उसने शत शत प्राणों को शीतल किया है। नित्य प्रेमी को एकर जो अंतरस्पर्शी वेदना एवं विरह-कातरता उनके काव्य में प्रकट हुई है उसने पश्चिम के संस्कारों से प्रभावित आधुनिक वंग कविता पर अपनी छाप छोड़ दी है। वह प्रेम जो देह के, मांस पिण्ड के भीतर

समाना—अँटना नहीं चाहता, यहाँ भी उच्छ्वसित होकर प्रकट हो रहा है।

चित्तरंजन का संवेदनशील हृदय ऐसी, वैष्णव रंग में रँगी, कविता के सर्वथा अनुकूल था। इसीलिए उन्हें सफलता भी मिली है। पर इससे

उनकी कविता

यह नहीं कहा जा सकता कि वह प्रथम कोटि के कवि थे। उनमें मौलिकता की कमी है, उन्होंने काव्य को कोई नया रूप नहीं दिया। किन्तु आदर्श से अनुप्राणित एवं सर्वग्राही प्रेम से भरा हुआ उनका हृदय ऐसी कोमल कविता के रूप में व्यक्त हुआ है जैसे जूही की कली से निकलनेवाली मृदु मृदु हलकी सुगंध या नदी में इधर-उधर उड़ती हुई चाँदनी।

उनकी आरंभिक कविताएँ प्राचीन कवियों का अनुकरण हैं। कुछ नवीन स्फूर्ति एवं संवेदनशीलता से अनुप्राणित भी हुई हैं। इनमें 'वारवनिता' तथा दो एक और कविताएँ तो बहुत सुन्दर एवं उत्कृष्ट हुई हैं। धीरे धीरे उनकी शैली परिष्कृत एवं स्पष्ट होती गई है और अभिव्यक्ति में भी एक प्रकार का प्रवाह एवं बल आ गया है। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया है वह वैष्णव कविता के भाव मूल तक पहुँचते गये हैं और ज्यों-ज्यों वह वैष्णव भावना को अधिकाधिक ग्रहण करते गये त्यों-त्यों उनकी कविता में भक्ति का एक उच्छ्वास पैदा होता गया है। यहाँ तक कि अन्तिम दिनों की कविताओं में कोमल धार्मिक भावनाएँ बिलकुल वैष्णव 'स्पिरिट' में व्यक्त हुई हैं जिनमें नित्य प्रेमी के प्रति पूर्ण आत्मार्पण का भाव विद्यमान है।

चित्तरंजन की सब से पहली रचना मालञ्च है। यह उनके कुछ गीतों का संग्रह है और पहली बार १८९५ ई० में प्रकाशित हुआ था। उस समय

मालञ्च

कवि ताजा-ताजा इंग्लैण्ड से लौटा था। उसमें आधुनिक पाश्चात्य भावों की प्रबलता थी। सौन्दर्य में एक आकर्षण, जीवन का एक अस्थिर चंचल आनन्द, मानव-अस्तित्व के रहस्यों को प्रकट करने की चेष्टा, ये सब उनके प्रारंभिक काव्य में व्यक्त हुए हैं।

और इसीलिए, असाधारण न होकर भी, वह साधारण काव्य से ऊँचा है। यह जीवन एवं विश्व के साथ सामञ्जस्य पर शान्ति अनुभव करनेवाली आत्मा का प्रकाश नहीं, विद्रोह के झंझावात में पड़े हुए अस्थिर, चंचल मन का कुतूहल एवं अनिश्चित पर जीवनमय युवक हृदय का उद्गार है।

उदाहरण लीजिए—

तोमार ओ प्रेम सखि, शानित कृपान १।
दिवानिशि करितेछे २, हृदि रक्त पान।
नित्य नव सुख भरे,
झलसिछे रवि करे,
रजनीर अन्धकारे से आलो ३ निर्वाण।
तोमार ओ प्रेम सखि, मरन ४ समान।
जीर्ण श्रान्त जीवनेर शान्ति आवरन।
कोमल तुषार कर,
राखिया ललाट पर,
जुड़ाय ज्वलन्त ज्वाला, आनिया निवान।

प्रेम में वासना और आसक्ति है। इसीलिए इसमें टूटी हुई आशा और निराशा एवं असफल प्रेम का आभास है। यौवन के उन्मद आकर्षण में कवि बहा चला जा रहा है। जीवन पर उनका अंकुश नहीं है, इसीलिए असफलता में इतना तीव्र दंश है।

पर यह तो यह !—जब चित्तरंजन की 'वार वनिता' बाजार में आई तो ब्रह्म समाज में तहलका मच गया। इसमें पतिता का करुण

'वार-वनिता'

वर्णन है। समाज उन्हें देखता है और लज्जा से मस्तक झुका लेता है। वे सब ओर से उपेक्षित हैं। जो उनके भक्त हैं, जो उनसे अपना मनोविनोद एवं शरीर रंजन करते

१ शानित कृपान = तीक्ष्णधार कृपाण। २ करितेछे = कर रहा है या कर रही है। ३ आलो = प्रकाश, आलोक। ४ मरन = सर्प।

है वे भी उनसे घृणा करते हैं। समाज के निकृष्टतम व्यक्ति की भी सहानुभूति उन्हे प्राप्त नहीं है। इन अभागिनियों के जीवन में सुख की कोई रेखा नही, यह वह मरुस्थल है जिसकी जीवन में कोई सीमा नही और जहाँ दूर तक केवल तृष्णा है, जलन है, दुःख है, उत्तप्त बालुका भूमि है। इस रेगिस्तान में कहीं 'ओसिस' नहीं—हरियाली नहीं। अदूरदर्शी लोग इनकी वेश भूषा, शृंगार इत्यादि को देखते हैं,—उनका मोल-भाव होता है। चीज खरीदी और चले गये। लोग समझते ह कि ये सुख से वैभव के साथ रहती ह। लोग उनके शृंगार को, उनके गायन को, उनके खिले चेहरे को देखते ह पर उनकी व्यथा, वेदना किसे मालूम! पर

वेदना के अतल में

कौन जानता है कि उनकी हँसी के पीछ उनका अन्तर विषाद छिपा है? यह कौन जानता है कि उनका कोकिलकण्ठ नि:स्पन्द कल गान उनके चिरोत्थ करुण क्रन्दन का आवरण मात्र है? अपने दुःख को, अपनी हृदय की प्यास को छिपाकर संसार के सामने, उसके रंजन के लिए,—विनोद के लिए, नित्य अपने को सुखी कर रखना कितना कठिन है? जो कुलाङ्गनाएँ हैं पर परिस्थिति एवं समाज की निष्ठुरता के कारण तिरस्कृत होकर पतित जीवन बिताने को बाध्य हुई ह उनके दुःख की तो सीमा ही नहीं। पश्चात्ताप की सुई उनके कलेजे को छेदती रहती है तभी पेट पालन के लिए, और इसलिए कि दूसरा कोई रास्ता लोगों ने रहने नहीं दिया, हँसकर उन्हें दूसरों के प्रति प्रेम प्रकट करना पड़ता है। कैसा भीषण, रोमांचकारी करुण अभिनय है यह! इसे कौन समझता है कि इस उपेक्षिता के अन्दर भी नारीत्व है, जो अतृप्ति और प्यास को लिये हुए कराह रहा है! समाज म सभी दिशाओं म आन्दोलन होता है पर उनकी ओर सहानुभूति की दृष्टि डालने की किसी को फुर्सत नहीं। किसी के ओठों पर दो मीठे शब्द इनके लिए नहीं हैं। चित्तरंजन का विद्रोही और करुण प्रेमी-हृदय इनके इस मूक चिर क्रन्दन के प्रति द्रवित होकर इस कविता में बहा है।

पतिता के क्षुब्ध हृदय-तल पर उठने वाले भाव-तरगों की इससे स्वाभाविक आर्द्रता है। जहाँ फुर्सत मिली, पुरानी स्मृतियाँ, पुराने विचार उठे! माता पिता की याद, सहलियों का विनोद, बाल-जीवन की शत शत स्मृतियाँ, अब जो जीवन अत्यन्त सकुचित हो गया है उसके आँगन में एक के बाद एक नाचती हुई आती हैं। मानो अतीत की समाधि से स्मृतियाँ प्रेतात्माओं के रूप में निकलकर अट्टहास करती हुई नाच रही हैं! हाय, कैसा करुण और व्यथापूर्ण है यह जीवन! और कैसी तरगें उठती हैं जीवन के उजडे दयार में दिए के इस बुझे हुए चिराग के पास!

आमि जेनो चिरदिन ऋणी।
अपार एश्वर्य लये,
बिलाइ भिखारी हये,
वासना विहीन उदासिनी।
लालसा-उल्लासहीन, पूर्ण उदासिनी।
के मरछे मोरे चिर ऋणी,
ओगो आमि यावन योगिनी।
ए विश्व लालसा छाइ,
सबाजे माखिया ताइ,
चलियाछि कलङ्कवाहिना।
चिरदिन यौवने योगिनी।
कार अभिशापे नाहिं जानि।
कान महाप्राणे व्यथा,
दियाछिनु तार हना,
प्राणहीन प्रम विलासिनी।
सवारे विलासि ताइ वारि विलासिनी।
तारियाछे चिर-कलङ्किनी॥

इस कविता में व्यथा और करुणा की धारा बरसाती फल्गु की हरहराहट के साथ बह रही है। यह व्यावहारिक एवं परम्परागत सदाचार की बाँधों एवं चट्टानों को तोडती, सहानुभूति के विस्तृत क्षेत्र में बहती है। कवि की चिरन्तन सहानुभूति चिर सखी-सी पतिता के आँसू पोंछने को आई है। यह पतिता, अंग्रेजी साहित्य के 'डालरस' (Dolores) की भाँति वेदना की—शोक की—नित्यनारी है जो अपने रक्त मांस से दुनिया की वासना की प्यास बुझाने में तिल तिल करके अपने को जला रही है—आत्मघात कर रही है। उसका जीवन एक लम्बा और निरन्तर आत्म-संहार है—, उसकी शर्म, उसका पाप, संसार का विलास एवं सुख है, उसका शोक संसार का हर्ष है।

इस कविता के कारण बड़ा तहलका मचा। सदाचार की पूर्व निश्चित एवं संकुचित सीमा में यह तूफान कहाँ से उठता? अतः

समाज द्वारा विरोध

ब्रह्मसमाजियों द्वारा इसपर अश्लीलता का दोष लगाया गया। पर इससे इस रचना का मूल्य कम नहीं हुआ, बढ़ अवश्य गया। मौलिकता का विरोध तो होता ही है। जब बंकिम ने उपन्यास लिखने शुरू किये तो 'रमणी रूप को प्रधानता देकर भारतीय आदर्श को नष्ट कर रहा है', यह बात लगाकर उनका घोर विरोध हुआ था। पर पीछे उनकी पूजा हुई और वह समाज द्वारा मंत्र दाता राष्ट्रीय ऋषि के रूप में ग्रहण किये गये। यह सदा से होता आया है। पर इन सब विरोधों के बाद भी कहना पड़ता है कि अंग्रेजी साहित्य में स्विनबर्न की 'डालोरस' का जो स्थान है, वही बंगला में चित्तरंजन की इस कविता का है। अंग्रेजी साहित्य के धुरन्धर समालोचक स्व० एडमण्ड गॉस ने 'डालरस' के बारे में ठीक कहा था कि "यह परम्परागत नीति के परित्याग के कारण ही हमारे साहित्य की तीव्रतम नैतिक कविताओं में से एक है।"* निस्सन्देह

* It becomes one of the most poignantly moral poems in our literature by its rejection of conventional morality '

'उर्वशी' तथा चित्तरजन को 'वारवनिता' आधुनिक भारतीय साहित्य , अपने रस में, बेजोड़ एव यकता है।

× × ×

इसी प्रकार चित्तरजन ने ईश्वर पर जो कविता लिखी उससे भी ड़ा तहलका मचा। ब्रह्म समाजियों ने इन्हें नास्तिक समझा। इस

स्तिकता का आरोप

कविता में सृष्टि के असाध्य एव मूक रहस्यों के विरुद्ध विद्रोह करनेवाली आत्मा का तीव्र क्रन्दन । वह सवाल करता है और उसका जवाब चाहता है पर ईश्वर की ोर से कोई उत्तर नहीं। अनन्त मौन ही उसका उत्तर है। ऐसे ईश्वर से व्रक एव उच्छृङ्खल कवि हृदय सन्तुष्ट नहीं। वह अपने व्यथित हृदय । एकान्त में अपना सुन्दर देवता स्वय निर्माण करता है,—ऐसा देवता ो प्रेम करता है, बोलता है। प्रेम विभोर अशान्त एव आकुल कवि में भी इतना शान्ति नहीं आई है कि वह प्रभु की महानता हृदयगम कर के। वह जब अभिलाषाओं की असफलता से निराश एव दुखी होता ; तो फिर ईश्वर के अस्तित्व में ही स दृढ करने लगता है। ऐसे समय न में जो भाव उठते हैं, उसे देखिए—

बूझेछि बूझछि तब
कहिबना किछु। तृषार्त जिज्ञासा मार
आनिछे फिराय तव लोहवक्ष हते
रुद्ध भाषा अश्रुसिक्त लज्जानत आँखि।
शक्तिशील, दृष्टिहीन श्रवणहीन,
निर्मम निष्ठुर तुमि पाषाणेर मत।

"मेरी तृषार्त जिज्ञासा तेरे लौह वक्ष से टकराकर फिर ाती है। तू निर्मम, निष्ठुर, पाषाण को भांति है।"

चित्तरंजन की कविताओं का दूसरा संग्रह 'माला' नाम से ई० में निकला। इन कविताओं में स्वर गंभीर है और विचार संयत है

माला

चित्त की चंचलता दूर हो गई है। अस्थिर मन शान्त है। जहाँ पहली रचनाओं में ईश्वर के अस्ति में सन्देह होता था, वहाँ अब एक सार्वत्रिक सत्ता पर विश्वास जम चला है। अब उसकी लीला का आभास सर्वत्र मिलने के लक्षण दीख पड़ते हैं। प्रेम भी गूढ़ हो चला है —

> केमन से भालवासा ? बला कि से जाय !
> सकल जीवन आर सब स्वप्न गाय
> तोमारि तोमारि गीत । स्रोतस्विनी यथा
> समुद्रेर गान गाय, तारि पाने धाय
> आकुल आशाय !

वह प्रेम कैसा है ? क्या वह कहा जा सकता है। जैसे नदी समु का गान गाती है वैसे ही मैं सम्पूर्ण जीवन और स्वप्न में तेरे गीत गाता हूँ अभी वैष्णव सन्तों का सर्वग्राही प्रेम नहीं है,—उसमें वह व्याप नहीं है पर कवि के हृदय में अपने प्रियतम के लिए बड़ा आग्रह

प्रेम का विकास

उत्कंठा है। कवि की सम्पूर्ण आत्मा उसकी ओर पाग सी दौड़ती है। प्रेम में उपासना का कुछ-कुछ आभा आने लगा है। इसीलिए कोई-कोई कविता इतनी सुन्दर हो गई है उसमें भक्ति विह्वलता का प्रवाह इतना जबर्दस्त है कि रवीन्द्रनाथ गीतांजलि को छोड़ आधुनिक भारतीय साहित्य में वैसे सुन्दर गीत मिल नहीं। फिर जहाँ पहली कविताओं में अभिलाषा-पूर्ति का आग्रह था इनमें सौन्दर्य-दर्शन अधिक स्पष्ट है और प्रेम में प्रियतम के चरणों में मिट जाने का—आत्म त्याग का—भाव भी है। देखिए—

ओगो प्रिय, तुमि मोर सवजीवनेर
चिर प्रेमाजित शत तपस्यार फल ।
खुलिया हृदय द्वार आमि विछाइब
यतना सौन्दय आछे यतना स्वपन,
सर्वकोमलता मोर आमि पेते दिब
तुमि केरे ओगो केरे आमार जीवन ।
तोमार चरणभूमि ।

प्रेम मे आर्द्रता आगइ है। प्रेम पात्र को कवि सम्पूर्ण जीवन की चिर-ामाजित शत शत तपस्याओं के फल के रूप में आवाहन करता है और ुक मस्ती के साथ, बेखुदी ए इश्क मे, कहता है—'हृदय का द्वार खोल र मैं उसमें अपने सारे सौन्दर्य एव स्वप्न को विछाऊँगा, सम्पूर्ण कोमलता ैला दूँगा। तुम मेरे जीवन को अपने चरणों का आश्रय बनालो।'

प्रेम इतना परिष्कृत होगया है कि भक्ति की सीमा को छूता है, प्रिय ाम को देव रूप दे दिया है। इन कविताओं म कवि के हृदय में बढ़ते हुए विवेक एव शान्ति की छाया है। यह स्पिरिट, यह

अन्तर्यामी

भाव प्रवाह उनकी दूसरी,—बाद की रचना—अन्तयामी ें और स्पष्ट हो गया है। यहा प्रेम पात्र की—देवता की—, सर्वव्यापकता ास्पष्ट है। कवि उसे प्रत्येक क्षत्र में अनुभव करता है—

निखिलेर प्रान तुमि। तुमि हे आमार
दिवसेर दिनमणि, निशार आँधार,
जागरणे कर्मभूमि
शयनेर स्वप्न तुमि
आगो सर्व प्राणमय। तुमि जे आमार।

धीरे धीरे निकटता आरही है। उपासक उपास्य से सान्निध्य-लाभ कर रहा है। नीचे का गान देखिए, इसम मिलन का आनन्द है, उपासक की ध्येय प्राप्ति का उल्लास है—

बाजार बाजारे तवे बाना जय डङ्का।
नाहिं लाज नाहिं भय, नाहिं कोन शङ्का।
परानखानि काँपछे कत जय माल्य गले
फूलेर मत कि जानियो फूट् छ हृदितले।
सुखेर मत दु ख आज, दु खेर मत सुख
कोन गानेर गरवे गो भरियाछे बुक?
प्राणेर माझे पाखि सुनि कि नीरव भाषा!
बुकेर माझे कोन् पाखी गो बाँधियाछे बासा।
पायेर तल राजे पथ! प्राण आजि के राजा!
बाजारे बाजारे तवे जय-डङ्का बाजा।

× × ×

सन् १९१२ ई० में 'सागर सगीत' निकला। इसमे कवि मान हृदय के अतलस्पर्शी भावों को छूता है। इसमें रात दिन के प्रकाश और छाया में बदलते रहनेवाले समुद्र के अनेक रंगों की तुलना कवि के सतत-परिवर्तनशील मन से की गई है। कवि की आत्मा और सागर में मानों एक पूर्व निश्चित सामञ्जस्य है। जैसे कवि सागर से भाव ग्रहण करता है वैसे ही मानो सागर कवि की प्रवृत्तियों से भाव ग्रहण करता है। यहाँ तक कि साधक एव साध्य उद्देश्य विधेय एक हो जाते हैं। 'अन्तर्यामी' और 'सागर-सगीत' कवि के सर्वोत्कृष्ट काव्य हैं, जिनमें 'सागर-सगीत' का स्थान बहुत ऊँचा है। इसके अंग्रेजी में भी दो अनुवाद हुए हैं। एक श्रीअरविन्द ने किया और दूसरा श्री ज० ए० चैपमैन ने। इस काव्य मे उषा, मृत्यु और तूफान के ऐसे सुन्दर वर्णन हैं कि वर्दों की याद आ जाती है।

सागर सगीत

'किशोर किशोर' में वैष्णव प्रभाव बहुत स्पष्ट हो गया है। इन प्रेम का आनन्द है,—उस आनन्द में आत्मा विपची के स्वर प्रवाह की भाँति तरंगित हो रही है। यह प्रेम मानवी है पर इश्वराभिमुख है।

यह प्रेम की नित्यता का गान है। प्रेम एक क्षण में, परिपूर्ण हो उठता है पर उसी क्षणिक पूर्णता में असंख्य युग चक्कर काटकर निकल जाते हैं।

किशोर किशोर

कली प्रभात में सूर्य का चुम्बन प्राप्त करने को खिल उठती है पर उस किरण-स्पर्श में अनन्त जीवन जाग्रत होकर कली को स्पर्श करता, जीवन देता और खिलाता है। इसी प्रकार कवि पूछता है—"सन्ध्या के इस आकाश के नीचे हमारा यह मिलन !— क्या यह जीवन का क्षणिक उपकरण है ? क्या तुम्हारी आँखों के प्रकाश में वह उल्लास नहीं है जिसका एक जीवन के बाद दूसरे जीवन में मैं स्वप्न देखता रहा हूँ ? क्या मैं तुम्हें युग-युग से, अपने अनेक जन्मों और पुनर्जन्मों में, समय के अनन्त प्रवाह में, जानता और प्रेम नहीं करता रहा हूँ ? आज वह समय आया है जब इस आकाश के नीचे हमारा मिलन हुआ है,—क्योंकि शत शत जन्मों की आकांक्षा को आज पूर्णता प्राप्त हुई है।"

इसमें शुद्ध वैष्णव भाव—वैष्णव प्रेम विकीर्ण हुआ है।

× × ×

जीवन के अन्तिम वर्षों में चित्तरंजन ने जो कविताएँ लिखीं उनमें वैष्णव-वृत्ति स्पष्टतर होती गई है। जमीन वही है। मिलन के लिए उत्कण्ठित

अन्तिम जीवन की कविताएँ

प्रेम—वह प्रेम जो काँटों के समान दिल में चुभता है पर सुगन्ध के समान मस्त करता और आलिंगन के समान विस्मृतिकारी आनन्द से मन को पूर्ण कर देता है। पर पिछली कविताओं में यह जीवनमय होता गया है। यहाँ वेदना अश्रुमय होकर आनन्द में बदल जाती है और मृत्यु रक्त सिंचित होकर जीवन का रूप धारण करती है। इन कविताओं में रंगआमेजी नहीं, अलंकारिता नहीं, पर यहाँ आवाज मुँह से नहीं, दिल से निकल रही है और सीधे दिल तक पहुँचती है।

चित्तरजन को काव्य की आराधना के लिए बहुत थोडा समय मिल था। उनका जीवन कानून और राजनीति के बीच सदा झूलता रहा। प इस कर्म-कोलाहल में, जीवन के सघर्षों के बीच, उदारता के रूप में, मानव सेवा तथा देश प्रेम के रूप में सदा उनकी आदर्शवादिता, उनक हृदय को लेकर प्रकाशित होती रही।

पर चाहे चित्तरजन ने थोडा लिखा हो और चाहे वह प्रथम कोटि का न हो पर जीवन के सत्य का बोध कराने म वह उनके अन्य क्षेत्रों में किये हुए कार्यों से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। यह इसलिए कि विशाल पुष्प रिणी के नीचे जो सोते हैं वे यहाँ दिखाई पडते हैं। यह इसलिए कि इनमें उनकी आत्मा बोलती है,—उनका व्यक्तित्व इसम प्रतिफलित है।

× × ×

यह बात ध्यान मे रखने की है कि चित्तरजन रवीन्द्रनाथ की शैली के विरोधी थे। उनकी प्रारभिक कविताओं पर रवीन्द्रनाथ का किंचित

रवीन्द्र शैली के विरोधी

प्रभाव दिखाई देता है पर दिन दिन वह उससे दूर होते गये हैं और पिछली कविताओं में बिलकुल अलग होकर सामने आते हैं। चित्तरजन पश्चिम के प्रभाव से उत्पन्न सब प्रकार की कृत्रिमताओं के विरोधी थे। उन्हें वैष्णव सन्त कवियों का प्रेम-वर्णन बहुत ऊँचा मालूम पडता था, उसमें एक अद्भुत सरसता थी। इस विषय पर चित्तरजन ने 'बगाल का गीति-काव्य' नाम से एक विचारपूर्ण निबन्ध भी लिखा था जिसमें दोनों 'स्कूलों' के तात्विक भेद का निदर्शन किया है। उनके मत से प्राचीन स्कूल बगाल की प्रकृति, भावना और प्रतिभा के अधिक अनुकूल है।

लेखक और पत्रकार

चित्तरंजन समय समय पर पत्रों में लिखा भी करते थे। उन्होंने 'नारायण' नामक विख्यात मासिक का बगला में सचालन किया था। इसमें विपिनचन्द्रपाल, महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री—जैसे लेखक लिखा करते थे। पाठ असहयो-

आन्दोलन में, प्रचार की सुविधा के लिए, उन्होंने कलकत्ता से अंग्रेजी दैनिक 'फारवर्ड' निकाला। इस पत्र ने बंगाल के समाचारपत्रों के बाजार में बड़ी सफलता प्राप्त की थी।

× × ×

चित्तरंजन की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। उनकी 'डालिम' कहानी इस बात का प्रमाण स्वयं उपस्थित करती है कि यदि वह लिखते तो उच्च

कहानी-लेखक

कोटि के कहानी-लेखक होते। यह लम्बी कहानी, जिसका अनुवाद 'मतवाला' में उसके शिशु-काल में निकला था, बड़ी सुन्दर है। उसमें मनोभावों का, परिस्थिति के मानसिक प्रभावों का तथा चरित्र का बड़ा ही सुन्दर चित्रण है। सब के ऊपर, मानो सब भावों को दबाकर, एक मानवी सहानुभूति चतुर्दिक दौड़ गई है। इन सब बातों का निष्कर्ष यह कि चित्तरंजन में एक श्रेष्ठ कवि और साहित्यकार के उपकरण थे। वाणी और लेखनी दोनों पर उनका अधिकार था और उन्होंने, उस थोड़े-से समय में, जो सार्वजनिक जीवन के संघर्ष के बीच उनको मिला, जितना किया, बहुत किया।

—पाँच—

स्मृति के फूल !

चित्तरंजन ने भय को कभी मन में स्थान नहीं दिया । वह स्वभा से ही निर्भय थे । यदि किसी की गलती समझ लेते या अन्याय दे

निर्भयता

लेते और उन्हें विश्वास हो जाता कि यहाँ गल हो रही है तो लोकप्रियता नष्ट हो जाने के डर से चुप नहीं बैठते थे । श्रीमनमोहन भट्टाचार्य लिखते हैं—

"बुलडाना में जो महाराष्ट्र राजनीतिक सम्मेलन हुआ था, उसके सभापति देशबन्धु ही थे । इन सम्मेलन में उन्होंने बारडोली के निर्ण का विरोध करते हुए कहा था कि 'कांग्रेस में घोर अव्यवस्था और धाँधली चल रही है ।' सार्वजनिक रूप से उनके इस विरोध से उनके अनेक साथी भी सहमत न थे । मुझसे रिपोर्ट तैयार करने में 'बाम्बे क्रानिकल' के विशेष प्रतिनिधि की सहायता करने को कहा गया था। चूँकि देशबन्धु ने कान्फ्रेंस में सार्वजनिक रूप से यह बात कही थी इस लिए मैंने उसे रोकना उचित न समझा, यद्यपि मुझे उससे सन्तोष न था । जब दूसरे दिन ट्रेन नागपुर पहुँची, मैं 'बाम्बे क्रानिकल' ढूँढ़ने के लिए उतरा, इधर उधर दौड़ने के बाद एक प्रति मुझे मिल गई। यह देख कर मुझे एक प्रकार का सन्तोष हुआ कि सम्पादक ने निन्दा के वे शब्द निकाल दिये हैं । मेरी यह उत्कण्ठा देखकर देशबन्धु ने पूछा—'क्या बात है ?' और जब मैंने उन्हें कारण बताया तब उन्होंने अपनी स्वाभाविक निर्भयता के साथ जवाब दिया—"जिस बात को मैं ठीक समझता हूँ उसे मुझे अवश्य कहना चाहिए चाहे उसका परिणाम कुछ भी हो । कब तक इसे दबाया जा सकता है ?" और मद्रास में उन्होंने बारडोली के

प्रस्ताव की इन्हीं शब्दों में निन्दा की। मोतीलालजी और मालवीयजी ने उनसे सफाई माँगी या वक्तव्य वापस लेने को कहा। देशबन्धु ने अपना मतलब साफ तौर से समझाते हुए दूसरी वक्तृता तो दी पर वक्तव्य वापस नहीं लिया। उस समय उनके चेहरे पर आत्म विश्वास और दृढ़ता की अपूर्व झलक थी।"

निस्सन्देह वह एक अत्यन्त साहसी पुरुष थे। साहस में वह खतरा उठाने को तैयार एक क्रान्तिकारी के समान थे। पद्मा में बाढ़ आ रही है, नाव डूबने डूबने को हो रही है, नाविकों के होश फाख्ता हैं पर सार्वजनिक कार्य के आगे जीवन तुच्छ है! देशबन्धु अपनी धुन और लगन में चले जा रहे हैं।

× × ×

जब देशबन्धु बुलडाना में थे तो वहाँ के डिपुटी-कमिश्नर ने उन्हें चाय पीने और राजनीति पर बातचीत करने के लिए निमन्त्रित किया। समय की कमी से देशबन्धु ने निमन्त्रण अस्वीकार करने का निर्णय किया पर जब उन्हें बताया गया कि समय का अभाव नहीं है, समय तो निकल सकता है क्योंकि ट्रेन में देर थी तो उन्होंने कहा—"इसका नतीजा क्या होगा? वह कुछ मीठे असत्य कहेगा और मुझे भी लगभग वही करना पड़ेगा। इससे न जाना ही अच्छा है।"

व्यर्थ विवाद से घृणा

× × ×

जब देशबन्धु किसी बात का निश्चय कर लेते थे तो फिर रात दिन कुछ नहीं देखते थे। स्वराजदल के सगठन के समय उन्होंने सम्पूर्ण भारत को अपने व्याख्यानों, लेखों एवं योजनाओं से भर दिया था। लगन और धुन के वह पक्के थे। मद्रास कांग्रेस के समय का एक उदाहरण दे देना ठीक होगा। उनके प्राइवेट सेक्रेटरी श्री मनमोहन बाबू लिखते हैं—

विश्राम के लिए समय नहीं!

"एक दिन उन्होंने मुझसे कहा कि १२॥ बजे मोटर तैयार क्योंकि शहर के बाहर जाना है। यह कहकर वह तड़के ही चले दोपहर को लौटे। यह सोचकर कि अभी वह थके-माँदे लौटे हैं, आध घण्टा विश्राम मिलना चाहिए, मैंने श्रीरंगस्वामी ऐयंगर से की जगह १ बजे मोटर भेजने को कहा लेकिन मेरे विश्वास के वि १२॥ बजे तक स्नान और भोजन से निपटकर देशबंधु ने मोटर माँ मैं चकित हो गया और बोला—"मैंने यह सोचकर कि आप अभी हैं, थोड़े विश्राम की जरूरत होगी, १ बजे गाड़ी मँगवाई है।" इ देशबंधु ने मेरी इतनी भर्त्सना की कि मेरा आँखों में आँसू आ मैं उनके कमरे से चला आया और चन्द मिनटों के बाद जब उन्हें कुछ तार देने के लिए मुझे बुलाया तो न गया। आसाम के श्री आर० फूकन उनके साथ थे। उन्होंने देशबंधु से कहा—"आपने इ तरह उसे डाँटा है कि वह आपके सामने न आयगा।" तब देशबंधु स्वयं मेरे पास आये और पकड़कर ले गये। उस समय उनके चेहरे पर जो का जो भाव था, उसे मैं कभी भूल नहीं सकता।" इस प्रकार एक मिन विश्राम किये बिना वह दिन रात काम करते रहते थे। सार्वजनिक कार्य में वह इतना मग्न हो जाते थे कि विश्राम का ध्यान उन्हें बहुत कम रहता था।

× × ×

देशबंधु में जातीय श्रेष्ठता की भावना बिलकुल न थी। एक बार वह एक मित्र के साथ मद्रास में मोटर से कहीं जा रहे थे कि पंचम (अछूत) उधर से गुजरे। उन्हें देखकर मित्र ने कहा—"ये अनार्य उद्गम के मालूम पड़ते हैं।" देशबंधु ने शान्तिपूर्वक कहा—"क्या स्वयं अपने रक्त की रासायनिक परीक्षा करके देखोगे कि उसमें भाग आर्य है?"

जातीय श्रेष्ठता का भावना का अभाव

उदारता म चित्तरंजन की तुलना हो कैसे की जा सकती है ? यह तो उनके जीवन का नशा था। इसी के पीछे उन्होंने अपने को फकीर बना दिया। जो आया, खाली हाथ नहीं लौटा। एक बार की बात है कि डाक्टरी पढ़नेवाला एक छात्र सहायतार्थ उनके घर पहुँचा। उनके क्लर्क ने यह कहकर उसे वापस करना चाहा कि इस समय रुपये का अभाव है। देशबन्धु ने सुन लिया और बोले—"छात्र को खाली हाथ लौटाने की अपेक्षा मेरा फर्नीचर नीलाम कर दो।"

उदारता

× × ×

देशबंधु में अपने मित्र एवं अनुयायियों के लिए पूर्ण वफादारी की भावना थी। इसीलिए अपने दल पर उनका प्रभाव था। सत्यमूर्ति ने इस सम्बन्ध में एक व्यक्तिगत घटना का जिक्र करते हुए लिखा है—"१९२३ ई० म जब देशबंधु मेरे प्रान्त (मद्रास) म दौरा कर रहे थे तब एक सज्जन ने, जो युनिवर्सिटी के क्षेत्र से, मेरे विरुद्ध, मद्रास कौंसिल के लिए खड़े हुए थे, उनसे कहा कि आप सत्यमूर्ति को बैठा दें और बदले में वह असेम्बली के लिए खड़े हों तो मैं उन्हें सहायता दूँगा और २०००) निर्वाचन व्यय के लिए भी दूँगा।" देशबन्धु ने कहा—"यदि तुम स्वराज दल के कोष में एक लाख रुपये दो तो मैं सत्यमूर्ति से बैठ जाने के लिए कहूँगा। स्वराज दल के लिए उसकी सेवा इतने से कम की नहीं है।"

वफादारी

× × ×

चित्तरंजन उन आत्माओं में से थे जिन्हें रुपये से प्रभावित नहीं किया जा सकता था। वह रुपये को पानी की तरह खर्च करते थे। कभी उसके गुलाम नहीं हुए, सदा उसे गुलाम रखा। इस सम्बन्ध में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना का जिक्र करना आवश्यक है। १९२१ की बात है, शायद अक्तूबर का महीना था। चित्तरंजन कुछ मित्रों के साथ किसी

चित्तरंजन की महानता

योजना पर विचार कर रहे थे कि एक महाजन अपना कर्ज उगा आया। उसके लगभग पाँच हजार रुपये बाकी निकलते थे। उसे दूसरे दिन आने को कहा गया तो भुनभुनाने और मुँह बनाने लगा संयोग की बात कि इसी समय एक भारतीय तालुकेदार ने कमरे प्रवेश किया। पहले चित्तरंजन इनके मुकदमे की पैरवी कर चुके थे साल के प्रारंभ में छोड़ दिया था। उसने देशबन्धु से पुनः वह मुकद हाथ में लेने की प्रार्थना की और इसके लिए एक लाख रुपये पारश्रमि देने को कहा। 'न' कहने पर दो लाख कहा और अन्त में, यह सम कर कि और रुपये चाहते होंगे कहा कि आप स्वयं जो उचित सम अपना पारश्रमिक कह दें, मैं उतना ही दे दूँगा।' पर चित्तरंजन ने शान्तिपूर्वक मुसकराते हुए इन्कार कर दिया। इतने समय तक वा महाजन, जिसने कर्जा दिया था, बैठा हुआ सब सुन रहा था। वह आश्चर्य विमूढ़ हो गया था और जब चित्तरंजन कमरे के बाहर निकले तो वा नशे में डूबे हुए आदमी की तरह, पीछे पीछे बाहर आया और हाथ जोड़ कर, आँखों में आँसू भर हुए बोला—

"देवता! देवता! मेरी आँखों के सामने ही आपने दो लाख रुपये त्याग दिये और मैं ५०००) रुपये का तकाजा करने आपके पास आया। रहने दीजिए हमारे रुपये।"

× × ×

२ श्री वरदाप्रसन्न पैन ने लिखा है कि एक बार मैं चंदा उगाहने देशबन्धु को हवड़ा के प्रमुख नागरिकों के पास ले गया था। चंदे में अच्छी रकम मिली थी। जब मैं मोटर से उन्हें घर ले जा रहा था तो एक सज्जन का घर मिला जो देशबन्धु द्वारा खड़े किये गये आदमी से बंगाल कौंसिल के निर्वाचन में हार चुके थे। स्वयं देशबन्धु ने, इस सम्बन्ध में, अनेक सभाओं में भाषण किया था और एक सभा में इन हारे हुए महाशय ने उनका अपमान भी किया था और उनपर सार्व

जनिक धन के दुरुपयोग का भी इल्जाम लगाया था। जब देशबन्धु को मालूम हुआ कि हम लोग उनके मकान के पास से गुज़र रहे हैं तो उन्होंने मोटर खड़ी कराई और मकान के अन्दर जाने को तैयार हो गये। मैंने उन्हें रोका, उस घटना की याद दिलाई और कहा कि संभव है वह मनुष्य फिर आपका अपमान कर बैठे। देशबन्धु ने उत्तर दिया "इससे क्या? मैं अपने लिए भिक्षा माँगने नहीं जा रहा हूँ, मैं देश के लिए भीख माँगने जा रहा हूँ। वह इन्कार नहीं कर सकते।" फलतः वह अन्दर गये और परिणाम यह हुआ कि वह आदमी देशबन्धु के चरणों में गिरा और एक अच्छी रकम भेंट की।

यह देशबन्धु की महानता थी!

× × ×

देशबन्धु की भाषण शक्ति भी एक विशिष्ट प्रकार की थी। वह जब बोलते थे तो ऐसा मालूम पड़ता था कि उनके हृदय के अत्यन्त भीतरी तह से शब्दों का सजीव प्रवाह निकल रहा है। उसमें मन प्राण सब भीग जाते थे। उसमें विपिन बाबू की दहाड़ न थी, मोतीलालजी के चुभनेवाले व्यंग उसमें न होते थे फिर भी विशाल जन समूह उनके भाषण से इस तरह हिल उठता था जैसे आँधी में पत्ता हिलता है या जैसे मदारी की तुमड़ी से साँप मुग्ध होकर नाचने लगता है। ऐसा क्यों? इसलिए कि बोलते समय उनके चेहरे पर अपूर्व दृढ़ता, आँखों में आकर्षण, ओठों पर हँसी एवं जिह्वा पर चुने हुए प्रभावशाली एवं मधुर शब्द होते थे। शब्द आग फूँकने वाले, वाक्य चोट करने वाले एवं तर्क आँधी की तरह विरोधी को जड़-मूल से उखाड़ फेंकनेवाले होते थे। जब गया में युवकों से उन्होंने अपील की—

भाषण–शक्ति

"क्रोध तुम्हारे लिए नहीं है घृणा तुम्हारे लिए नहीं है, न तुम्हारे लिए क्षुद्रता, नीचता, कपट और झूठ है क्योंकि तुम उषा की आशा और

प्रभात का विश्वास हो।" *

तब पण्डाल में बैठे प्रत्येक युवक का दिल विपची के तार के समान झनझना रहा था।

इसी प्रकार कोकनद (कोकनाडा) कांग्रेस में जब वह दहाड़कर बोले—"आप पैक्ट से बंगाल को निकाल सकते हैं पर आप कांग्रेस के इतिहास से बंगाल को नहीं निकाल सकते।" †

फलतः सब को बंगाल के इस प्रतिनिधि के सामने सिर झुकाना ही पड़ा।

× × ×

उनकी देश भक्ति बड़ी गहरी थी। वह उनके लिए धर्म थी। उनके ये शब्द याद आते हैं—"अपने देश के लिए काम करना मेरे लिए, मेरे धर्म का ही एक अंग है। वह मेरे जीवन के सम्पूर्ण आदर्श का ही भाग है। मैं अपने देश की धारणा से ईश्वरत्व की अभिव्यक्ति पाता हूं।" ‡

'लिबर्टी' के सम्पादक श्री सत्यरंजन बख्शी ने देशबंधु के चरणों में श्रद्धा के फूल समर्पित करते हुए बड़े ही भावपूर्ण शब्दों में लिखा था—

* 'Anger is not for you hatred is not for you nor for you is pettiness, meanness or falsehood For you is the hope of dawn and the confidence of the morning."

† "You can delete Bengal from the Pact, but you can not delete Bengal from the history of the Congress you can not delete Bengal from the map of India."

‡ "...It ...try is a part of my religion ...fin... is the ...o idealism of my life. I ...on also of divinity"

"बगाल रोता था, सारा भारत रोता था—और जार-जार रोता था। अब बगाल को त्याग की वह शाहाना प्रवृत्ति, प्राण मय, जीवन मय वह भावना कहाँ मिलेगी? बगाल वह जीवनप्रद व्यक्तित्व कहाँ पावेगा, वह खतरे की परवा न करनेवाली दृढ़ता, जो शोक म सान्त्वना देती थी और मृत्यु को तिरस्कृत एव पराजित करती थी, कहाँ मिलेगी? कवि और देशभक्त, देशबन्धु का जीवन एक गीत—एक भावोद्रेक—त्याग और कष्ट सहन की एक चपणव स्वर लहरी था। कवि और देश भक्त—जिस स्वाधीनता के वह प्रेमी थे और जिस पर मरने के लिए जिये और जिसे प्राप्त करने म मरे, वह केवल सैद्धान्तिक वस्तु न थी। उनका प्रेम अपने स्वप्नो को मूर्तिमान करनेवाले पुजारी का प्रेम था—एक प्रगाढ़ प्राणमय प्रेम। हाय! बगाल वह व्यक्तिगत स्पर्श फिर कहाँ पावेगा?"

जैसा कि किसी ने कहा है—

'निश्चय ही देशबधु युवक बगाल के सबसे अधिक जीवन दायी नेता थे'। (greatest and most dynamic leader which young Bengal has ever known or seen) महात्माजी ने उनकी मृत्यु पर ठीक ही लिखा था—

"मनुष्यों मे एक देव गिर गया। आज बगाल एक विधवा के समान है।"

× × ×

प्रगाढ़ देश प्रेम, अद्भुत लगन, मनस्विता, असीम उदारता तथा जीवन दायी शक्ति ये सब गुण चित्तरजन में इतने सुन्दर रूप म व्यक्त हुए थे कि उनकी दुर्बलताएँ उनके अन्दर छिप जाती ह और नगण्य हो जाती हैं। इन गुणों के कारण न केवल उनके समर्थक वरन् उनके विरोधी भी उनकी स्मृति म बराबर प्रशसा के फूल बरसाते रहे हैं। उनके उठ जाने के बाद उनकी महानता को बगाल ने देखा। जिस दिन वह उठे उस दिन से मानों बगाल के जीवन मे एक दरार पड गई है जिसका भरना अयन्त

प्रभात का विश्वास हो।" *

तब पण्डाल में बैठे प्रत्येक युवक का दिल विपची के तार के समान झनझना रहा था।

इसी प्रकार कोकनद (कोकनाडा) काग्रेस में जब वह दहाड़कर बोले— "आप पैक्ट से बगाल को निकाल सकते ■ पर आप काग्रेस के इतिहास से बगाल को नहीं निकाल सकते।" †

फलत सब को बगाल के इस प्रतिनिधि के सामने सिर झुकाना ही पड़ा।

× × ×

उनकी देश भक्ति बड़ी गहरा थी। वह उनके लिए धर्म थी। उनके ये शब्द याद आते हे—"अपने देश के लिए काम करना मेरे लिए, मेरे धर्म का ही एक अग है। वह मेरे जीवन के सम्पूर्ण आदर्श का ही भाग है। मैं अपने देश की धारणा से ईश्वरत्व की अभिव्यक्ति पाता हूं।" ‡

'लिबर्टी' के सम्पादक श्री सत्यरजन बख्शी ने देशबन्धु के चरणों में श्रद्धा के फूल समर्पित करते हुए बड़े ही भावपूर्ण शब्दों में लिखा था—

---

* 'Anger s not for you hatred is not for you nor for you is pettiness meanness or falsehood For you is the hope of dawn and the confidence of the morning '

† You can delete Bengal from the Pact but you can not delete Bengal from the history of the Congress you can not delete Bengal from the map of India.

‡ With me work for my country is a part of my religion ——It is the part and parcel of all the idealism of my life. I fin n the conception of my country the expression also of divinity

"   बंगाल रोता था, सारा भारत रोता था—और जार-जार रोता था। अब बंगाल को त्याग की वह शाहाना प्रवृत्ति, प्राण-मय, जीवन-मय वह भावना कहाँ मिलेगी? बंगाल वह जीवनप्रद व्यक्तित्व कहाँ पावेगा, वह खतरे की परवा न करनेवाली दृढ़ता, जो शोक में सान्त्वना देती थी और मृत्यु को तिरस्कृत एवं पराजित करती थी, कहाँ मिलेगी? कवि और देशभक्त, देशबन्धु का जीवन एक गीत—एक भावोद्रेक—त्याग और कष्ट-सहन की एक वैष्णव स्वर-लहरी था। कवि और देश भक्त—जिस स्वाधीनता के वह प्रेमी थे और जिस पर मरने के लिए जिये और जिसे प्राप्त करने में मरे, वह केवल सैद्धान्तिक वस्तु न थी। उनका प्रेम अपने स्वप्नों को मूर्तिमान करनेवाले पुजारी का प्रेम था—एक प्रगाढ़ प्राणमय प्रेम। हाय! बंगाल वह व्यक्तिगत स्पर्श फिर कहाँ पावेगा?"

जैसा कि किसी ने कहा है—

'निश्चय ही देशबंधु युवक बंगाल के सबसे अधिक जीवन दायी नेता थे'। (greatest and most dynamic leader which young Bengal has ever known or seen) महात्माजी ने उनकी मृत्यु पर ठीक ही लिखा था—

"मनुष्यों में एक देव गिर गया। आज बंगाल एक विधवा के समान है।"

× × ×

प्रगाढ़ देश प्रेम, अद्भुत त्याग, मनस्विता, असीम उदारता तथा जीवन दायी शक्ति ये सब गुण चित्तरंजन में इतने सुन्दर रूप में व्यक्त हुए थे कि उनकी दुर्बलताएँ उनके अन्दर छिप जाती हैं और नगण्य हो जाती हैं। इन गुणों के कारण न केवल उनके समर्थक वरन् उनके विरोधी भी उनकी स्मृति में बराबर प्रशंसा के फूल बरसाते रहे हैं। उनके उठ जाने के बाद उनकी महानता को बंगाल ने देखा। जिस दिन वह उठे उस दिन से मानों बंगाल के जीवन में एक दरार पड़ गई है जिसका भरना अत्यन्त

प्रभात का विश्वास हो।" ✲

तब पण्डाल में बैठे प्रत्येक युवक का दिल विपची के तार के समान झनझना रहा था।

इसी प्रकार कोकनद (कोकनाडा) कांग्रेस में जब वह दहाड़कर बोले—
"आप पैक्ट से बंगाल को निकाल सकते हैं पर आप कांग्रेस के इतिहास से बंगाल को नहीं निकाल सकते।" †

फलतः सब को बंगाल के इस प्रतिनिधि के सामने सिर झुकाना ही पड़ा।

× × ×

उनकी देश भक्ति बड़ी गहरी थी। वह उनके लिए धर्म थी। उनके ये शब्द याद आते हैं—"अपने देश के लिए काम करना मेरे लिए, मेरे धर्म का ही एक अंग है। वह मेरे जीवन के सम्पूर्ण आदर्श का ही भाग है। मैं अपने देश की धारणा से ईश्वरत्व की अभिव्यक्ति पाता हूँ।" ‡

'लिबर्टी' के सम्पादक श्री सत्यरंजन बख्शी ने देशबन्धु के चरणों में श्रद्धा के फूल समर्पित करते हुए बड़े ही भावपूर्ण शब्दों में लिखा था—

✲ 'Anger is not for you hatred is not for you nor for you is pettiness meanness or falsehood For you is the hope of dawn and the confidence of the morning '

† You can delete Bengal from the Pact but you can not delete Bengal from the history of the Congress you can not delete Bengal from the map of India

‡ 'With me work for my country is a part of my religion ... ... It is the part and parcel of all the idealism of my life. I find in the conception of my country the expression also of divinity

बगाल रोता था, सारा भारत रोता था—और जार-जार रोता था। अब बगाल को त्याग की वह शाहाना प्रवृत्ति, प्राण मय, जीवन-मय वह भावना कहाँ मिलेगी ? बगाल वह जीवनप्रद व्यक्तित्व कहाँ पावेगा, वह खतरे की परवा न करनेवाली दृढ़ता, जो शोक में सान्त्वना देती थी और मृत्यु को तिरस्कृत एव पराजित करती थी, कहाँ मिलेगी ? कवि और देशभक्त, देशबन्धु का जीवन एक गीत—एक भावोद्रेक—त्याग और कष्ट सहन की एक वैष्णव स्वर लहरी था। कवि और देश भक्त—जिस स्वाधीनता के वह प्रेमी थे और जिस पर मरने के लिए जिये और जिसे प्राप्त करने म मरे, वह केवल सैद्धान्तिक वस्तु न थी। उनका प्रेम अपने स्वप्नों को मूर्तिमान करनेवाले पुजारी का प्रेम था—एक प्रगाढ प्राणमय प्रेम। हाय ! बगाल वह व्यक्तिगत स्पर्श फिर कहाँ पावेगा ?"

जैसा कि किसी ने कहा है—

'निश्चय ही देशबन्धु युवक बगाल के सबसे अधिक जीवन दायी नेता थे'। (greatest and most dynamic leader which young Bengal has ever known or seen) महात्माजी ने उनकी मृत्यु पर ठीक ही लिखा था—

"मनुष्यों में एक देव गिर गया। आज बगाल एक विधवा के समान है।"

× × ×

प्रगाढ देश प्रेम, अद्भुत लगन, मनस्विता, असीम उदारता तथा जीवन दायी शक्ति ये सब गुण चित्तरजन म इतने सुन्दर रूप में व्यक्त हुए थे कि उनकी दुर्बलताएँ उनके अन्दर छिप जाती हैं और नगण्य हो जाती हैं। इन गुणों के कारण न केवल उनके समर्थक वरन् उनके विरोधी भी उनकी स्मृति में बराबर प्रशसा के फूल बरसाते रहे हैं। उनके उठ जाने के बाद उनकी महानता को बगाल ने देखा। जिस दिन वह उठे उस दिन से मानों बगाल के जीवन मे एक दरार पड गई है जिसका भरना अत्यन्त

कठिन है। वह परिपूर्ण-से होकर, बंगाल के सम्पूर्ण जीवन में समा गये थे। इसलिए उनका अभाव केवल राजनीतिक क्षेत्र में ही अनुभव नहीं होता वरन् जीवन की प्रत्येक दिशा में होता है। वह अभाव इतना बड़ा है कि आजतक उसकी पूर्ति नहीं हुई और आगे बहुत दिनों तक कोई संभावना भी नहीं है। बंगाल का सारा जीवन विच्छिन्न, विश्रृंखल, तितर बितर हो रहा है। जिनको शक्ति देकर देशबंधु ने शक्तिमान बना दिया था, वह श्री सुभाष बोस, वह विधानराय और वह जतीन्द्रमोहन सेन* सभी परिस्थिति को संभालने में अपने को असहाय पाते हैं। ये लोग जितना संभालते हैं, परिस्थिति उतनी ही जटिल और निराशाजनक होती जाती है और असमर्थ बंगभूमि, चित्तरंजन के अभाव में, विधवा सी, बिलख कर कहती है —

'पड़े हैं सूरते नक्शे क़दम न छेड़ा हमें,
हम और खाक में मिल जायँगे उठाने से।'

---

* यह चरित और विश्लेषण जतीन्द्र बाबू के जीवन-काल में ही लिखा गया था। अब तो वह भी चले गये इसलिए बंगाल और गरीब है।

जीवन-तालिका*

१८७०	५ नवम्बर	पटलडांगा स्ट्रीट, कलकत्ता के एक मकान मे जन्म। अवस्था प्राप्त होने पर भवानी पुर के एल० एम० एस० इस्टिट्यूशन एवं प्रेसीडेंसी कालेज में शिक्षा।
१८९०		प्रेसीडेंसी कालेज से बी० ए० पास किया और उसी वर्ष इंग्लैण्ड गये।
१८९१		इंडियन सिविल सर्विस की परीक्षा में बैठे पर उत्तीर्ण नहीं हुए।
१८९२		'मिडिल टम्पुल' से बैरिस्टर हुए।
१८९३		भारत लौटे और कलकत्ता हाईकोर्ट में बैरिस्टरी शुरू की।
१८९५		'मालञ्च' (प्रथम काव्य संग्रह) प्रकाशित हुआ।
१८९७	३ दिसम्बर	श्री वरदा हल्दार की कन्या कुमारी बासन्ती से विवाह।

* श्री पी० सी० राय की पुस्तक से।

१९०६	१९ जून	दीवालियेदन को दरखास्त, पिता के साथ, दी।
	दिसम्बर	पहली बार प्रतिनिधि बनकर कॉंग्रेस में शामिल हुए।
१९०७ ८		सुररिया-जमींदारी केस हाथ में लिया। महाबाधव उपाध्याय का मुकदमा। विपिनचन्द्र पाल का मुकदमा।
१९०८		अरविन्द घोष तथा मानिकतल्ला बम षड्यन्त्र के अन्य अभियुक्तों की पैरवी की।
१९११		ढाका षड्यन्त्र के अभियुक्तों की पेरवी की।
१९१३	१४ मई	अपना और अपने पिता का सारा ऋण चुका कर दिवालियेपन की घोषणा रद्द कराई। 'सागर-संगीत' प्रकाशित हुआ।
१९१४	जुलाई	पुरलिया म पिता की मृत्यु। राजघराने के एक दूर के सम्बन्धी केशव प्रसाद सिंह की ओर से डुमरांव-केस हाथ में लिया।
१९१७		बंगाल प्रान्तीय कान्फ्रेंस, भवानीपुर के अध्यक्ष हुए।
१९१८		टाउनहाल म 'भारत-रक्षा विधान' (डिफेंस आव् इण्डिया ऐक्ट) की निन्दा करते हुए भाषण किया

१९१९		कोंग्रेस की जलियाँवाला बाग जाँच-समिति के सदस्य। अमृतसर कोंग्रेस में प्रथम बार अड़गा नीति का प्रस्ताव। कलकत्ता मैदान की विराट सभा में रौलट ऐक्ट के विरोध-स्वरूप महात्मा गांधी के निष्क्रिय प्रतिरोध (सत्याग्रह) आन्दोलन का समर्थन।
१९२०	मार्च	महात्मा गांधीजी ने सरकार से असहयोग करने की घोषणा की।
	४ सितम्बर	लाला लाजपतराय की अध्यक्षता में हुई कलकत्ता की विशेष काँग्रेस में महात्माजी के असहयोग-कार्यक्रम का विरोध किया।
	दिसम्बर	श्री विजयराघवाचार्य की अध्यक्षता में हुई नागपुर काँग्रेस में असहयोग-कार्यक्रम को अपनाया।
१९२१	जनवरी	बैरिस्टरी छोड़ दी।
		पूर्व बंगाल आसाम में राजनीतिक दौरा। ढाका में राष्ट्रीय विद्यापीठ की स्थापना। जिला मजिस्ट्रेट द्वारा मैमनसिंह जिले में प्रवेश करने की रोक। निषेधाज्ञा उठाई गई। मैमनसिंह, तंगैल, हबीगंज, मौलवी बाजार, सिलहट, कोमिल्ला, चटगाँव

		इत्यादि का दौरा। वारीसाल सम्मेलन में प्रतिनिधि रूप में सम्मिलित हुए।
१९२१	२५ नवम्बर	स्वयसेवक दल गैर-कानूनी घोषित। सार्वजनिक सभाओं पर रोक। कलकत्ता आगमन पर लार्ड रीडिंग ने बगाल-सरकार द्वारा जारी किये गये दमन के अस्त्रों का समर्थन किया।
	२७ नवम्बर	कॉग्रेस कमिटी ने स्वयसेवक-दल के गैर-कानूनी घोषित करने एव सार्वजनिक सभाओं की रोक—सम्बन्धी सरकारी कानूनों को अमान्य करने का निश्चय किया।
	२८ नवम्बर	खिलाफत कमिटी ने कॉग्रेस-कमिटी के उपर्युक्त निश्चय को स्वीकार किया। बगाल की कॉग्रेस एव खिलाफत कमिटियों द्वारा चित्तरजन दास 'डिक्टेटर' बनाये गये।
		डिक्टेटर की हैसियत से चित्तरजन ने कई विज्ञप्तियाँ निकालीं और १० लाख स्वयसेवकों के लिए अपील की। सरकार ने इन विज्ञप्तियो को एव स्वयसेवकों की अपील का गैर-कानूनी घोषित किया।

१९२१	३० नवम्बर	बंगाल के गवर्नर लार्ड रोनाल्डशे ने, कलकत्ता के सेण्ट एण्डरूज भोज में, चित्तरंजन की बड़ी प्रशंसा की पर शासन के सम्बन्ध में धमकी एवं चेतावनी भी दी।
	६ दिसम्बर	बहुत से स्वयं सेवक, जिनमें चित्तरंजन के पुत्र भी थे, बड़ाबाजार में गिरफ्तार हुए।
	७ दिसम्बर	अन्य स्वयंसेवकों के अलावा, चित्तरंजन की पत्नी, बहन तथा अन्य महिलाएँ गिरफ्तार हुईं पर थोड़ी देर बाद छोड़ दी गईं।
	१० दिसम्बर	क्रिमिनल ला अमेण्डमेण्ट ऐक्ट की १७ वी धारा के अनुसार चित्तरंजन गिरफ्तार हुए।
	२५ दिसम्बर	चूँकि विचाराधीन कैदी थे इसलिए अहमदाबाद कांग्रेस के अध्यक्ष चुने जाने पर भी उसका सभापतित्व न कर सके। दिल्ली के हकीम अजमलखां उनकी जगह पर अध्यक्ष हुए।
		प्रिंस ऑफ वेल्स का कलकत्ता-आगमन तथा जबर्दस्त हड़ताल।
१९२२	–	–कांग्रेस सविनय अवज्ञा समिति ने रिपोर्ट दी कि अभी समय अनुकूल नहीं है।

	६ जनवरी	चित्तरंजन को छ महीने की सजा हुई।
		गोलमेज सम्मेलन के लिए रीडिंग माल-वीय समझौता। महात्माजी की स्वीकृति की शर्त के साथ चित्तरंजन का समर्थन।
	जुलाई	जेल से आने पर मिर्जापुर पार्क (कलकत्ता) में अभिनन्दन पत्र अर्पण।
	दिसम्बर	गया कांग्रेस का सभापतित्व तथा स्वराज दल की स्थापना।
१९२३	सितम्बर	अंग्रेजी दैनिक 'फारवर्ड' निकाला।
		कांग्रेस के दिल्ली विशेषाधिवेशन में कौंसिल प्रवेश की अनुमति।
	दिसम्बर	मौलाना मुहम्मदअली की अध्यक्षता में हुई कोकनद (काकनाडा) कांग्रेस में कौंसिल प्रवेश का प्रस्ताव पास हुआ।
		कौंसिल में स्वराजियों का प्रवेश तथा सर सुरेन्द्रनाथ और श्री एस० आर० दास-जैसे प्रमुख लिबरलों की हार।
		बंगाल की कौंसिल में बहुमत दल के रूप में स्वराजियों का प्रवेश।
		गवर्नर लार्ड लिटन द्वारा देशबंधु को मंत्रिमण्डल बनाने का निमंत्रण, देशबंधु की अस्वीकृति।

		स्वतन्त्रदल वालों से समझौता ।
		हिन्दू मुस्लिम पैक्ट ।
		भारतीय ट्रेड यूनियन काग्रेस के लाहौर अधिवेशन की अध्यक्षता ।
.२४	जनवरी	लार्ड लिटन के मन्त्रित्व ग्रहण करने के प्रस्ताव को अस्वीकार किया ।
		स्वराजियों का कलकत्ता कार्पोरेशन पर अधिकार । देशबंधु प्रथम मेयर निर्वाचित हुए ।
	२४ मार्च	बगाल कौंसिल म मन्त्रियों के वेतन का बजट (२,२ ०००० रु०) अस्वीकार करने का प्रस्ताव । प्रस्ताव के पक्ष में ६३ और विपक्ष में ६२ मत आये ।
	अप्रैल	सिराजगज कान्फ्रेंस और गोपीनाथ साहा सम्बन्धी प्रस्ताव । देशबधु ने काग्रेस की ओर से तारकेश्वर के महन्त के विरुद्ध लगाये इल्जामों की जांच के लिए कमिटी नियुक्त की ।
		तारकेश्वर में सत्याग्रह का आरम्भ ।
		महन्त सतीशगिरि से समझौता ।
		भारतीय ट्रेड यूनियन काग्रेस के चतुर्थ अधिवेशन (कलकत्ता) की अध्यक्षता ।

१९२४	दिसम्बर	महात्मा गाँधी की अध्यक्षता में हुई बेलगाँव कांग्रेस म शामिल हुए।
१९२५	मार्च	रीडिंग-बर्केनहेट दास की समझौते की बात चीत ।
		बंगाल-कौंसिल म मन्त्रियों का वेतन अस्वीकार करने का प्रस्ताव । प्रस्ताव के पक्ष में ६९ और विपक्ष में ६३ मत।
		अपनी सारी सम्पत्ति का ट्रस्ट बनाकर देश को अर्पण ।
	३० मार्च	हिंसात्मक कार्यों की निन्दा करते हुए विज्ञप्ति निकाली ।
	४ अप्रैल	दमन और हिंसात्मक कार्यों की निंदा करते हुए दूसरी विज्ञप्ति निकाली।
	२ मई	फरीदपुर कान्फ्रेंस के अध्यक्ष पद से दिये अपने भाषण म सम्मानपूर्ण समझौते का प्रस्ताव ।
	१६ मई	दार्जिलिंग-आगमन ।
	१६ जून	५ बजकर १५ मिनट पर सन्ध्या के समय दार्जिलिंग में देहावसान ।



जवाहरलाल नेहरू

जवाहरलाल नेहरू

[१]

जन्म

१४ नवम्बर १८८९ ई०

"In bravery he is not to be surpassed Who can excel him in the love of the country? He is rash and impetuous say some This quality is an additional qualification at the present moment And if he has the dash of and the rashness of a warrior he has also the prudence of a statesman A lover of discipline, he has shown himself to be capable of rigidly submitting to it even where it has seemed irksome He is undoubtedly an extremist thinking far ahead of his sorroundings × × He is pure as the crystel, he is truthful beyond suspicion He is a knight sans peur, sans reproache The nation is safe in his hands

Mahatma Gandhi.

× × ×

"बहादुरी में कोई उनसे बढ़ नहीं सकता और देश-प्रेम में उनके आगे कौन जा सकता है? कुछ लोग कहते हैं कि वह जल्दबाज़ और अधीर है। यह तो इस समय एक गुण है। फिर जहाँ उनमें एक वीर योद्धा की तेज़ी और अधीरता है वहाँ एक राजनीतिज्ञ का विवेक भी है। × × वह स्फटिक मणि की भाँति पवित्र है, उनकी सत्यशीलता संदेह के परे है। वह अहिंसक और अनिन्दनीय योद्धा है। राष्ट्र उनके हाथ में सुरक्षित है।"

—महात्मा गाधी (१९२९ में)

"*He has the dash of a warrior, the prudence of a statesman He is pure as the crystal, truthful beyond suspicion He is a knight sans peur sans raproche The nation is safe in his hands*"

—MAHATMA GANDHI.

—एक—

वह जमाना !

कितनी जल्द दिन आते और चले जाते हैं ! बारह वर्ष बीत गये ! असहयोग के तूफानी दिन थे, राष्ट्र के हृदय ने पहली बार व्यापक उद्वेलन का अनुभव किया था। गाँव और शहर एक हो रहे थे। बूढ़े और जवान, पिता और पुत्र, माएँ और बेटियाँ, बहनें और पत्नियाँ एक साथ उठ खड़ी हुई थीं। प्राणों में पीड़ा, जीवन में उन्माद, हृदय में विश्वास, आँखों में आत्मोत्सर्ग का तेज तथा गालों पर आशा निराशा की धूप छाँह लिये राष्ट्र का शरीर आनन्द से काँप रहा था। बच्चे, जिनके दूध के दाँत भी न टूटे थे, भरी हुई 'प्रिजनवानों' (जेल की मोटरों) को देखकर उछलते और जय के नारे लगाते थे। भीतर बैठे हुए कैदियों के दिल बाँसों उछलते। स्नेह और कर्तव्य के सतत संघर्ष से आकुल बहनें रोती आँखों और, उससे भी बढ़कर, रुँधे हृदय, पर गर्व से फूलती हुई

छाती से, बिना एक शब्द बोले, उस त्याग को गौरव अर्घ्य देती थीं। मित्र जल को रवाना होते समय ऐसे चिपट जाते थे मानो शरीर की भिन्नता स्नेह की धारा में विलीन करके छोड़ेंगे। गँवार, गाधी टोपी पहन कर किसी को आते हुए देखते तो समझते कि हमारा भाइ आ गया! चोर और गिरहकट, गुण्डे और बदमाश भी, जेल म या जल के बाहर, राजनीतिक कैदियों एव कार्यकर्ताओं से मिलते समय अपने सस्कार भूल जाते थे। सी० आइ० डी० और सेना के आदमी इस अहिंसात्मक त्याग, परवाने की भाँति लगन की लौ म जल मरने की आकाक्षा लिये आठों पहर चलनेवाले दीवानों या यह पागलपन देखकर हैरान थे! आह! क्या दिन थे! क्या समय था? जागरण के पूर्व, प्रभात के सुखद एव मधुर स्वप्न की भाँति दिल में एक सिहर पैदाकर चला गया। जानता हूँ आज स्वप्न टूट गया है और उसके साथ, जैसा स्वाभाविक है, दिन के जागरण की किरणें फैल गइ हैं पर वह बात कुछ और थी। स्वप्न सदा जागरण से अधिक गतिमान और अधिक आकर्षक होता है! वह स्वप्न था, चला गया, यह जागरण है, आया है।

× × ×

उन्हीं आशाओं और निराशाओं, उछलते हृदयों और उछालनेवाली कल्पनाओं के स्वप्न-युग म, राष्ट्र की पुकार पर, मैं अपने, आज जेलों में सडने अथवा घर-गृहस्थी में फँसकर, गहरे जल म डूबते जरा तैरना जाननेवाले के समान उभ चुभ करते हुए साथियों के साथ, अवध के किसानों की झोपडियों के बीच घूमता फिरता था। पचायतें पुनर्जीवित की जा रही थीं, गरीबी से झुलसी हुइ हड्डियों को, जिनका रक्त विदेशी शासन की व्यापारी जिह्वा ने चूस लिया था, मिला मिलाकर खडा किया जा रहा था। पुलिस वाले यहाँ से वहाँ, वहाँ से यहाँ भागते फिरते थे। पटाखों मे उन्ह 'बम' का भ्रम होता था। सडक पर, स्टेशनों पर, गाड़ियों में, 'अनारकिस्टों' के ये अवैतनिक रक्षक सर्व-व्यापक से हो

रहे थे। रात को डेरे के चारों ओर चारपाइयाँ डाल कर ये पहरा देते। तब भी कुछ न हुआ, काम चलता रहा। अवध के दुर्बल किसान एक शक्ति बनकर उठ खड़े हुए। सरकार घबरा गई, १४४ दफा लगाकर ५ पाँच आदमियों से अधिक का एकत्र होना जुर्म करार दे दिया। जटिल परिस्थिति थी। सुनते ही जवाहरलाल प्रयाग से मोटर पर दौड़े आये। तब पहली बार दोपहर के समय, कड़ी तपन में, सुल्तानपुर की एक धूल-भरी सड़क पर खड़े-खड़े, पर बहुत नजदीक से, जवाहरलाल को देखा। लोग घेरकर उनसे बातें कर रहे थे और मैं, राष्ट्रीय संग्राम के इस सदेह काव्य को, आँखों से, पीने में तल्लीन था। उनकी दृढ़ता और नरमी, उनका जोश और संयम, उनकी अमीरी और गरीबी, उनका त्याग और आत्माभिमान सब एक साथ ही उनके चहरे पर छाया चित्र की भाँति नाच रहे थे।

पीछे मुझे मालूम हुआ कि अवध का यह सारा किसान-आंदोलन इसी अमल धवल पर कर्तव्य-कठोर युवक द्वारा संचालित हो रहा है।

—दो—

कुछ स्फुट चित्र

एक लम्बा, छरहरे बदन का गोरा नौजवान, ऊपर से नीचे तक निर्मल, स्वच्छ श्वेत खादी से लिपटा हुआ। चौड़ा ललाट, ममता उत्पन्न करने वाली सतेज आँखें पतले और अभिव्यक्तिशील (Expressive) ओठ एव मुँह—यह जवाहरलाल है! यह प्रौढ़ युवक, जिसका सौन्दर्य और जिसकी स्थिति एक राजकुमार की थी, आज स्वाधीनता का अलख जगाता हुआ, काँटों का ताज पहनकर, कुछ अजीब दीवानेपन के साथ, देश म घूमता फिरता है!

जवाहरलाल के भाषण पढ़ने और फिर उनसे मिलने के बाद कितना अन्तर नजर आता है! कहाँ एक आमूल क्रांतिकारी और कहाँ एक मिलनसार, हँसमुख, बेतकल्लुफ तथा सहृदय युवक! छात्रों में, युवकों म, सिपाहियों में, राजनीतिज्ञों में, वह जहां रहते हैं वहीं लोगों को अपनी ओर आकर्षित करते ह। इसका कारण यह है कि उनका 'अहम्' उनके गरीब से गरीब के साथ मिलने में भी बाधक नहा होता। एक बार की बात है, उनकी प्यारी पत्नी, भारतीय स्त्रीत्व की मूर्ति, बहन कमला बीमार थी। एक दिन तबियत एकाएक बडी खराब हो गई। दूसरे दिन अपने छोटे-से दुर्बल अस्तित्व को सकोच म और भी सकुचित करता, तर्क वितर्क म डूबा हुआ मैं उनसे कुछ जरूरी बातें करने उनके 'आनन्द भवन' गया।

इन्सानियत

दरवाजे पर ही नौकर से मुझे मालूम हुआ कि इस समय अपनी पत्नी की बीमारी की [illegible]ट और सेवा शुश्रूषा म लगे हुए हैं। प० मोतीलाल जी बैठ, आये हुए महत्वपूर्ण पत्रों को पढ़कर एक तरफ रखते जा रहे थे। नौकर ने न जाने क्या सोचकर मेरा कार्ड मागा और ऊपर जाकर 'छोटे सरकार'—जवाहरलाल जी—को

दिया। वह दवा दारू का काम छोड़ चट नीचे दौड़ आये और बड़े प्रेम से मिले। मुझे जबदस्ती अपनी कोच पर बिठाया और देर तक साहित्य एवं समाज की बातें करते रहे। हिन्दी में समाज निर्माण सम्बन्धी विवेचनात्मक साहित्य के अभाव को वह बहुत अनुभव करते थे और उन्होंने कहा—"तुम लोग साहित्य तो अच्छा निकाल रहे हो पर वह सामयिक ही अधिक है। अब इस दिशा में प्रयत्न करो।" मैंने उस समय देखा, कैसी बेतकल्लुफी है इस आदमी में! जवाहरलाल इस बात को कभी नहीं भूलते कि पहले वह मनुष्य हैं, फिर देश के एक सेवक हैं। और किसी नेता से दिल खोलकर, इस तरह बैठकर बातें करना कभी सम्भव नहीं। मैंने उन्हें कालेज के लड़कों में मिलकर, उन्हीं का बनकर, घुल घुलकर बातें करते देखा है। यह हृदय के यौवन का लचीलापन है जो प्रेम के आगे, भाव के सम्मुख अपनी मर्यादा और अपने महत्त्व को भूल जाता है। जवाहरलाल को इस रूप में देखकर अंग्रेजी कवि की ये लाइनें बार-बार याद आती हैं—

Glorious it was to have been alive
But to be young was very Heaven

× × ×

जवाहरलाल का गार्हस्थ्य जीवन बड़ा मधुर है। इस मधुरता में, कर्तव्य की तुरशी अवश्य है पर इससे तो उसका महत्त्व बढ़ ही गया है। मैंने छोटे बड़े अनेक नेताओं को देखा है जो अपने सामाजिक या सार्वजनिक जीवन से घरेलू जीवन का सामञ्जस्य स्थापित नहीं कर पाते। उनके घर में प्रेम की वह धारा दिखाई नहीं देती जिसे दूसरों में बहाने के लिए उनके सारे उपदेश और सारी क्रियात्मक शक्तियाँ लग रही हैं, पति पत्नी का, भाई-बहन का, पिता पुत्र का सम्बन्ध निरानन्द हो रहा है पर जवाहरलाल के यहाँ यह बात नहीं। साध्वी कमला का समय

जवाहरलाल की चिन्ता म जाता है और जवाहरलाल, खतरों के बीच निर्द्वन्द्व प्रवेश करत हुए भी, अपनी जीवन-संगिनी को नहीं भूलते। एक बार वहन कमला को, जब मैं जल म था, वहीं दखा। हम लोगों से मिलने आई थी। मैं देखकर चौंक पडा। नेहरू-परिवार की यह देवी कैसी सूखी, कैसी गम्भीर और भोलेपन की दुनिया म विचरती मालूम पडती थी! कठोर कर्तव्य स उत्पन्न वेदना एक ओर, और पति की शुभाकांक्षा से उत्पन्न प्रेम की गरिमा दूसरी ओर। वह जवाहरलाल पर गर्व करती है पर सदैव उसे उनकी चिन्ता लगी रहती है। अच्छी तरह जानती है कि जिस रास्ते में पैर डाला है उसमें कठिनाइयाँ पग पग पर हैं, गिरफ्तारी और जल की कठोरता की पूरी सभावना है पर दिल नहीं मानता, ममता मानने नहीं देती गो उस गौरव की ऊँचाई पर उठते देखकर हृदय फूला भी नहीं समाता। यह प्रेम का तकाजा है, जिस पर कर्तव्य ने भारी टैक्स लगा दिया है। उस टैक्स के भार से प्रेम में कमी नहीं आती क्योंकि वह दिल का सौदा है, इसे दोनों जानते ह। फिर भी कमला इन संघर्षों की खींचातानी म क्षीण होती जाती है। उसके हृदय में पति के कष्टों के लिए जहाँ गौरव है, वहाँ दु ख भी है। यह दु ख प्रेम की असफलता का दु ख नहीं, उसकी अधिकता का है। दूसरे सत्याग्रह-संग्राम के समय, जब जवाहरलाल जल में थे, वह बनारस आई थीं। बहुत क्षीण एव दुर्बल हो गई थीं। जब एक मित्र ने उनसे पूछा कि पण्डितजी को जल में क्या काम दिया गया है तब बोलीं—"रस्सी बटते हैं।" पर कहत कहते गला भर आया, मानो प्रश्न की चोट सीधे कलेजे में जा बैठी हो। इस वेदना में निश्चय ही वैभव की स्मृति की कचट भी है पर प्रेम उसकी आत्मा है। १९२६–२७ म तो राज्यक्ष्मा के भी चिन्ह प्रकट होने लगे थे जिससे जवाहरलाल को स्वीजरलैण्ड जाना पडा, जिसका फल यह हुआ कि बहुतों की नजरों म जवाहरलाल और 'भयकर' बनकर स्वदेश लौटे।

पिता पुत्र का स्नेह तो बहुतों को मालूम है। महाराज महमूदाबाद-जैसे ताल्लुकेदारों की घनिष्ठता में आराम और आसाइश की जिन्दगी बसर करने वाले मोतीलालजी, अपने इकलौते पुत्र जवाहर के स्नेह से खिंचकर ही असहयोग आन्दोलन की आँधी में आ पड़े थे और तब से, मृत्यु के दिनतक, स्वभाव एवं प्रकृति भिन्न होते हुए भी आजादी की लड़ाई में उन्हें बढ़ना ही पड़ा। जवाहरलाल के कष्टों पर कितनी ही बार उनकी आँखों में आँसू आ जाते थे। जवाहर के रूप में मोतीलालजी ने अपना कलेजा देश की वेदी पर निकालकर चढ़ा दिया और सब कुछ होने पर भी कभी-कभी जवाहरलाल को खतरों के बीच निःशंक घुसते देख या अपने शरीर की परवा न करते देख मोतीलालजी झुंझला पड़ते और कभी स्वयं लड़कर एवं कभी महात्माजी को पंच बनाकर अपने प्रेम की भूख मिटा लेते थे।

—तीन—

जीवन-कथा

बीच में जवाहरलाल की जीवन कथा की कुछ साधारण बातें भी कर लें।

जवाहरलाल उच्च काश्मीरी ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए हैं। इनके पितामह प० गंगाधर नेहरू दिल्ली में कोतवाल थे। १८६१ में गंगाधरजी की मृत्यु हो गई। उस समय उन्हें वंशीधर एवं नन्दलाल नामक दो पुत्र थे। मृत्यु के ३ ४ महीने बाद प० मोतीलालजी नेहरू का जन्म हुआ।

प० मोतीलाल की बुद्धि तीव्र थी। प्रयाग आकर पढने लगे। वहाँ से इण्ट्रेंस और फिर आगरा कालेज से उच्च श्रेणी में एफ० ए० की परीक्षा पास की। फिर वकालत की परीक्षा देकर २१ वर्ष की अवस्था में कानपुर में वकालत शुरू की। ३ वर्ष तक कानपुर में सफलतापूर्वक वकालत करने के बाद १८८६ ई० में यह हाईकोर्ट में वकालत करने के विचार से प्रयाग आये। अपने सूक्ष्म विवेचन और तर्क शक्ति से बहुत जल्द वहाँ के नामी वकीलों में हो गये। बड़े-बड़े ताल्लुकेदारों और राजा महाराजाओं के मुकदमे उनके पास आने लगे। शीघ्र ही उनकी गिनती भारतवर्ष के प्रथम श्रेणी के वकीलों में हो गई।

उस समय मोतीलाल जी प्रयाग के मीरगंज मुहल्ले में रहते थे।

जन्म

यहीं १४ नवम्बर १८८९ ई० को श्रीमती स्वरूप रानी नेहरू के पेट से जवाहरलाल का जन्म हुआ। इसके पहले मोतीलाल जी की प्रथम पत्नी का देहान्त हो चुका था

तथा पहली संतान भी मर चुकी थी, इसलिए मोतीलाल जी पुत्र को बहुत

बचपन की एक आदत

मानते थे। यह बच्चा माता पिता का जीवन-सर्वस्व था, उनकी सारी ममता उसी में केन्द्रीभूत हो गई थी। प्यार से सब इन्हें 'नन्हा' कहते थे। नन्हा कभी-कभी बड़े मजे करता था। उसकी एक आदत तो बड़े विनोद की वस्तु थी। मचलने और रोने उसे दूर ही न लगती थी, जब रोने की उमंग आती, बेबात रोने लगता और जब कोई कारण पूछता तो फिर और जोर जोर से पूछने वाले का नाम लेकर रोता और कहता—"हम इसने मारा है।" दूसरा कोई पूछता तो उसे ही मारनेवाला बतलाता। जैसे जैसे पूछनेवाले बदलते जाते वैसे ही वैस मारनेवाले का नाम भी बदलता जाता। उसकी इस लीला पर लोग खूब कहकहे लगाते थे।

सन् १९०० ई० में मोतीलाल जी ने मुरादाबाद के जज कुँअर परमानन्द का बँगला खरीदा और उसे भोग विलास की सामग्री से सुसज्जित कर 'आनन्द भवन' बना दिया। आज तो यह पुराना आनद भवन, स्वराज्य भवन के रूप में कांग्रेस की सम्पति हो गया है। और मिटते हुए वैभव की परछाईं-मात्र रह गया है।

जवाहरलाल का बचपन इन्हा आराम आसाइश की परिस्थितियों में बीता। दाइयाँ—और अंग्रेज दाइयाँ सदा खिदमत में हाजिर रहती थीं।

दृढता के लक्षण

पिता पुत्र के कपड़े पेरिस से धुलकर आते थे। यह सब था पर जवाहरलाल बचपन से ही शान्त एवं गंभीर थे, प्रत्येक बात को गंभीर दृष्टि से देखते थे। जो बात उन्हें ठीक जँच जाती उसे करने से न चूकते थे।

६ से १२ वर्ष तक घर पर योग्य अध्यापकों द्वारा सामान्य शिक्षा

घर पर शिक्षा

दी गई। घर पर ही पढ़ना-लिखना, खेलना-कूदना सब-कुछ होता था। घोड़े पर चढ़ना, फुटबाल और टेनिस खेलना और घर के छोटे जल कुण्ड में तैरना इत्यादि उनके नित्य

के विनोद थे। इसके बाद १२ वर्ष की अवस्था में प्रसिद्ध थियोसोफिस्ट श्री एफ० टी० ब्रुक्स तथा गवर्नमेण्ट हाइ स्कूल प्रयाग के तात्कालिक हेड-मास्टर श्री गार्डन इनके शिक्षक नियत हुए। श्री ब्रुक्स एक स्वाधीन एव विद्वान् विचारक तथा भारतीय संस्कृति के प्रेमी थे। उनके व्यक्तित्व का बालक जवाहरलाल पर बड़ा प्रभाव पड़ा।

अंग्रेज होते हुए भी श्री ब्रुक्स बड़े ही शांति प्रेमी थे। हिन्दू वेश म सादी चाल से रहते थ। अधिकाश समय आध्यात्मिक चितन म जाता था। ईश्वर म उनका अगाध विश्वास था। मास

श्री ब्रुक्स का प्रभाव

मदिरा से उन्हें अरुचि थी। पाश्चात्य रग म रंगे मोतीलाल जी के कुटुम्ब में उनका प्रवेश ही एक आश्चर्य जनक घटना सी मालूम होती है। उन दिनों का आनन्द भवन पश्चिम के मोहक वातावरण में मुग्ध था। विलास जवानी पर पहुँच चुका था। कभी अठखेलियाँ करता, कभी गुदगुदाता—चारों तरफ विनोद करता फिरता था। चारों ओर वही वह था। उसके बीच अपनी सात्विक पूँजी का प्रकाश लिये यह हृदय का हिन्दू और जाति का अंग्रेज, जाति के हिन्दू और हृदय के अंग्रेज मोतीलालजी के बच्चे जवाहरलाल पर अपने संस्कार डाल रहा था। केवल साहित्य ज्ञान कराना ही श्री ब्रुक्स का उद्देश्य न था। बालक के जीवन को सदाचरणशील बनाने की ओर ही उनकी अधिक रुचि थी। जवाहरलाल म शिक्षा पर अमल करने की दृढता खूब थी। दो एक उदाहरण यहाँ दूँगा। एक दिन अध्यापक महोदय ने बताया कि मास खाना पाप है। शिष्य ने मन में इसकी गाँठ बाँध ली। खाने के समय टेबुल पर बैठते ही कहा—"मैं मास न खाऊँगा। ब्रुक्स मास्टर साहब से मालूम हुआ है कि मास खाना पाप है।" इसी प्रकार कुछ दिनों बाद ब्रुक्स साहब के आदेश पर उन्होंने थियेटर सिनेमा जाना भी छोड़ दिया। मोतीलाल जी को यह बात अच्छी न लगी। वह तो दूसरे प्रवाह में बह रहे थे अत कुछ दिनों बाद उन्होंने इस योग्य शिक्षक

को अलग कर दिया । जवाहरलाल फिर पाश्चात्य जीवन और रहन-सहन के प्रवाह में बहने लगे । पर वह संस्कार तो बीज की तरह उनके भीतर रह ही गया था । असहयोग-काल में, ओस सुरन पर, वह, फिर राख के भीतर पड़ी आग की तरह, स्वतन्त्रता की हवा लगते ही, चमक उठा । उनके मानसिक विकास पर आज हम थियोसफी की उदार भावना—'स्पिरिट'— तथा सौन्दर्यानुभूति की छाप देखते हैं ।

विलायत-यात्रा

सन् १९०४ ई० में पं० मोतीलाल जी ने पुत्र को विलायत भेजकर उच्च शिक्षा दिलाने का निश्चय किया पर उससे विशेष स्नेह होने के कारण इकले भेज न सके और सपरिवार इंग्लैण्ड गये । वहाँ के प्रसिद्ध प्राचीन स्कूल हैरो (हैरो ऑन् दि हिल *) में इनका नाम लिखा गया । इंग्लैंण्ड के अनेक राजनीति-विशारदों एवं विचारकों ने यहाँ शिक्षा पाई है । लार्ड हेस्टिंग्स, सरजान शोर, मार्किज वेलजली, लार्ड डलहौजी, लार्ड लिटन, लार्ड हार्डिंज इत्यादि भारत के पूर्व गवर्नर-जनरल एवं वायसराय, पामर्सटन, राबर्ट पील बाल्डविन इत्यादि इंग्लैण्ड के प्रधान मन्त्री तथा शेरीडन, बायरन, विन्स्टन चर्चिल इत्यादि नाटककार, कवि एवं राजनीतिज्ञ यहीं की उपज हैं । इंग्लैण्ड के सार्वजनिक जीवन पर इस विद्यालय ने बड़ा प्रभाव डाला है । इस स्कूल का अध्ययन बड़ा व्यय साध्य है पर पंडितजी ने रुपये को पानी की भाँति खर्च करके पुत्र को पढ़ाया । इनके सहपाठियों में कपूरथला के युवराज, महाराज गायकवाड़ के पुत्र स्व० राजकुमार जयसिंह, सर सुलेमान (आजकल इलाहाबाद के चीफ़ जस्टिस) इत्यादि प्रमुख थे । इस स्कूल से इन्ट्रेंस की परीक्षा पासकर जवाहरलाल, केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के सुप्रसिद्ध 'ट्रिनिटी कालेज' में भरती हुए और जूलोजी

---

* यह स्कूल लंदन से दस मील दूर, 'मिडिल-सेक्स' ग्राम की सुरम्य पहाड़ी पर स्थित है ।

(जन्तु विज्ञान), बाटनी (वनस्पति विज्ञान) एवं केमिस्ट्री (रसायन) में सम्मान सहित बी० ए० की परीक्षा पास की। जवाहरलाल की असाधारण योग्यता से कालेज के अध्यापकों और संचालकों ने संतुष्ट होकर, बिना परीक्षा लिए इन्हें एम० ए० आनर्स का सर्टिफिकेट दे दिया। ट्रिनिटी कालेज में इनके सहपाठियों में श्री शेरवानी, श्री ए० एम० ख्वाजा, डा० महमूद, डा० किचलू इत्यादि थे। स्व० श्री जे० एम० सेनगुप्त इस समय तक कालेज की पढ़ाई लगभग समाप्त कर चुके थे। यह भी जवाहरलाल के लिए एक सौभाग्य की बात है कि आगे चलकर इन सहपाठियों में प्राय सभी उनके साथ भारतीय स्वाधीनता के संग्राम में

बैरिस्टर

वीरता पूर्वक खड़े हुए और पहले का वह परिचय एक दूसरे के प्रति आदर एवं सम्मान में बदलता गया। यहाँ की शिक्षा समाप्त कर, बैरिस्टरी की शिक्षा ग्रहण करने के लिए यह लन्दन के 'इनर टेम्पुल' में प्रविष्ट हुए और १९१२ ई० में 'बार एट-ला' की डिग्री प्राप्त कर ली।

इसके बाद, १९२० ई० तक प्रयाग हाईकोर्ट में पिता के साथ बैरिस्टरी करते रहे। फरवरी १९१६ ई० में, दिल्ली में, पं० जवाहरलाल कौल की पुत्री कुमारी कमला से, बड़ी धूम धाम के साथ, इनका विवाह हुआ। इस विवाह में कितने ही उच्च युरोपियन, एंग्लो इंडियन भी निमंत्रित होकर आये थे। १९१७ ई० में पुत्री इन्दिरा का जन्म हुआ। १९२४ में आपको एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ था पर जन्म के तीसरे ही दिन जाता रहा।

—चार—

सार्वजनिक जीवन

जवाहरलाल शुरू से ही बड़े कोमल हृदय के रहे हैं। कालेज की पढ़ाई के समय ही भारत में होनेवाले अत्याचारों की ओर इनकी दृष्टि थी। उस समय ला० हरदयाल भी इंग्लैंड में ही थे। भारतीय छात्रों की सभा में अकसर राजनीति की चर्चा चलती रहती थी। स्वदेश लौटते ही (१९१२ में), पटना कांग्रेस में शामिल हुए और तबसे प्राय प्रत्येक कांग्रेस-अधिवेशन में भाग लेते रहे हैं। सन् १९१४ ई० में प्रवासी भारतवासियों की सहायता के लिए श्री गोखले के अपील करने पर उन्होंने पचास हजार रुपये संग्रह कर अफ्रीका भेज थे। यूरोपीय महायुद्ध के बाद डा० एनी बेसेण्ट के 'होमरूल' आन्दोलन में इन्होंने जोरों से भाग लिया। यदि मेरी स्मरण शक्ति मुझे धोखा नहीं देती तो प्रयाग की होमरूल लीग के यह शायद कोई पदाधिकारी भी थे और सुन्दरलालजी के साथ मिलकर काम करते थे। फिर १९१९-२० में अवध के किसानों में काम करने लगे। इनकी दृढ़ता के कारण यह आंदोलन सफल हुआ और सरकार को 'अवध टिनेंसी' कानून बनाकर किसानों की स्थिति में सुधार करने को बाध्य होना पड़ा।

होमरूल आन्दोलन में

इसी वर्ष, महायुद्ध में अपनी अनुपम सेवाओं के पुरस्कार में, भारत को जलियाँवाला हत्याकाण्ड के अपमानों का अनुभव करना पड़ा। कितने ही निहत्थे भारतीय जेनरल डायर की गोलियों द्वारा भून दिये गये, प्रतिष्ठित नागरिकों के साथ पशुओं सा व्यवहार किया गया और बहुत भी राज द्रोह के अभियोग में फाँसे गये। इस हत्याकाण्ड की जाँच करने के लिए जवाहरलाल भी पिता के साथ पंजाब गये और वहाँ की घटनाओं का ज्ञान प्राप्त कर विदेशी शासन की क्रूरताओं और बर्बरताओं के कारण, इन्हें आरामतलबी के नेतापन से घृणा हो गई। और कुछ ही दिनों बाद असहयोग आन्दोलन आरंभ होने पर, बेरिस्टरी छोड़ यह उसमें कूद पड़े और महात्मा गाँधी के खास सहायक बन गये। स्थान-स्थान पर

देशभक्ति का प्रथम पुरस्कार

घूम घूमकर लोगों को असहयोग के मन्त्र से दीक्षा देने लगे। फलस्वरूप १९२१ में ६ महीने के लिए जेल की सजा हुई। जनता समाचार पाकर क्षुब्ध हो गई। लोगों ने जगह-जगह सभाएँ करके इसका विरोध किया। सैकड़ों आदमी जेल जाने को तैयार हो गये। मजबूर होकर सरकार ने कुछ ही सप्ताह बाद इन्हें छोड़ दिया।

जेल से छूटकर जवाहरलाल दूने उत्साह से काम में लग गये। मई १९२२ में प्रयाग कांग्रेस कमेटी के आदेशानुसार, विदेशी कपड़ा बेचने

दूसरी बार

वाले बजाजों की दुकानों पर धरना देने के कारण कुछ साथियों के साथ फिर गिरफ्तार हुए और १८ मास की कड़ी कैद तथा १००) जुर्माने की सजा मिली।

इसके बाद देश के हृदय में उफान आ गया। हजारों युवक धरना देकर तथा अन्य कानूनों को तोड़कर जेल जाने लगे। जेलों में जगह न

छुटकारा

रही। सरकार सर पर यह मुसीबत मोल लेकर पछताने लगी और पं० जवाहरलाल को, अन्य अनेक कैदियों के साथ, प्रान्तीय सरकार ने छोड़ दिया। इस प्रकार नौ

महीने जेल में बिताकर १९२३ के आरम्भ में जवाहरलाल फिर स्वतन्त्र हो गये और देश के काम में लग गये।

इन्हीं दिनों भारत सरकार ने नाभा रियासत के महाराज रिपुदमनसिंह को गद्दी से उतारकर राज्य का शासन एक कमिटी के हाथ में दिया। इससे असन्तुष्ट हो अकालियों ने सत्याग्रह आरम्भ किया और उनपर भयकर अत्याचार होने लगे।

दिल्ली-कांग्रेस के समाप्त होने पर पण्डित जवाहरलाल नाभा के प्रश्न को समझने के विचार से उस राज्य में गये और कुछ अकाली जत्थों से भेंट की। इसी समय १४४ धारा के अनुसार आज्ञा-पत्र निकालकर उन्हें राज्य में घूमने की मनाही की गई और इसकी अवहेलना करने पर वह गिरफ्तार कर लिये गये तथा १४३ और १८८ के अनुसार मुकदमा चलाया गया।

निषेधाज्ञा तथा आज्ञा भंग

मुकदमे में पण्डित जवाहरलाल अपराधी ठहराये गये और एक अभियोग में दो वर्ष तथा दूसरे में ६ मास कैद की सजा दी गई। पीछे दोनों सजाएँ मुल्तवी की गईं और अबतक मुल्तवी ही पड़ी हैं।

१९२२ में पण्डित जवाहरलाल नेहरू सर्वसम्मति से प्रयाग म्युनिसिपलिटी के अध्यक्ष निर्वाचित हुए और १९२५ तक बड़ी योग्यता और निर्भीकता से यह काम किया। इनके प्रबन्धकाल में प्रयाग म्युनिसिपलिटी ने बड़ी उन्नति की। इस बात को तात्कालिक कमिश्नरों ने भी, वार्षिक रिपोर्टों की आलोचना करते हुए, स्वीकार किया है और जवाहरलाल जी की कार्यक्षमता की बड़ी प्रशंसा की है।

म्युनिसपलिटी के अध्यक्ष

१९२६ के आरम्भ में, पत्नी कमला के बीमार पड़ने और क्षय रोग के चिन्ह प्रकट होने पर जवाहरलाल उसे लेकर स्वीजरलैण्ड गये और वहाँ सैनिटोरियम में रहने के बाद, पत्नी के कुछ स्वस्थ होने पर, फरवरी १९२७ में भारतीय राष्ट्र-सभा के

युरोप-यात्रा

प्रतिनिधि की हैसियत से साम्राज्य विरोधी संघ के जनेवा अधिवेशन में सम्मिलित हुए, और उसके पाँच अध्यक्षों में (आइन्स्टीन, रोम्या-रोला, श्रीमती सनयातसेन, जार्ज लेंसबरी के साथ) यह भी एक अध्यक्ष चुने गये। उसके एक प्रधान मंत्री भी चुने गये थे पर कार्य भार की अधिकता से क्षमा माँग ली और संघ की कार्य-समिति के सदस्य चुने गये। सोवियट सरकार के निमन्त्रण पर नवम्बर १९२७ में रूस गये और वहाँ रूसी प्रजातन्त्र के दशम वार्षिकोत्सव में सम्मिलित हुए। वहाँ उन्होंने साम्यवाद का व्यावहारिक रूप देखा तथा यूरोपीय साम्राज्यवादी राष्ट्रों की कुटिल नीति का अध्ययन करके स्वदेश लौटे।

स्वदेश लौटने पर झाँसी के युक्तप्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलन, पंजाब प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलन तथा अन्य सभा सम्मेलनों के सभापति की हैसियत से जवाहरलाल ने जो भाषण किये, उनमें उनकी यूरोप-यात्रा के अनुभवों एवं विचारों का प्रभाव स्पष्ट दीख पड़ता है। जवाहरलाल जब यूरोप से लौटे, एक बिल्कुल नई विचार धारा लेकर भारतीय राजनीति में प्रविष्ट हुए। अभी तक किसी नेता ने समाज व्यवस्था के नूतन निर्माण की राजनीतिक उपयोगिता लोगों के सामने न रक्खी थी। इसलिए इस बार यह न केवल एक सिपाही और नेता वरन् विचारक एवं समाज विधायक के रूप में भी हमारे सामने आये। उनके आगमन से देश के युवक आन्दोलन को बड़ी स्फूर्ति मिली और बंगाल प्रान्तीय छात्र सम्मेलन एवं बम्बई प्रांतीय युवक सम्मेलन के अध्यक्ष पद से जो भाषण इन्होंने दिये, उनमें इनके क्रान्तिकारी विचार बड़े व्यापक रूप में प्रकट हुए हैं। १९२७ में हिन्दुस्तानी सेवा दल तथा मद्रास की प्रथम प्रजातन्त्र परिषद् के सभापति हुए। इसके साथ ही मजूर समस्या का अध्ययन करके इन्होंने मजूर आन्दोलन में भी विशेष भाग लेना शुरू किया और और १९२९ में मजूर-कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन के सभापति की हैसियत से

प्रजातन्त्र परिषद् के अध्यक्ष

वर्तमान समाज-गठन की मूलभूत कमजोरियों का खाका बडी कुशलता के साथ खींचा। १९२७ की मद्रास काग्रेस म स्वतन्त्रता का प्रस्ताव उपस्थित किया और पुराने विचार के नेताओं के आनाकानी करने पर भी काग्रेस का ध्येय स्वराज्य घोषित करा लिया। सितम्बर १९२८ म इन्होंने 'भारतीय स्वाधीनता सघ' कायम किया।

१९२३ से १९२९ तक (बीच के यूरोपीय प्रवास-काल को छोडकर) ये बराबर काग्रेस के प्रधानमन्त्री रहे हैं और इस समय, मजूर आन्दोलन, युवक आन्दोलन तथा स्वाधीनता आन्दोलन के खास नेताओं में है।

—पाँच—

विकास-रेखा

यद्यपि जवाहरलाल के परवर्ती जीवन पर अनेक शक्तियों का प्रभाव पड़ा है किन्तु जीवन के बिल्कुल आरंभ में भी, उनके अन्दर आगे आने-

भविष्य की सूचना

वाली घटनाओं तथा उनके भावी जीवन गठन के बीज मिलते हैं। 'अलकाफिर' नामक एक लेखक ने लिखा है कि जवाहरलाल ने, *'बल्ब'–भजक के रूप में अपना बचपन आरंभ किया, मानो साम्राज्यवाद के विरोध के बीज बचपन से ही अंकुरित होने लगे हों।

आज उनमें जो तेजस्विता और स्पष्टवादिता है उसके चिन्ह तो उनके बाल जीवन में बहुत मिलते हैं। तेजस्विता उनका पैतृक गुण है। स्पष्टवादिता में वे माता पिता तथा गुरूजनों के साथ भी रियायत नहीं करते। इस सम्बन्ध में दो एक घटनाएँ याद आती हैं। सन् १९१७ ई० में श्रीमती बेसेण्ट का होमरूल आंदोलन जोरों पर था। मोतीलालजी और जवाहरलाल दोनों ,उसमें काम कर रहे थे। जवाहरलाल ने उस

तेजस्विता

समय बड़ा काम किया था। सन् १९१८ ई० में श्रीमती बेसेण्ट को उनके दो प्रमुख साथियों के साथ, सरकार ने नजरबन्द कर लिया। जनता में तूफान उठ खड़ा हुआ। स्थान-स्थान पर विरोध में सभाएँ हुईं। लखनऊ में संयुक्तप्रांतीय कान्फ्रेंस का एक विशेष अधिवेशन किया गया। मोतीलालजी सर्वसम्मति

---

* बल्व = बिजली के ऊपर का शीशे का गोला या ढक्कन जो तरह तरह का होता है। इसी के अन्दर बिजली के तार होते हैं जिनसे प्रकाश होता है।

से इसके अध्यक्ष चुने गये थे। अपने भाषण में उन्होंने सरकार द्वारा किये गये अनेक अन्यायों का जिक्र करने के बाद उसी पुराने ढग से कहा कि 'इन बातों के लिए आदोलन करते हुए भी हमें ब्रिटिश जनता की सद्भावना में विश्वास रखना चाहिए क्योंकि हमारे भाग्य का अन्तिम निर्णय उसी के हाथ है।'

पण्डितजी अपने भाषण में से ये वाक्य पढ़ ही रहे थे कि एक तरफ से, सुपरिचित कण्ठ से, आवाज आई—"क्वेश्चन!" * यह जवाहरलाल की बोली थी। इस प्रश्न के मर्म पर विचार किये बिना ही, मोतीलालजी तमतमा उठे, अपना चश्मा उतारकर एक तरफ रख दिया, भाषण की हस्तलिपि एक ओर पटक दी और टेबुल पर जोर से हाथ पटककर बोले—"इस (मेरी बात) से इन्कार करने का साहस कौन करता है?" फिर धीरे से, एक ओर से वही 'क्वेश्चन' शब्द आकर सभा में गूँज उठा। मोतीलालजी उत्तेजित होकर बोले—"जिसे साहस हो, सामने आकर मेरी धारणा को असत्य साबित करे।" प्रश्नकर्ता—पुत्र—शात हो गया। मोतीलालजी की बात रह गई पर शायद ही कभी जवाहरलाल ने अपने सार्वजनिक जीवन में इससे बड़ी दूसरी विजय प्राप्त की हो।

उनके इस एक शब्द म जो सत्य था वही आगे चलकर न केवल उनके जीवन में व्याप्त हो गया वरन् चलेंज—चुनौती—देनेवाले पिता को भी, अपने बाद के जीवन में मानना पड़ा कि वह एक नशा और झूठा स्वप्न था।

इसके थोड़े ही दिनों बाद की एक और घटना है। सन् १९१९ का जमाना था। भारत के राजनीतिक आकाश में आँधी आ रही थी। जागरण के नवीन इतिहास की रूप रेखा बन रही थी। भारतीय क्षितिज धुएँ से भर रहा था और आत्म-

एक दूसरी घटना

* 'क्वश्चन' = प्रश्न, आपत्ति भावार्थ यह कि यह बात शका के योग्य है, ठीक नहीं है।

विश्वास एव स्वावलम्बन के प्रकाश के लिए कलेजकराह रहे थे। भारतीय जनता एव व्यवस्थापकों के लाख विरोध करने पर भी रौलट बिल कानून बना दिया गया था। उस समय के इतिहास मे यह 'काला कानून' के नाम से प्रसिद्ध हुआ है। महात्मा गाँधी ने स्वावलम्बन का झण्डा उठाया और सत्याग्रह का रास्ता देश के सामने रक्खा। सत्याग्रह के प्रतिज्ञापत्र भराये जा रहे थे। स्वदेशी ग्रहण और उपवास, इसके ये दो मुख्य अग थे। एक सार्वजनिक सभा मे मोतीलालजी ने पहले का समर्थन किया और दूसरे पर हस्ताक्षर करने को अनावश्यक बताया। उस समय फिर एक चिरपरिचित आवाज सभा स्थल मे गूँज उठी—"शर्म!" मोतीलालजी उस समय भी क्रोध के आवेश मे आ गये थे और कई दिनों तक दुखी रहे।

मतलब यह कि जो तेजस्विता आज जवाहरलाल में है उसके बीज उनमें सार्वजनिक जीवन के बिलकुल आरभ मे ही दिखाई पड़ते है।

साहसिक प्रवृत्तियाँ भी आरम्भ से ही उनमे है और इसका कारण यह है कि शुरू से वह अग्रेजियत के वातावरण मे पले, अग्रेजों के साथ रहे, उनका सग, उनके रहन सहन को खूब अपनाया इसलिए जिस साहसिकता—एडवेंचर—के लिए अग्रेज दुनिया-भर में प्रसिद्ध है, वह उनमें न आती, यह कैसे सभव था? जवाहरलाल बड़े साहसी है, जोखम मे उन्हे मजा आता है। इसी के पीछे दो बार वह मरते मरते बचे। सन् १९०९ ई० मे कुछ मित्रों के साथ घूमने के लिए नार्वे* गये। एक दिन ग्लेशियर (बर्फ का सोता) मे नहाने की ठहरी। झरने की गति बहुत तेज थी। यह साहस करके सब से आगे बढ़ गये, पैर फिसल गया और यह प्रवाह में पड़ गये। तेजी से चट्टानों एव एक ऊँचे जल प्रपात की ओर बढ़ने लगे। सौभाग्य से एक साहसी युरोपीय ने खींच लिया और यो यह बाल-बाल बच गये।

साहसिकता

* यूरोप के उत्तर हिस्से में बसा हुआ एक ठण्डा देश।

इसी प्रकार की एक और घटना है। जिस साल व्याह हुआ उसी साल १९१६ ई० में, यह लद्दाख गये। एक बर्फीला पहाड़ पार करते समय, खड्ड में गिर गये और बड़ी कठिनाई से रस्सियों द्वारा निकाले जा सके। यह घटना १८००० फुट की ऊंचाई पर घटित हुई थी। लाठियों की वर्षा एवं गोलियों की बौछार के समय निधड़क आग पढ़नेवाले जवाहरलाल में यह साहसिक वृत्ति नई नहीं है—केवल विकसित हुई है। इसी प्रकार कम बोलने एवं कुछ कर दिखाने की आदत भी इनमें लड़कपन से ही रही है।

सार्वजनिक जीवन में तो उनकी विकास रेखा बड़ी स्पष्ट है। पहले हम उनको अंग्रेजी रंग में डूबा हुआ देखते हैं। फिर 'होमरूलर' राष्ट्रवादी के रूप में इनके दर्शन होते हैं। इस समय इन्होंने जो काम किया उसमें उत्साह तो है पर इस उत्साह के साथ प्रगाढ़ राष्ट्रीयता की—भाई भाई की एकता की भावना नहीं है। यह भावना पंजाब के पैशाचिक हत्या-काण्ड के कुटिल दृश्यों के बाद आई। इसके पूर्व भारत के शासक भारत को जो विष पिला चुके थे उसी की मूर्च्छना में वह डूबा हुआ था। सुरेन्द्रनाथ, विपिनपाल, यहाँ तक कि तिलक के आन्दोलन ने भी जनता को समष्टिरूप से सचेत करने में सफलता न प्राप्त की। राष्ट्र के हृदय तक पहुँचने का प्रयास ही न हुआ। कुछ क्रान्तिकारी इसे समझते थे पर उनका अलग ही एक सम्प्रदाय बना हुआ था। कई बार झकझोरकर नेताओं ने राष्ट्र को जगाने की कोशिश की पर विष के गहरे नशे में डूबा यह रोगी आँख खोल देता—नशे में ही जगानेवाले को देखता पर पहचान न सकता। जनरल डायर एवं सर माइकेल ओडायर के काले कारनामों का वज्रपात उस समय हुआ जब लोगों को उसकी सब से कम आशा थी। राज भक्ति एवं यूरोपीय महायुद्ध में साम्राज्य की सेवा का बदला पाने को उत्सुक भारतीय हृदय यह कठोरता बर्दाश्त न कर सका। यह कुछ अजीब तरह का

राष्ट्र में तूफान

पुरस्कार था जिसे भारत का सरल हृदय नहीं पहचानता था। यह उसकी मनुष्यता को एक "चैलेंज"—एक चुनौती— थी जिसे, विवश होकर पर आशा के साथ, उसने स्वीकार किया। आँखें खुल गईं।

इस समय भारत में इस युग के जिस महायज्ञ का आरंभ हुआ, उसके पुरोहित महात्मा गाधी को इन वर्षों में कई मूल्यवान सहयोगी प्राप्त हुए हैं। इनमें एक से एक चमकदार रत्न हैं। उनकी तुलना नहीं की जा सकती। ऐसा करना उनकी ईमानदारी का अपमान करना है परइसमें संदेह नहीं कि जवाहरलाल इनमें अन्यतम हैं। गाधी के बाद, उनके साथ भारत की सब से अधिक आकाक्षाएँ बँधी रही हैं—आज भी बँधी हैं, ऐसा कहने में, मैं समझता हूँ, कोई अत्युक्ति नहीं।

× × ×

असहयोग-काल में हम जवाहरलाल को बिलकुल बदले रूप में पाते हैं। यहाँ हम उन्हें किसानों के बीच, सीधे सादे वेश में, देखते हैं। जवाहरलाल और वल्लभ भाई, दो ही ऐसे नेता हैं जिन्होंने किसानों को असली भारतीय के रूप में पहचाना और उनके अन्दर छिपी शक्ति का अन्दाजा लगाने तथा उनकी सेवा द्वारा, उसे जाग्रत करने की कोशिश की है। महात्मा जी का नाम मैं जान-बूझकर नहीं लेता। यद्यपि किसान आन्दोलन के महत्व से वह खूब परिचित हैं—उनसे अधिक किसान हृदय को शायद ही किसी ने पहचाना हो—पर राष्ट्रीय पुनर्जागरण के विविध कार्यों में लगे रहने के कारण, इस क्षेत्र में सक्रिय आंदोलन वह बहुत थोड़े परिमाण पर कर सके हैं।

यद्यपि सन् १९१८ में ही जवाहरलाल किसानों का कार्य करने लग गये पर उसे प्रधानता तब भी न मिली थी। असहयोग-युग के जवाहरलाल की वाणी—'भारत का भविष्य किसानों के हाथ है'—का यदि वह अर्थ लगाया जाय, जो है तो इसमें एक महान् सत्य है। इस समय जवाहरलाल विलासिता के वातावरण,

ग्रामोन्मुख सेवा

को रौंदकर पहली बार मुक्त वायुमण्डल में आये और पहली बार उन्होंने भारतीय किसान को पहचाना। इस संसर्ग में उन्हें भारत के सच्चे दर्शन हुए और यही समय था जब उनके मुँह से सुनाई पड़ा—"सरकार की सारी मशीन किसानों के पैसे से ही चल रही है। × × × हमारे शहर भी देहातों के व्यय पर ही गुजर करते हैं।" इस सहानुभूति में एक ओर भारत की राजनीतिक दिशा का निर्देश था और दूसरी ओर उस साम्यवाद का बीज था जो आगे चलकर स्पष्ट एवं स्पष्टतर होनेवाला था। वस्तुतः जवाहरलाल की मनोरचना ही उस उपजाऊ मिट्टी से हुई है जिसमें साम्यवाद के बीज का अंकुरित न होना ही आश्चर्यजनक होता।

अवध का किसान-आन्दोलन

सन् १९१९ से २१ तक किसान आन्दोलन युक्तप्रांत और विशेषतः अवध में एक महाशक्ति की भाँति उठ खड़ा हुआ। उन दिनों उन्हें रात दिन इसी की लगन थी। प्रतापगढ़ जिले में तो बहुत ज्यादा काम किया था। महलों के राजसी ठाठ-बाट को छोड़कर दीन-हीन पीड़ित किसानों के प्रेम में, फकीर बने, घूमते फिरते थे। मैंने स्वयं उन्हें किसानों की झोंपड़ियों में साधारण कंबल बिछाकर सोते देखा है किसानों के घर जो मोटी रोटी और साग पात मिलता, उसे प्रेम से खाते देखा है। पानी बरस चुका है,—खेतों एवं देहाती गलियों में भर गया है। उनके बीच धोती उठाये मीलों चले जा रहे हैं। बातें साधारण है पर जवाहरलाल के लिए असाधारण हैं। जिसके लिए अनेक प्रकार के सुस्वादु भोजन बनते थे, जिसने जीवन के २६ २७ वर्ष राजाओं के लिए भी दुर्लभ विलासिता में बिताये थे, जो यह न जानता था कि पैदल चलना किसे कहते हैं, उसके लिए सूखी मोटी रोटियाँ, फटे कम्बल, और मीलों पैदल चलना—अवश्य ही असाधारण है!

पर इसका क्या परिणाम हुआ था? किसानों मे जीवन आ गया था। जैसे सुस्त समुद्र मे तूफान आता है और बडे-बडे जहाजों को भी सगठन के वे दृश्य। इधर उधर कर देता है वैसे ही यह किसान आदोलन सरकारी सत्ता को डगमगाने लगा। अवध मे एक बवडर सा आ गया था। मैंने फिर जीवन मे कभी वैसा सगठन नही देखा। एक गाव ऐसा न था जहाँ पचायत न हो और जहाँ पचायत की बात को कानून पर तरजीह न दी जाती हो। जो हठधर्मी करते, उनका जबर्दस्त बहिष्कार होता—नाई बाल न बनाता, धोबी कपडे न धोता, यहाँ तक कि उसका जीवन दूभर हो जाता और उसे झुकना पडता। कितने ही ताल्लुकेदार नोकर न मिलने से अपने इलाके छोड लखनऊ चले गये। खेतों की बेदखली न हो पाती थी, न इजाफा ही हो पाता था क्योंकि एक भाई के विरुद्ध दूसरा उम्मेदवार खडा ही न होता था और बिना इसके कानून की रू से बेदखली या इजाफा न हो सकता था। सरकार ने यह देखा तो घबडा उठी। पीछे तो दमन की आँधी ऐसी चली जिसका ठिकाना नहीं। पर इस कार्य में जवाहरलाल बहुत उठे,—उनकी जीवन दिशा बदल गई, उनको भारत का एक नया अनुभव हुआ और किसानों के सम्पर्क ने उनके हृदय मे साम्यवाद का बीज बो दिया।

इसके बाद तो असहयोग के समय से बराबर यह महात्माजी के साथ काम करते रहे हैं। इन कामों का जिक्र सक्षेप में हम ऊपर कर चुके हैं। अंग्रेजी रीति-नीति से दिन दिन उनका विश्वास उठता जा रहा था। भारत के उस समय के स्वराष्ट्र सदस्य सर माल्कम हेली ने ८ फरवरी १९२४ ई० को भारतीय व्यवस्थापिका सभा मे जो भाषण किया उससे स्पष्ट हो गया कि भारत को पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज्य देना भी सरकार का उद्देश्य नहीं है। उनका कहना था कि 'उत्तरदायित्वपूर्ण शासन के लिए यह अनिवार्य नहीं है कि व्यवस्थापक सभाओं को सारे अधिकार दे ही दिये जाय। उन्हें सीमित रखने से भी उत्तरदायी शासन

चल सकता है।' भारतीय राजनीतिक विचार दिशा को पूर्ण स्वतन्त्रता की ओर ले जाने में इस व्याख्यान ने बड़ा काम किया है। लगभग ४ वर्ष तक इस व्याख्यान के शब्दों को लेकर भारतीय राजनीति में बहस मुबाहिसे चलते रहे। नेहरू रिपोर्ट के लिखने के बाद भी जब इस दिशा में कुछ होता नहीं दीखा तो युवक असन्तुष्ट हो उठे। ज्यों-ज्यों सरकार का रुख अस्पष्ट और कठोर होता गया त्यों-त्यों देश के यौवन में असंतोष की मात्रा बढ़ती गई और अन्त में स्वतन्त्रता संघों एवं युवक आन्दोलन के रूप में, सर माल्कम हेली की बात का, देश के युवकों ने जवाब दिया।

जवाहरलाल तीसरी बार जेल से आ चुके थे। और तब से स्वराजवादियों एवं अपरिवर्तनवादियों का गृह-कलह देख देखकर दुखित थे। इस बीच उन्होंने अपने जीवन की—राजनीतिक जीवन की एक 'फिलासफी' विकसित कर ली थी। युवक उनकी ओर सतृष्ण नेत्रों से देख रहे थे। उन्होंने उनकी आशा पूरी की। सन् १९२७ ई० की कांग्रेस में, लार्ड बर्केनहेड की मूर्खता से क्षुब्ध भारत के सामने, जवाहरलाल ने पूर्ण स्वतन्त्रता की पताका फहरा दी। उस समय मालवीयजी तथा एनी बेसेण्ट तक को उनकी युक्तियों का समर्थन करना पड़ा। इस आंदोलन की तह में कुछ तो पूर्ण स्वतन्त्रता के सच्चे पूजक थे और कुछ ने इसे मनोवैज्ञानिक अस्त्र की भांति अपनाया था। ऐसे भी बहुत थे जिन्होंने इस विचार से इसका समर्थन किया कि ज्यों-ज्यों पूर्णस्वाधीनतावादी दल शक्तिमान होगा त्यों-त्यों हम लोग औपनिवेशिक स्वराज्य के अधिक निकट पहुँचेंगे।

स्वतन्त्रता का प्रस्ताव

पर जवाहरलाल के विचार तो बिलकुल बदल चुके थे। यूरोप में उन्हें जो भारतीय देश भक्त मिले उनसे बातचीत कर उन्होंने समझा कि 'उत्तरदायी शासन अथवा औपनिवेशिक स्वराज्य' का विदेशों में कोई अर्थ नहीं समझा जाता, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में उसका कोई स्थान नहीं,

ऐसी गोलमोल माँगों के कारण यूरोपीय राष्ट्र एव राजनीतिज्ञ भारतवासियों को नीची निगाह से देखते और उनकी बुद्धि पर तरस खाते हैं। इन सब अनुभवों ने जवाहरलाल को पक्का स्वतत्रतावादी बना दिया। वह समझ गये कि जबतक भारतवर्ष एक स्वतत्र राष्ट्र बनकर नहीं खड़ा होगा, ससार के स्वतत्र राष्ट्रों के समाज में वह अछूत ही समझा जायगा और उसे ससार को जो कुछ देना है, न दे सकेगा।

अक्तूबर १९२८ ई० म सयुक्तप्रान्तीय कान्फ्रेंस के झाँसी अधिवेशन में अध्यक्ष की हैसियत से उन्होंने साफ साफ कहा—"भारत तबतक इग्लेण्ड के साथ शान्ति नहीं कर सकता, जबतक उसे स्वाधीनता न प्राप्त हो जाय। यही वह मनोवैज्ञानिक एव मौलिक कारण है जिसके लिए हमने पूर्ण स्वतत्रता का आन्दोलन उठाया है। यह स्वतत्रता ब्रिटिश साम्राज्य मे हमारे साझीदार बनने से नहीं आ सकती। बहुत दिनों तक हमने साम्राज्य और साम्राज्यवाद का अनुभव कर लिया। अब हम समझ गये हैं कि साम्राज्यवाद और सबी स्वतत्रता बाँस के दो सिरों के समान परस्पर विरोधी दिशाओं म जानेवाले पदार्थ हैं। इग्लेण्ड हमारा शत्रु नहीं है। हमारा शत्रु तो साम्राज्यवाद है और जहाँ साम्राज्यवाद हो वहाँ हम स्वेच्छापूर्वक कभी नहीं रह सकते।"

सयुक्तप्रातीय कान्ग्रेस के अध्यक्ष

पूर्ण स्वतत्रता आदोलन के साथ ही युवक सघ का जन्म भी भारतीय राजनीति की एक महान् घटना है। यद्यपि ससार म इसके प्रसार के अन्तर्राष्ट्रीय कारण थे पर भारत म उसका जन्म विशेषत दो कारणों से हुआ। जातिगत वैमनस्य के धुएँ से विशुद्ध राष्ट्रीयता का गला घुट जा रहा था, उसकी रक्षा के लिए आवश्यक था कि जनता, इन झगड़ों से ऊपर उठे। युवक-सघों का जन्म इसीलिए हुआ। हम पहले भारतीय फिर हिन्दू मुसलमान हैं यह भाव इसके मूल में काम कर रहा था। दूसरा कारण तो वही था जो

युवक सघ का जन्म

पूर्ण स्वतंत्रता आन्दोलन के मूल में था। जवाहरलाल इस दिशा में भी मार्ग प्रदर्शक बने।

पर इन सब के साथ भी जवाहरलाल के भीतर एक भीषण युद्ध बराबर चल रहा था। एक ओर उनपर महात्माजी का प्रभाव था, दूसरी ओर पिता के प्रेम की खाचातानी थी और तीसरी ओर ये नई लहरें थीं। इन तीनों बातों को लेकर एक जबदस्त मन्थन उनके अन्दर हो रहा था। १९२३ से २७ तक हम उन्हें राजनीतिक दगल के अखाड़े से हटकर चुपचाप—शांतिपूर्वक कांग्रेस के प्रधान मंत्री और इलाहाबाद नगर-बोर्ड के अध्यक्ष का काम करते हुए देखते हैं। इस बीच बहुतों ने उनपर लाञ्छना की,—व्यंग किये। लोग तरह-तरह की बातें करते थे। एक कहता—"उनमें पिता-जैसी तीव्र बुद्धि नहीं है।" दूसरा कहता—"उनकी सचाई एक धर्मान्ध की सचाई है।" तीसरा बोल उठता "नहीं, वह क्रूस—सूली—का स्वागत करने वाला शहीद है।" पर अपनी ही महत्ता की इन सब प्रतिध्वनियों के बीच वह शांतिपूर्वक अपने जीवन की एक 'फिलासफी' का विकास कर रहे थे और वही मद्रास कांग्रेस में देश के सामने आ गई।

चुपचाप काम

× × ×

एक वर्ष बाद, फिर हम उन्हें सर्व-दल-सम्मेलन की बैठक में, अपनी महानता के साथ, खड़ा होते देखते हैं। ३१ अगस्त १९२८ ई०, इस सम्मेलन की मृत्यु तिथि है। उस दिन के विषाद में, आत्म-वंचना के धुएँ एवं कोहर के बीच, जवाहरलाल की दिव्य मूर्ति बिजली की भाँति चमक रही है। श्री 'अल्काफिर' नामक एक अंग्रेजी लेखक ने उसका बड़ा ही सुंदर चित्र खींचा है। उसकी भाषा का सौष्ठव अनुवाद में कहाँ आ सकता है? भावार्थ यह है—"उनकी आँखों में शोक भरा है, उनमें मौन प्रार्थना आकर बस गई है। दाँत दृढ़ता से जुड़ गये हैं मानो भीतर उबलते हुए

वह चित्र !

किसी विद्रोही भाव को दबाने के लिए कठोर हो गये हों। भवें उचित असंतोष से तनी हुई है। यह मूर्ति बोलती है। उसकी वह आश्चर्यजनक बोली, वे कोमल उच्चार। जो कुछ सच्चा और उचित है, उन सबरी मानों एक पार्थिव मूर्ति सजीव होकर आ गई हो। उसमें देश प्रेम भी मूर्तिमान था, अंधा गहरा और भयंकर देश प्रेम। स्वतंत्रता-संघ की ओर से लिखा गया बयान पढ़ने के पहले उन्होंने जो व्याख्यान दिया, हमारे नव-जीवन के इतिहास में शायद ही उसका जोड़ निकले। यह दस हजार मील दूर आकर भी सुनने योग्य था। उसने उन दिलों को स्पर्श किया जो अभी तक अछूत थे। उसने बिना किसी संकोच और दया या करुणा के कलेजे के टुकड़े कर दिये। सब प्रकार की कष्टपूर्ण प्रभावों से रहित इस छोटे व्याख्यान ने अपनी सहज सरलता से सब-कुछ कर दिखाया। यह सरलता भीतर के ज्वालामुखी की स्पष्ट सूचना दे रही थी।"*

यह पुरानी और नई संतति के मार्ग भेद का शंखनाद था। पुरानी ने यहाँ मतलब स्वराजियों, नरमदल वालों तथा इसी प्रकार के अन्य

* Out of the All Parties Conference that died a glorious death on 31st of August 1928 the solitary figure of Jawahar Lal Nehru rises with those sorrowful eyes — homes of silent prayer and those determined teeth clenched as if to subdue the surging tide of emotion or to avoid may be the rising lump in the throat those eye brows knit in righteous indignation or that brow raised in agonised questioning and that wonderful voice and those tender accents the etherial embodiment of all that is honest and sincere, and of a patriotism blind intense ferocious The speech he delivered before reading out the statement on behalf of the Independence League was worth going ten thousand miles to hear It touched chords as yet untouched indeed unsuspected It wrenched the heart without mercy and without pity Devoid of all artistic effect it did all this with an unconscious simplicity that spoke volumes of the mountain of volcanic energy within

Jawaharlal the Man and His Message page 98-99

राष्ट्रवादियों से है। नद् से साम्यवादियों, स्वतन्त्रतावादियों का तात्पर्य है। इसमें बहुतों को कोरी भावुकता दिखाई पड़ी थी पर भावुकता न थी। स्वर्गीय विपिनचन्द्र पाल ने एक बार व्यंग करते हुए कहा था—"असंतुष्ट हो जाना युवकों का स्वभाव है और व्यावहारिक तथ्यों को न देख सकना उनका दुर्भाग्य है।"* पर जवाहरलाल ने मानो पहले से ही उसका उत्तर दे दिया था। इन व्यवहारवादियों का तथ्य क्या है? "आप सोचते हैं इस दुनिया में सिर्फ दो देश हैं—भारतवर्ष और इंग्लैण्ड। ब्रिटिश कामनवेल्थ क्यों? विश्व कामनवेल्थ क्यों नहीं?" एक ने इसका उत्तर न दिया। एक से उत्तर न दिया गया। प्रश्न की प्रतिध्वनि ही इसका एक क्षीण उत्तर देकर—वातावरण में कम्पन उत्पन्न करके,—मिट गई!

कलकत्ता कांग्रेस में भी जवाहरलाल की वही वेदना दिखाई पड़ती है पर इस वेदना के ऊपर संयम की जबर्दस्त बाँध है। कलकत्ता कांग्रेस ने जो अल्टिमेटम—अंतिम चुनौती—सरकार को दिया, उसका उत्तर लाहौर में, सरकार द्वारा नहीं, युवकों द्वारा दिया गया। १९२९ की लाहौर-कांग्रेस भारतीय राजनीति के इतिहास के सुनहले पन्नों में स्थान पायेगी। जवाहरलाल इसके अध्यक्ष चुने गये। कांग्रेस के इस उच्चासन पर पहली बार एक समाजवादी बैठता दिखाई पड़ा। जवाहरलाल ने पुरानी रूढ़ियों को तोड़, भावी युद्ध के सेनापति के रूप में, घोड़े पर चढ़कर लाहौर में प्रवेश किया। मानो राष्ट्र का यौवन अपने शस्त्रास्त्रों से सजकर, शत्रु को चुनौती देने के लिए आ गया हो!

लाहौर कांग्रेस

लाहौर कांग्रेस ने अपने अध्यक्ष को तथा भारतीय जनता ने अपने 'राष्ट्रपति' को, यहाँ, आदर्श के रूप में, देखा। यह प्रथम साम्यवादी राष्ट्रपति थे और इनके प्रत्येक काम में जहाँ कड़ा अनुशासन था, वहाँ अपूर्व भ्रातृभाव था। अभी यहाँ हैं तो थोड़ी देर में वहाँ हैं। वह सिद्धा-

* "It was the privilege of youth to be irritated and their misfortune to lose sight of realities"

सन पर मौन बैठे हुए राजा नहीं थे। दरवाजे पर कोई दरबान न था, न कोई अग-रक्षक था। प्रत्येक व्यक्ति के लिए वह सुलभ एव सुगम थे। यहाँ आफिस के कार्यों की जाच कर रहे ह तो वहाँ 'रूलिग — किसी चीज पर अध्यक्ष का अतिम निणय—दे रहे ह, कहीं दूर विदेश से आई किसी यूरोपियन महिला को स्थान दिला रहे ह तो कहीं वालण्टियरों के साथ किलोल कर रहे हैं। अधिवेशन के समय जरा शोर हुआ—झट आसन छोडकर उधर पहुँच गये। ३१ दिसम्बर की रात को बारह बज के बाद

स्वतत्रता का शखनाद

जब पूर्ण स्वतत्रता के ध्येय का प्रस्ताव पास हुआ तो सब नाच रहे थे। स्वय-सेवक दल ने इन्ह उठा लिया और हा हा, हू हू करते सारे काग्रेस नगर में फिरे। जब कार्य की अधिकता के कारण उन्होंने सुस्वादु भोजन अस्वीकार कर दिया तब स्वय-सेवकों के चने खाने से इन्कार न कर सके। वह स्वय ही अपने अध्यक्ष थे, स्वय ही अपने सेक्रेटरी—मत्री—थे। इस अधिवेशन जैसा उन्मादकारी काग्रेस का दूसरा अधिवेशन नही हुआ। एक खतरनाक प्रस्ताव पास कर, खतरे के समय राष्ट्र का योवन, पागल की भाँति, अट्टहास कर रहा था।

उसके बाद सत्याग्रह की घोषणा हुई। चद दिनों बाद ही ये गिरफ्तार हुए। देश में तूफान मच गया। लग भग एक वर्ष के घोर युद्ध के बाद

सत्याग्रह

सरकार से सधि की बात चली। उस समय भी नैनी जेल से जवाहरलाल ने महात्मा जी को पत्र लिखा था, उसमें कहा था कि जब लोगों की सधि की ही इच्छा है तो वैसा ही सही। उनको स्वय तो लडने में ही मजा आता है। पर इस युद्ध में अहिसा के अदर उनका विश्वास और मजबूत हो गया। जयकर और सप्रू को जो पत्र जेल से लिखा उसम यह बात बहुत स्पष्ट हो गई है। उसके बाद सरकार से सधि हुई। लोग छूटे, बहुत से लोग नहीं भी छूटे। सरकारी कर्मचारियों का व्यवहार वैसा ही था। जवाहरलाल को यह सधि—यह शान्ति मृत्यु की शान्ति मालूम पडी। उन्होंने कहा था, 'जबतक

लड़ाई चलती है, मुझे अपनी रगों में खून चलता हुआ मालूम पड़ता है, अनुभव होता है कि मैं जी रहा हूं।' इस सधि-काल में सरकार का रवैया देखकर बार-बार उन्हें उसका विरोध करना पड़ा। इस बीच सरकार ने अपनी तैयारी कर ली और युक्तप्रात के किसानों के साथ ऐसे अत्याचार शुरू हुए कि वहाँ सत्याग्रह की घोषणा करनी पड़ी और फल-स्वरूप जवाहरलाल गिरफ्तार होकर जनवरी १९३२ में जेल में डाल दिये गये।*

इलाहाबाद में मजिस्ट्रेट की ओर से उनपर यह प्रतिबंध लगाया गया था कि किसी सभा में भाग न लें और इलाहाबाद के बाहर बिना जिला मजिस्ट्रेट या पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट की आज्ञा लिये, न जायँ। इसका उन्होंने जो जवाब दिया था

यह तेजस्विता

उसमें भारतीय युवक की तेजस्विता बड़े दृढ़ एवं स्पष्ट रूप से बोलती है—"सिवाय उस सस्था के, जिसका मैं एक तुच्छ सदस्य हूं, किसी से आज्ञा लेने का मुझे अभ्यास नहीं है।"

वस्तुत हमारे राजनीति क्षेत्र में, गाधी से बड़ा, मनुष्यों का कोई परीक्षक नहीं है। वह जवाहरलाल को सब से अधिक पहचानते हैं। उनके राष्ट्रपति निर्वाचित होने के बाद उन्होंने लिखा था—"बहादुरी में कोई उनसे बढ़ नहीं सकता और देश प्रेम में उनके आगे कौन जा सकता है? कुछ लोग कहते हैं कि वह जल्दबाज और अधीर हैं। यह तो इस समय एक अतिरिक्त गुण है। फिर जहाँ उनमें एक वीर योद्धा की तेजी और अधीरता है वहाँ एक राजनीतिज्ञ का विवेक भी है। × × × × वह स्फटिक मणि की भांति पवित्र हैं, उनकी सत्यशीलता सदेह से परे है। वह अहिंसक और अनिंदनीय योद्धा हैं। राष्ट्र उनके हाथ में सुरक्षित है।" इससे अच्छा परिचय जवाहरलाल का कौन देगा?

---

* माता स्वरूप रानी की बीमारी के कारण ३० अगस्त को (सजा की अवधि की पूर्ति के केवल १२ दिन पहले!) जवाहरलालजी नैनी जेल से छोड़ दिये गये हैं।

—छ:—

विश्लेपण

जवाहरलाल का सब से बडा गुण यह है कि खतरों (Adventure) के लिए उनके अ दर बडा गहरा आकर्षण है। यह उनका यौवन धर्म है। जिधर कठिनाइयाँ ज्यादा होंगी, रास्ता कँटीला होगा, बलिदान और उत्सर्ग का तकाजा होगा, उधर खिचने के लिए वह अपनी प्रकृति से मजबूर हैं। उनकी गिनती उन लोगों में नहीं की जा सकती जो भूख से व्याकुल जनता को देखकर उनके बीच कूद पडने को केवल इसलिए तैयार नहीं होते कि परिस्थिति कठिनाइयों से पूर्ण है और 'लाभ' कुछ न होगा। उनका जीवन एक निरन्तर बलिदान है।

किन्तु इस मूल्यवान भावमयता को भी उन्होंने आँच में तपा तपाकर बहुत ऊँचा उठा दिया है। यह उनमें ही जलकर समाप्त हो जानेवाली चीज नहीं, दूसरों में भी छूत से ही, आग जला देने वाली चीज बन गई है।

बूढा जवान

जो समझते हैं कि जवाहरलाल एक भावुक युवक मात्र हैं, वे भूलते हैं—यद्यपि अपने लिए तो मैं यह कह सकता हूँ कि यदि वह इतना होते तो भी बहुत कीमती चीज होते। पर जवाहरलाल का संयम, उनकी गंभीरता अपूर्व है। श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति ने ठीक ही लिखा था कि 'जवान कन्धों पर बूढ़ा सिर' कहावत जवाहरलाल के सम्बन्ध म पूर्णतः चरितार्थ होती है। उनमे ब्राह्मणत्व का त्याग है और यह स्वाभाविक त्याग ही उनका ओज है। पिता, मोतीलाल जी म, त्याग के साथ क्षत्रियत्व का अभिमान और क्रोध भी था। जवाहरलाल के लिए त्याग करना उनके स्वभाव में दाखिल हो गया है। जिन लोगों ने इन पिता पुत्र को नजदीक से देखा है, वे उन लोगों पर जरूर झुँझलाये होंगे जो

१९२९ में जवाहरलाल के राष्ट्रपति चुने जाने पर यह कहकर नाक-भौं सिकोड़ते थे कि वह बड़े भावुक और युवक हैं। यद्यपि भावुक और युवक होना कोई पाप नहीं, गुण ही है पर जो ऐसा कहते और समझते हैं वे जवाहरलाल को जानने का दावा नहीं कर सकते और अपनी बुद्धि का छिछलापन ही प्रकट करते हैं। "जवाहरलाल बोलते हैं तो हँसने का नाम नहीं। चेहरा देखकर प्रतीत होता है मानो सारे संसार की ज़िम्मेदारी के बोझ से दब गया है, अगर मुस्कराये भी तो मानो पाप कर दिया। हँसी आ गई तो उसे पाप समझकर दबा दिया। यह बात सर्व साधारण के सामने की है। × × × सभा में गंभीर से गंभीरतम बन जाते हैं। छोटे नेहरूजी की चचल सुकुमार पुत्री कांग्रेस के पण्डाल में अपने दादा की टोपी को ही उतारने का साहस करती है, अपने पिता की टोपी को नहीं। मानो छोटे नेहरूजी हिंसा, हास्य और बुलबुद को महापाप समझते हैं। × × × इन विशेषताओं के कारण ही मौलाना मुहम्मदअली ने बड़े नेहरू को 'बूढ़ा जवान' और छोटे नेहरू को 'जवान बूढ़ा' कहा था।*

उनका सिद्धान्त है—"खतरनाक बनकर रहो" (Live dangerously)। "शीश उतारे भुइँ धरे तापे राखे पाँव", उनकी आदत है।

खतरे के प्रति आकर्षण

खतरे के वक्त वह हथेली पर सिर रखकर आगे बढ़ते हैं। खतरे के प्रति उनमें जो आकर्षण है उसके कई उदाहरण ऊपर दिये जा चुके हैं। यहाँ इस सम्बन्ध में एक और घटना का उल्लेख कर देना है। सन् १९२४ का साल था। [redacted] साल बाद प्रयाग में कुम्भ मेला लगा था। लाखों स्त्री पुरुष संगम-स्नान के लिए आये थे किन्तु सरकार ने यह कह कर स्नान रोकवा दिया कि यहाँ ज्यादा गहराई है और नहाने में खतरा है। इसकी जगह

*'अर्जुन' (श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति), १६ दिसम्बर १९२६ ई०

कि बालू डालकर नहाने का स्थान चौरस बना दिया जाता, सरकार ने यह तरीका इख्तियार किया। रोक के लिए वहाँ तख्ते गाड दिये गये और सशस्त्र एवं अश्वारोही पुलिस उसके पास, जनता को रोकने के लिए, खडी कर दी गई। पं० मालवीयजी भी मेले में उपस्थित थे। उन्होंने अधिकारियों से बातचीत, लिखा पढी भी की पर कुछ फल न निकला। अधिकारी प्रमाद मे डूबे हुए थे। जवाहरलाल नगर-बोर्ड (म्युनिसिपल्टी) के सभापति थे। ज्योंही उन्हे समाचार मिला, कुछ स्वयसेवकों को लेकर दौड पडे। मालवीयजी ने उन्हें शान्त किया और एक बार फिर समझौते की चेष्टा की पर इन प्रयत्नों का फल कुछ न होता था। साधु लोग धर्म पर सरकारी आक्रमण देखकर भी चुप थे। काग्रेसवाले उस रोक के पास ही सत्याग्रह के लिए डटे थे और अपने सेनापति के इशारे की प्रतीक्षा म थे। मालवीय जी के अनुरोध से जवाहरलाल चुप थे। बठ बैठ चार ४ घण्टे हो गये। उनका खून खौल रहा था। अब ज्यादा देर बठना उनके लिए कठिन हो गया। तेजी से उछलकर, एक क्षण में, वह स्लीपर की दीवार पर, तिरंगा झण्डा लिए, पहुँच गये। घुड़सवारों ने रोक चेष्टा की पर उन्हे न पा सके, स्वयसेवकों ने उनका अनुसरण किया और जरा देर में बहुत से लोग त्रिवेणी म जा पहुँचे। जवाहरलाल ने त्रिवेणी म कूदकर तख्ते को उखाड दिया और नहाने के लिए रास्ता कर दिया। सरकारी अधिकारी और पुलीस भौंचक-सी देखती रह गई। अधिकारी घबड़ा गये और उसी दिन वहाँ बालू पडने लगी तथा यात्रियों को सगम में नहाने की सुविधा हो गई।

जवाहरलाल की दूसरी विशेषता उनकी निर्भीक सिद्धान्त प्रियता है। १९२० ई० से आजतक उन्होंने जो समझा उसी पर चलते रहे। कभी

सिद्धान्त प्रियता

उन्हे कौंसिलों में जाने का मोह नहीं उत्पन्न हुआ, कभी विधायक कार्यक्रम के महत्व को कम नहीं होने दिया। जब बड़े बड़े नेता प्रवाह में बह गये, वह अपने सिद्धान्त

पर अटल रहे। उनके इस सिद्धान्त सम्बन्धी न झुकने वाले स्वभाव ने, साधारण प्रेक्षकों में, गलतफहमी भी पैदा की है। एक बार मेरे एक आदरणीय मित्र ने बातचीत के सिलसिले में मुझसे कहा कि जवाहरलाल का कोई खास सिद्धान्त नहीं मालूम पड़ता। मुझे हँसी आ गई। यही मित्र जब लाहौर कांग्रेस से लौटे तो उनके मुँह से प्रशंसा के फूल झड़ते थे। कलकत्ता कांग्रेस में महात्माजी के दबाने पर भी वह समझौते के लिए राजी न हो सके। हाँ, उन्होंने उसमें विघ्न नहीं डाला पर दिल के दुःख के कारण पण्डाल तक भी न गये। महात्माजी ने उस समय इनके दर्द और संयम का बड़ा मार्मिक विवेचन किया था। ये बातें उनकी सिद्धान्त प्रियता की द्योतक हैं।

जवाहरलाल का अनुशासन (Discipline) बड़ा जबर्दस्त है। इस मामले में वह बड़ा-छोटा, अपना पराया किसी का विचार नहीं करते और उसे बड़े बेरहमी से इस्तेमाल करते हैं।

अनुशासन

इस विषय में उनके सामने और कोई नेता नहीं खड़ा किया जा सकता। नियम पालन करने और कराने में कभी मैंने उन्हें झुकते नहीं देखा। जेल में और बाहर दोनों जगह जिन्होंने उन्हें देखा है वही उनके नियम पालन की कठोरता का ठीक ठीक अन्दाज लगा सकते हैं। स्नान भोजन, चर्खा कातना, खेलना, पढ़ना सब नियमित। जेल में वह अपने हाथ से स्थान की सफाई करते, साबुन से कपड़े साफ करते, पुस्तकें संभालकर रखते, बर्तन मलते तथा बिस्तर धूप में डालते थे और इन कामों में अपने प्रिय से प्रिय साथी की सहायता अस्वीकार कर देते थे। बाहर रहते हैं तो बड़े सवेरे उठकर पहले अपना कार्यक्रम बनाते हैं और फिर साधारण दैनिक आवश्यकताओं से निबटकर काम में लग जाते हैं। आज का काम कल पर नहीं छोड़ते और इसीलिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी के कार्यालय में या अन्यत्र उनके साथ या उनके नीचे काम करनेवाले कार्यकर्ता या कर्मचारी उनसे

परेशान रहते हैं। वह एक कठोर काम लेनेवाले साथी (Hard Task-Master) हैं। वह स्वयं परिश्रम करते हैं और अपने सहायकों से भी कड़ा काम लेना जानते हैं। उनके मारे आलसी और कामचोर क्लर्कों की जान आफत में रहती है। भारतीय कांग्रेस-कमिटी के कार्यालय को अपनी सुव्यवस्था से उन्होंने सरकारी शासन विभाग के दफ्तर से भी अधिक सुव्यवस्थित कर दिया है। असहयोग के जमाने में जब गिरफ्तारी का वारण्ट लेकर पुलिस अफसर उनके पास पहुँचा और उसने १० १५ मिनट का समय घरवालों से मिलने और तैयार होने के लिए दिया तो जवाहरलाल ने तुरन्त सहायक से कहा—"लाओ, जरूरी पत्रों के उत्तर लिखा दूँ।" जब लोग ऐसे समय स्नेह विभोर होकर स्वभावतः घर वालोंसे मिलना चाहेंगे, जवाहरलालने वह थोड़ा समय कार्यालय की व्यवस्था करने और पत्रों का उत्तर लिखने में व्यय किया। यह उनकी कड़ाई है, यह उनकी लगन है।

। निर्दय नियम पालन, तपस्या और गंभीर मुद्रा के कारण इन १०-१२ वर्षों के अन्दर ही जवाहरलाल शरीर की दृष्टि से बहुत दुर्बल हो गये हैं। उन्होंने अपनी देह की कभी परवा न की और इसलिए उनका सौन्दर्य एक सुन्दर विधवा के करुण एवं गंभीर मुख की याद दिलाता है। उन्होंने अपनी सारी कामनाओं को संयम की आग में एक सच्चे साधक की भाँति तिल तिल करके जलाया है। यद्यपि वह ऊँचे नैतिक उपदेश नहीं देते, और दूसरों को इस सम्बन्ध में छूट भी बहुत देते हैं, अपने लिए उनकी कसौटी बड़ी कठोर रही है। विगत ८ ९ वर्षों से वह नियम पूर्वक इन्द्रिय संयम कर रहे हैं यद्यपि उनके इस मूक व्रत का विज्ञापन नहीं हुआ और न होना ही चाहिए था।

अमीरी गरीबी

यद्यपि उनका दिल अमीर है, गरीबी को उन्होंने फकीर की भाँति अपना लिया है। मैंने उन्हें बिना बिस्तर यों ही सबके साथ सोते देखा है, मैंने उनके शरीर पर फटे (पर साफ) कपड़े देखे हैं, मैंने उन्हें सबके साथ प्रेमपूर्वक चने चबाते देखा है, मैंने उन्हें धोती उठाये

पानी से भरे खेतों में मीलों पैदल चलते देखा है। उनकी तपस्या और उनका त्याग विज्ञापन का भूखा नहीं। गाँवों में पैदल २०—२० मील उन्हें चलना पड़ा है और मैं दूसरे किसी देश नेता को नहीं जानता जिसने इस प्रकार २०—२० मील भूखे प्यासे—पैदल चलकर भारतीय किसानों के बीच साधारण सिपाही की तरह, उन्हीं का बनकर, काम किया हो। इसी निर्भीक और बशीस त्याग के कारण वह डंडों की मार में भी शान्ति के साथ मुसकराते देखे गये हैं; मानो शुद्ध अहिंसा, हिंसा को चैलेंज करके हँस रही हो। वह, दुःख और खतरे के प्रति उनमें बड़ा झुकाव है। अपने मुकदमे के समय उन्होंने कहा था—"यहाँ बाहर ! यहाँ तो अजब सुनसान है। सब साथी जेल में हैं, मैं भी वहीं जाना चाहता हूँ।'

× × ×

वैसे तो मैंने कई बार देखा था पर बहुत निकट से पहली बार उन्हें बहन सरूप कुमारी (आज की श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित) के विवाह के समय देखा। मैं भी कई कार्यकर्ताओं के साथ निमन्त्रित होकर आनन्द भवन में टिका था। उस समय इलाहाबाद की जिला कान्फ्रेंस भी होने वाली थी। महात्माजी, सरोजनी नायडू, लाला लाजपतराय, मोहम्मदअली, श्री एण्डरूज इत्यादि कितने ही नेता जमा थे। उस समय भी जवाहरलाल की सादगी देखी थी। कान्फ्रेंस से लौटकर कई बार बातचीत करते करते वह हम लोगों के साथ तख्त पर ही सो जाते। उन्होंने उस समय भी अपना वैभव छोड़ दिया था यद्यपि उनका हृदय दिन दिन अधिकाधिक वैभवशाली होता जा रहा था।

शीघ्र निर्णय की शक्ति जवाहरलाल में अद्भुत है। वह दीर्घ-सूत्री नहीं, बहुत जल्द निर्णय करते और तदनुकूल काम में लग जाते हैं। ज्यादा तर्क वितर्क और विवाद करना उन्हें अच्छा नहीं लगता। लम्बी चौड़ी बहसें उनके नजदीक तुच्छ हैं। नेताओं में उनके इस गुण को महात्मा गांधी से अधिक किसी ने न समझा। गोलमेज कान्फ्रेंस के

शीघ्र निर्णय

लिए जब महात्माजी कांग्रेस के प्रतिनिधि की हैसियत से लन्दन जानेवाले थे तब कई मित्रों एवं नेताओं ने उनसे कहा था कि कुछ और नेताओं को भी लेकर कांग्रेस का एक अच्छा प्रतिनिधि मंडल वहाँ जाना चाहिए। और लोग न सही पर जवाहरलाल को तो अवश्य जाना चाहिए। इसपर महात्माजी ने लन्दन के लिए रवाना होने के पहले 'यंग इण्डिया' में लिखा था—"मि० रेनाल्ड तथा अन्य मित्रों ने मुझसे कम से कम जवाहरलाल को तो लन्दन साथ ले जाने के लिए कहा है। वे निर्भय हैं फिर भी नम्र हैं। कमजोरी और कमजोर करनेवाली कायरता से अपरिचित हैं और इसी कारण वे कमजोरी को एक क्षण में पकड़ लेते हैं। कूटनीतिज्ञता से रहित रहने के कारण वे गोलमाल भाषा से घृणा करते हैं और वास्तविकता तक सीधे पहुँचने पर जोर देते हैं। मैं अपने को आदर्शवादिता में उनसे आगे समझता हूँ तो वह मुझसे आगे होने का दावा करते हैं। मैं उनका समर्थन करता हूँ और इसलिए अपने बहुत से मित्रों की इस भावना का साथ सहयोग करता हूँ कि मुझे ठीक मार्ग पर बनाये रखने के लिए और सदह के समय 'डिक्शनरी' (शब्द-कोश) का काम देने के लिए जवाहरलाल जी को साथ रखना चाहिए।" किंतु इतनी महानता दरसाकर ही उन्होंने यह भी कहा कि यदि मैं उन्हें साथ ले जाऊँ तो भारत को कौन सँभालेगा? उनके हाथ में कहीं अधिक जिम्मेदारी का काम है।

स्वराज्य दल के निर्माण के समय एक बार बूढ़े नेताओं के सैद्धांतिक विवादों से ऊबकर यह दूर बैठ गये और उनकी आँखें भर सी आईं, मानो वे कह रही थीं कि 'जब माँ गुलामी की पीड़ा से चीख रही है, तुम लोग व्यक्तिगत महत्ता एवं सिद्धान्तों के विवाद में पड़े हो।'

अधिक विवाद से उन्हें चिढ़ है। वह शीघ्र निर्णय को पसंद करते हैं। अभी चार साल पहले जब दिल्ली में सब दल सम्मेलन की बैठक हो रही थी तब मैं भी वहाँ उपस्थित था। भारतीय युवक-संघ का भी अधिवेशन था। अनेक नेता आये हुए थे। धवलकेशी माता बेसेण्ट भी

आई हुई थीं और यदि मैं भूलता नहीं तो विधान के अपूर्व पण्डित विद्यावयोवृद्ध विजयराघवाचार्य भी आये थे। दरियागंज में डा० अंसारी के बँगले पर बैठक हो रही थी। वह कमरे में। कुछ तै न हो पाता था। इधर भोजन तैयार हो रहा था। अन्त में जवाहरलाल ने अपना जरा सा बिस्तर बाँधकर डा० अंसारी के प्राइवेट सेक्रेटरी से कहा—"मैं जाता हूँ, मुझे कई जरूरी काम हैं।" उन्होंने कहा—"क्या भोजन न करेंगे?" बोले—"इन बुजुर्गों की बहस तो खतम होती नहीं। और ऐसा तराना छिड़ा है कि भोजन मिलता भी नहीं दीखता मुझे खिलाना हो तो जो कुछ बना हो, खिला दो।" इस प्रकार मैंने कई बार देखा है कि जहाँ सैद्धान्तिक बहस ज्यादा होने लगती है वहाँ उनका दिल उचट जाता है।

× × ×

विद्रोह, युद्ध प्रियता और उग्रता तो उनकी प्रकृति में पतृक दन है। अपरिमित कार्य शक्ति भी उन्हें पिता से मिली है पर इसके साथ ही उनका हृदय कोमल है,—उसमें दया, प्रेम और इंसानियत है। सादगी बहुत है और त्याग तथा कष्ट सहिष्णुता उससे भी अधिक।

स्पष्टवादिता इनका एक विशेष गुण है। इसीलिए यह भी सत्य है कि सदा उनके कट्टर अनुयायी और कट्टर विरोधी रहेंगे। ज्यों-ज्यों उनके अनुयायियों की संख्या बढ़ेगी त्यों-त्यों उनके विरोधियों का विरोध भी प्रबल होगा।

जवाहरलाल के बारे में लोगों में मत भेद भी बहुत है। कुछ लोगों की दृष्टि में 'वह राजद्रोहपूर्ण साम्यवाद की मूर्ति तथा धन-सत्ता एवं सुविधा के प्रति घृणा रखने वाला—एक ऐसा आदमी है जो स्वयं अपनी ही श्रेणी को नष्ट कर देगा और जन साधारण का नेता बनकर शक्ति पर विजय प्राप्त करेगा।' कुछ उनकी नीति को अनिश्चित बताते हैं पर चाहे जो हो 'पायोनियर' के भूतपूर्व सम्पादक श्री एफ० डबल्यू०

विलसन के शब्दों म "वह सच्चे हैं, वह तर्कपूर्ण है और अपने जावन का एक परिपूर्ण सिद्धान्त उनके पास है। जवाहरलाल समाज सुधारक पहले हैं, राजनीतिज्ञ बाद मे ह। उनके अन्दर जो समाज सुधारक है वह राजनीतिज्ञ को दबाये हुए है। × × × उनके मनुष्यों का नेता होने म कोइ सदेह नहीं कर सकता। वह एक ऐसे नेता है जिनका जनता अवश्य अनुसरण करेगी,—उनकी बौद्धिक शक्तिया के कारण उतना नहा जितना इस कारण कि उनके अन्त करण म मानवीय दुर्बलताओं और कठिनाइया के प्रति असीम सहानुभूति है।" *

जवाहरलाल की महानता के सम्बन्ध में स्वतंत्र मजूर दल के प्रसिद्ध नेता श्री फेनर ब्राकवे ने ठीक ही लिखा है—"मेरी धारणा है कि प० जवाहर लाल नेहरू आधुनिक समय में ससार के महान् शक्तिशाली और प्रभाव शाली व्यक्तियों मे से एक है। भारत के नवयुवक समाज म जिन नवीन विचारों की धारा प्रवाहित हो रही है, वे उनकी प्रतिमूर्ति है। आज से बीस साल पहले भारत के नेतागण शासन सत्ता मे भारत की उन्नत जातियों के लिए कुछ भाग की याचना करके सतुष्ट हो जाते थे। दस

---

* + + + To some people he is the embodiment of the worst kind of seditious communism a bitter hater of wealth and privilege who would destroy his own class and ride triumphantly to power as the leader of understanding masses
Jawaharlal is sincere He is logical and he has what appears to himself atleast a perfectly adequate theory of life

Jawaharlal, I am convinced is a social reformer first and a politician afterwards it is the social reformer in Jawaharlal that dominates the politician There is no doubt about his being a leader of men and a leader whom men will follow, not so much because of an intellectual predominance but because there glows in his mind and soul a sympathetic understanding for human frailties and difficulties

W F. Wilson in preface of J L. Nehru the Man

साल पहले प्रधानतया महात्मा गाँधी के प्रभाव के फलस्वरूप वे राजनीतिक स्वतंत्रता मांगने लगे। जवाहरलालजी की विशेषता यह है कि वे केवल राजनीतिक और सामाजिक स्वतंत्रता ही नहीं मांगते किन्तु साथ ही आर्थिक स्वतंत्रता भी मांगते हैं। वे नवभारत को आत्म निर्भर बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं और विदेशी सरकार का साहस के साथ सामना कर रहे हैं। किन्तु उनके कार्य इससे भी बड़े हैं, भारत की ही उन बातों के विरुद्ध जो कि भारत में फूट फैला रही हैं और प्राचीन अन्ध विश्वासों एवं रीति रिवाजों का दास बनाती हैं बगावत करने के लिए वे युवक भारत को आदेश दे रहे हैं। वे एक ऐसा सामूहिक संगठन खड़ा करने की कोशिश में हैं जो सामाजिक और आर्थिक क्रांति कर सके और भारत के मजदूर और किसानों को उनकी बेबसी और गरीबी से छुटकारा दिला सके। पश्चिम में कुछ ऐसे 'दर्शनीय' महानुभाव भी हैं जो भारत को पतित मान बैठे हैं, वे इस वास्तविकता के प्रति अन्धे हैं कि भारत में महान् परिवर्तन हो रहा है। मैं संसार में ऐसा कोई भी देश नहीं जानता जहाँ इतनी सारी शक्तियाँ राजनीतिक, सामाजिक और स्त्री पुरुष की समानता के लिए काम कर रही हों। पं० जवाहरलाल नेहरू उन शक्तियों की प्रतिमूर्ति हैं और इसीलिए मैं उन्हें नवीन भारत का अवतार मानता हूँ। उन्हें व्यक्तिगत रूप से जानने का सम्मान मुझे प्राप्त है और उनकी लगन और त्याग उस भावना का आदर्श है जो भारत में स्वाधीनता की स्थापना कर सकेगी।"*

निस्सन्देह व्यक्तित्व के लिहाज से भी तथा कार्य पद्धति के लिहाज से भी भारत के नेताओं में शायद ही कोई उनसे ऊँचा हो। महात्मा गांधी में उनसे अधिक विशेषताएँ हैं पर भारतीय राष्ट्रवाद के नेता के जगह उन्हें मानवता का एक पथ प्रदर्शक कहने और समझने में हमारा

* 'जवाहरलाल नेहरू की जीवनी और व्याख्यान' (श्री गोपीनाथ दीक्षित बी० ए०) के आरम्भ में।

विशेष गौरव है। "श्री नेहरू भारतीय राजनीतिज्ञ के सबसे ताजा रान• सरकरण हैं। पुराने ढग के राजनीतिज्ञों की कोई बात उनमें नहीं है जो पनचक्की की तरह हाथ हिलाते ह और विरोधियों के तर्कों को सुनकर जगली ढग से कभी दाएँ कभी बाएँ झोंकते हैं। उनकी बुद्धि तीव्र है, वह बहस—'डिबेट'—में कुशल हैं और सीधे एव सफाई से वार करते हैं।"✻

"मैंने जिन भारतीय राजनीतिज्ञों के व्याख्यान सुने ह, उनमें से अधिकाश आपके प्रति सार्वजनिक सभा की भाँति व्यवहार करते हैं—जैसा ग्लैडस्टन का रानी विक्टोरिया के प्रति था। जवाहरलाल सार्वजनिक सभा को एक व्यक्ति की तरह समझते—'ट्रीट' करते ह। वह आपको अपने समकक्ष मानकर, आपको बेतकल्लुफ कर देते हैं। वे जोरदार वक्ता हैं पर उनमें वाग्शास्त्री के चमत्कार नहीं ह। समझदारी के साथ व्यक्त ठोस विवेक—यह उनका जादू भरा तरीका है। वह इतने सच्चे ('सिसियर') हैं कि उनके साथ मत भेद रखने और प्रकट करने को आप एक अपराध समझते हैं।" ×

✻ Mr Nehru is the latest model de luxe of the Indian politician with veritable eight cylinder ideas He is none of your old model politicians waving their arm in wind mill fashion hacking savagely left and right the opponents arguments Gifted with a keen intellect he is skilful in debate cutting clean and straight B D Dhanpal in The New Thought Vol I No L.

× Most Indian politicians I have heard treat you as Gladstone treated Queen Victoria like a public meeting Mr Nehru treats a public meeting like a private individual He takes you as his equal puts you at your ease Cogent and forcible he has no frills and oratorial flashes of purple patches. Solid common sense expressed in a common sense way—that is his magical method. Yet he is so sincere you feel it a crime to disagree with him

- B. D Dhanpal.

इस सम्बन्ध म श्रीधनपाल ने एक घटना का जिक्र किया है जिससे जवाहरलाल के सोचने और बोलने के ढग पर बडा प्रकाश पडता है—

एक बार एक व्याख्यान में जवाहरलाल अध्यक्ष थे। एक शुष्क बुद्धि के तार्किक प्रोफेसर भारतीय महासभा के कार्यक्रम को अव्यावहारिक और स्वप्निल बताकर उसकी हँसी उडा रहे थे। काग्रेस के बाद अपने व्याख्यान में उन्होंने लिबरलों की औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग की भी आलोचना की। इसके बाद—सब की आलोचना के बाद, उन्होंने स्वीकार किया कि मैं समस्या का कोई हल नहीं बता सकता क्योंकि मैं यह निर्णय नहीं कर सकता कि लोगों को क्या करना चाहिए। अन्त म उन्होंने अपना व्याख्यान इस प्रार्थना के साथ समाप्त किया कि राजनीतिज्ञों को कल्पना-जगत् म विहार न करके असलियत का सामना करना चाहिए।

जवाहरलाल उठे। वातावरण में बिजली का अनुभव हुआ। बडी शान्ति थी। जरा सा शब्द भी जोर से सुनाई पडता था।

जवाहरलाल के मुख के कोनों पर हँसी फूट रही थी। उन्होंने आरभ किया—"अपने मित्र प्रोफेसर का व्याख्यान सुनते समय मुझे एक शुभाकाक्षी ग्रीक प्रोफेसर की बात याद आ गई जिसका सिद्धान्त था कि किसी को क्या काम करना, इसका एक निर्णय न कर लेना चाहिए। उसके कितने ही सच्चे—ईमानदार शिष्य थे। एक दिन की बात है कि सयोग-वश प्रोफेसर किसी दलदल में पड गये। वह कीचड में चिपट गये थे और धीरे धीरे उसके अन्दर घुसते जा रहे थे। इसी समय उनका सबसे योग्य शिष्य उधर से निकला। शिष्य ने गुरू को इस हालत में देखकर मन में तर्क करना शुरू किया—'निकालने से क्या लाभ होगा? न निकालने से क्या होगा?'—इन सब बातों पर वह विविध दृष्टियों से विचार करने लगा। अन्त में बडी देर के बाद इस निर्णय पर पहुँचा कि वह कोई निश्चय नहीं कर सकता।"

सभा अट्टहास से प्रतिध्वनित हो उठी। वह सूखी हँसी, शिशिर के सूर्यास्त की तरह जवाहरलाल के मुख से दूर हो गई। बोले—"हम राजनीतिज्ञ, जिनके पास रात-दिन शुष्क, ठोस और कठोर तथ्यों का सामना करने के सिवा और कोई काम नहीं है, प्रोफसरों एव कुर्सी-सेवी दार्शनिकों के सामने अव्यावहारिक होने के वैभव का खर्च कहाँ से उठा सकते है ?"

मैंने प्रोफेसर की ओर देखा। उनका मुँह उस आदमी सा हो गया था जो अपनी इच्छा के विरुद्ध आत्म हत्या करने पर उतारू हो।

इसी प्रकार एक बार की बात है कि एक सज्जन किसी विषय पर उनसे बहस कर रहे थे। मत भेद प्रकट करते करते उसे न्याय्य सिद्ध करने के उद्देश्य से उन्होंने कहा—"प्रत्येक प्रश्न के दो पक्ष होते हैं।" 'जवाहरलाल' बोल उठे—"अवश्य, किन्तु इसका यह मतलब तो नहीं है कि आप सदा गलत पक्ष की ओर रहें ?"

उनके अन्दर अगाध आत्म विश्वास है। इसीलिए वह समझते है कि यदि किसी देश को कुछ प्राप्त करना है तो उसके लिए असभव को सभव कर दिखाने की चेष्टा करने से बढ़कर दूसरा कल्याणकर मार्ग नहीं है। सच पूछो तो वह किसी बात के असभव होने म अधिक विश्वास करते ही नहीं। वह आश्चर्यजनक घटनाओं में विश्वास करने को पसद करते है। समझौते और राजनीतिक चालबाजियों के लिए उनके हृदय म सख्त घृणा है। इधर या उधर—आधे या बीच में उन्हें सतोष नहीं। १९२९ में उन्होंने 'समझौता' नामक एक लेख लिखा था। इस लेख म उन्होंने बड़े ही व्यंगपूर्ण पर जोशीले ढग से उन लोगों की खबर ली थी जो प्राय हमें उपदेश किया करते है कि ऐसी बातों से हमारे शासकों का मन हमारी तरफ से और कड़ा हो जायगा और वे बुरा मान जायँगे। वह लिखते हैं—

"विलासी और चकाचौंध उत्पन्न करनेवाले पश्चिम की ओर ग्रीष्म ऋतु व्यतीत करने के लिए की जानेवाली यात्राएँ समाप्त हो चुकी हैं और अब प्रत्येक जहाज में—जो भारत को आता है—हमारे दो-एक देश-वासी अवश्य रहते हैं। प्रत्येक नवागन्तुक, जो जेनेवा या 'ह्वाइटहाल' अथवा डाउनिंग स्ट्रीट* से परिचय एवं घनिष्टता प्राप्त करके आता है, अपने उत्कण्ठित देशवासियों को व्यक्तियों, वस्तुओं, राजनीति तथा और बहुत सी समस्याओं पर, जिनसे हमारा देश दुखी और विकल है, अपनी अमूल्य सम्मति बड़ी उदारता से प्रदान करता है। निस्सन्देह ये सम्मतियाँ रहस्यपूर्ण और गूढ़ है क्योंकि इनके उदार दाता 'ह्वाइट हाल' के 'मुगल महान' की सेवा में उपस्थित होकर भविष्य के विषय में सारी बातें जानकर ही तो आते हैं! × × ×"

"× × × सत्य ही ये लोग अपने कोकिल-कण्ठों से मधुर राग में डाउनिंग स्ट्रीट और ह्वाइट हाल के प्रभुओं के सौजन्य और सहानुभूति की प्रशंसा करते हैं और कहते हैं कि भारत के लिए उन लोगों का प्रेम अवर्णनीय है और यहाँ की उन्नति के लिए उनके हृदय व्याकुल हैं। यह भी कहा जाता है कि हमें अपने मुख से एक भी शब्द या वाक्य ऐसा न निकालना चाहिए जिससे वे चिढ़ जाँय या उनकी स्थिति कठिन हो जाय। उन लोगों का हृदय कितना उत्तेजनशील और दुर्बल होगा जिन्हें हमारे चंद शब्द इतना उत्तेजित कर सकते हैं कि उनका चिर घोषित भारत प्रेम भूल जाय! इसीलिए हम रोज रोज चेतावनी दी जाती है कि कहीं मूर्खता-वश हम कोई कटु या अनिष्टकर शब्द मुँह से न निकाल बैठें और ऐसा ऐसा करके व्यर्थ ही विपत्ति न बुला लें।

"इस सम्बन्ध में यह जान लेना अच्छा है कि दूसरी दुनिया—पश्चिम—के ये शक्तिमान पुरुष भी, हमारी ही तरह मनुष्य हैं और मनुष्य जाति की साधारण दुर्बलताओं के शिकार है। परन्तु यह एक आश्चर्य

* यहाँ पार्लमेण्ट के भवन तथा मंत्रियों के कार्यालय है।

का बात है कि जो लोग हमें उपदेश देते हैं, वे यह भूल जाते हैं कि हम भारत के वासी पुरुषों में भी मानवी दुर्बलताएँ हो सकती हैं। वे यह भूल जाते हैं कि यदि शब्द चोट पहुँचाते हैं तो डंडों से और भी अधिक पीड़ा होती है और जब पुलिस के सिपाही का डण्डा मुलायम चमड़े पर पड़ता है तो किसी विशेष सुख का अनुभव नहीं होता। × × × ×।"

"हमसे कहा जाता है कि 'समझौता ही राजनीति का निचोड़ है। राजनैतिक प्रतिभा 'सबका सब या कुछ भी नहीं' का आदर्श अपने सामने नहीं रखती वरन् स्थिति के अनुकूल समझौते से जितना भी लाभ उठाया जा सकता है, उठाती है और आधे के लिए सारा नहीं गवाँ देती।' नरमी और समझौता राजनीति के खेल में अच्छे हो सकते हैं परन्तु जीवन राजनीति से अधिक महान् वस्तु है और जब जीवन का तकाजा दूसरे प्रकार का हो, नरमी या समझौता की नीति नहीं इख्तियार की जा सकती। × × × हमसे कहा जाता है कि हम बुद्धि-संगत बनें, नरमी से काम लें और ऐसे शब्दों का उच्चारण न करें जिनसे हमारे शासक चिढ़ जायँ। किन्तु अच्छा हो यदि हमारे ये उदार सलाहकार यह समझ सकें कि जीवन में ऐसे अवसर भी आते हैं और ऐसे भी विषय होते हैं जिनपर समझौता नहीं किया जा सकता × × × उन्हें आज से लगभग १०० वर्ष पूर्व कहे हुए उस वीरात्मा—विलियम लायड गैरीजन—के इन शब्दों का स्मरण करना चाहिए—"मैं सत्य के समान कठोर और न्याय के समान दृढ़ रहूँगा। इस विषय पर मैं नरमी से विचार करना, बोलना और लिखना नहीं चाहता। नहीं! नहीं! उस आदमी से कहो, जिसका घर आग में जल रहा है कि धीरे धीरे चिल्लाये। उसे अत्याचारी के हाथ पड़ी अपनी पत्नी को धीरतापूर्वक छुड़ाने के लिए कहो! उस माता से, जिसका बच्चा आग में पड़ा हुआ तड़प रहा है, कहो कि वह उसे धीरे धीरे आग से निकाले किन्तु वर्तमान विषय के सम्बन्ध में हमसे नरमी दिखाने को मत कहो! मैं अपने लक्ष्य

के लिए विकल हूँ, मैं झुककर बातें नहीं करूँगा, मैं क्षमा नहीं करूँगा, मैं एक इंच पीछे नहीं हटूँगा, मेरी बात सुननी पड़ेगी। × × ।"*

इस लेख से न केवल उनके किसी बात पर विचार करने के ढंग का पता चलता है वरन् उनकी लेखनशैली पर भी प्रकाश पड़ता है। उनके लेख एवं भाषण प्रायः चुभने वाले व्यंगों और जोरदार अपील से भरे होते हैं। उनमें भावना और बुद्धि का अपूर्व संयोग होता है।

इतने पर भी देश हित के लिए कई बार वह अत्यधिक संयम से काम लेते हैं। गांधी इर्विन समझौते के समय भी वह उसके विरुद्ध थे पर जब देखा कि इस पर जोर देने से फूट फैलेगी एवं विरोधी शक्तियाँ उसका दुरुपयोग करेंगी तो चुप रह गये। यद्यपि इसपर वह दुःखी-से थे।

× × ×

भारतीय कल्पना पर प्रभाव

महात्मा गाँधी के बाद दूसरे किसी आधुनिक नेता ने भारतीय कल्पना पर इतना प्रभाव नहीं डाला है जितना जवाहरलाल ने। वह केवल एक राजनीतिज्ञ नहीं है वरन् पैगम्बर—'प्राफेट'—भी हैं। यह जरूर है कि महात्माजी में इसकी मात्रा अधिक है पर जवाहरलाल में भी अपना एक तत्वज्ञान है। वस्तुतः "जवाहरलाल एक व्यक्ति नहीं है। वह एक धारणा (idea) है—एक आदर्श है। यह धारणा है भारतीय राष्ट्र का दृढ़ निश्चय। उनमें यह धारणा मूर्तिमान हुई है। यह आदर्श शरीरी बन गया है।" †

सच पूछें तो जवाहरलाल में श्रेष्ठ राजनीतिज्ञ का तो एक भी गुण नहीं है। इस विषय में वह अपने स्वर्गीय पिता से कहीं पीछे हैं। वह अधीर हैं, वह समझौता से घृणा करते हैं, वह निष्ठुर स्पष्टवादी हैं। वह एक चीज पर अड़ जानेवाले हैं। उनमें 'टैक्ट' की अपेक्षा वफादारी

* 'त्यागभूमि' वर्ष ३, अंक २। † श्री बी० डी० धनपाल।

अधिक है, कूटनीतिज्ञता की अपेक्षा सच्चाई ज्यादा है। और निश्चय ही राजनीति विज्ञान म ये सफल राजनीतिज्ञ के लक्षण नहीं माने जाते।

"उनकी धारणा रेडियो के बम की भांति है जो मनुष्य के मन में कुछ समय तक चुपचाप पड़ा रहता है और फिर उसका विस्फोट होता है।"

× × ×

शेली, कीट्स और बायरन के वह बड़े प्रेमी हैं। इन कवियों के चुनाव में भी उनकी प्रकृति स्पष्ट हो जाती है। कोमलता, कल्पना, उत्साह और विद्रोह की वह मूर्ति इस निर्वाचन म भी स्पष्ट है। फारसी कवि उमर खैयाम को रुबाइयों के अंग्रेजी अनुवाद उनको कण्ठस्थ हैं। गेटे के 'फाउस्ट' के बड़े प्रशंसक हैं। टाल्सटाय की अपेक्षा तुर्गनीव की वह अधिक प्रशंसा करते हैं। वह एक अच्छे पाठक हैं और उनका अध्ययन कठिन परिस्थितियों में भी जारी रहता है। हिंदी साहित्य का भी अध्ययन चलता रहता है। उसकी गति विधि से वह परिचित हैं। समाज शास्त्र की गंभीर समस्याओं पर वह एक दार्शनिक की भांति विचार करते रहते हैं और वर्तमान युग के विचारकों में बर्ट्रेण्ड रसेल का अध्ययन करने के लिए लोगों को आम तौर पर कहा करते हैं। एक बार उन्होंने बर्टेण्ड रसेल का साहित्य हिंदी में निकलवाने के लिए कहा था पर हिंदी प्रकाशकों का वर्तमान मनोवृत्ति में अभी तक वह संभव न हो सका।

साहित्य रसिक

वह स्वयं भी एक अच्छे लेखक और विचारक ह। 'सोवियट रशा,' 'ए फादर्स लेटर टु हिज डाटर' (पिता के पत्र पुत्री के नाम) इत्यादि पुस्तकें वे लिख चुके हैं और इस बार जल म पत्रों के रूप में उन्होंने विश्व विकास का बड़ा इतिहास लिखा है। दूसरी पुस्तक की तो अनेक

& In addition to his being a politician he is a prophet. His id as have the quality of radium bombs—of lying about for some time in man s mind and then bursting '

B D Dhaopal.

अंग्रेज लेखकों ने प्रशंसा की है और अपने बच्चों के लिए उपयुक्त बताकर ग्रहण किया है।

यदि 'प्रताप' के लेखक के शब्दों में कहना चाहें तो "उसका व्यक्तित्व उत्साह, कर्मण्यता और अनुशासन का प्रतिरूप है। × × उसकी दृष्टि में निर्मल आदर्श की ज्योति है, उसके चरण निक्षेप में सुसंस्कृति और आत्म गौरव की लोच है। उसके हृदय में घोर असन्ताप है हमारी वर्तमान सामाजिक विशृंखलता के प्रति, उसके दिल में दर्द है नंगों और भूखों के लिए, उसके मन-मन्दिर में एक देवता आसीन है, समानता और लोक-कल्याण का। सात्विक क्रोध, निष्ठुर कार्य शालता, शुद्ध आदर्शवाद, शीघ्र निर्णय की शक्ति और बड़ी प्यारी झुँझलाहट × × × जवाहरलाल की विशेषताएँ हैं।"

सन् १९२९ ई० में जब सुधीन्द्र बोस अमेरिका से भारत आये थे तब वह मोतीलाल जी तथा जवाहरलाल से भी मिले थे। जवाहरलाल का वर्णन करते हुए वह लिखते हैं—

"उनमें सुसंस्कृत सभ्य पुरुष की प्रतिभा और सौजन्य था। उनका मुख-मंडल प्रभावशाली था। मैंने अपनी कल्पना की दुनिया में उन्हें भारत का लेनिन के रूप में चित्रित कर रक्खा था। मेरे सामने वह बुद्धिमान युवक खड़ा था जो भारतीय शासकों के लिए भय की चीज़ बन गया था। मैंने आश्चर्य चकित होकर उनकी ओर देखा। अवस्था में ४० साल के भीतर, तौल में १०० पौण्ड के लग भग पर शान्तिमय प्रतिमा और इसपर भी जीवन की, जाग्रति की पराकाष्ठा! स्फूर्ति की किरणें उनके शरीर से फूट रही थीं और उनकी चमकती काली आँखों में केन्द्रित दीख पड़ती थीं। मेरे मन में लेनिन से उनकी समानता दृढ़ होकर बैठ गई। उनमें जी-जान से, लगन से काम करने का वैसा ही गुण है जैसा रूस के नेता—लेनिन—में था।"

इसमें कोई सदेह नहीं कि जवाहरलाल, यदि ऐसे ही रहे तो निकट भविष्य में अधिकाधिक आदृत होंगे और अनुकरणीय समझे जायँगे। इसका कारण यह है कि एक तो उनमें गांधीवाद और लेनिनवाद का समन्वय है और दूसरे वह पारम्परिक दुर्बलताओं, परिपाटियों, रूढ़ियों और अन्धविश्वासपूर्ण असमानता के भावों से सर्वथा परे हैं। उनमें धार्मिक पक्षपात नहीं, उनमें जातिगत भेद भाव नहीं, उनमें प्राचीन के अन्धानुसरण की प्रवृत्ति नहीं। इसलिए भविष्य में, आजादी की लड़ाई में भी और उसके बाद भी, ज्यों-ज्यों युवकों और विश्ववादियों का जोर बढ़ता जायगा, वह दिन दिन कीमती साबित होते जायँगे।

मोतीलालजी और जवाहरलाल

[समता और विषमता]

"जवाहरलाल में गांधी जी की भाँति स्पष्टवादिता है। मोतीलालजी सम्यत कूटनीतिज्ञ (डिप्लोमैट) थे। वह तबतक किसी से अपने मत भेद को प्रकट न करते थे—किसी से झगड़ा मोल न लेते थे, जबतक कि वैसा करने में कोई लाभ न हो। उनके लेखों एवं भाषणों को पढ़ जाइए, आपको एक जगह भी अपने विश्वास की स्वीकारोक्ति (A single confession of faith) न मिलेगी। यह उनकी कमजोरी भी थी—शक्ति भी थी। इसने उनको भक्त नहीं बनने दिया पर उनके मतलब को सदा पूरा किया। उनका काम नेतृत्व करना था और इस कार्य में इससे सहायता ही मिलती रही।

ऐसी बात जवाहरलाल के लिए नहीं कही जा सकती। उनके तो कट्टर श्रद्धालु अनुयायी होंगे और कट्टर विरोधी भी होंगे।"*

---

* अल-काफिर।

सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो मालूम होगा कि दोनों के जीवन में तेजस्विता है, दोनों देशभक्त हैं; दोनों बात के धनी हैं, दोनों त्यागी हैं, दोनों में दृढ़ता और लगन है। दोनों में जातिगत एवं साम्प्रदायिक ईर्ष्या—द्वेष नहीं, दोनों समाज-सुधारक हैं। मोतीलालजी में राजसिकता अधिक थी—क्षात्रभाव अधिक था, जवाहरलाल में राजसिकता कम , सात्विकता अधिक है, क्षात्र भाव भी है पर ब्राह्मणत्व उसको दबाये हुए है। मनुष्य के प्रति सहानुभूति के भाव से उनका हृदय भरा है। मोतीलाल जी ने सर्वस्व त्याग दिया पर उनका त्याग क्षत्रिय का त्याग है—राजा का स्वेच्छापूर्वक सिंहासन त्याग है । उस त्याग में उनकी शान, उनके बड़प्पन का भाव स्पष्ट है। उसमें आवेश है विघ्नकारी वस्तुओं पर। उसमें रास्ता रोकनेवाले विलास वैभव पर लात मारकर अलग हो जाने का भाव है। जवाहरलाल की प्रकृति में उनकी अपेक्षा त्याग का भाव अधिक मिला हुआ—अधिक स्वाभाविक है। उनके त्याग में आवेश की अपेक्षा शील अधिक है। जवाहरलाल का चेहरा एक साधक का चेहरा है—मोतीलालजी का चेहरा अन्त तक एक राजर्षि का चेहरा रहा। वह हमें विश्वामित्र की तेजस्विता की याद दिलाता है। मोतीलालजी एवं जवाहरलाल में यही फर्क है।—विश्वामित्र और वशिष्ठ का।

मोतीलालजी दुनिया को आनन्द की दृष्टि से देखते थे, वह उनके लिए एक क्रीड़ाभूमि थी—खेल खेलने का एक मैदान था। इसीलिए बुढ़ापे में भी उनके निष्ठुर बुद्धिवाद के नीचे एक हँसता, उछलता हुआ जवान दिल था। अट्टहास करते थे तो सब भूल जाते थे—हँसी का मजा ले-लेकर हँसते थे। जवाहरलाल हँसेंगे भी तो अट्टहास नहीं होगा—बहुत हुआ तो मुस्कराहट तक खत्म है। इसीलिए स्व० मौलाना मुहम्मद अली ने मोतीलालजी को 'जवान बूढ़ा' और जवाहरलाल को 'बूढ़ा जवान' कहा था।

दोनों में कौन बड़ा है ? मोतीलाल जी को जवाहरलाल के पिता के नाम से पुकारा जाय या जवाहरलाल को मोतीलालजी के पुत्र के नाम से ?—इसका निर्णय करना कठिन है, व्यर्थ भी है। आधुनिक भारत के निर्माण में दोनों के अपने अप्रतिम स्थान हैं। 'न दैन्य न पलायनम्',—मोतीलाल जी के क्षात्र हृदय का यह सिद्धान्त था—यदि उनके जीवन को किसी सिद्धान्त में बाँधा जा सकता हो। जहाँ रहना शेर बनकर रहना, सब से आगे रहना, अपनी जिम्मेदारी के पालन में अपना सब कुछ—अपने को, अपनों को मिटा देना, इस राजर्षि का यह ढंग था, यह करीना था। मृत्यु तक वही रहा। मृत्यु के चार पाँच दिन पूर्व जब वर्किंग कमेटी—कांग्रेस कार्य-कारिणी—के कुछ सदस्य कमजोरी दिखा रहे थे, किसी प्रस्ताव में नम्रभाषा और नम्रभाव का प्रयोग करना चाहते थे तो खबर पाते ही मोतीलाल जी ने उन्हें बुला भेजा और रोब से कहा—"ऐसा प्रस्ताव इस भवन में पास नहीं हो सकता। तिनका मुँह में उठाना मैंने नहीं सीखा।" वह होते तो शायद ही दिल्ली की अस्थायी सन्धि हो सकती। कितने ही नेताओं की यह सम्मति है। वह कभी महात्माजी को झुकने न देते। किसी के सामने झुकना उनके स्वभाव में ही नहीं था। कृष्णकान्त जी ने ठीक ही लिखा था—"उनके जीवन का सिद्धान्त था—'की हंसा मोती चुँगे की करि रहे उपास'—। करना तो सर्वश्रेष्ठ करना, नहीं तो न करना। वकालत में, ऐशो इशरत में, रहन सहन में साजोसामान में, अनन्तर राजनीति में, देश सेवा में, नेतृत्व में—सर्वत्र यही सिद्धान्त उनके जीवन का ध्रुवतारा था। या तो सर्वोपरि, सब के आगे, सर्व श्रेष्ठ या कहीं नहीं। अपने आगे वे किसी को कुछ नहीं समझते थे। किन्तु इसका यह मतलब नहीं कि दूसरे की महत्ता का, उसके गुणों का, उसके त्याग का आदर उनके हृदय में कम था, या उसकी वे कद्र नहीं करते थे। दूसरा प्रधान गुण पण्डितजी में 'नेहरू' शब्द और 'नेहरू'-परिवार का अभिमान था। जो काम हो,

उसमें 'नेहरू' सब से आगे हो, जो बात हो, उस पर 'नेहरू' की छाप हो और जो चीज हो वह 'नेहरू'-ब्रैण्ड हो। × × × लगन, हठ, स्वभिमान, उत्तरदायित्व का पालन, शेरदिली, आन-बान-शान, विद्रोह और युद्ध प्रियता उनके चरित्र की विशेषताएँ थीं।"

जवाहरलाल ऐसे नहीं हैं। महात्माजी और साम्यवाद ने उनके त्याग को प्रेममय, विनम्र, पवित्र और शान्त बना दिया है। विद्रोह, तेजस्विता, युद्धप्रियता, दृढ़ता तो उनमें भी पिता की ही भाँति है—पैतृक है पर साथ ही कोमलता, मनुष्यता, मानवीय दुर्बलताओं के प्रति सहानुभूति से इनका हृदय भरा हुआ है। सादगी, त्याग और कष्ट सहन में यह बढ़े हुए हैं—शायद महात्माजी को छोड़ दूसरा कोई सर्वभारतीय नेता इस बात में उनका मुकाबला नहीं कर सकता। शीघ्र निर्णय की शक्ति इनमें पिता से भी अधिक है पर इस निर्णय में पिता जहाँ केवल बुद्धि एवं विवेक का उपयोग करते थे वहाँ इनमें भावना का, भावुकता का रंग भी है। इसीलिए कभी-कभी उनमें बड़ी आतुरता—जल्दबाजी दिखाई देती है। झुँझला भी जाते हैं—चिढ़ भी जाते हैं।

मोतीलालजी एक महान् सेनापति, एक महान् राजनीतिज्ञ और एक महान् राष्ट्रपुरुष थे, जवाहरलाल एक महान् देश-सेवक, एक श्रेष्ठ नेता, एवं भारतीय राजनीति को मानवता से, विश्व के सुख दुःख से जोड़ने वाले एक पथ प्रदर्शक हैं। मोतीलालजी एक व्यक्तित्व—'पर्सनैलिटी'—थे, जवाहरलाल एक धारणा—एक 'आइडिया' है।

दोनों में कौन बड़ा है ? मोतीलाल जी को जवाहरलाल के पिता के नाम से पुकारा जाय या जवाहरलाल को मोतीलालजी के पुत्र के नाम से ?—इसका निणय करना कठिन है, व्यर्थ भी है। आधुनिक भारत के निर्माण में दोनों के अपने अप्रतिम स्थान हैं। 'न दैन्य न पलायनम्',—मोतीलाल जी के क्षात्र हृदय का यह सिद्धान्त था—यदि उनके जीवन को किसी सिद्धान्त में बाँधा जा सकता हो। जहाँ रहना शेर बनकर रहना, सब से आगे रहना, अपनी जिम्मेदारी के पालन म अपना सब कुछ—अपने को, अपना को मिटा देना, इस राजर्षि का यह ढग था, यह करीना था। मृत्यु तक यही रहा। मृत्यु के चार पाँच दिन पूर्व जब वर्किंग कमेटी—कॉंग्रेस कार्य-कारिणी—के कुछ सदस्य कमजोरी दिखा रहे थे, किसी प्रस्ताव म नम्रभाषा और नम्रभाव का प्रयोग करना चाहते थे तो खबर पाते ही मोतीलाल जी ने उन्हें बुला भेजा और रोब से कहा—"ऐसा प्रस्ताव इस भवन में पास नहीं हो सकता। तिनका मुँह में उठाना मैंने नहा सीखा।" वह होते तो शायद ही दिल्ली की अस्थायी सधि हो सकती। कितने ही नेताओं की यह सम्मति है। वह कभी महात्माजी को झुकने न देते। किसी के सामने झुकना उनके स्वभाव में ही नहीं था। कृष्णकान्त जी ने ठीक ही लिखा था—"उनके जीवन का सिद्धान्त था—'की हसा मोती चुँगे की करि रहे उपास'—। करना तो सर्वश्रेष्ठ करना, नहीं तो न करना। वकालत म, ऐशो इशरत में, रहन सहन में साजोसामान में, अनन्तर राजनीति म, देश सेवा म, नेतृत्व में—सर्वत्र यही सिद्धान्त उनके जीवन का ध्रुवतारा था। या तो सर्वोपरि, सब के आगे, सर्व श्रेष्ठ या कहीं नहीं। अपने आगे वे किसी को कुछ नहीं समझते थे। किन्तु इसका यह मतलब नहीं कि दूसरे की महत्ता का, उसके गुणों का, उसके त्याग का आदर उनके हृदय में कम था, या उसकी वे कद्र नहीं करते थे। दूसरा प्रधान गुण पण्डितजी में 'नेहरू' शब्द और 'नेहरू'–परिवार का अभिमान था। जो काम हो,

उसमें 'नेहरू' सब से आगे हो, जो बात हो, उस पर 'नेहरू' की छाप हो और जो चीज हो वह 'नेहरू'-ब्रैण्ड हो। × × × लगन, हठ, स्वाभिमान, उत्तरदायित्व का पालन, शेरदिली, आन-बान-शान, विद्रोह और युद्ध प्रियता उनके चरित्र की विशेषताएँ थीं।"

जवाहरलाल ऐसे नहीं हैं। महात्माजी और साम्यवाद ने उनके त्याग को प्रेममय, विनम्र, पवित्र और शान्त बना दिया है। विद्रोह, तेजस्विता, युद्धप्रियता, दृढ़ता तो उनमें भी पिता की ही भाँति है—पैतृक है पर साथ ही कोमलता, मनुष्यता, मानवीय दुर्बलताओं के प्रति सहानुभूति से इनका हृदय भरा हुआ है। सादगी, त्याग और कष्ट सहन में यह बढ़े हुए हैं—शायद महात्माजी को छोड़ दूसरा कोई सर्वभारतीय नेता इस बात में उनका मुकाबला नहीं कर सकता। शीघ्र निर्णय की शक्ति इनमें पिता से भी अधिक है पर इस निर्णय में पिता जहाँ केवल बुद्धि एवं विवेक का उपयोग करते थे वहाँ इनमें भावना का, भावुकता का रंग भी है। इसीलिए कभी-कभी उनमें बड़ी आतुरता—जल्दबाजी दिखाई देती है। झुँझला भी जाते हैं—चिढ़ भी जाते हैं।

मोतीलालजी एक महान् सेनापति, एक महान् राजनीतिज्ञ और एक महान् राष्ट्रपुरुष थे, जवाहरलाल एक महान् देश सेवक, एक श्रेष्ठ नेता, एवं भारतीय राजनीति को मानवता से, विश्व के सुख दुःख से जोड़ने वाले एक पथ प्रदर्शक हैं। मोतीलालजी एक व्यक्तित्व—'पर्सनैलिटी'—थे, जवाहरलाल एक धारणा—एक 'आइडिया' है।

जीवन-तालिका

१८८९	१४ नवम्बर	मीरगंज (प्रयाग) में माता स्वरूप रानी के पेट से जन्म ।
		घर पर पढ़ना लिखना, तैरना, अश्वारोहण इत्यादि की शिक्षा । १२ वर्ष की अवस्था होने पर श्री गार्डन और श्री एफ० टी० ब्रुक्स से विद्योपलाभ ।
१९०४		सपरिवार इंग्लैण्ड यात्रा । शिक्षा के लिए हैरो स्कूल में प्रवेश । यहाँ से इण्ट्रेंस पास किया । फिर ट्रिनिटी कालेज में प्रवेश । यहाँ एम० ए० पास किया ।
१९११		लन्दन के 'इनर टम्पुल' में बैरिस्टरी की शिक्षा के लिए प्रवेश ।
१९१२		बैरिस्टरी पास कर ली ।
		इलाहाबाद हाईकोर्ट में वकालत करने लगे । पटना कांग्रेस में शामिल हुए तब से प्रायः प्रत्येक अधिवेशन में शामिल होते रहे ।
१९१४		गोखले की अपील पर प्रवासी भारतीयों के लिए ५० हजार रुपये एकत्र कर दक्षिण अफ्रीका भेजे ।

१९१६	फरवरी	प० जवाहरलाल कौल की कन्या कुमारी कमला से विवाह । लद्दाख यात्रा ।
१९१७		कन्या (कुमारी इन्दिरा) का जन्म ।
१९१८		होमरूल आन्दोलन में काम किया ।
१९१९-२०		अवध के किसानों में काम किया ।
१९२०		बरिस्टरी छोड़ी तथा असहयोग आन्दोलन में सम्मिलित हुए ।
१९२१	६ दिसम्बर	छः महीने के लिए जेल । कुछ हफ्ते बाद छुटकारा ।
१९२२	मई	पिकेटिंग के कारण गिरफ्तारी । १८ मास की कड़ी कैद और १००) जुर्माने की सजा । प्रयाग म्युनिसपल्टिी के अध्यक्ष चुने गये ।
१९२३		वर्ष के आरंभ में—शायद फरवरी में—छोड़ दिये गये । नाभा के प्रश्न की जाँच करने के लिए यात्रा । नाभा में प्रवेश निषेध । आज्ञा-भंग । १४३ एवं १८८ धाराओं के अनुसार मुकदमा चला । ढाई वर्ष (२वर्ष+६ मास) की सजा । पीछे दोनों सजाएँ मुल्तवी कर दी गईं और अभी तक मुल्तवी हैं ।
१९२४		पुत्र-जन्म, पर तीन दिन बाद ही मृत्यु ।
१९२६		पत्नी की बीमारी के कारण स्वीजरलैण्ड की यात्रा ।
१९२७	फरवरी	भारतीय राष्ट्रीय महासभा के प्रतिनिधि की हैसियत से साम्राज्य विरोधी संघ

		के जनेवा अधिवेशन में सम्मिलित हुए और उसके एक अध्यक्ष भी चुने गये ।
	नवम्बर	सोवियट सरकार के निमंत्रण पर रूस गये । वहाँ देखा भाला और भारत लौटने पर 'सोवियट रशा' नामक एक सचित्र पुस्तक भी अंग्रेजी में लिखी ।
	दिसम्बर	हिंदुस्तानी सेवा-दल तथा प्रथम प्रजातंत्र परिषद् मद्रास के अध्यक्ष हुए । मद्रास-कांग्रेस में स्वतंत्रता का प्रस्ताव उपस्थित किया ।
१९२८	३१ अगस्त	सर्वदल सम्मेलन में महत्वपूर्ण भाषण ।
	सितम्बर	'भारतीय स्वाधीनता संघ' की स्थापना की।
	अक्तूबर	संयुक्तप्रांतीय कान्फ्रेंस के झाँसी अधिवेशन के अध्यक्ष ।
१९२९		सर्वभारतीय मजूर-कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन के सभापति हुए ।
	३०–३१ दिसम्बर	लाहोर-कांग्रेस के अध्यक्ष ।
१९३०	१४ अप्रैल	गिरफ्तारी और सजा ।
		सन्धि और छुटकारा ।
१९३१		युक्तप्रांतीय किसानों की समस्या पर सरकार से पत्र-व्यवहार । सरकार का हठ ।
	दिसम्बर	गान्धीजी का आगमन । प्रयाग की सीमा न छोड़ने की निषेधाज्ञा । आज्ञा भंग । ढाई वर्ष की सजा ।
१९३३	३० अगस्त	माता की बीमारी के कारण जेल से मुक्ति ।

उपसंहार

१ मुहम्मद अली
२ विट्ठलभाई पटेल ['प्रेसिडेण्ट']
३. वल्लभभाई पटेल ['सरदार']



मौलाना मुहम्मदअली

मुहम्मद अली

जन्म
दिसम्बर १८७८ ई०

मृत्यु
४ जनवरी १९३१ ई०

His strength was the strength of ten
Because his heart was pure

SIR GALAHAD

× × ×

"उसमें दस आदमियों की शक्ति थी क्योंकि उसका हृदय पवित्र था।"

—सर गैलहेड।

[९]

वह मुहम्मद अली !

सद साल दौरे चर्ख था सागर का एक दौर,
निकले जो मकदे से तो दुनिया बदल गई।

१९२० में देश में जो राष्ट्रीय आँधी उठी उसमें जन मत कहाँ से कहाँ पहुँच गया। भिक्षा का काल समाप्त हुआ और देश की मस्त आँखों ने किंचित् विश्वास से अपनी भुजाओं की ओर देखा। देखते देखते राष्ट्र में एक नशा चढ़ गया। वाणी का युग गया और कर्म का युग आया। प्लेटफार्म विनोद की जगह खतरे की चीज बन गये। यह समय था जब भारतीय आत्मा में मथन हो रहा था और इस मथन ने राष्ट्र का नकशा बदल दिया।

पर तूफान के चिन्ह तो १९१९ की अमृतसर कांग्रेस में ही दिखाई पड़ने लगे थे और देखनेवालों ने उन्हें अच्छी तरह देखा। मौलाना मुहम्मदअली का विश्वास अंग्रेजी शासन से हट गया था पर जेल से छूटने के बाद जन मनोवृत्ति में जो परिवर्तन उन्होंने अमृतसर कांग्रेस में देखा, उससे वह भी बदल गये। यहाँ जो देखा उसे देखकर फाटक से निकलते निकलते उन्होंने यह शेर दोहराया—

सद साल दौरे चर्ख था सागर का एक दौर,
निकले जो मकदे से तो दुनिया बदल गई।

सचमुच दुनिया बदल गई थी और बहुत जल्द वह बदली हुई दुनिया सार्वजनिक जीवन में नाना जीवित-जाग्रत रूपों में प्रतिबिम्बित हुई।

उस तूफ़ानी युग मे अनेक वार मौलाना मुहम्मदअली को देखा। लम्बे, सुडोल—भरा हुआ शरीर और चमकती आँखें। तल्वार की तरह काटनेवाली जिह्वा! जब बोलते तो कलेजा निकालकर रख देते। मानों भारत के दिल में जो व्यथा है वह, अत्यन्त स्वाभिमान के साथ, दिल से टपक रही है! जीते-जागते शब्द, काव्य के प्रवाहपूर्ण सौन्दर्य म लिपटे हुए! उनकी वह आकृति भूलती नहीं, वह भूलने की चीज भी नहीं और आज जब फिर वह आकृति दिखने की कोई सभावना नहीं रही है तब उसकी याद रह रहकर बिजली की तरह चमकती है।

राष्ट्र का दुर्भाग्य कि मुहम्मदअली १९२१ म अपने जिस सर्वोत्तम रूप मे चमके थे, वह फिर दिखाइ न पडा। नहा तो आज के इन तुच्छ साम्प्रदायिक झगडों और रूप का होता। जो ज्वार उस समय उनमें आया था, उसने राष्ट्र को पागल कर दिया था। वे दिन याद करने की चीज—भर रह गये ह जब कराची में उनपर लगाये गये जुर्म को प्रत्येक स्थान पर सभा करके सारा राष्ट्र दोहरा रहा था। वह एक अद्भुत नशा था जिसमें राष्ट्र की साहसिकता, खतरे की परवा न करके, नाच उठी थी! कहाँ गये वे दिन! बी अम्मा के पुत्र में वीर माता की वह वीर वाणी—

'याद रखो यदि जाति की सेवा से जरा भी हटकर तुमने गवर्नमेण्ट की बात मानी तो मै तुम्हारा गला घोंट दूँगी।"*

एक बार ही चमककर क्यों नष्ट हो गई? और वह वीर माता, वह सच्ची राजपूतनी, जिसने पुत्र का गला घोंट देने का वादा किया था, अन्त तक देखने को क्यों जीवित न रही?

× × ×

पर जो हो, मैं तो सदा मानता रहा कि वह निर्भय और वीर, वह सिपाही और योद्धा, वह राष्ट्रीय स्वाभिमान का प्रतीक मुहम्मद

* तुर्की के झगडे म पहली नजरबदी के समय बी अम्मा ने मुहम्मद अली से ये शब्द कहे थे।

अली ही, जो असहयोग-काल में दिखाई पड़ा, सच्चा मुहम्मदअली था। बाद के मुहम्मदअली तो उसकी स्मृति के खडहर मात्र थे! यह उस जागृति की जीवित समाधि थी जिसे एक समय उन्होंने जगाया था और जो अन्तिम दिनों तक उनकी ओर हसरत से देखती रही और अन्त में ऐसी आकर्षक बनी और मुहम्मदअली के दिल में वह दर्द पैदा किया कि यह वतन के इस दर्द म, उस भूत जाग्रति का स्वप्न देखते देखते, और भविष्य के लिए लोगो स उसी को फिर लाने की अपील करते-करते, निमग्न हो गये। और आज हम भी खुदा होकर, किंचित् गौरव के साथ, बी अम्मा के इस वीर बच्च को प्रणाम करते ह और दिल मानो कहना चाहता है कि—"ऐ मुसाफिर, तूने अपने को खूब निबाहा और जिस मंजिल पर भी तू आज हो, ईश्वर तुझ शान्ति दे। तुझे, तेरी गौरव पूर्ण रक्त म भरी हुई जीवनमयी स्मृति को हम प्रणाम करते है! बीच म तू रास्ता भूल गया था, न भूलता तो आज हम तुझ दिल म भी जगह देते और आज जो इस कलम ने किंचित् निठुरता के साथ तुझ 'उपसहार' म रखा वह शायद तुझे पहले रखती और अपने को धन्य समझती। पर अब तो जो है सो है।"

[२]

जीवन कथा

मौलाना मुहम्मद अली के पितामह श्री अलीबख्श खाँ रामपुर राज्य (युक्तप्रान्त) के प्रतिष्ठित अधिकारियों में थे। वह नवाब के दाहिने हाथ समझे जाते थे। उन्होंने गदर के समय अंग्रेजों की बड़ी सहायता की थी। अलीबख्श खाँ के पुत्र मौ० अबदुल अली खाँ भी, पिता की तरह ही, रामपुर राज्य के एक उच्च पदाधिकारी थे। उनके घर प्रसिद्ध बी अम्मा के गर्भ से मुहम्मद अली का जन्म दिसम्बर १८७८ ई० में हुआ। जब यह गोद में थे तभी इनके पिता का देहान्त हो गया। उस समय इनके बड़े भाई शौकतअली सिर्फ दो वर्ष के थे। वीर माता ने इन दोनों बच्चों को अपने स्नेह से पाला और इस माता के अन्दर जो अच्छे संस्कार थे वे मुहम्मद अली में आरंभ से ही प्रकट हुए।

जन्म और बचपन

मुहम्मद अली की प्रारंभिक शिक्षा कुछ दिन तो घर पर हुई। बाद में यह रामपुर स्टेट स्कूल में भरती हुए। वहाँ से फिर बरेली आये और बरेली हाई स्कूल में पढ़ते रहे। हाइस्कूल की शिक्षा समाप्त कर एम० ए० ओ० कालेज अलीगढ़ में शिक्षा पाई। यह अपने कालेज के अत्यन्त प्रतिभाशाली छात्रों में थे। इनकी प्रतिभा का परिचय पाकर कालेज के मंत्री नवाब मुहम्मद इसहाक खाँ ने, बी० ए० पास कर लेने के बाद, सिविल-सर्विस की परीक्षा के लिए इन्हें इंग्लैण्ड भेज दिया। १८९८ ई० में यह इंग्लैण्ड गये और आक्सफर्ड यूनिवर्सिटी (लिंकन कालेज) में १८९८ से १९०२ तक अध्ययन करते रहे। आइ० सी० एस० की परीक्षा भी दी पर उसमें असफल रहे। बीच में कुछ दिनों के लिए भारत लौट कर पीछे फिर

शिक्षा

वापस जाकर आक्सफर्ड यूनिवर्सिटी की बी० ए० की परीक्षा दी और उसमें सफल होने पर १९०२ में भारत लौटे। उन दिनों 'आक्सफर्ड युनिवर्सिटी युनियन' उनके भाषणों से चमक-सा उठा था।

१९०२ ई० म भारत लौटे। लौटते ही इन्हें रामपुर राज्य के शिक्षा-विभाग के प्रधान अधिकारी का पद मिल गया। एक वर्ष तक इन्होंने यह काम किया। दूसरे साल बडोदा चले गये और वहाँ गायकवाड़ की सिविल सर्विस में प्रवेश किया और वहाँ के अफीम के महकमे म काम किया। १९०४ से १९१० तक यह इस पद पर रहे और अपने विभाग में कई सुधार किये।

जीवन में प्रवेश

इन कामों को करते हुए भी यह अपनी जाति के हित के कार्यों में भाग लेते रहते थे। १९०६ ई० में जो मुस्लिम लीग कायम हुई उसके सस्थापकों में यह भी एक थे। उनके कलम में बडी ताकत थी, साथ पत्रों म यह लेख लिखा करते थे। १९१० ई० मे इन्होंने बडौदा की नौकरी छोड दी और १९११ ई० म कलकत्ता से अग्रेजी में 'कामरेड' नाम का एक साप्ताहिक पत्र निकाला। इस पत्र ने आपकी सुदर मँजी हुई अग्रेजी और विचार शैली के कारण बडा नाम पाया। इन्हा दिनों जावरा (मध्यभारत) के नवाब तथा सर माइकेल ओडायर ने जावरा का प्रधान मत्रि-पद स्वीकार करने के लिए इनपर जोर डाला पर अब यह देश एव जाति की सेवा का निश्चय कर चुके थे इसलिए इन्होंने यह अनुरोध अस्वीकार कर दिया।

सार्वजनिक काम

यह कभी-कभी 'टाइम्स आव इण्डिया' 'इण्डियन स्पेक्टेटर' इत्यादि पत्रों म भी अपने लेख छपवाया करते थे जिनके कारण इनकी बडी ख्याति हुई। इसी समय इनके मन में मुसलमानों के लिए एक जातीय विश्वविद्यालय खोलने का विचार उत्पन्न हुआ और इन्होंने विश्वविद्यालय के भावी स्वरूप का एक ढाँचा भी तैयार किया पर कुछ समय के बाद

मुस्लिम विश्व-विद्यालय

अलीगढ़ के मुस्लिम कालेज को ही मुस्लिम विश्वविद्यालय में परिणत करने के अभिप्राय से देश के भिन्न-भिन्न स्थानों में घूमकर चन्दा इकट्ठा करने लगे।

कानपुर का मस्जिद का मामला

जब ३ अगस्त सन् १९१३ इस्वी को मछलीबाजार कानपुर की मस्जिद का कुछ हिस्सा गिरा दिया गया और इसके कारण सरकारी अफसरों और मुसलमानों म लड़ाई हो गई और गोली भी चलाई गई, उस समय मौलाना साहब ने सरकारी पक्ष की कड़ी आलोचना करते हुए मुस्लिम जनता के बचाव का विशेष प्रयत्न किया था और जब इनको इसमें काफी सफलता होती न दीख पड़ी तब यह विलायत चले गये और वहाँ विविध पत्रों द्वारा विलायत की जनता को कानपुर के मामले की जानकारी कराई। अन्त म इनका प्रयत्न सफल हुआ और उस मस्जिद का टूटा हिस्सा बनवा दिया गया और जो मुसलमान, इस सम्बन्ध म, गिरफ्तार किये गये थे वे छोड़ दिये गये।

गिरफ्तारी, नजरबंदी और रिहाई

१९१२ में दिल्ली भारत की राजधानी बनाई गई। तब से 'कामरेड' भी कलकत्ता से दिल्ली आया। १९१२ ई० में यहाँ से उर्दू दैनिक 'हमदर्द' भी निकाला। इसके साथ ही, अपने बड़े भाई मौलाना शौकत अली के सहयोग से, मुहम्मद अली ने 'खुद्दामे काबा' आन्दोलन भी चलाया था और १९१२ इ० में जब तुर्की-बाल्कन युद्ध हुआ तो उन्होंने चन्दा करके सेवा सहायता के लिए एक स्वयसेवक मण्डल तुर्की भेजा था। १९१४ ई० में युरोपीय महायुद्ध आरम्भ हुआ। उस समय तुर्की और ब्रिटेन में भी लड़ाई छिड़ने की सम्भावना हुई। तब भारत सरकार के अनुरोध से मौलाना मुहम्मद अली और डा० अन्सारी ने तुर्की के प्रधान मन्त्री श्री तलअत पाशा को तार दिया कि 'तुर्की को इस युद्ध में निरपेक्ष रहना चाहिए अन्यथा इस्लामी दुनिया पर मुसीबत आवेगी।' पर घटनाएँ इस

क्रम से घट रही थीं कि तुर्की को युद्ध में जर्मनी के पक्ष से शामिल होना पड़ा। उस समय मौलाना मुहम्मद अली ने 'कामरेड' और 'हमदर्द' में, तुर्की के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए, कई जबर्दस्त लेख लिखे। उनके कारण मई १९१५ ई० में, अपने बड़े भाई शौकत अली के साथ, ('डिफेंस ऑव् इण्डिया ऐक्ट' अथवा 'भारत रक्षा कानून' के अनुसार) गिरफ्तार किये गये और महरौली, लैंसडोन तथा छिंदवाड़ा में नजरबंद रखे गये। नजरबन्दी की आधी अवधि समाप्त होने पर यह जेल में रखे गये पर इन कठिनाइयों से यह जरा भी विचलित नहीं हुए। इनकी जायदाद का अधिकांश नष्ट हो गया पर सरकार ने कोई परवा न की। इन बातों के कारण लोगों में असंतोष पैदा हुआ। स्थान स्थान पर, सभाएँ की गई और सरकार को तार दिये गये। भारतीय मुसल्मानों ने वायसराय के पास एक 'मेमोरियल' भी भेजा पर सरकार ने कुछ ध्यान न दिया। हाँ, जब भारतमंत्री श्री माण्टगू भारत आये तब सरकार ने इस शर्त पर इन्हें छोड़ना चाहा कि लड़ाई खतम होने तक वे राजनीतिक मामलों में शामिल न हों। इन्होंने इसे अस्वीकार कर दिया। जब इस ('डिफेंस ऑव् इण्डिया') कानून की अवधि समाप्त हो गई तो जून १९१९ से दिसम्बर १९१९ तक रेगुलेशन ३ के अनुसार बेतूल जेल में रखे गये। अन्त में जब लड़ाई की समाप्ति के बाद १९१९ में नवीन सुधारों की घोषणा हुई और बहुत-से कैदी मुक्त हुए तब यह भी छोड़ दिये गये।

छूटने के बाद ही यह अमृतसर कांग्रेस में प्रतिनिधि के रूप में शामिल हुए। इस समय तक वातावरण बदल गया था। खिलाफत की समस्या को लेकर मुसल्मानों में बड़ी बेचनी फैली हुई थी। इस सम्बन्ध में एक डेपूटेशन लेकर मार्च १९२० में यह इङ्गलैण्ड गये। वहाँ प्रधान मंत्री और बड़े-बड़े लोगों से भेंट की पर ऐसे आवेदनों से क्या

खिलाफत और असहयोग आन्दोलन में

होना जाना था ? वहाँ तुर्की और अरब नेताओं से भी भेंट हुई और उनसे बात चीत करने पर इनके मन में यह बात बैठ गई कि गुलाम देश के निवासियों की सुनवाई कहीं नहीं होती अतः सबसे पहले अपने मुल्क को आजाद करना चाहिए।

इधर जब अक्तूबर १९२० में यह भारत लौटे तबतक देश का नकशा बदल गया था। उधर मुसल्मानों ने हिजरत का आन्दोलन शुरू कर दिया था और देश छोड़कर काबुल जा रहे थे, इधर पंजाब की दुर्घटनाओं के कारण जनता में घोर असंतोष उत्पन्न हो चुका था। हिजरत का आंदोलन तो असफल रहा पर गांधी जी का आन्दोलन बढ़ता गया। १९२० के सितम्बर में कलकत्ता में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन हुआ। और फिर दिसम्बर में नागपुर कांग्रेस हुई जिसमें राष्ट्र ने आत्मावलम्बन के नये पथ पर चलने का निश्चय किया और असहयोग का कार्यक्रम पास हुआ। तब मौलाना मुहम्मदअली, अपने बड़े भाई शौकतअली के साथ, गांधीजी के मुख्य सहायक नेताओं के रूप में, जनता के सामने आये।

सितम्बर १९२१ में करांची में खिलाफत कान्फ्रेंस हुई। इसमें मौलाना मुहम्मदअली ने मुसल्मान सैनिकों को सम्बोधन करते हुए कहा कि 'मुसल्मान सैनिकों को इस्लाम के शत्रुओं की नौकरी छोड़ देनी चाहिए।' इसी जुर्म पर १४ सितम्बर १९२१ को यह विज़गापट्टम में गिरफ्तार किये गये। इसी सम्बन्ध में डा० किचलू, जगद्गुरु शंकराचार्य इत्यादि भी गिरफ्तार किये गये। अक्तूबर में मुकदमा शुरू हुआ। इन लोगों पर सरकार के विरुद्ध षड्यंत्र करने और सेना को राजभक्ति से हटाने का प्रयत्न करने का जुर्म लगाया गया। मौलाना मुहम्मदअली ने मुकदमे के समय वीरता पूर्वक कहा—"दरअस्ल खिलाफती नेताओं का फैसला नहीं हो रहा है वरन् सरकार की परीक्षा हो रही है जिसने ईश्वरीय कानूनों का उल्लंघन किया है।" इस मुकदमे में अभियुक्तों पर षड्यंत्र का जुर्म तो सिद्ध नहीं हुआ। दूसरा

फिर गिरफ्तारी

जुर्म में २ नवम्बर १९२१ को इन दोनों भाइयों को दो-दो वर्ष कड़ी कैद की सजा हुई।

पूरी सजा भुगतने के बाद मौ० मुहम्मदअली, अपने बड़े भाई के साथ, ३ सितम्बर १९२३ को बीजापुर जेल से छूटे। छूटने पर देश में उनका बड़ा स्वागत हुआ। इस समय गांधी जी जेल में थे। स्वराजियों और गांधीवादियों का झगड़ा जोरों पर था। इस सम्बन्ध में १५ सितम्बर १९२३ को दिल्ली में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन हुआ और मो० मुहम्मद अली के विशेष प्रयत्न से दोनों दलों में समझौता हो गया। इसी साल (२८ दिसम्बर १९२३) कोकोनाडा (या कोकनद) कांग्रेस के अध्यक्ष हुए। इस प्रकार राष्ट्र ने उनको सेवा के बदले उन्हें सर्वोच्च सम्मान प्रदान किया।

रिहाई और सम्मान

१९२४-२५ में देश में हिन्दू मुसलमानों में जो कलह और दलबन्दी शुरू हुई उसमें मौलाना मुहम्मदअली दृढ़ रहे और सदा दोनों जातियों में मेल कराने की कोशिश करते रहे। उन्हीं के विशेष प्रयत्न से, गांधी जी के २१ दिन के उपवास के बाद, सर्व धर्म सम्मेलन की बैठक दिल्ली में हुई थी। पर १९२६ से धीरे धीरे वह शिथिल पड़ने लगे और १९२७ की मद्रास कांग्रेस में मुसलमानों के अधिकारों के विषय में मतभेद होने के कारण कांग्रेस से अलग हट गये। तब से प्राय अलग ही रहे। पर अन्तिम दिनों में देश की दुर्दशा देखकर वह बहुत दुखी थे और हृदय रोग में स्वास्थ्य बहुत ज्यादा खराब होने पर भी वह गोलमेज-सम्मेलन में शरीक होने के लिए इस आशा से इंग्लैण्ड गये कि सम्भव है देश की समस्या कुछ सुलझ जाय। इस कान्फ्रेंस में भाषण देते समय उन्होंने कहा था कि 'यदि आप हमें स्वतन्त्रता न देंगे तो सम्भव है कि यहीं हमारी कब्र का प्रबंध आपको करना पड़े।' उस समय कौन जानता था कि उनकी वाणी में भावी बोल रही है और ये शब्द इतनी जल्द सत्य होंगे।

मत भेद

स्वास्थ्य तो पहले से ही खराब था फिर हजारों मील की लम्बी यात्रा और उसपर रात दिन का परिश्रम। दिन दिन स्वास्थ्य गिरता गया।

देहावसान

३ जनवरी की आधी रात तक वह हिन्दू मुसल्मानों के नाम इस आशय की एक अपील लिखते और उसे दोहराते रहे कि 'परस्पर के सारे मत भेदों को भुलाकर राष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिए मिलकर काम करना ही इस समय वाञ्छनीय है।' सुबह ४ बजे उनकी तबियत बहुत खराब हो गई। ५ बजे से तो बेहोश ही हो गये और रक्तवाहिनी नली के फट जाने से ४ तारीखको ९ बजकर ३० मिनट पर, देश के लिए लड़ते लड़ते, मौलाना मुहम्मद अली, शहीद हो गये।

उनके देहावसान पर सारे भारत में हड़ताल हुई, शोक मनाया गया। पर उनके देहावसान से जो स्थान खाली हो गया वह तो आजतक खाली ही है। आज उनकी मृत देह जरसलम में गड़ी हुई पड़ी है और उनकी आत्मा भारतीय स्वतन्त्रता के लिए हमसे अपील कर रही है।

[३]

व्यक्तित्व का विश्लेषण

एक मुसलमान, इस्लाम की सम्पूर्ण प्रवृत्तियों के साथ, एक देशभक्त धर्मान्ध की सारी कट्टरता के साथ, एक उपदेशक (प्रीस्ट) भाव प्रवाह की सारी भयानकता के साथ। उदारता के सामने उदार, कट्टरता के सामने कट्टर। —जिसकी जिह्वा में शक्ति है और जिसकी कलम में ताकत पर जो उनसे विष उगलना जानता है, उसे चुपचाप पीना नहीं। राजपूत की तरह वीर और कट्टर, एक का जवाब दो से देने वाला,—यह मुहम्मदअली थे!

एक निगाह में

भारतीय राजनीति में मुहम्मदअली का उदय और विकास, अध्ययन का एक मनोरंजक विषय है। वह मानो सम्पूर्ण उत्साह के साथ कहना चाहता है कि स्वतन्त्रता के युद्ध में धर्म को लाकर हमने गलती की है,—धर्म सदाचार और पवित्रता का आकर नहीं, धर्म कट्टरता, जोश और भाव प्रवाह का उत्तेजक। समूह ने सदा धर्म को इसी रूप में ग्रहण किया है और इसीलिए उसके धर्म के सामने देश, समाज, व्यक्ति सब तुच्छ हैं। गांधी ने धर्म को उसके समन्वयात्मक रूप में ग्रहण किया है पर अशिक्षित जनता उसे सदा विभागात्मक रूप में ग्रहण करती है। तुम्हारा आन्दोलन यदि हमारी चिर-पोषित खिलाफत की समस्या हल कर देता है तो वह अच्छा है, उसका स्वागत। तुम्हारा आन्दोलन यदि अस्पृश्यता की समस्या उठा ले और हमारे धर्म में हाथ डालने लगे तो बुरा है, उसका सत्यानाश!—रास्ते पर चलनेवाला साधारण आदमी इसे यों ग्रहण करता है। उसका धर्म उसकी परम्परा है, जिसे वह बाप-दादों से सुनता आया है, जो उसकी

धर्म बनाम राजनीति

रीति नीति में बैठ गया है, वह नहीं, जिसका एक नवीन अर्थ आज किया जा रहा है।

इस तरह इस प्रयोग म जहाँ असीम सभावनाएँ हें तहाँ उसमें असीम खतरा भी। गांधी इस प्रयोग का एक पक्ष है और मुहम्मदअली दूसरी बाजू।

यों ले। पहली बात मुहम्मदअली क बारे मे यह कि वह मुसलमान थे।—मुसलमान शब्द से जा समभा जाता ह और जो समझना चाहिए, दोनों अर्थों म, सारी बुराई भलाइ के साथ। मुसलमान के साथ पहली बात यह हे कि वह प्रथम श्रेणी का श्रद्धालु हे। उसकी श्रद्धा अन्धविश्वास तक बढ़ी हुई है। इस श्रद्धा का जो अपमान करे, जो उससे हटे, काफिर है, त्याज्य ह। यह श्रद्धा हिन्दू की श्रद्धा की तरह नम्र, अवगुंठनवती हिन्दू नारी की तरह अपने ही अन्दर सिकुड़ी सिमटी हुई, हलकी हलकी शर्म और मुलायम मुलायम शील को लेकर चलनेवाली नहीं। यह वह श्रद्धा नहीं जो क्रोध को पी जाती हे, जो अपमान के प्रति उदासीन है और हँसी उड़ाने एव चोट करने पर, नवोढा की लज्जा के साथ, बहुत हुआ तो, एकबार आँख उठाकर सहमी सहमी सी देख लेती हे, टप टप दो बूँद आँसू पृथ्वी पर गिरा देती है और दुनिया के अनन्त मार्ग पर फिर शान्ति के साथ चलना आरम्भ कर देती हे। यह वह श्रद्धा है जो कल-गान नहीं गाती, बिजली की तरह कड़कती है। जो लक्ष्मी नहीं, दुर्गा है। जो अपमान करनेवाले को क्रुद्ध, लाल, ज्वालामयी आँखों से देखती है और बस चले तो उसका खून पी जाना चाहती ह। जो फास्फोरस की तरह जलकर आग लगा देनेवाली है और जिसमें चन्द्रिका की मन्द प्रभा नहीं, मार्तण्ड का प्रखर—असह्य—प्रकाश ह।

मुसलमान की श्रद्धा

सुनते हं, अपने प्रारम्भिक यौवन म मुहम्मदअली धर्म के बसे कट्टर न थे। शायरी का रग चढ़ा हुआ था और यौवन के लचीलापन

तथा काव्य का धर्म-बन्धन को काट देनेवाली प्रवृत्ति में वह ओत प्रोत हो रहे थे। वह एक धर्म से मुसल्मान पर हृदय से हिन्दू, शायर और रिन्द, मित्र का राय है जिन्होंने मुहम्मदअली को नजदीक से देखा था। पर हम इससे सहमत नहीं। हम इतना मानते हैं कि यह कट्टरता, यह 'ईमान' कैशोर एवं यौवन के अल्हड़ प्रवाह में जल क्रीड़ा करते समय अपने को भूल गया पर ज्यों-ज्यों धारा बहती गई, यौवन दूर हटने लगा, परदा उठा और उम्र आई, जनता के नजदीक आना पड़ा त्यों-त्यों यह मुसलमान का ईमान निखरता गया।

मुहम्मद अली के जीवन में यह ईमान और श्रद्धा, राजपूत की युद्ध में मजा लेने वाली मनोवृत्ति के साथ, व्यक्त हुई। यह उसी श्रद्धा का करिश्मा था कि तुर्की का ध्यान भारत के पहले आता था। तुर्की का ध्यान केवल इसलिए नहीं कि वह एक स्वतंत्र मुसल्मान राष्ट्र है; इसलिए कि उसमें धर्म की परम्परा—खिलाफत की गद्दी चली आई है। उस पर चोट न पड़े, इसलिए अंग्रेजों का, ब्रिटिश सरकार का विरोध भी करना पड़े तो हर्ज नहीं। फल क्या होगा, इसकी इस श्रद्धा को परवा नहीं। धर्म का खतरा उसे उत्तेजित कर देने के लिए काफी है। उसके लिए कुरान का प्रत्येक शब्द ईश्वराज्ञा का अन्तिम शब्द है और हजरत मुहम्मद उसके एक-मात्र प्रवक्ता। १३०० वर्ष पूर्व उन्होंने जो कहा था वह मुहम्मद अली के कानों में गूँजता है। वह झण्डा गिर जायगा, यह खयाल उन्हें पागल कर देने के लिए काफी है। 'कामरेड' के अग्रलेख पढ़ आइए, 'हमदर्द' की टिप्पणियां देखिए, उनके व्याख्यान को पढ़िए, सर्वत्र आपको इस्लाम के प्रति उनकी बाधा-बन्ध विहीन वेदना, श्रद्धा फूट कर निकलती दिखाई देगी। इस श्रद्धा के आगे महान् से महान् पुरुष तुच्छ है, यदि वह इस्लाम पर ईमान नहीं लाता। इसके आगे 'महात्मा गाधी से एक अत्यन्त पतित मुसलमान अच्छा है।' यह महात्मा है तो

> **यह श्रद्धा कैसे चलती है ?**

क्या, मुसल्मान तो नहीं ? सच पूछें तो इस श्रद्धा, इस धर्मभक्ति की समझ के बाहर, यह बात, है कि एक अ मुस्लिम—काफिर—एक मुसल्मान से बढ़कर कैसे हो सकता है ! मुसल्मान के लिए इस श्रद्धा में ढ़िलाई नहीं, छूट नहीं। सच तो यह कि वह इसी नाप से मनुष्य के बड़प्पन को नापता है। हिन्दू अनीश्वरवादी होकर भी हिंदू रह सकता है पर मुसल्मान कुरान के, अल्लाह के और उसके प्रवक्ता के एक शब्द पर भी आपत्ति करके मुसल्मान नहीं रह सकता। यह उसी प्रकार इस्लाम का गुण दोष दोनों है जैसे सब प्रकार की छूट, सब प्रकार की उदारता और स्वतन्त्रता हिन्दूधम का गुण दोष दोनों है। इस कट्टरता ने, इस कठोर बंधन और अनुशासन ने मुसल्मान को मुसलमान रखा है। इसी से मुसल्मान जीवित है। जहाँ उसने इसे छोड़ा, गया। कमालपाशा (जो अन्तराष्ट्रीय राजनीति म देखते देखते सूर्य की भाँति उदय हुआ और जिसके कारण इस्लाम का सिर वस्तुत इतना ऊँचा उठा जितना सैकड़ों मुहम्मद अली नहीं उठा सकते थे) इसके सामने आदर्श नहीं रख सकता, इब्नसऊद इसके आगे हेच है !

इसी को लेकर मुहम्मद अली इग्लैण्ड गये, इसी को लेकर उन्होंने तुर्की का समर्थन किया और इसी के कारण सरकार का विरोध भी किया। निर्भयता इस प्रवृत्ति की विशेषता है और, इसीलिए, मौलाना मोहम्मद अली अपने समय के अत्यन्त निर्भीक नेताओं में से एक थे। यह निर्भीकता प्राय अत्यन्त स्वच्छन्द रूप में प्रकट होती रही है। वह इस व्यक्ति के जीवन के साथ खेलती है और चूकि यह व्यक्ति जीवन को गेंद की तरह उछालता चलता है इसलिए वह समाज के, देश के साथ भी खेलती चलती है। वह प्रजातंत्र को नहीं जानती, शायद राष्ट्रीयता को भी कम ही जानती है। दर अस्ल वह शहादत की मिट्टी में फूटती है। मुहम्मद अली में भी शहीद का उत्ताप है।

निभयता

पर इस भावना के साथ, बी अम्मा की विशेष ममता के साथ पले हुए मुहम्मद अली में, स्वतंत्रता की गहरी लगन भी हम देखते हैं।

स्वतंत्रता की लगन

स्वतंत्रता व्यक्तिगत भी, धार्मिक भी और देशिक भी,—हर क्षेत्र में स्वतंत्रता। पर यह स्वतंत्रता उच्छृंखल है और बिना किसी उद्देश्य के, एक चिर अस्थिर शक्ति की तरह सदा चलती रहती है। यह उस मुसाफ़िर के समान है जिसकी कोई मंज़िल नहीं और जो कभी सेहरा में, कभी शाह-राह पर और कभी कूचों में जा निकलता है। एक ओर इस स्वतंत्रता और दूसरी ओर धार्मिक कट्टरता का इस व्यक्ति में अद्भुत और आश्चर्यजनक सम्मिश्रण दिखाई देता है और इसी कारण भारतीय सार्वजनिक जीवन में, और विशेष रूप से राजनीतिक जीवन में, मुहम्मद अली से अधिक समझ में न आ सकने वाला व्यक्तित्व दूसरा नहीं। गाँधी का नाम भी बहुतेर

पारस्परिक विरुद्धताएँ

लेंगे, यह जानकर भी मैं ऐसा कह रहा हूँ। गाँधी को मैं व्यक्तित्व नहीं, 'आइडिया' मानता हूँ, वह हमारी संस्कृति का प्रतीक है। जिन नेताओं का रहस्य समझना, विश्लेषण करना अत्यन्त कठिन है, मुहम्मद अली उनमें अन्यतम थे। इस व्यक्ति की पारस्परिक विरुद्धताओं और परिवर्तनों को देखकर आदमी घबरा जाता है और प्राय उसके विषय में गलत धारणाएँ बना लेता है। एक लेखक ने ठीक ही लिखा था कि 'मुहम्मद अली से अधिक सफलता के साथ शायद ही कोई व्यक्ति अपने सम्बन्ध में गलतफ़हमी पैदा कर सका हो।'*

---

* No living man, perhaps has succeeded in casting such a multi coloured halo of mis understanding about himself as Maulana Mohamad Ali इस वाक्य में 'लिविंग मैन' शब्द इसलिए आया है कि यह उनके जीवन काल में ही लिखा गया था।

दुनिया में बहुत से लोग ऐसे होते हैं जो स्वयं अपने अन्दर, अपने बारे में स्पष्ट नहीं होते। वे सीधे सीधे साफ साफ अपने को भी नहीं समझ पाते। बहुत-कुछ मुहम्मद अली इन्हीं में से एक थे। इसीलिए उनके व्यवहार से, उनकी जीवन-शैली में उनके बारे में गलतफहमी फैलती थी। आज तो मौलाना स्वर्ग में सुरक्षित हैं पर जब वह जीवित थे तब भी बहुत-से लोगों को उनकी विशेषता,—उनके बड़प्पन में संदेह था। उनके सहधर्मी स्व० 'अकबर' इलाहाबादी की ये लाइन, कितनी निर्दयता के साथ, प्रसिद्ध हो गई हैं—

बुद्धू मियाँ भी हजरते गांधी के साथ हैं।
यक मुश्त खाक हैं मगर आँधी के साथ हैं।

फिर हिन्दुओं में तो अधिकांश लोग उनको इतना महत्त्व देने के विरुद्ध थे। स्वयं मैं अपने बारे में यही कह सकता हूँ। १९२४ या २५ में मैंने गांधीजी को एक लम्बा पत्र इस सम्बन्ध में लिखा था और यह भी लिख दिया था कि विपरीत उदाहरण इतने ज्यादा हैं कि मैं समझता हूँ, आप धोखा खा रहे हैं। पर अध्ययन, मनन और विश्लेषण ने इस सम्मति में परिवर्तन करने को मुझे बाध्य किया है। धोखा तो गांधीजी ने खाया पर इससे यह सिद्ध नहीं होता कि मुहम्मद अली नगण्य थे। एक सीमा तक ऐसा कहना गांधी के निर्णय के विरुद्ध होगा, जिससे बढ़कर मनुष्यों का पारखी हमारे समय में दूसरा नहीं। उसने मुहम्मद अली की शक्ति को पहचाना था; हाँ, मुहम्मद अली को न पहचान सके। पर यों तो स्वयं मुहम्मद अली भी स्पष्टता के साथ कभी अपने को पहचान न पाये—देख न सके। उनमें धर्म की सेवा का एक नशा आया था। और जब गांधी ने राजनीति में धर्म का एक प्रयोग शुरू किया तो उनके हृदय में यह नशा, अपनी परिपूर्णता पर पहुँच गया और एक तूफान की तरह सार्वजनिक जीवन में फट पड़ा।

गांधी का निर्णय ठीक है

इसी दृष्टि से यदि विश्लेषण करें तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचना चाहेंगे कि वह भारत की स्वतंत्रता के भक्त थे और बाह्यदृष्ट्या इसी के लिए उन्होंने प्राण दिये पर यह स्वतंत्रता की भक्ति स्वतंत्रता के लिए न थी, इसके मूल में उनका उद्देश्य इस्लाम की सेवा—उसकी सुरक्षा,—'सिक्योरिटी'—थी। वह ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध इसलिए उतने नहीं थे कि वह प्रजातंत्र की पद्धति को श्रेष्ठ समझते थे, इसलिए अधिक थे कि अन्तर्राष्ट्रीय संसार में ब्रिटेन, संयोग-वश, मुसलमान राष्ट्रों के विरुद्ध पड़ता था। अफ़ग़ानिस्तान, फ़ारस, अरब, मिश्र और तुर्की इत्यादि मुसलमान राष्ट्रों में अंग्रेज़ों ने विशेषाधिकार प्राप्त करके अपना प्रभुत्व जमा लिया था। इसलिए अंग्रेज़ों की साम्राज्य लिप्सा के वह कट्टर दुश्मन हो गये थे। गांधी ने जब ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध शंख फूंका तो स्वभावतः उनका दिल नाच उठा और उसके साथ हो गये। जब बीच में गांधी ने आन्दोलन स्थगित कर दिया तो धीरे धीरे उनका यह उत्साह मरने लगा और अन्दर इस्लाम की जो भक्ति थी उसको प्रत्यक्ष रूप ग्रहण करने और ऊपर आने का मौका मिला।

भारतीय स्वतंत्रता के प्रेमी

इस तरह मुहम्मदअली के अन्दर पैठकर देखें तो मालूम होगा कि मुख्यतया वह इस्लाम की सेवा और मुसलमानों के उत्थान को लेकर चले थे। भारतीय स्वतंत्रता इस उद्देश्य का साधन था। ठीक वैसे जैसे वह गांधी के लिए विश्व-कल्याण का साधन है। यह बात अगर हम समझ लें तो उनके साथ शायद कम अन्याय कर सकेंगे और इसे समझ लेने पर यह समझते भी शायद देर न लगेगी कि मौलाना मुहम्मदअली सम्प्रदायवादी (कम्यूनलिस्ट) न थे,—यद्यपि एक बहुत बड़ी संख्या उनको ऐसा ही समझती रही।

और इससे यह भी कहा जा सकता है कि सर सैयद अहमद के बाद मुसलमानों को जगाने वाला मुहम्मदअली से बड़ा दूसरा नेता नहीं हुआ।

पर जब हम मुसलमानों की दृष्टि से उन्हें सर सैयद की पंक्ति में बैठाते हैं तब भी हमें यह ख्याल है कि वह सर सैयद न थे। दोनों के व्यक्तित्व, जीवन निर्माण और जीवन-यात्रा के प्रकार में अन्तर है और शायद बड़ा अन्तर है। सर सैयद कूट-नीतिज्ञ थे, उन्होंने मुसलमानों को जगाया पर भारत का भला नहीं किया। वह जिस रास्ते से गये वह राष्ट्रीय व्यक्तित्व के बिलकुल विरुद्ध जाता था। आज मुसलमान में जो जहर है और राष्ट्रीय आकांक्षाओं के प्रति जो उपेक्षा है वह बहुत-कुछ सर सैयद की ही देन है। मुहम्मदअली ने इस जहर को निकालने के ख्याल से दूसरा रास्ता इख्तियार किया था। मुहम्मद अली सर सैयद की भाँति कूट-नीतिज्ञ न थे। वह शहीद का हृदय लेकर जीवन की चौमुहानी पर खड़े हुए और उन्होंने मुसलमान में जो वीर भाव था, जो शहादत के संस्कार थे, उन्हें पुकारा। इतनी निर्भयता से मुसलमान को सम्बोधन करने वाले दूसरे व्यक्ति को फिर हमने नहीं देखा। यह निर्भयता सब तरफ से व्यापक थी। एक ओर वह सरकार की ओर भवें तान कर खड़ी हुई और दूसरी ओर हिन्दुओं से निर्भय रहना उसने सिखाया।

सर सैयद और मुहम्मद अली

निर्भीकता का शिक्षक

इतनी सीटें यहाँ मिलें, इतनी वहाँ—यह बात मुहम्मदअली के नजदीक हेच थी। वह पुकार कर कहते—जबतक तुममें ताकत है तबतक इतने उतने की व्यवस्था हो या न हो, तुम्हें वह मिलकर रहेगी और जब तुम कमजोर हो जाओगे तो यह सब लिखा पढ़ा धरा रह जायगा। सर सैयद ने जहाँ कूटनीति से मुसलमानों को बढ़ाना चाहा वहां मुहम्मदअली ने वीरता और शक्ति जाग्रत करके उनको शक्तिमान बना देने का बीड़ा उठाया। उनका मुसलमान सरकार के इशारों पर नाचनेवाला, टुकड़ों पर बिका हुआ, निस्सार बातों के लिए तूफान मचा देनेवाला प्राणी नहीं, वह वीर, विद्रोही अपनी ताकत में विश्वास रखनेवाला है। अपनी रक्षा के लिए वह

अपने पैर पर खड़ा होना चाहता है। सरकार उसे आंख दिखाये तो उससे लड़ने को तैयार, हिन्दू दिखाये तो उससे लोहा लेने पर कमर बस्ता। मुहम्मदअली ने जो लिखा, जो कहा वैसा मुसलमानों में किसी ने न लिखा था, न कहा था। यह मुहम्मदअली का ही प्रताप था कि उसने मुसलमान को, जो सरकार के प्रति वफादार रहने में अपना लाभ देखता था और सुविधा के स्वाद का अनुभव करता था, झटका मारकर जगा दिया और यद्यपि सर सैयद का संस्कार अन्दर-अन्दर पैठ गया था और जो कुछ नहीं बैठा था उसे सरकार ने हिमायत के छींट दे देकर इसलिए बैठा दिया कि विद्रोही हिन्दू को दबाने का यही एक उपाय रह गया था, पर यह भारतीय मुसलमान पर अपनी एक विशेषता की छाप तो सदा के लिए छोड़ गया है।

× × ×

अनावृत स्पष्टता और स्वच्छन्दता

यदि देश को छोड़ दें और व्यक्ति को लेकर चलें तो गाँधी की धुन, उसकी स्पष्टता के आडम्बर को तोड़कर बातों को साफ-साफ सब के सामने रख देने की वृत्ति, कुछ-कुछ मुहम्मदअली में थी। पर इसके साथ ही मालवीय जी का भाव-प्रवाह, भावावेश एवं, थोड़ा ही बहुत सही, मोतीलाल जी की निष्ठुरता भी उनमें विकीर्ण हुई थी। इसीलिए उनका जीवन, उस नौका की भाँति जो लहरों पर थपेड़े खाती इधर-उधर बहती है और अपना निश्चित मार्ग बना नहीं पाती, जिसका कोई बन्दर नहीं, बाधा-बंध विहीन-सा बहता चला जाता है। जिधर बोझ पड़ा, झुक जाता है। जहाँ दिल मिल गया, अठखेलियाँ करने लगता है। वाणी का वही उन्मुक्त प्रवाह, वही विस्तार यहाँ है जो मालवीय जी में है। गुणों की भिन्नता है पर हम तो यहाँ केवल विस्तार और प्रवाह की बात ही लिख रहे हैं। लेखनी का भी वही हाल। वाणी और लेखनी, आत्म-प्रकाश के दोनों साधनों में, भाव प्रवाह झरने की तरह, बहता है।

टिप्पणियाँ लेखों का रूप धारण करती हैं। व्यक्तिगत पत्र म भी जरा-सी बात लिखने बैठे तो सफे के सफे रँग गये। मानो उर्दू के उस आचार्य और महाकवि 'मीर' का शेर उन्हीं के लिए लिखा गया हो—

खिस्त रखा लिख गय दफ्तर,
शौक न बात क्या बढ़ाइ है।

कोंग्रेस के जितने अध्यक्ष हुए उनमें उनका भाषण सब से लम्बा—पूरी एक किताब—है। और उसका सार निकालने बैठिए तो दो चार पेज काफी होंगे क्योंकि उनमें तथ्य उतना नहीं जितना भावों का एक तूफान है। जो कुछ उनके दिल म है, वह बाहर आने के लिए बेकरार है और ऐसे समय वह इस बेकरारी, इस प्रवाह की दया पर निर्भर करते हैं। वह उन्हें जिधर ले जाय। जिह्वा पर या कलम पर उनका वह काबू नहीं जो महात्मा गाधी की विशेषता है।

पर इतना ही नहीं, जैसे गाधी की लगन लेकर भी वह गाधी से मजिलों दूर हैं वैसे मालवीय जी का भाव प्रवाह पाकर भी वह मालवीय जी से बिलकुल अलग—दूसरी चीज हैं। मालवीय जी म दया है, करुणा है, नम्रता है, वह व्यग करना, चोट पहुँचाना नहीं जानते। मुहम्मदअली की वाणी

गाधी भी नहीं, मालवीय भी नहीं!

व्यगमयी है, उनकी जीभ चोट करना जानती है,—उसम कोबरा का प्राण घातक विष है। उनके व्यग बिच्छू के तीव्र दश हैं। अपने विरोधी पर वाणी और लेखनी द्वारा वह जबर्दस्त आक्रमण करते हैं। विरोधी के लिए, प्रतिद्वद्वी के लिए उनकी जबान बड़ी विषैली है। और फिर इस ज़बान के उपयोग में सयम नहीं—वह स्वच्छन्दतापूर्वक चलती है।* उनकी जिह्वा, उनकी कलम से भी अधिक स्वच्छन्द है। जैसे उस पर उनका

* एक प्रसिद्ध लेखक ने लिखा था—

No one in the country has a rougher tongue or a more deadly to his opponents or uses it more freely

कातू नहीं। यहाँ तक कि विरोध करते समय वह विषय से बहुत दूर चले जाते हैं। अप्रासंगिक होकर भी आक्रमण तो करना ही है। अप्रासंगिक तो कभी कभी मालवीय जी भी हो जाते हैं पर उनमें और मालवीय जी में इस विषय में भी बड़ा अन्तर है। मालवीय जी कभी किसी व्यक्ति पर आक्रमण नहीं करते, उनकी वाणी में व्यक्तिगत निन्दा खोजने से भी न मिलेगी। फिर वह अप्रासंगिक होते हैं विषय को चारों तरफ से स्पष्ट कर देने के लिए। पर मुहम्मदअली तो बोलते-बोलते केवल विरोधी पर आक्रमण करने के लिए रास्ते से दूर चले जाते हैं और व्यक्तिगत उदाहरणों एवं घटनाओं के उल्लेख-द्वारा विरोधी पर चोट करने से नहीं चूकते। ये उदाहरण चुभते हैं, चोट करते हैं। मुहम्मदअली एक के लिए दो घूँसे देने वाले सैनिक योद्धा की तरह राजनीति में दिखाई पड़ते हैं। राजनीति क्या, हर जगह यही बात है। अनेक बार उनके विशेषण भयानक और अविचारपूर्ण होते हैं। उनमें महात्मा गांधी का वह विवेक नहीं जो मनुष्य को उसके कार्यों से, उसकी राजनीति से अलग करके देख सकता और इसीलिए सार्वजनिक विषयों में मत भेद रखते हुए भी व्यक्ति को स्नेह कर सकता है, सम्मान कर सकता है। मुहम्मदअली के लिए यह बात नहीं। मनुष्य और उसके विचार या कार्य सब को वह मिला देते हैं। यदि कोई माडरेट, नरम, है तो बुरा है। इसपर जब वह बोलने उठेंगे तो इतना ही कहकर चुप नहीं होंगे कि माडरेट ऐसे हैं वैसे हैं, बल्कि दो चार के नाम लेकर, उनके व्यक्तिगत उदाहरण देकर, तब बैठेंगे।

पर यह लिए, विरोध की यह कटुता भी बहुत-कुछ भावावेश के कारण ही पैदा होती है। इसलिए वह दिल में छिपाकर उसे नहीं रखते, साफ साफ सामने रख देते हैं। संसार के अनुभव उनके इस लड़कपन की मनोवृत्ति को बदल न सके। हर उम्र में वह यकसाँ है। वही साफ-गोई—स्पष्टवादिता—और वह भी उच्छृंखलता की सीमा तक बढ़ी हुई।

इस स्पष्टवादिता को खोलकर भीतर-बाहर से देखें तो कह सकेंगे कि वह गुण भी है, दोष भी है। वह जहाँ गंभीरता और विवेक की कमी

गुण भी, दोष भी

सूचित करती है, वहाँ मनुष्य को ईर्ष्या द्वेष और धोके से, दिल ही दिल में बातें रखकर पिशाच होने से उसे बचा लेती है। तूफान आता है और चला जाता है;—दिल का मैल उसके साथ निकल जाता है, दिल में ही रहकर कीचड़, काई और सड़ान नहीं पैदा करता। इसीलिए एक ओर जहाँ मुहम्मदअली को चोट और आक्रमण करते देखते हैं वहाँ बहुत जल्द शत्रुता और विरोध को भूलते भी देखते हैं। जहाँ वह तीव्र आक्रमण और चोट करनेवाले हैं वहाँ स्नेही भी हैं। भाव प्रवाह जिधर लुढ़क जाय। जब महात्माजी के साथ थे तो उनके बिल्कुल अन्तरंग हो गये थे। दिल का दरिया उधर ही उमड़ पड़ा था और उन्हें बहा ले गया। सागर और नहर एक हो रहे थे। पर जब तूफान खतम हो गया, बाढ़ कम हुई, बीच की जमीन सूख गई,— दोनों अलग दिखाई पड़े। इसमें मुहम्मद अली का कोई दोष नहीं, यह उनकी प्रकृति का ही दोष है।

× × ×

ऊपर जिस भावावेश का जिक्र किया गया है वह मौलाना मुहम्मद अली में कभी-कभी बड़े विचित्र रूप में प्रकट होता था। इस सम्बन्ध में उनका जीवन मनोविज्ञान के विद्यार्थी के लिए अध्ययन की एक चीज है। उसमें परस्पर विरुद्ध धारणाएँ चमकती हैं। उनका मन कुछ और है पर विरोध में, विवाद में उत्तेजित करके आप उनसे कुछ कहला लेते हैं। ऐसे उत्तेजना के समय तो वह अपने विरोधी की सही या गलत हर बात का विरोध करते हैं। यदि कोई विरोधी उनसे कुछ कराना चाहे तो उसे उस काम के विरुद्ध राय प्रकट करनी चाहिए।

सच बात तो यह कि मुहम्मद अली उन उपकरणों से बने ही न थे, जिनसे राजनीतिज्ञ बनता है। उनमें कलाविद् का, कवि का भाववेश

है। वह भाव प्रवाह और धारणाओं के प्राणी हैं और यह भाव प्रवाह स्थायी नहीं होता। उसमें ज्वार भी है, भाटा भी है। इसीलिए कभी हम, कवि की भांति, उन्हें बहुत ऊँचा उठते देखते हैं और कभी साधारण प्राणी के रूप में। राजनीतिज्ञ जरा ठोस उपकरणों से बनता है, वह विरोधी के आक्षेप पर उबल नहीं पड़ता। जरूरत होती है तो उसे पी जाता है और मौका आने पर उसका उपयोग करता है। वह अपने दिल पर काबू रखता है और शान्त, ठण्डा, निठुर होकर चलता है। इसीलिए मौलाना राजनीति की चीज न थे और राजनीति में इस रूप में उनका आना विशेष वाछनीय नहीं कहा जा सकता। उनका जीवन इस बात का उदाहरण है कि धर्म को राजनीति में लाना ठीक नहीं। यहाँ धर्म से मतलब उसके उस बाह्याचार से है जिसे लेकर मुख्यतया जन-समूह चलता है। मुहम्मद अली सबसे पहले मुसलमान थे, फिर भारतीय थे। राष्ट्रीयता जब उठती है तो इस भाव को चूर-चूर करके ही उठ सकती है। स्वतन्त्रता का युद्ध लम्बे समय तक तभी चल सकता है जब हिन्दू या मुसलमान सबसे पहले अपने को भारतीय समझे। जहाँ धर्म का बाह्याचार प्रबल हो उठता है वहाँ देश हित का क्रय विक्रय होने लगता है, मानव हृदय में युग-युग से सचित सस्कार देश की, श्रमिक के हित की, भावना को दबा देते हैं। धर्म वहाँ तक तो ठीक है जहाँ तक वह मानव में सदाचार का पोषण करता है पर ऐसा धर्म तो मनुष्य मात्र के लिए एक हो हो जाता है। उसमें दलबदियाँ हो नहीं सकतीं।

राजनीतिज्ञ नहीं, भावुक

असयमित, उच्छृखल भावावेश हमारे सार्वजनिक जीवन को मौलाना मुहम्मद अली की भेंट है। इसमें वह गलती कर जाते रहे हों, बह जाते रहे हों, पर वह सदा सच्चे—'सिंसियर'—रहते थे। और जो कहते उसके लिए आवश्यकता होने पर फाँसी पर चढ़ सकते थे। अपने

सार्वजनिक जीवन को उनकी देन

विश्वास को, सही हो या गलत, वह बेंच न सकते थे। इसके लिए निन्दा, शरीर यातना, उपेक्षा सब कुछ सह सकते थे। किसी कीमत म उनका विश्वास खरीदा न जा सकता था। वह दिल की उमग लेकर चलते थे, जिसका कोई मूल्य आँकना, जिसे किसी भी कीमत में खरीदना सभव नहीं। बहुत करके समझौता उनकी प्रकृति में न था;—या था तो नगण्य मात्रा म। वह एक कट्टर धर्म पुरोहित—'प्रीस्ट'—की भाँति थे, वह एक उपदेशक थे। उनकी वाणी के प्रवाह म, दिल की आग धू धू करके जलती थी। इस भाव राशि मे कोई क्रम न होता था, कोई व्यवस्था, तरतीब न होती थी। वह बरसाती नदी की उमग लेकर उछलती-कूदती, उमडती घुमडती, अठखेलियाँ करती, गरजती, कहा सींचती, कहीं उजाडती चलती थी।

—और इतना कह लेने के बाद इससे निष्कर्ष तो यही निकलता है कि उनम एक शहीद का 'स्टफ' था, वह कलावन्त के उपकरणों से बने थे, जो सीधे उपयोगितावाद को लेकर नहीं चलता, हृदय की भाव राशि को, अनुभूति को लेकर चलता है।

इसीलिए जब गाधी से अलग हुए तब भी मुसलमानों के नेता होकर भी, वह अन्य सम्प्रदायवादी मुसलमानों के बीच अपने ढग के एक अलग ही आदमी की तरह खडे दिखाई दिये। वह फजली हुसेन और सर शफात अहमद की पक्ति से अलग रहे। उनको आफिसों का, नौकरियों का, सीटों का मोह कभी खींच न सका। कौंसिलों को वह उस समय भी, असहयोगी की नाईं, खेल की चीज समझते रहे। इस विषय में वह अन्त तक असहयोगी की तरह रहे। स्वराज-दल के जमाने म भी मोतीलाल जी और देशबन्धु की जगमगाहट उन्हें इधर खींच न सकी। कभी-कभी वह असेम्बली का दृश्य देखने के लिए ऊपर दर्शकों की गैलरी में जा बैठते थे। एक बार मोतीलाल जी ने नीचे से आवाज दी—"मौलाना, अब यहाँ तक तो आ ही गये हो,

कौंसिल-क्रीडा से दूर

फिर इधर ही आ जाओ न।"

मुहम्मदअली झट बोले—"मैं तो यहाँ से—ऊँचाई से आप लोगों को नीचे की तरफ देखने आया हूं।"*

इस वाक्य में उनकी हाजिर-जवाबी और व्यंग ही प्रस्फुटित नहीं हुए हैं वरन् उनका विश्वास भी प्रकट हुआ है। वह सचमुच इन कौंसिलों (इत्यादि) को तुच्छ दृष्टि से देखते थे।

× × ×

इतना कह चुकने के बाद समय आया है कि हम सब को थोड़े में संक्षेप कर लें। पहली बात तो यह कि मुहम्मदअली मुसलमान थे। ईश्वर में, अपने धर्म में, कुरान में और ईश्वर के प्रवक्ता हज़रत मुहम्मद में उनका दृढ़ एवं अटल विश्वास था। इसलिए जब वह राजनीति में आये तब भी अपना यह विश्वास और अपनी यह प्रकृति साथ लाये।

मुसलमान

दूसरी बात यह कि धर्म की इस भावना ने उन्हें अटूट निर्भीकता का दान किया था। इसलिए अपनी बातों को वह साफ साफ निर्भय होकर कह सकते थे। वह मुसलमानों की रक्षा के लिए अंग्रेजों की सहायता लेना हेय समझते थे। उनका वीर भाव इसे बर्दाश्त न कर सकता था। मुसलमानों में उन्होंने कभी अराष्ट्रीय भावनाएँ जगाने की कोशिश न की। विदेश की गुलामी की बात भी उनके लिए असह्य थी।

निर्भीकता

---

* असल में अंग्रेजी में "I have come to look down upon you" शब्द उन्होंने कहे थे। इसका ठीक अनुवाद करना कठिन है। 'लुक डाउन' शब्द में श्लेषात्मक व्यंग है। इसका एक अर्थ तो 'यहां से तुम लोगों को देखने आया हूँ' होता है और दूसरा—"यहाँ से तुम लोगों को नीची—हिकारत की निगाह से देखने आया हूं" यह है।

तीसरी बात, जिसे मैं, अपनी सारी हिम्मत बटोर कर, कह देना चाहता हूँ, यह है कि वह राजनीतिज्ञ न थे, उनमें कलावन्त और शहीद की वृत्तियाँ विकसित हुई थी। उनमें भावावेश का असयमित प्रवाह था, जो जब उमड़ता तो बाँध तोड़कर सब कुछ जलमय कर देता था। असफलताएँ इस भावावेश का जोर तोड़ नहीं सकती, कठिनाइयों की चर्चा उसके सामने व्यर्थ है। यह देखने की बात है कि मुहम्मदअली का जीवन, प्रत्यक्ष परिणाम की दृष्टि से, असफलताओं का आकर है। जिस खिलाफत के लिए इतना किया, इतना तूफान खड़ा किया, हजारों को कष्ट सहने को निमंत्रित किया उस बाँध को कमालपाशा नामक उठती हुई जोर की लहर ने धक्का मारकर रास्ता काट दिया। पर यहीं क्या, जिस काम को ले लीजिए, यही बात दिखाई देगी। सफलताएँ उनके जीवन में बहुत कम हैं—प्राय हैं ही नहीं और हों भी तो रेगिस्तान में 'ओसिस'—हरियाली की तरह होंगी फिर भी जहाँ तक इस भावावेश का सम्बन्ध है, असफलताएँ कभी उसका गला न घोंट सकीं क्योंकि परिणाम की उसे कभी उतनी चिन्ता न रही। यह भावावेश तो बस उमड़ना जानता है, वह तो जीना चाहता है। वह सब पर छा जाना, सबको भिगो देने को उत्सुक है। यही भावावेश १९२१ से १९२५ तक भारत के सार्वजनिक क्षेत्र में अपनी असीम विस्तृति के साथ उमड़ा था। उस समय गाँधीजी के बाद मुहम्मदअली शायद सब से लोकप्रिय नेता थे। उनका दिल इस आन्दोलन में उमड़ पड़ा था, वह अपने को भूल गये थे। जैसे कवि या कलावंत भावावेश में अपने को भूल जाता है, अपने से ऊँचा उठ जाता है, अपने को बहुत पीछे छोड़ जाता है और इस विस्मृति में, इस उड़ान में अद्भुत सृष्टि एवं निर्माण कर जाता है।

राजनीतिज्ञ नहीं शहीद और कलावंत

शहादत की इस भावना ने ही उनमें स्वतन्त्रता की प्यास और आकांक्षा उत्पन्न की थी। वह प्रकृति से ही स्वतंत्रता प्रिय थे। जैसे एक

अफगान स्वतंत्रता का दीवाना होता है, वह स्वभाव से ही स्वतन्त्र होता है, वैसे ही मुहम्मद अली स्वतंत्रता प्रेमी और बिल्कुल प्रजावादी—डेमोक्रेटिक—स्वभाव के थे। जहाँ गरीब पिस रहे हों, दुर्बल सताये जा रहे हों वहाँ उनकी वीर भावना उमड़ती थी। युद्ध में, जहाँ वीरता है, वहाँ, उनका दिल है। इसीलिए १९३० में जब फिर १९२१ के उत्साह की पुनरावृत्ति शुरू हुई, जब फिर राष्ट्र ने त्याग एवं कष्ट-सहिष्णुता की प्रभा से वातावरण को चकाचौंध कर दिया, जब स्त्रियाँ ओपा को शक्ति की तरह भारतीय राजनीति में आईं तब मौलाना मुहम्मदअली का दिल फिर उधर खिंचने, उमड़ने लगा था। लन्दन में दिये गये उनके व्याख्यानों, उनके निजी पत्रों तथा बात चीत में यह बात स्पष्ट हो गई थी। इसीलिए हमने उन्हें अन्तिम दिनों में भारतीय स्वतन्त्रता के लिए अद्भुत भावावेश के साथ अपील करते देखा और मेरा ऐसा ख्याल है कि यदि वह जीवित रहते तो अवश्य आज राष्ट्र के कर्णधारों में एक होते। पर जिस रूप में वह मरे, उसमें वह मरकर भी अमर रहे। वह सचमुच ही शहीद हुए।

शहादत की भावना

चौथी और शायद सबसे जरूरी बात यह कि वह सम्प्रदायवादी—कम्यूनलिस्ट—न थे। इस विषय में उनका व्यवहार बहुत-कुछ मालवीय जी की भाँति रहा। मालवीयजी की भाँति ही मौलाना मुहम्मद अली ने भी कभी कांग्रेस का विरोध नहीं किया। अन्तिम समय तक स्वतंत्रता की आग उनके दिल में जल रही थी और मुझे मालूम है कि उन्होंने मरते समय तक कांग्रेस का विरोध न करने की, साम्प्रदायिक विवाद न बढ़ाकर राष्ट्रीय पक्ष को प्रबल करने की सलाह मुसलमानों को दी थी।

× × ×

१९२५ से १९२९ तक उनके सर्वभक्षी भावावेश के सार्वजनिक जीवन में एक अन्तर—एक 'गैप' आता है। बिलकुल अन्तर—'गैप'—ही

तो नहा कह सकते पर उनके १९२१ से २५ तक के जीवन के मुकाबले यह 'गैप' ही है। उन दिनों साधारण—औसत हिन्दू की जबान पर यही रहता था—"देखो, असली रंग निकल आया न!"—"आखिर तो मियाँ भाई ही ठहरे!" इस समय जो कुछ कहा जाता उसका कोई जवाब न हो सकता था। या यों कहें कि जवाब तो हो सकता था पर प्रश्नकर्ता उसे जवाब मानने के लिए तैयार न होता। उस समय की हवा में वह भी ठीक ही था। पर उस समय भी गाँधी जी अपने निर्णय में अटल रहे और मौलाना की असाधारणता में उनका विश्वास बना रहा। पर जो कुछ कहा जा चुका है और जो कुछ नहीं या जो कुछ आगे कहा जा सकता है, उन सबके रहते या न रहते हुए भी इतना तो कहना ही पड़ेगा कि मुसलमानों में उनके स्थान की पूर्ति नहीं हो सकी—शायद नहीं हो सकती। जैसे १९२१ से २५ तक उनका स्थान उन्हीं का था, वैसे ही सार्वजनिक जीवन से अलग-से दीख रहे परवर्तीकाल (१९२६–३०) में भी उनका स्थान उन्हीं के लिए खाली रहा। दोनों अवस्थाओं में उनके स्थान को, उनकी मर्यादा को चैलेंज नहीं किया जा सकता। वह खास उनकी ही सृष्टि थी,—किसी की दी हुई न थी कि दूसरे को दी जा सके।

× × ×

यह ठीक है कि सब बातों पर विचार करके देखें तो मुहम्मदअली को पूरा का पूरा—अपने में परिपूर्ण राष्ट्रनिर्माता नहीं कह सकते। पर इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि हमारे राष्ट्र निर्माण के इतिहास में उनका जिक्र आये बिना नहीं रह सकता। फिर चाहे वह किसी रूप में आये। उनके जिक्र बिना वह अधूरा रहेगा। हमारे निर्माण के इतिहास में उनका एक विशेष स्थान है। उन्होंने राष्ट्र के—शरीर के एक ऐसे भाग में, अंग में,

राष्ट्र निर्माता नहीं, फिर भी महत्वपूर्ण

जो सूखा पड़ा था, जो राष्ट्रीयता के प्रवाह के प्रति बिल्कुल मुर्दा, उदासीन और निष्ठुर था, एक आँधी की गति और उत्साह पैदा किया। मुसलमान जो अभी तक तमाशबीन था, उनके प्रभाव से उनके भावावेश में झूमकर स्वय नर्तक, नट बन गया और, थोड़ी अवधि के लिए ही सही, उसने भी राष्ट्रीयता के युद्ध में हिंदू के साथ, सच्चे भारतीय की नाईं, कंधा मिलाकर काम किया।

—और बाद में जो प्रतिक्रिया हुई उसमें भी मुहम्मदअली के शक्तिमान व्यक्तित्व का पता चलता है। भारत के मुस्लिम सार्वजनिक जीवन में उनसे शक्तिमान व्यक्तित्व दूसरा पैदा न हुआ। उन्होंने मुसलमानों में जो भावावेश, त्याग की जो प्यास असहयोग-काल में पैदा की, वह बहुत करके उनकी निज की देन थी और इसीलिए उनके हटते ही, अलग होते ही, सम्पूर्ण मुस्लिम जनता का सामूहिक भावावेश भी शिथिल होकर, टुकड़े टुकड़े हो गया। यह उनकी निजी और सार्वजनिक शक्ति का एक प्रमाण है।

वस्तुत यह हमारी राजनीति में एक तूफानी व्यक्तित्व लेकर आये और जैसे आये वैसे ही चले गये।

जीवन-तालिका

१८७८	दिसम्बर	रामपुर (युक्प्रात) में जन्म ।
१८७९		पिता का देहान्त ।
		रामपुर स्टट स्कूल, बरेली हाइ स्कूल और एम० ए० ओ० कालेज अलीगढ़ म शिक्षा ।
१८९८		शिक्षा के लिए इग्लैण्ड-यात्रा ।
१८९८–१९०२		लिंकन कालेज (आक्सफर्ड यूनिवर्सिटी) म अध्ययन । आइ० सी० एस० की परीक्षा दी पर अनुत्तीर्ण रहे । भारत लौटे ।
१९०३—०४		रामपुर स्टट के शिक्षाध्यक्ष ।
१९०४—१०		बड़ौदा स्टट की नौकरी ।
१९११		कलकत्ता से अग्रेजी साप्ताहिक 'कामरड' निकला ।
१९१३		दिल्ली से उर्दू दैनिक 'हमदर्द' का प्रकाशन । कानपुर मस्जिद-काण्ड पर आदोलन ।
१९१५	मई	नजरबद किये गये ।
१९१९	दिसम्बर	जल से मुक्ति ।
१९२०	मार्च	खिलाफत डेपुटेशन लेकर इग्लण्ड गये । असहयोग आदोलन ।
१९२१	१४ सितम्बर	गिरफ्तारी ।
	२ नवम्बर	दो वर्ष की सजा ।
१९२३	३ सितम्बर	जल से मुक्ति ।
	२८ दिसम्बर	कोकनद-काग्रेस के अध्यक्ष । १९२७ में मद्रास-काग्रेस में मतभेद ।
१९३१	४ जनवरी	लन्दन में देहावसान ।



विट्ठल भाई पटेल

विट्ठलभाई पटेल

['प्रेसीडेण्ट' : राजनीतिज्ञ]

He is the rock the oa[k] not to be wind shaken"

— SHAKESPEARE

विट्ठलभाई पटेल

[एक अध्ययन]

"Hats off to V. J Patel ! Hats off to the first elected President of the Legislative Assembly ! Hats off to the doughty herald of Swaraj, to the valiant knight of the Rueful Countenance, to the Swarajist Abhimanyu in the British Chakravyuh, the first living exemplar within the bureaucratic citadel for all who would serve the country !"

—AL KAFIR

गठा हुआ शरीर, लम्बी दाढ़ी, घनी भौंह, जिनके नीचे से आँखें इस तरह देखती हैं मानो कलेजे में घुस जायँगी और भीतर जो-कुछ है उसे देखकर, समझकर, और उसे पहचानकर छोड़ देगी। यह वह मनुष्य है जिसने संसार को देखा है, जो दुनिया को पहचानता है और पहचानकर, जरूरत के मुताबिक, अपने मनोरंजन के लिए, उससे काम लेलेना—खेलना चाहता है। इस खेल में भावावेश नहीं है, इसमें कूट बुद्धि के पैंतरे हैं। एक कलावत, एक नट की भाँति यह राजनीति के क्षेत्र में विचरता है।

कूट पुरुष

—और निश्चय ही विट्ठलभाई' हमारे राष्ट्रीय ससार में एक अद्भुत व्यक्तित्व है। सरकार के वैभव एव अपार शक्ति से अपनी बुद्धि के बल पर यों खेलनेवाला, जेसे निरस्त्र चाणक्य महाप्रतापी चद्रगुप्त को अपने कौशल प्रयोग से खिझाता था। सचमुच, वह हमारा, वर्तमान समय का, चाणक्य है। उसके चेहरे पर ही कूटनीतिज्ञता की छाप है।

—और चाहे उसके काम को सीधा आन्दोलन करने वाला सैनिक जो समझे, चाहे जन समूह उसकी असेम्बली की गद्दी पर बैठकर दी गई 'रूलिंगों' की समीक्षा न कर सके पर जो राजनीति को समझता है वह मानेगा कि वह तो वही है। उस जैसा हमारी टोली में दूसरा नहीं। उसने असेम्बली में बैठकर जो किया उसे वही कर सकता था, दूसरा नहीं। वह उसकी एक सृष्टि थी,—जैसे कोई बाजीगर अपनी खाली झोली से अगणित चीजें पैदा करके सामने रख देता है। वह कौंसिलों के घोर अन्धकार में एक चिनगारी, एक प्रकाश था। उसने रास्ता दिखाया और, रास्ता दिखाने के साथ जो वैध कार्यक्रम को लेकर ही चलना चाहे उसे यह बता दिया कि अगणित बन्धनों म भी करनेवाला कुछ कर ही सकता है।

अपने ढग का अकेला

पर यह तो हमारी राजनीति में उसकी देन का एक टुकड़ा है। इतना ही होता तो हम उसके नाम पर ये पन्ने काले करने न बैठते। समालोचक की लेखनी दया नहीं जानती वह निठुरता पूर्वक व्यक्तित्व की चतर च्योंत करके व्यक्ति को देखती है। विट्ठलभाई उसकी कसौटी पर उतरते हैं और इसीलिए उसे उनके सम्बन्ध में जरा और बढ़ाकर लिखने की आवश्यकता आ पड़ी है।

× × ×

यों तो बहुत पहले से लोगों ने विट्ठलभाई का देशभक्त के रूप में देखा है और सामाजिक क्रान्तिकारी के रूप में तो वह बहुत पहले से

विख्यात रहे हैं पर जिस दिन से बड़ी कौंसिल (असेम्बली) के

प्रति इच अध्यक्ष के योग्य

अध्यक्ष के आसन पर बैठ उसी दिन से उनके जौहर खुलने शुरू हुए। उनसे अधिक उपयुक्त आदमी इस पद के लिए दूसरा न हो सकता था। उनसे अधिक सुसंस्कृत और कोमल हृदय व्यक्ति घबड़ाकर इस पद को छोड़ देता। जहाँ विरोध की, षड्यन्त्र की, व्यंग की संभावना हो वहाँ जरा ठोस, कड़े दिल का आदमी चाहिए और निश्चित है कि विट्ठलभाई इस पद के सर्वथा योग्य थे। उनके अध्यक्षकाल को देखकर तो यह मालूम होता है मानो यही उनका स्वाभाविक स्थान था। दूसरे स्थान पर शायद वह इतना न चमक सकते। दृढ़, कठोर, मर्यादा का ध्यान रखनेवाला यह व्यक्ति असेम्बली के अधिकार, उसकी शक्ति और मर्यादा का संरक्षक—त्राता बन गया था। और इसका परिणाम हम यह देखते हैं कि वह मरी हुई सी, सूनी, रक्त हीन कंकालोपमा असेम्बली, जो पहले एक ओर आरामतलब सदस्यों के वाणी विलास की और दूसरी ओर कानून और विधान के नाम पर होनेवाली सरकारी उच्छृङ्खलता की क्रीड़ा भूमि थी, उसके व्यक्तित्व से चमक उठा। उन्हीं नियमों और कानूनों के बीच

वह असेम्बली और यह !

चलनेवाली आज की असेम्बली को देखिए। जैसे बीते गौरव का श्मशान अपनी भयानक शून्यता में लिपटा हुआ शिथिल एवं निर्जन हो रहा हो! तब जहाँ शिक्षित वर्ग का ध्यान उसमें केन्द्रित था, जहाँ लोग अखबार खोलते ही असेम्बली के समाचारों पर नजर दौड़ाते थे वहाँ आज उसके समाचार देखकर उपेक्षा से आँखें फेर लेते हैं। यह ठीक कि उस समय असेम्बली भी और थी,—सरकार की ओर से भी और जन पक्ष के भी जैसे लोग थे, वैसे फिर दिखाई न पड़े पर उसकी छूट देकर भी, जब अत्यन्त निष्ठुर कसौटिया पर उसे कसते हैं तो प्रेसीडेण्ट पटेल के सामने आदर से सिर झुकाना पड़ता है। उन्होंने अपने शक्तिमान व्यक्तित्व की,

छाप असेम्बली पर छोड़ दी है। अपनी सफलताओं से उन्होंने भावी भारतीय पार्लमेण्ट्री पद्धति का मार्ग प्रशस्त कर दिया ह और वैध राजनीति के किले से स्वतत्रता का झण्डा फहराकर हमारे सामने एक अपूर्व दृश्य खड़ा कर दिया है।

और जरा देखिए,—प्रेसीडेण्ट की गद्दी पर बैठकर कैसी निस्पृहता से वह अपनी निष्पक्षता और असेम्बली की मर्यादा के लिए सचेष्ट है। परिणाम की चिन्ता नहीं, परिस्थिति की परवा नहीं। यह वह स्थान था जहाँ से वायसराय की कौंसिल में सहज ही एक स्थान वह पा सकता था। के० सी० एस० आई का रिबन अपने सारे आकर्षण के साथ मानों उसके सामने ही झूल रहा था और 'कौन जाने किसी खतरे के समय, किसी प्रान्त की गवर्नरी भी उसके लिए सम्भवनीय और सुलभ होती।'* पर यह सब सुख-सुविधा और शक्ति के प्रलोभन अपने सामने बिछाकर भी वह उनपर व्यंग की हँसी हँसता है। जैसे वे उसके लिए बिल्कुल ही तुच्छ—नगण्य—हों। उन्हें उपेक्षा से देखता है। आश्चर्यजनक गूढ़ता और कूट शान्ति के साथ हम उसे हिज एक्सेलेंसी कमाण्डर इन चीफ (प्रधान सेनापति) को फटकारते देखते हैं। यह उसके साहस का नमूना है। जिस दिन यह घटना हुई भारत से लेकर इग्लैण्ड तक अंग्रेजों में एक सिहर पैदा हो गई। अंग्रेज के लिए यह एक अविश्वसनीय दृश्य था, मानो उसकी आत्मा चकित होकर पूछती हो—'यह भी सम्भव था?' क्षुद्र एंग्लो इण्डियन पत्रों का क्रोध समझा जा सकता है। अंग्रेज ने इतने दिनों से शासन करना ही सीखा है, गुलाम भारत में

यह दृश्य।

---

* There he was on the royal road to greatness and prosperity with a seat on the Viceroy's Council dangling within his grasp, the ribbon of the K C S. I before him to clutch at and may be (who knows?) the governorship of some province after or during the next catastrophe a great war or something equally terrible.

Pillars of the Nation

आकर बहुत दिनों से शासित होना वह भूल गया है। फिर एक भारतीय, जिस पर अंग्रेज शासन करता रहा है और आज भी कर रहा है, आज उस शासक अंग्रेज पर हुक्म चलाये, उसे जेर और ज़लील करे, यह कल्पना भी अंग्रेज पदाधिकारी की सहन शक्ति के बाहर की बात है। फिर कमाण्डर इन्-चीफ को फटकारना !—उस कमाण्डर इन्-चीफ को जो लगभग वायसराय के बराबर है ? पर सहन शक्ति के बाहर हो या भीतर, यहाँ एक ऐसा व्यक्तित्व है, जो जबतक गद्दी पर है, किसी को छोड़ेगा नहीं। वह बड़े या छोटे सबको एक सतह पर लाकर देखता है और एक सतह पर लाकर छोड़ देना चाहता है।

उसकी निर्भीकता तो देखिए ! अध्यक्ष के आसन पर बैठा हुआ वह कभी प्रधान सेनापति को फटकारता है, कभी बारडोली सत्याग्रह फंड मे चंदा देता है, कभी राष्ट्रीय महासभा के अधिवेशन में उपस्थित है ! और इसके साथ हर रायेल हाईनेस रानी मेरी से हाथ भी मिला रहा है ! अंग्रेज स्तब्ध है, भारतीय आश्चर्य-चकित है !

इस प्रलोभन की आग से वह खरे सोने की तरह निकला। जब और लोग ऐसी जगहों पर पहुँचकर अपना आरम्भिक स्वप्न भूल जाते हैं, उसकी आत्मा दृढ़ और निर्लिप्त रही। एक लेखक के शब्दों में उस समय 'विट्ठलभाइ स्वराजी न रहकर भी देशभक्त बने रहे, दलबन्दी म न पडकर भी भारतीय बने रहे।'*

हमारे वैध प्रयत्नों के—हमारी पार्लमेण्टरी पद्धति के अंधकार के बीच 'विट्ठलभाइ ध्रुवतारा की भाँति चमकते हैं। वह अभिमन्यु की भांति शत्रु क किले से नौकरशाही के चक्रव्यूह म घुसकर, उसके अगणित दाँव पेंच को व्यर्थ करते, बधनों को तोड़ते और माया'

---

* Vithal Bhai ceased to be a Swarajist without ceasing to be a patriot He ceased to be a partisan without ceasing to be an Indian"

जाल को अपने कटु व्यंगों से छिन्न भिन्न करते घूमते दिखाई देते हैं। एक ऐसी जगह से, जो ऐसे काम के लिए इच्छा के योग्य नहीं कही जा सकती, वह स्वतंत्रता का झण्डा उड़ा रहे हैं। वह शत्रु के किले की चहारदीवारियों पर चढ़े हुए राष्ट्रीय पताका फहरा रहे हैं! एक मूर्तिमान आदर्श की भांति, एक जीवनमय मंत्र की भाँति, एक दृढ़, कभी न झुकनेवाले स्वाभिमान की भांति, सरकारी अधिकारियों की पंक्ति के बीच एक महत्तर शक्ति सा बैठा हुआ यह हमारी राष्ट्रीय आकांक्षा के क्षितिज पर चमकता है। उसकी कूटनीतिज्ञता के सामने सरकारी सदस्य ऐसे अशक्त हैं जैसे बरसात की हरहराती हुई नदी की धारा में एक मामूली तैराक अपने को लाचार सा, असहाय सा पाता है। पुलिस असेम्बली में आने वाले दर्शकों को तंग करती है—वह दर्शकों की गैलरी एकदम बंद कर देता है! उसके क्षेत्र में सर्वव्यापी पुलिस हस्तक्षेप करेगी? सरकार को उसकी कूटनीति के सामने झुकना पड़ा। सरकारी अधिकारी व्यंग करते हैं, दांत पीसते हैं, झूठा प्रचार करते हैं! वह स्थिर है वह उन्हें चैलेंज करता है—'माननीय सदस्यों को अध्यक्ष पर विश्वास न हो तो वह 'हाउस' के सामने अविश्वास का प्रस्ताव ला सकते हैं।' यह परिस्थिति का कैसा उपयोग है! और यह परिस्थिति, जो राष्ट्रीय दल के बहुमत के बीच सुरक्षित है, सरकारी बेंचों को कैसी निठुरता से चेलेंज करती है! यह वह व्यंग है, जिसमें विरोधी छटपटाकर रह जाते हैं, उनका कलेजा बैठ जाता है और वे विवशता की दयनीय सांस लेते हैं।

× × ×

यह सब कह और सुन लेने के बाद विट्ठलभाई के सम्बन्ध में कुछ समीक्षा करने की अवश्यकता है। पहली बात कि वह एक शक्तिमान

व्यक्तित्व

व्यक्तित्व है। ऐसा व्यक्तित्व जिसके पीछे एक लगन, एक दृढ़ता, एक जिद है। यह व्यक्तित्व अगणित सांसारिक अनुभवों का फल है। वह दुनिया के संघर्षों में पड़कर सुडौल

हो गया है। ससार के बाह्य परिवर्तनों के बीच रहकर उसने बहुत-कुछ आते जाते, गिरते-उठते देखा है। इसलिए उसके इस व्यक्तित्व के साथ एक तरह की जीवन की 'फिलासफी' लग गई है। यह एक ट्रेजिक—दु खात्मक—फिलासफी है। और इसने उसे एक तरह की स्थिरता, एक तरह की अतलस्पर्शी गभीरता—जो ऊपर से मौन है और भीतर कढ़ाई में जलते तेल की तरह उबल रही है—प्रदान की है। यह मनुष्य दुनिया के चक्र म इतनी बार घूमा है और इतनी बार लोगों को चक्कर खाते देख चुका है कि अघट घटनाएँ भी उसे आकपित नही करतीं। जिस बात को लेकर लोग आश्चर्य कर रहे हों, उसको ओर वह यों देखता है जैसे वह जीवन की साधारण बात है। तूफानी घटनाओं की ओर वह विनोदपूर्ण नेत्रों से देखता है और विचलित हुए बिना निरपेक्ष दर्शक का आनन्द ले सकता है। यह प्रवृत्ति बाह्य प्रशसाओं की भूखी नहीं और निन्दाएँ उसे क्षुब्ध नहीं कर सकतीं। व्यग उसे चोट नही पहुँचा सकते, चापलूसी उसे उभार नहीं सकती। यह अपने आप मे ही निमग्न, अपने में ही रमने वाली, आत्म भक्ति और आत्मोपासना को लेकर चलने वाली चीज है। उसके अन्तर मे जो एक दु खात्मक निश्चय है, उसकी आत्मा म जो लोहा है, उसके दिल मे जो आग है, उसकी लपटों में तपकर इस प्रवृत्ति का जन्म हुआ है। यह अन्त मुखी है और अपने में, अपने तेज में स्वय प्रकाशित और सुखी है।

यह प्रवृत्ति।

यह उसके अन्तर का एक पक्ष। पर इसके साथ ही, इस प्रवृत्ति से लगा हुआ एक दृढ निश्चय भी उसम है। इस दृढ निश्चय के कारण ही वह जीवन युद्ध में प्रबलता के साथ व्यक्त होना चाहता है। इस दृढ निश्चय के कारण ही एक विचार को जब वह ग्रहण कर लेता है तो और सब विचारों को निर्दय की भाँति टुकडे टुकडे करके फेंक देता है। ऊपर से मौन, बाह्य प्रभावों से उदासीन, वह अपने विचार को, अपने निश्चय को अपनी ही खोज और भीतर की

दृढ निश्चय

उदासीनता के साथ सोचता है।

और यह भी नहीं कि उसके हृदय में भाव नहीं, प्रवाह नहीं। पर यह भाव बहुत-कुछ व्यक्तिगत जीवन की सीमा के बाहर रहा है। उसे

ध्येय और भाव प्रवाह

इस विदेशी जाति को बाहर निकालने की, उसे नीचा दिखाने की, अपने व्यक्तित्व को ऊँचाई से उसे नापने और उस नाप में उसे छोटा सिद्ध करने की धुन है। इस राष्ट्रीय ध्येय को उसने व्यक्तिगत ध्येय बना लिया है। इस ध्येय के लिए उसके हृदय में भावावेश है—प्रवाह भी है, पीड़ा तो है ही पर वह इन सबको सदा अपने अनुशासन में रखता है और एक सच्चे राजनीतिज्ञ की तरह, मौका आने पर, उसका उपयोग कर लेता है। यह भावना जवाहरलाल की तरह उसमें सदा जलती हुई दिखाई नहीं पड़ती, उसमें दीपक की सदा एक रस जलने वाली लौ नहीं है, वह रह रह कर बिजली की भाँति चमक उठती है। अन्यथा उसके दृढ़ निश्चय के साथ लिपटी हुई, हृदय के गर्भ में पड़ी रहती है और चुपचाप अपना काम किया करती है।

इस जटिल सम्मिश्रण ने ही उसे दुर्बोध बना दिया है। इसके कारण ही चाणक्य की कूट बुद्धि लेकर वह हमारी दुनिया में अवतीर्ण हुआ है।

दुर्बोध

इसके कारण ही वह शत्रु पर सामने से आक्रमण नहीं करता उसके किले की दीवार में, जिसकी मज़बूती पर शत्रु को संदेह नहीं—छेद कर देता है और उसे चैन से बैठने नहीं देता। इसीलिए जो समझते हैं वे जानते हैं कि विट्ठलभाई हमारी राजनीति की, ऊपर से अदृश्य पर भीतर ही भीतर रास्ता बनाने वाली, एक शक्ति है।

× × ×

कूटनीतिज्ञ का सबसे बड़ा अस्त्र उसकी दूरदर्शिता है। विट्ठलभाई को मानव चरित्र का, मानवी स्वभाव का जो गूढ़ ज्ञान है, उसी ने उनको

इतना शक्तिमान बनाया। उनके पास केवल ऊपर ही ऊपर देखनेवाली आँखें नहीं है, बल्कि भीतर घुसकर देखनेवाली आँखें हैं। ऊपरी सद्भावनाएँ उसके निर्णय का साधन नहीं, इसीलिए दूसरों की दृष्टि में 'सज्जन और नैतिक प्रतिभावान' लार्ड इरविन उसके चुभने वाले व्यंग में 'ग्यारह आर्डिनसों का पिता, वह साधु आकृति वाला ईसाई'* है। उसकी जिह्वा जानती है कि कब बोलने से काम चलेगा और कब न बोलना, बोलने से ज्यादा होगा। मौनावलम्बन की इस वृत्ति ने उसे अद्भुत शक्ति प्रदान की है। असेम्बली के दिनों में देखते थे कि जरूरत पड़ने पर वह जोशीली से जोशीली स्पीचों के सामने ऐसा बन जाता जैसे कान के भीतर शब्द पहुँचते ही न हों। भावनाओं का यह संयम और यथावसर अस्त्र की भाँति उनका उपयोग करने की कला उसमें ऐसी परिपूर्णता तक पहुँची है कि आश्चर्य की जगह भय होता है। यह वह मनुष्य है जो एक दृष्टि में हमारे अन्दर के स्वप्नों को, पाखण्डों को देख सकता है और इसीलिए चाहने पर अत्यन्त निर्दयता से उनके टुकड़े टुकड़े कर सकता है। पर मन पर उसका जो अधिकार है वह उसे डिगने नहीं देता और वह सूनी आँखों से ऐसे दृश्यों को देखता है। इस शक्ति के कारण ही हम उसे वायसराय से लेकर एक चपरासी तक सबसे एक ही स्वर में बात करते देखते हैं।

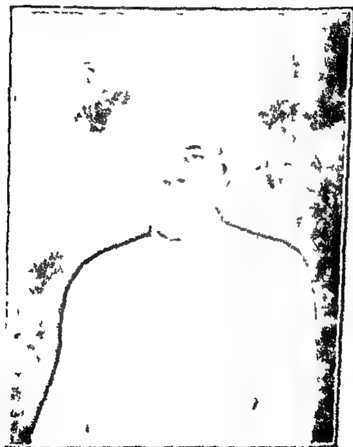
मानवी स्वभाव का गूढ़ ज्ञान

× × ×

असेम्बली के बाद उसने जो कुछ किया हो, वह हमारी आँखों के सामने नहीं है पर इतना हम जानते हैं कि उसके दिल में जो कुछ है वह भावावेश का भूखा नहीं—इसलिए वह कभी मरनेवाला नहीं है। अमे-

* 'that saintly faced Christian, the father of eleven Ordinances ..'

रिका मे, आयर्लैण्ड में, वियना में सर्वत्र उसकी वही गति—वही भीतर भीतर छेद करनेवाली कूटनीति चल रही है और कौन जानता है कि एक दिन जब ऊपर का परदा हट जाय तो उसके दिल की यह आग भारत के सार्वजनिक क्षेत्र में, एकाएक, ज्वालामुखी की भांति धधक पड़े !



वल्लभभाई पटेल

['सरदार']

[१]

जीवन-कथा

वल्लभ भाइ का नाम आज किससे छिपा है ? नागपुर, बारसद, बारडोली उनकी दृढ़ सैनिकता और प्रबंध शक्ति का गान गाते हैं। गुजरात पर उनकी अमिट छाप है। १९२० में राजनीति को स्वच्छ, पवित्र और शक्तिमान बनाने का जो प्रयोग गांधी ने आरंभ किया, और उसके फल-स्वरूप सार्वजनिक जीवन के मथन से जो रत्न निकले उनमें वल्लभभाइ भी एक हैं। १९२१ ई० में जनता को अपना परिचय देते हुए उन्होंने स्वयं कहा था—

परिचय

"मैं छैल-छबीला रसिया था। राजनीति में भाग लेने से ताश खेलना हजार गुना अच्छा समझता था। मुझे इस मक्कारी और मसखरापन के व्यापार से घृणा थी। सहसा इस क्षेत्र में गाँधी जी प्रकट हुए। उन्होंने चमत्कार ही तो किया। मेरी काया पलट गइ।"

और आज १२ वर्ष के बाद हम उन्हें राष्ट्रनायक के रूप में सत्याग्रह सेना का नेतृत्व करते देखते हैं। आज तो जेल ही इस वीर पुरुष का घर बना हुआ है। और आज देश उसे 'सरदार' के नाम पुकारता है।

बालजीवन और शिक्षण

गुजरात में लवा और कदवा नाम की, कुरमी जाति की, दो उपजातियां हैं। जैसा कि इनके नाम से प्रकट है ये अपने को क्रमशः लव और कुश के वंशज बतलाते हैं। वल्लभभाइ लवा उपजाति के हैं। इनकी जन्मभूमि गुजरात के पटलाद तालुका का करमसद गाँव है। वल्लभभाइ के पिता जवेर भाई की आर्थिक

वंश परिचय

स्थिति साधारण थी। उनके यहाँ खेती होती थी और कुछ निजी जमीन भी थी। पर जहाँ उनकी आर्थिक स्थिति साधारण थी, वहाँ वह वीरता और साहस में बहुत बढे चढ़े थे। १८५७ में जब देश में, निराशा की बाँध को तोडकर, हृदय के समस्त क्षोभ को लेकर, विद्रोह का ताण्डव आरंभ हुआ तो जवेर भाई खेतों की हरियाली और कृषक-जीवन की मस्ती को भूलने लगे। कुदाल, फावड़ और हल बेजान से मालूम हुए। फलत ३ साल तक उनका पता न चला। पीछे मालूम हुआ कि भारतीय इतिहास की उस वीरांगना,-झाँसीवाली, महारानी लक्ष्मीबाई के बुंदेलों के साथ शामिल होकर उस विद्रोह में वह भी अपना हिस्सा अदा करते रहे हैं। और इतनी ही बात नहीं। उनकी निर्भीकता और बुद्धि गदर की अगणित कठिनाइयों के बीच भी स्थिर रही और इन्हीं दिनों की एक घटना में वह यों प्रकाशित हुई। जवेर भाई मल्हार राव के कैदी हो गये थे। एक दिन की बात है, कैदखाने के सामने बैठकर महाराज मल्हारराव शतरंज खेल रहे थे। जवेर भाई सीकचों से तमाशा देख रहे थे। जब मल्हारराव गलत चाल चलने लगे तो जवेर भाई ने कैदखाने के सीकचों के बीच से तडपकर कहा—"राजा खोटी चाल मत चल, अपने अमुक अमुक मोहरे को अमुक-अमुक चाल चल।" मल्हारराव कैदी की सलाह से शतरंज में विजयी हुए। ऐसे बुद्धिमान आदमी को जल में रखना उन्हें उचित न मालूम हुआ। जवेर भाई छोड दिये गये। जवेर भाई का जीवन १८५७ के भारत के प्रतिनिधि के रूप में व्यक्त हुआ था। इस वीरता और साहस के साथ उनमें ईश्वर भक्ति और श्रद्धा भी बहुत थी और संयमपूर्ण जीवन के कारण उनका स्वास्थ्य भी बहुत अच्छा था। ९२ वर्ष की आयु में उनका देहान्त हुआ। वल्लभभाई में जो साहस है, खतरे के बीच चमक उठनेवाली जो सैनिक प्रतिभा है, जो असीम कष्ट सहिष्णुता है वह सब उनको पिता से ही विरासत में मिली है।

प्रभु को वल्लभभाई से आगे चलकर जो काम लेना था, उसके चिन्ह बालजीवन की पगडंडियों पर भी हम यत्र-तत्र बिखरे देखते हैं। वल्लभ-

प्रारंभिक शिक्षा

भाई का बचपन माता पिता के साथ गाँव में ही बीता। घर पर पिता की देख रेख में इनकी थोड़ी-बहुत शिक्षा हुई। पिता सुबह खेत पर जाते समय इन्हें साथ ले जाते और रास्ते में पहाड़े याद कराते। घर पर थोड़ी शिक्षा पाने के बाद यह पटलाद आये और यहाँ प्रारंभिक शिक्षा समाप्त की। उसके बाद यह नडियाद पहुँचे। वल्लभभाई और लड़कों की भांति सुस्त और दब्बू न थे। जहाँ गये, अपना जीता जागता जीवन और नटखट स्वभाव साथ ले गये। इनके नटखट और उलझनेवाले स्वभाव को प्रकाशित करनेवाली बचपन की अनेक घटनाएँ आज प्रसिद्ध हो गई हैं।

जब यह नडियाद में पढ़ते थे तब की बात है। जैसा कि आजकल भी बहुत से स्कूलों में होता है, स्कूल के एक मास्टर पाठ्य पुस्तकों

स्कूल में हड़ताल

का व्यापार करते थे। इससे उनको कुछ बच जाता था। वह छात्रों पर दबाव डाला करते कि मुझसे ही पुस्तक खरीदो। वल्लभभाई ने आन्दोलन उठाया कि कोई लड़का उनसे पुस्तक मोल न ले। लड़कों में बड़ी उत्तेजना फैली, यहाँ तक कि हड़ताल हो गई। ५-६ दिन स्कूल बन्द रहा। अन्त में शिक्षक को झुकना पड़ा और तब हड़ताल समाप्त हुई।

नड़ियाद की शिक्षा के बाद वल्लभभाई बड़ौदा पहुँचे। संस्कृत पढ़ने में इनका मन न लगता था, वह इनको दुर्बोध प्रतीत होती थी इसलिए

'पधारो महापुरुष!'

मैट्रिक में इन्होंने गुजराती ली थी। छोटलाल नामके एक शिक्षक गुजराती पढ़ाते थे पर वह संस्कृत के बड़े भक्त थे। संस्कृत न लेनेवाले लड़कों से चिढ़ते थे। वल्लभभाई जब उनकी कक्षा में पहुँचे तो वह व्यंग पूर्वक बोले—'पधारो, महापुरुष!' उस समय उन्हें क्या मालूम था कि जिन शब्दों में उन्होंने व्यंग किया है

वे एक दिन सत्य होंगे। १३-१४ वर्ष के इस नटखट बालक और मास्टर की यों बातचीत हुई।

"कहाँ से पधारे?" मास्टर ने पूछा।

वल्लभभाई ने शान्तिपूर्वक उत्तर दिया—

"करमसद से।"

मास्टर बोले— "संस्कृत छोड़कर गुजराती ले रहे हो! क्या तुम्हें नहीं मालूम कि बिना संस्कृत के गुजराती नहीं शोभती?"

नटखट बालक ने उत्तर दिया—"पर मास्टरजी, यदि हम सब बालक संस्कृत पढ़ते तो फिर आप किसे पढ़ाते?"

उद्धत बालक! क्लास की पिछली बेंच पर दिन भर खड़ा रहने की आज्ञा हुई।

पर इस घटना से ही शिक्षक और विद्यार्थी वल्लभ का मनमोटाव हो गया। मास्टर का क्रोध यहाँ तक न ठहरा! यह वल्लभ को तङ्ग करने लगे। हुक्म देते कि घर से पहाड़े लिखकर लाओ। अंग्रेजी की ऊँची क्लास के विद्यार्थी का यह अपमान था! फिर दिन दिन यह पहाड़ों का बोझ बढ़ाते जा रहे थे। गुजराती में "पहाड़े' शब्द को 'पाड़े' कहते हैं जिसका दूसरा अर्थ गाय भैंस का बच्चा भी होता है। एक दिन मास्टर साहब ने पूछा—'अरे तुम पाड़े करके लाये?"

'पाड़े भड़क गये!'

नटखट वल्लभभाई बोले—"मास्टर साहब, पाड़े लाया तो था परन्तु स्कूल के दरवाजे पर उनमें से दो एक भड़क पड़े और उनके भड़कते ही सारे के सारे भाग गये!"

मास्टर साहब लाल हो गये और इस 'रिमार्क' के साथ कि 'मैंने ऐसा लड़का नहीं देखा', वल्लभभाई को गुस्ताखी की सजा देने के लिए हेड मास्टर के पास भेज दिया। हेड मास्टर के पूछने पर विद्यार्थी वल्लभ ने उत्तर दिया—"क्या करें साहब, यह मुझे तङ्ग करते हैं। मुझसे पहाड़े

'ऐसा लड़का नहीं देखा'

लिखाते हैं। भला, यह भी कोई सजा है? पढ़ने की पुस्तक में कुछ लिखाएँ तो मुझे कुछ लाभ भी हो। इस पहली पुस्तक के एक-दो के पहाड़े से तो किसी को कुछ लाभ हो नहीं सकता।" हेड मास्टर ने वल्लभभाई को बिना कुछ कहे सुने छोड़ दिया। यह हेड मास्टर साहब—श्री नरवण—अभी जीवित हैं और आज भी उनका यही मत है कि—

"मैंने ऐसा लड़का नहीं देखा।"

इस घटना के दो-एक महीने बाद फिर इनका एक शिक्षक से झगड़ा हो गया और उसने इतना तूल पकड़ा कि यह बड़ौदा हाई स्कूल से निकाल दिये गये। तब यह नड़ियाद लौट आये और वहीं से मैट्रिक की परीक्षा पास की।

जीवन में प्रवेश

मुख्तारी

ऊपर यह बात लिखी जा चुकी है कि वल्लभभाई के माता पिता की आर्थिक अवस्था अच्छी न थी। अब तक तो वल्लभभाई की शिक्षा किसी तरह चली पर कालेज की शिक्षा का भार वे न उठा सकते थे। उधर वल्लभभाई में भी ऊँची साहित्यिक शिक्षा प्राप्त करने की विशेष उत्कण्ठा न थी। असल में उनका हृदय बैरिस्टर बनने के लिए लालायित था। पर यह एकाएक तो हो नहीं सकता था इसलिए उन्होंने मुख्तारी की परीक्षा पास करली और गोधरा में मुख्तारी करने लगे। कुछ दिनों बाद बोरसद चले गये और वहाँ प्रैक्टिस शुरू की। इनकी प्रैक्टिस खूब चली। ज्यादतर यह फौजदारी के मामले ही लेते थे। इस सिलसिले में इन्हें मानव स्वभाव की विचित्रता का खूब ज्ञान हुआ। वे मुकद्मों में बड़ा परिश्रम करते और बड़ी सूझ एवं लगन के साथ उन्हें लड़ते थे। बाल की खाल निकालने और जिरह करने में पटु थे। फलतः बहुत जल्द प्रसिद्ध हो गये। इनकी दलीलों से अदालतों के हाकिम दंग रह जाते थे। छोटे-मोटे अधिकारियों एवं पुलिस अफसरों पर वल्लभभाई का बड़ा आतंक था। इस्वेण्ड नामक एक

अंग्रेज मजिस्ट्रेट छिछोरी प्रकृति का था। बात-बात में तू तडाक और अब तवे पर आ जाता था। कत्ल के एक मामले में वल्लभभाई ने उसे बडा तग किया। वह बात याद करके आज भी वह अपनी हँसी नहीं रोक सकते।

जब यह गोधरा में थे तब एक बार वहाँ भयकर प्लेग फैला। अदालत के नाजिर का लडका बीमार हुआ। वल्लभभाई ने उसकी बडी सेवा शुश्रूषा की पर वह बच न सका, चल बसा। श्मशान से लौटते समय वल्लभभाई को अपनी तबियत जरा भारी मालूम पडी। घर आकर बीमार पडे, गिल्टी निकल आई। बीमारी की दशा मे ही गाड़ी में बैठ आनन्द पहुँच और वहाँ पत्नी से कहा—"तुम करमसद जाओ, मैं नडियाद जाता हूँ, अच्छा हो जाऊँगा।" बेचारी पत्नी ऐसे समय उनके साथ रहना चाहती थी पर दबाव डालकर उसे भेज ही दिया। असल में होनी कुछ और थी। वल्लभभाई तो नडियाद पहुँचकर अच्छे हो गये पर उधर करमसद में पत्नी बीमार पड गई। 'आप्रेशन' के लिए वल्लभभाई उसे बम्बई पहुँचा आये। उसका समाचार पत्र से, प्राय रोज ही, उन्हें मिलता रहता था। पर पत्नी की तबियत फिर न सुधरी और एक दिन जब वल्लभभाई अदालत में एक मुकदमा लड रहे थे उन्हें पत्नी के देहान्त का समाचार तार से मिला। तार को पढकर उन्होंने मेज पर रख दिया। मुकदमे का सारा काम समाप्त कर जब बाहर आये तब मित्रों से तार की चर्चा की। ऐसे समाचार से भी वह विचलित न हुए और बराबर अपना काम करते रहे। धीरज का, कठिन से कठिन समय में भी न घबडाने का, गुण उनमें बहुत प्रारंभिक अवस्था से पाया जाता है।

पत्नी वियोग

× × ×

अब इनके पास कुछ पूँजी एकत्र हो गई थी और विलायत जाकर अपनी बैरिस्टर बनने की इच्छा की पूर्ति कर सकते थे। इसलिए इन्होंने

एक कम्पनी से यात्रा के सम्बन्ध मे पत्र-व्यवहार शुरू किया। कहीं एक पत्र इनके बड़े भाई—विट्ठलभाई—के हाथ लगा। अंग्रेजी म दोनों के नाम वी० ज० पटल होने के कारण यह गड़बड़ी हुई। बड़े भाइ ने इन्ह समझाया कि 'मैं तुमसे बड़ा हूँ, पहले मुझे इंग्लैण्ड जाने दो। मेरे वापस आने पर तुम चले जाना।' इन्होंने स्वीकार कर लिया और इस बातचीत के १५ दिन बाद ही विट्ठलभाई इंग्लैण्ड चले गये। जब तीन वर्ष बाद वह बैरिस्टरी की परीक्षा पास करके लौट तब यह इंग्लैण्ड गये। इंग्लैण्ड म रहते समय उनका वह नट खट स्वभाव न जाने कहाँ हवा हो गया! वह एक परिश्रमी विद्यार्थी के रूप में दिखाई पड़े। अध्ययन का यह हाल था कि जहाँ वह रहते थे वहाँ से मिडिल टम्पल का पुस्तकालय ११ मील दूर था। वल्लभभाइ तड़के उठते और नित्य क्रिया से निवृत्त होकर पुस्तकालय पहुँच जाते। फिर पढ़ने लगे तो पढ़ते ही रहे। दूध रोटी मँगाकर वहा खा लेते और फिर पढ़ने लगते। कभी कभी तो जब शाम को पुस्तकालय बन्द हो जाता, सब लोग चले जाते और कर्मचारी आकर इनको पुस्तकालय बन्द होने की सूचना करते तब यह उठते और घर आते। इन दिना इन्होंने सत्रह-सत्रह घण्टे दैनिक अध्ययन किया था और फल भी वैसा ही हुआ। यह बैरिस्टरी की परीक्षा में प्रथम श्रेणी म प्रथम उत्तीर्ण हुए। इतने अच्छे परीक्षा फल के कारण ५० पौण्ड की एक छात्रवृत्ति मिली और चार टर्म की फीस माफ हो गई। परीक्षा मे लिखे इनके उत्तरों को पढ़कर इनकी प्रतिभा पर परीक्षकों को आश्चर्य हुआ। उनम से एक ने भारत प्रवासी चीफ जस्टिस स्काट के नाम वल्लभभाइ को एक सिफारशी पत्र भी दिया कि ऐसे आदमी को न्याय विभाग म ऊँची जगह दी जानी चाहिए।

बैरिस्टर

जबतक वल्लभभाई इंग्लैण्ड में रहे अत्यन्त सीधे-सादे ढग से रहे। वहाँ के कोई प्रलोभन इनको आकर्षित न कर सके। नाटक सिनेमा, सैर-सपाटे में कभी वह शामिल न हुए। यहाँ तक कि परीक्षा फल निकलते

ही सीधे हिन्दुस्तान को रवाना हो गये। भारत पहुँचे और अहमदाबाद म बैरिस्टरी करने लगे। थोडे ही समय में इनकी बैरिस्टरी खूब चमकी और इनकी धाक सी जम गई। रुपया खूब कमाया। पर इस समय और इसके पहले इनका जीवन आराम से जिंदगी बितानेवाले नव शिक्षित आधुनिक भारतीय का जीवन था। श्रद्धा विश्वास हवा हो चुके थे। एक-बार गुजरात कुल म, उन्होंने स्वय ही कहा था—" मैं दुर्गा-पूजा के दिन सैल-सपाटों और आनन्द विनोदों में गुजारता था। उन दिनों मैं मानता था कि इस अभागे देश के निवासियों के लिए यही आवश्यक है कि वे विदेशियों का अनुकरण करें। मैं जो-कुछ शालाओं में पढ़ता था उनसे मेरा मन उन दिनों एक ही निष्कर्ष निकाल सका था और वह यह कि 'हमारे देशवासी हलके और नासमझ हैं, और हम पर राज्य करनेवाले विदेशी हमारे हित-चिंतक, उद्धार-कर्ता और उच्च जीवन के लोग ह। हमारे देशवासी तो केवल गुलाम ही रहने योग्य हैं। इस तालीम का जहर आज सारे देश को पिलाया जा रहा है।"

इस समय तक इनके बडे भाइ विट्ठलभाइ की बैरिस्टरी बम्बई म जोरों से चलने लगी थी पर बम्बई के जन सेवोपयोगी वातावरण के कारण वह लोक सेवा के क्षेत्र की ओर आकर्षित हुए। उनका बहुत सा समय सार्वजनिक एव लोकोपयोगी कार्यों म जाता था। दोनो भाइयों ने मिलकर

लोक सेवा के क्षेत्र में प्रवेश

निश्चय किया कि देश सेवा के लिए आत्म-त्यागी सन्यासियों की आवश्यकता है अत दो म से एक आदमी देश सेवा करे और दूसरा कुटुम्ब का पालन। विट्ठलभाइ ने लोक सेवा का पथ चुना और वल्लभभाई ने कुटुम्ब की जिम्मेदारी अपने सर पर उठा ली। उनका मन राजनीति में न लगता था और अधिकाश लोगों की तरह वह उसे घृणा और उपेक्षा की निगाह से देखते थे। जब महात्माजी दक्षिण अफ्रीका की लड़ाई समाप्त कर अहमदाबाद आये तब वल्लभभाई की बैरिस्टरी अच्छी चल रही थी। पर

वल्लभभाई के जीवन की गति अपने आप में मस्त रहनेवाली और कुछ ऐसी थी कि आरम्भ में गांधीजी इनको आकर्षित न कर सके बल्कि गांधीजी के सिद्धान्त इनको अव्यावहारिक से लगे। इन्होंने अपने मित्रों से एक बार कहा भी था—"गांधी क्यों इन लोगों के सामने ब्रह्मचर्य की बातें करते हैं ? यह तो भैंस के सामने भागवत सुनाने की सी बात है !"

पर ज्यों-ज्यों गांधीजी गुजरात के राजनीतिक जीवन में भाग लेने लगे त्यों-त्यों वल्लभभाई का ध्यान उनकी ओर खिंचने लगा। कुछ विश्वास हुआ कि अब प्रांत में ठोस काम होगा। इसी समय गोधरा में प्रांतीय राजनीतिक सम्मेलन हुआ। गांधीजी सभापति थे। इसमें एक रचनात्मक कार्यक्रम बनाया गया और उसकी पूर्ति के लिए एक कमिटी बनी। वल्लभभाई उसके मंत्री हुए। किसी काम का भार लेकर शान्ति से बैठनेवाले आदमियों में वह न थे। उन्होंने बड़े उत्साह से कार्य आरम्भ किया। उस समय बेगार की प्रथा जोरों पर थी। पहले उसे ही बन्द करने का निश्चय हुआ। उधर गांधीजी चम्पारन चले गये अतः जिम्मेदारी वल्लभभाई पर आ पड़ी। उन्होंने कमिश्नर को पत्र लिखा और उसका उत्तर न आने पर ७ दिन की नोटिस दी कि उत्तर न मिला तो हाईकोर्ट के फैसले के आधार पर बेगार को गैर कानूनी ठहराने और लोगों को प्रांत भर में बेगार बन्द कर देने की सूचना दे दी जायगी। छठे दिन कमिश्नर ने वल्लभभाई को बुलाया और उनके मनोनुकूल काम कर दिया।

बेगार प्रथा

उधर गांधीजी चम्पारन से लौटे और उनपर खेड़ा सत्याग्रह का बोझ आ पड़ा। गांधीजी ने पूछा—'मेरे साथ खेड़ा चलने को कौन तैयार है ?' उत्तर में पहला नाम वल्लभभाई का आया। उस दिन से वह रण-क्षेत्र में कूदे सो कूदे। उनका जीवन बदल गया। खेड़ा-सत्याग्रह के सम्बन्ध में गाँव गाँव घूमे और किसानों तक सत्याग्रह का संदेश पहुँचाया। किसान उठ खड़े हुए, सत्याग्रह

खेड़ा सत्याग्रह में

सफल हुआ।

जलियांवाला म विदेशी शासन की जो विभीपिका दिखाइ पडी उसने राष्ट्र की सतप्त आत्मा को कोडे मारकर जगा दिया। देश में तूफान उठा। गाधीजी देश के व्यापक क्षेत्र म अवतीर्ण हुए। कलकत्ता और फिर नागपुर की कांग्रेसों में असहयोग का कार्यक्रम पास हुआ। उसके अनुसार वल्लभभाई ने बेरिस्टरी छोड दी। सन्तान को उच्च शिक्षा के लिए कहाँ विलायत भेजने वाले थे पर असहयोग के सन्देश ने दिल में ऐसा घर किया कि यहाँ के सरकारी स्कूल से भी उन्हे हटा लिया। गुजरात मे घूम घूमकर असहयोग का प्रचार करने लगे। सरकार दमन पर तुल गई। पर इम दमन के साथ साथ जनता म और उत्साह पैदा होता गया। सत्याग्रह के लिए गुजरात म गाधीजी और वल्लभभाइ ने जोरों की पर ठोस तैयारी की। बारडोली और आनद तालुके की तैयारी अपूर्व थी। बारडोली का नाम सारे भारत में प्रसिद्ध हो गया था पर चौरीचौरा हत्याकाण्ड के कारण सत्याग्रह स्थगित करना पड़ा। गाधीजी गिरफ्तार कर लिये गये। उसके बाद तो गुजरात का सारा भार वल्लभभाइ पर ही पड गया। गुजरात के सर्व नेता के रूप म वह देश के सामने आये। इन्हीं दिनों गुजरात विद्यापीठ के लिए बमा तक यात्रा करके दस लाख रुपये एकत्र किये।

असहयोग आदोलन

जब नागपुर म झण्डा-सत्याग्रह आरम्भ हुआ तो वल्लभभाइ गुजरात से स्वय सेवक भेजने लगे। जमनालालजी की गिरफ्तारी के बाद कांग्रेस ने वल्लभभाइ क ऊपर इस सत्याग्रह की जिम्मेदारी सौंप दी। वल्लभभाइ ने सत्याग्रह का बड़ा अच्छा सगठन किया। सरकार को झुकना पड़ा। गवर्नर ने उन्हें बुलाया, उनसे बातचीत की। १० १५ दिन के अन्दर ही जनता की सारी मागें स्वीकृत हो गईं और सारे कैदी छोड दिये गये।

नागपुर सत्याग्रह

इसी प्रकार बोरसद-सत्याग्रह में भी वल्लभभाई की विजय हुई। सरकार ने बोरसद की प्रजा पर अराजक और जरायम पेशा लोगों को आश्रय देने का इल्जाम लगाकर अतिरिक्त पुलिस की नियुक्ति की और उसके स्वार्थ के लिए दो लाख चालीस हजार का दण्ड जनता के सिर मढ़ा। आरोप बिल्कुल झूठा था। वल्लभभाई ने उसे सत्य सिद्ध करने के लिए सरकार को चुनौती दी और एक महीने तक लगातार घूम घूमकर लोगों से यह दण्ड न देने को कहते रहे। अन्त में सरकार ने होम मेम्बर को जाच के लिए भेजा और दण्ड माफ कर दिया।

बोरसद सत्याग्रह

जब महात्माजी जेल से छूटकर आये तो वल्लभभाई का बोझ कुछ हल्का हुआ। इस समय वह अहमदाबाद म्युनिसपलिटी के अध्यक्ष चुने गये और ५ वर्ष तक उन्होंने इस पद पर रहकर नगर की बड़ी सेवा की। इसी प्रकार गुजरात के जल प्रलय में उन्होंने बाढ़ पीड़ितों की सेवा सहायता का इतना अच्छा प्रबंध किया कि सरकार को भी उनकी प्रशंसा करनी पड़ी।

नगर सेवा और अन्य कार्य

पर जिस कार्य ने वल्लभभाइ को सर्वभारतीय रूप दे दिया वह तो बारडोली-सत्याग्रह था। १९२७ ई० की बात है। बंदोबस्त के हाकिम मि० जयकर ने तजवीज कर दी कि लगान म ३० प्रतिशत वृद्धि की जाय। इससे बेचारे गरीब कृषकों में बड़ा असंतोष फैला। इसपर सेटिलमेण्ट कमिश्नर मि० एण्डर्सन ने जयकर रिपोर्ट की जाँच की और उक्त अफसर की भर्त्सना करते हुए अद्भुत 'उदारता' दिखाकर बढ़ती २९ फीसदी कर दी। सरकार जरा और आगे बढ़ी और उसने अपनी उदारता एवं प्रजा पालकता दिखाते हुए घोषणा की कि केवल २२ प्रतिशत बढ़ती की जायगी। किसानों ने बड़ा विरोध किया, अर्जियाँ दीं कि जितनी मालगुजारी है, उतनी ही देने

बारडोली सत्याग्रह

म हमारी कमर टूटी जा रही है, बढ़ी हुई मालगुजारी देने म हम सर्वथा असमर्थ हैं। पर सरकार कब सुनने लगी। उधर कौंसिल के सदस्यों ने तथा आवेदन निवेदन म विश्वास रखनेवाले कुछ और लोगों ने भी प्रयत्न किया पर कुछ न हुआ तब ६ सितम्बर १९२७ को तालुका के किसानों की सभा हुई जिसम निश्चय हुआ कि बढ़ा हुआ लगान न दिया जाय। लोग वल्लभभाई क पास पहुँचे। उन्होंने साफ कह दिया कि 'सिर्फ बढ़ा हुआ लगान रोकने से काम नहीं चल सकता। इसे सत्याग्रह नहीं कह सकते। पहले अपने दिलों को तोल लो और जमीन-जायदाद सबका मोह छोड़सको तो सत्याग्रह म पड़ो।' उन्होंने अपने विश्वस्त साथियों द्वारा किसानों की तैयारी की जाँच कराई और तब ४ फरवरी १९२८ को सारे तालुका के किसान प्रतिनिधियों की सभा हुई। इस सभा में ७९ गाँवों के प्रतिनिधि उपस्थित थे। वल्लभभाई ने उनसे बार-बार पूछकर जान लिया कि किसान अपनी बात पर दृढ़ हैं। फिर भी उन्होंने कहा कि 'खूब सोच समझ लो। सरकार तुम्हें बर्बाद करने और मिट्टी म मिला देने के लिए सारी शक्ति लगा देगी। एक ओर तुम्हारी स्त्रियाँ दाने दाने को तड़पेंगी और दूसरी ओर तुम्हारे दुधमुँहे बच्चे एक-एक बूँद दूध के बिना भूखों मरेंगे। धन-माल की जब्ती होगी। यह सब देख सको, कर सको तो इधर कदम रखना अन्यथा चुप बैठ रहना।' इसके बाद भी लोगों को उन्होंने सोचने विचारने को ८ दिन का समय दिया।

इधर वल्लभभाई ने अहमदाबाद आकर ६ फरवरी (१९२८) को बम्बई के गवर्नर सर लेस्ली विल्सन को बारडोली की स्थिति पर पत्र लिखा और सब बातें समझाकर विनय की कि 'सरकार नये बंदोबस्त के अनुसार लगान वसूल करना [illegible] और एक बार अच्छी तरह जाँच कर ले।' [illegible] कुछ भी ध्यान न दिया। उधर सरक [illegible] पिटवा दी गई।

लगान अदा करने के लिए १२ फरवरी का दिन निश्चित किया गया पर उस दिन तहसील में एक कानी कौडी भी न पहुँची। स्वयसेवक घूम घूमकर सत्याग्रह के प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर कराने लगे। ८ दिनों मे तो बारडोली का नक्शा ही बदल गया। न जाने कहाँ का उत्साह आकर इस भूमि में फट पडा। निश्चय के अनुसार, ८ दिन बाद, १२ फरवरी को तालुके के किसानों की विराट् सभा हुई। इस सभा म सत्याग्रह का निश्चय हुआ। जबतक सरकार लगान वृद्धि के मामले की जाँच करने या पहले के लगान को ही जारी रखने का निश्चय न करे तबतक उसे एक पैसा न दिया जाय, यह बात तै पाई। सभा के बाद महादेव भाई ने यह भजन गाया—

'शूर सग्राम का देख भागे नहीं,
देख भागे सोई शूर नाहीं।'

सबसे पहली काम सरदार ने यह किया कि तालुके में दौरा करके लोगों को सत्याग्रह का मर्म बताया और उत्साह भर दिया। इसके बाद सारे तालुके का अद्भुत सगठन किया। प्रत्येक गाँव में सैनिका का एक दल बन गया। पहले बारडोली में चार आश्रम थे। अब सरदार ने आठ नई छावनियाँ और खोल दी। सारे तालुके को पाच मुख्य भागों में विभाजित किया। प्रत्येक भाग एक मुखिया के अधीन किया गया। ये मुखिया ऐसे थे जो गाँवों में जाकर वर्षों से काम कर रहे थे और उनके ऊपर लोगों की बडी श्रद्धा थी। सबके सेनापति सरदार वल्लभभाई थे। बारडोली सत्याग्रह-युद्ध का केन्द्र था। यहाँ एक प्रकाशन विभाग और सत्याग्रह कार्यालय खोला गया। यहाँ से 'सत्याग्रह-समाचार' नामक दैनिक पत्र प्रकाशित होता था। सर्वत्र सामाचार और आज्ञाएँ पहुँचाने का बडा अच्छा प्रबध किया गया था। कई लोगों ने अपनी मोटरें इस काम के लिए दे दी थीं। २४

मोर्चाबदी

घण्टे के अन्दर किसी भी प्रश्न और नूतन परिस्थिति पर सरदार की आज्ञा प्रत्येक विभागपति के पास पहुँच जाती थी। सरदार का अनुशासन बडा कडा था। आज्ञा म तर्क वितर्क करने की गुजाइश न थी। सैनिक नियमों का पालन करना पडता था। सगठन और अनुशासन इतना अच्छा था कि सारे तालुके मे सरदार की आज्ञा बिना कुछ न हो सकता था। यहाँ तक कि सरकारी अफसरों को आवश्यक वस्तुओं के लिए कई बार सत्याग्रह छावनी की शरण लेनी पडती थी। इन्हीं बातों को देखकर गोरे पत्र 'टाइम्स ऑव् इण्डिया' के सम्वाददाता को लिखना पडा कि बारडोली से अग्रेजी राज उठ चुका है।'

इस सत्याग्रह-युद्ध ने बहनों की काया पलट कर दी। वे भी मैदान म निकल आई। बम्बई की मीठू बहन पेटिट, श्रीमती सूरज बहन मेहता इत्यादि ने घूम घूमकर इनमें वह जागृति की कि बारडोली की देवियाँ एक शक्ति बनकर उठ खडी हुई। उधर सरकार दमन पर तुल गई। जब्तियों, गिरफ्तारियो की धूम मच गई। हजारों की जमीन कौडियों म नीलाम की जाने लगी। जानवरों की भी यही दशा हुई। सरकार के भेजे हुए पठानों ने गुण्डई पर कमर कस ली। उनके नादिरशाही अत्याचारो से पृथ्वी थर्रा उठी। स्त्रियों के साथ भी बुरा व्यवहार करने से वे न चूके। पर किसान स्त्री पुरुषों ने अद्भुत धैर्य और शान्ति से सब कुछ सहन किया। जो नेता बारडोली देखने आते सरदार के अद्भुत सगठन और लोगों के त्याग को देख दग रह जाते।

दमन

जब सरकार ने देखा कि दबाकर लगान वसूल करना असभव है तो कुछ ढीली हुई। उधर कौंसिल के कई सदस्य समझौता कराने की चेष्टा करने लगे। देश म सरकार की दमन-नीति का घोर विरोध हुआ। बम्बई प्रान्तीय कौंसिल से, सरकारी दमन के विरोध म, १६ सदस्यों ने इस्तीफा दे दिया। वे अपनी जगहों से बारडोली के प्रश्न को एकर फिर खडे हुए

और चुन लिये गये। २७ जून १९२८ को जमनालाल जी बजाज के साथ भारत सेवक समिति के श्री कुँजरू, श्री वजे तथा श्री ठक्कर बारडोली का निरीक्षण करने आये। वे सारे तालुके में घूमे, किसानों से मिलकर उनकी स्थिति का भली भाँति अध्ययन किया और रिपोर्ट प्रकाशित की जिसमें सरकारी नीति की निन्दा की और तुरन्त जाँच करने करने की आवश्यकता बताई। इस रिपोर्ट से नरमदल वालों के भी कान खड़े हुए। श्री० चिन्तामणि, डा० सप्रू आदि भी सरकार की निंदा करने लगे। इस समय सारे भारत का ध्यान बारडोली पर लगा था। देश विदेश से सहायतार्थ रुपये आ रहे थे। जरूरत पड़ते ही प्रत्येक प्रान्त से स्वय सेवक आने को तैयार थे। सर्वश्री केल्कर, जमनादास मेहता और येल्वी ने विज्ञप्ति निकाल कर भारत सरकार से इस प्रश्न को निपटाने की प्रार्थना की। वायसराय ने गवर्नर को पहले ही शिमला बुलाया था। इसके बाद गवर्नर ने मिलने के लिए वल्लभभाइ को बुलाया। वल्लभभाई, तीन अन्य मित्रों के साथ, सूरत में गवर्नर से मिले। खूब खुलकर बातें हुईं। गवर्नर चाहते थे कि जनता पहले लगान अदा कर दे, फिर सब कुछ हो जायगा। यह इज्जत का सवाल बन गया था। फलतः समझौता न हो सका। पर कौंसिल के कई सदस्य समझौता कराने के उद्योग में लगे रहे। इसी बीच एक सदस्य श्री रामचन्द्र भट्ट ने जाच तक लगान की बढ़ी हुई रकम जमा कर देने की इच्छा प्रकट की। गवर्नर ने उसे स्वीकार कर लिया। फलतः बड़ी दौड़धूप के बाद ६ अगस्त १९२८ को समझौता हो गया। सरकार ने नये बंदोबस्त की फिर से जाच करने की घोषणा की और घोषणा में यह भी कहा कि 'सरकार जब्त की हुई जमीनें लौटा देगी, कैदियों को छोड़ देगी और पटवारियों एव चौकीदारों को पुरानी जगहों पर बहाल कर देगी।' इस प्रकार सत्याग्रह की विजय हुई। ११ अगस्त को समस्त तालुके में विजयोत्सव मनाया गया।

इस विजय के बाद भी वल्लभभाई रचनात्मक कार्यों में लगे ही रहे। उनके नेतृत्व में गुजरात ने अपने अन्दर की शक्ति का अनुभव किया।

गिरफ्तारी

उधर १९२९ के ३१ दिसम्बर को लाहौर-कांग्रेस में पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रस्ताव पास हुआ। १९३० का मार्च का महीना आया। गांधीजी दांडी यात्रा की तैयारियाँ कर रहे थे और वल्लभ भाई गुजरात की किसान शक्ति को जगा रहे थे। ७ मार्च को वल्लभ भाई रास पहुँचे, वहाँ सभा और भाषण की योजना की गई थी। पर वहाँ पहुँचते ही उन्हें जिला मजिस्ट्रेट का आर्डर मिला जिसमें भाषण देने की मनाही की गई थी। वल्लभभाई इसे कैसे मान सकते थे। गिरफ्तार किये गये। ३ महीने कैद और ५००) रु० जुर्माना (जुर्माना न देने पर ३ सप्ताह की कैद और) की सजा हुई।

जेल में वल्लभभाई को बड़ा कष्ट सहना पड़ा। १५ पौण्ड वजन घट गया। २६ जून को वह छोड़े गये। इस समय तक सत्याग्रह की ज्वाला

रिहाई और फिर गिरफ्तारी

देश भर में फैल गई थी। मोतीलाल जी ने गिरफ्तार होते समय वल्लभभाई को स्थानापन्न राष्ट्रपति बनाया। इनके समय में धरासणा और वडाला के मोर्चों पर सत्याग्रही स्वयंसेवकों ने जिस वीरता और साहस का प्रदर्शन किया, वह अद्भुत था। सैकड़ों स्वयंसेवकों और देवियों ने लाठी-वर्षा के बीच अप्रतिम शान्ति का परिचय दिया। १ अगस्त को, लोकमान्य की बर्षी के दिन, बम्बई में जुलूस निकला। वल्लभभाई, मालवीय जी, शेरवानी, डा० हार्डिकर इत्यादि भी साथ थे। विक्टोरिया टर्मिनस के सामने जुलूस गैर कानूनी कहकर रोक दिया गया। शाम को ४ बजे से दूसरे दिन ८ बजे तक जुलूस सड़क पर डटा रहा। दूसरे दिन सुबह बहनों एवं सरदार वल्लभभाई इत्यादि को पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया और बाद में लोगों पर भयंकर लाठी-वर्षा हुई जिसमें सैकड़ों बुरी तरह घायल हुए। वल्लभभाई तथा अन्य नेताओं को ३-३ महीने कैद की सजा हुई।

मालवीय जी को १००) जुर्माना अथवा जुर्माना न देने पर १५ दिन कैद की सजा हुई। किन्तु किसी अज्ञात आदमी द्वारा, मालवीय जी की इच्छा के विरुद्ध, जुर्माना जमा कर देने पर वह छोड़ दिये गये।

× × ×

सरकार से—गाँधी-इर्विन—समझौता हुआ। सब कैदी छोड़े गये। आर्डिनेंस उठा लिये गये। करांची में धूमधाम से कांग्रेस हुई। वल्लभभाई ही उसके अध्यक्ष चुने गये। गाँधी जी गोलमेज—कान्फ्रेंस में गये पर वहाँ कुछ परिणाम न निकला।

राष्ट्रपति

इधर देश की परिस्थिति कठिन होती गई। बंगाल, सीमाप्रान्त और युक्त प्रान्त के लिए सरकार ने आर्डिनेंस जारी कर दिये। गाँधी-इर्विन समझौते का बार-बार भंग किया गया। जब गाँधी जी लौटकर आये तो कांग्रेस कार्य-समिति की बैठक बम्बई में हुई। जवाहरलाल जी कार्य-समिति की बैठक में शरीक होने के लिए जाते समय गिरफ्तार कर लिये गये। फिर भी गाँधी जी ने शान्तिपूर्वक वायसराय से बात चीत करने की आज्ञा माँगी पर उनका अनुरोध बुरी तरह ठुकरा दिया गया। फलतः ५ जनवरी १९३२ से फिर सत्याग्रह का आरंभ हुआ। सरकार ने इस बार अकस्मात् कांग्रेस-संगठन पर आक्रमण किया पर युद्ध चलता ही रहा। वल्लभभाई भी बम्बई रेगुलेशन में गिरफ्तार कर लिये गये और अभी तक जेल में ही हैं।

[२]

जीवन की समीक्षा

शूर संग्राम को देख भागे नहीं,
देख भागे सोई शूर नाहीं ।

—कबीर

सबसे पहली बात, जो वल्लभभाई के जीवन में शुरू से अन्त तक एक स्वर्ण रेखा की तरह चली गई है, उनकी सच्ची वीरता है। उनके जीवन पर निर्भयता की छाप है। वल्लभभाई ने महात्माजी को अपनाया जरूर पर वह उनकी भाँति साधक नहीं, शिक्षक नहीं, वह एक योद्धा हैं। इसी रूप में वह खिलते हैं। आदर्श सत्याग्रही की भाँति वह अपने को मिट्टी में—शून्य में नहीं मिला सकते। उनमें सत्याग्रही की अजातशत्रुता नहीं है, उनमें वीरोचित क्षमा है। युद्ध उनका स्वभाव है। युद्ध को देखकर उनमें अद्‌भुत भावावेश उमड़ता है और मध्ययुगीन वीर राजपूत की नाईं सामने के युद्ध में उनका जीवन हँस उठता है। वल्लभभाई को तब देखो जब कोई युद्ध चल रहा हो।—छाती में आँधी का साहस है, भुजाएँ फड़कती हुईं, दिल उमंगों के सुरूर पर चढ़ा हुआ वाणी आग उगलने वाली। युद्ध में वह जीते से मालूम पड़ते हैं। युद्ध के बाद के वल्लभभाई को युद्ध के समय के वल्लभभाई से मिला लो, उनका रहस्य निकल आयेगा। पहला दूसरे के सामने मुर्दा है।

योद्धा

यह आदमी, अपने जीवन की प्रत्येक साँस के साथ, खतरे को प्यार करता है। जोखम का काम हो, फिर देखो उसे। उसका दिल जूझने के लिए बल्लियों उछलता है। वह आग से खेलना चाहता है। बारडोली की लड़ाई की भूमिका जब बँध रही थी तब उसने किसानों की सभा में कहा था—" मेरे

खतरे से प्रेम

साथ कोई खिलवाड नहीं कर सकता। मैं किसी ऐसे काम मे नहीं पडता जिसमें कोई खतरा या जोखम न हो। जो लोग आपत्तियों को निमन्त्रण दें, उनकी सहायता के लिए मैं सदा तैयार हूँ।"

—और ऐसा भी नहीं कि यह वृत्ति असहयोग काल में एकाएक उत्पन्न हो गई हो। नहीं, यह उसमें शुरू से है। कठिनाइयाँ उसे झुका नहीं सकतीं, भय उसे डरा नहीं सकता। अब तो अब पर जब वह बालक था तब भी वही निर्भीकता थी। उसी बालपन की घटना है। उसकी काँख में फोड़ा हुआ। गाँव में रहने वालों की दवा। एक गवार वैद्य ने दवा बताई—लोहा गरम करके फोडे म भोंक दो। बालक वल्लभभाई झट तैयार। लोहा गरम हुआ। भोंकनेवाले ने उसे हाथ मे लिया। पर उसका दिल, इस कोमल बालक को देखकर, काँप गया। वह हिचकिचाने लगा। इधर बालक हुँमला उठा—"क्या देख रहा है, भाई! लोहा ठण्डा हो रहा है। ला, तुझसे नहा बनता तो मैं भोंक लूँ।" आसपास दंग रह गये।

'लोहा ठण्डा हो रहा है।'

इस वीर पुरुष के दिल म वह लोहा कभी ठण्डा न हुआ। जब वह उस लोहे को ठण्डा होता देखता है तो तडप उठता है। जबतक वह गरम है, जबतक वातावरण म आँधी है, तूफान है, खतरा है, जबतक ज्वाला धू धू करके आकाश में उठती जाती है तबतक उसका स्वर्ग है। आँधी रुकी, ज्वाला बुझी और और दिल उछालने वाली चीज सुस्त पडी। खतरे के समय, ज्वालामुखी की तरह, उसके मुख से आग ही आग निकलती है।

लोहा सदा गम है

सच बात तो यह है कि वल्लभभाई का विवेक गांधीजी को भले ही चूमता हो पर उनकी 'स्पिरिट', उनकी प्रेरणा, उनकी प्रकृति लोकमान्य से ज्यादा मिलती है। निश्चय ही लोकमान्य के'शठ प्रति शाठ्य'—'जैसे को तैसा'—को वल्लभभाई ने, गांधीजी के प्रभाव में, कोमल कर दिया है पर

गांधी भी, लोकमान्य भी।

अब भी चीज, बहुत करके, वही है। उसपर मिश्री की डली पड गई है। गांधीजी के 'शठ प्रति सत्य'—कांटे के बदले फूल—को वह अपनाना चाहते हैं—जहाँ तक शरीर का सवाल है, अपना ही लिया है,—उसे श्रेष्ठतर भी समझते हैं पर उनका जीवन जिन चीजों से गढ़ा गया है उनमें यह 'फिट' नहीं होता, मिलकर बिलकुल ही एक नहीं हो जाता—अलग ही अलग रहता है। वह उसे अपनाते हैं पर, गांधीजी की भाँति, इस साधना में उनकी आत्मा परिपूर्ण होकर खिल नहीं उठती। वह परिस्थिति एवं बुद्धि विवेक में गाधीत्व की तरफ झुके हुए हैं पर प्रकृति, स्वभाव और प्रवृत्ति से 'लोकमान्यत्व' की तरफ। और सब मिलाकर जैसे हैं, उसमें न लोकमान्य हैं, न गांधी, इन दोनों के सम्मिश्रण हैं। दोनों की कुछ बातें हैं, कुछ नहीं हैं।

क्षण भर दोनों—लोकमान्य और गांधी—की कसौटी पर कसकर देखें। लोकमान्य की अगाध विद्वत्ता वल्लभभाई में नहीं, लोकमान्य के गंभीर शास्त्र ज्ञान से वह दूर हैं। लोकमान्य की राजनीतिज्ञ की व्यवहार-बुद्धि उनमें नहीं है। दूसरी ओर उनमें वह अथक परिश्रम, वह दृढ़ लगन हम देखते हैं जो लोकमान्य के जीवन की विशेषता थी। लोकमान्य की भाँति ही वल्लभभाई जन सेवा में आत्म विस्मृत होकर चलते हैं। लोकमान्य के सदृश ही वह अपने महत्व का स्मरण नहीं रखते और अपने विषय में बहुत कम लिखते या बोलते हैं। इतना ही क्यों, लोकमान्य की भाँति ही ऊपर से रूखे, निष्ठुर और अभिमानी-सा लगते हुए भी भीतर से सरल, कोमल और निरभिमान हैं।

लोकमान्यत्व

इतनी समानताओं के बीच कुछ निष्कर्ष निकालने ही बढ़ें तो क्या निकले? पर इतना तो स्पष्ट हो ही जाता है कि उन्हें हम लोकमान्य के साथ नहीं बैठा सकते। सब कुछ होते हुए भी लोकमान्य और वल्लभभाई के निर्माण में एक महान् अन्तर है और वह यह कि लोकमान्य जहाँ राज

राजनीतिज्ञ नहीं, योद्धा

नीतिज्ञ थे, वहाँ वल्लभभाई राजनीतिज्ञ नहीं हैं,—योद्धा है, सैनिक हैं, सेनापति हैं। राजनीतिज्ञ और योद्धा में तत्वत ही अन्तर है। राजनीतिज्ञ की जबान पर काबू होता है, उसके लिए वह एक अस्त्र है। उसके शब्द ठण्डे, प्राय द्वी अर्थी होते हैं। वह अपने मन का भाव जबान तक नहीं आने देता। वह अवसर का उपयोग करता है। और योद्धा जिसे हम उपयोगिता कहते हैं, उसे लेकर नहीं चलता, भावना को, 'स्पिरिट' को लेकर चलता है। भौतिक सुविधाएँ प्राप्त कर लेना उसका उतना उद्देश्य नहीं, जितना नैतिक विजय लक्ष्य है। वह खतरे को प्यार करता है। वीरता उसकी दवी है और साहस उसका अनुचर। जब आसमान पर घटाएँ छा रही हों तब जहाँ राजनीतिज्ञ के ललाट पर विचार की रेखाएँ होती हैं और आँखों में चिन्ता की छाया, वहाँ योद्धा का दिल उमगों में भरा हुआ, अब उमड़ा अब उमड़ा, ऐसा होता रहता है। शत्रु की ललकार सुनकर राजनीतिज्ञ सोचेगा कि अभी वार करना चाहिए या नहीं, योद्धा झट बाहर निकल पड़ेगा। इस दृष्टि से लोकमान्य और वल्लभभाई—समान प्रवृत्ति लेकर भी समान नहीं हैं और उनमें अन्तर है।

—और महात्माजी को लेकर वल्लभभाई की ओर देखते हैं तो भी इसी बात पर पहुँचते हैं कि दोनों में अन्तर है। अन्तर मात्राओं का नहीं, प्रवृत्तियों का। और प्रवृत्तियों के साथ तात्विक भेद भी तो है। गांधीजी एक साधक हैं। सत्य,

गांधी की तराजू पर

आत्म साक्षात्कार उनका लक्ष्य है। इसलिए स्वभावत उनका जीवन अनावृत, खुला हुआ, है। इस सत्य की साधना में सहायक होनेवाली छोटी-से छोटी बात भी वह कह डालते हैं,—जिन व्यक्तिगत बातों के कहने में आदमी कॉप उठे, सत्य की साधना में जरा भी सहायता मिलने की सभावना हो तो उन्हें भी वह अत्यन्त निष्ठुरता के साथ कह डालते हैं। कुछ नगण्य व्यक्तिगत उपहार पास रख लेने पर कस्तूर बा के सम्बन्ध में उन्होंने जो-कुछ, और जैसी निष्ठुरता के साथ, लिखा था, वह दूसरे से सम्भव नहीं। वह निर्मोही आध्यात्मिक साधक से ही सम्भव है,

यह उसी का पथ है। वल्लभभाई एक सच्चे आत्म-त्यागी वीर पुरुष की भाँति अपने जीवन के प्रति मौन है। गांधीजी विरोधी के साथ लड़ते हैं पर उसे विरोधी समझकर नहीं—उसके विनाश के लिए नहीं, उसे सुधारने के लिए, उसे गलत रास्ते से हटाने के लिए। युद्ध के समय भी विरोधी के सच्चे कल्याण का ध्यान उन्हें रहता है। यह साधक की अन्तःकरण की पोर-पोर में भिनी हुई उदारता है जिसकी ऊँचाई पर वस्तुतः कोई शत्रु नहीं रह जाता। वल्लभभाई की उदारता वीर योद्धा की उदारता है जो छिपकर वार करना नहीं जानती पर सामने की लड़ाई में शत्रु को आग्नेय नेत्रों से देखती है और उसे मटियामेट कर देना चाहती है, जो शत्रु की पराजय से उल्लसित है। इसी प्रकार जब गांधीजी, सच्चे सत्याग्रही की भाँति, विरोधी को अपने कार्यक्रम की सूचना पहले ही दे देते हैं तब वल्लभभाई के मुँह से शत्रु या मित्र कोई क्रिया में आने के पहले उनका कार्यक्रम नहीं जान सकता।

इतना ही नहीं, माखनलालजी के सुंदर शब्दों में तो, जब—"महात्माजी छोटे से छोटे आदमी के कुतूहलों तक का जवाब देते हैं (तब)

असमानताएँ

वल्लभभाई से सवाल पूछने का साहस ही बहुत कम को हो पाता है। उनके विषय में तो केवल यही कहा जा सकता है कि वह जवाब सदैव अपने विरोधी को ही देते हैं। महात्माजी जीवन की आत्म कथा लिख सकते हैं किन्तु वल्लभभाई आत्म चर्चा कभी करते ही नहीं। महात्माजी का संयम और उनका तप महान् प्रयत्नों की सिद्धि है। वीर वल्लभभाई का सन्यास एक दिन प्रातःकाल उठकर किया हुआ किन्तु सदैव टिकनेवाला सिपाही का प्रण है। महात्माजी साधक, सुधारक और शिक्षक हैं। वल्लभभाई न सुधारक हैं, न साधक हैं, न शिक्षक हैं। वह योद्धा हैं सेनानी हैं, सिपहसालार हैं। शिक्षक के नाते महात्माजी जीवन के प्रत्येक मिनट को अपना हिसाब

चुकाते हैं और समय के व्यर्थ पर्व को पाप मानते हैं। वल्लभभाई घण्टे के घण्ट अपने सिपाहियों से बातें करते-करते बिता देते हैं। मानों इन बातों में वल्लभभाई अपनी प्राप्त वस्तु को गिरफ्तार कर लेते हैं। जिस समय वह बातों में खिलखिलाकर हँसते हैं उस समय उनकी आँखें किसी संग्राम के मंत्र की रचना करती हुई-सी दीख पडती हैं। गांधीजी को अपने कर्तव्य पर ध्यान रखना पडता है कि उनका कहीं गलत अनुकरण न हो। वल्लभभाई केवल अपने झण्डे के नीचे अनीवालों की गिनती लगाया करते हैं। महात्माजी निर्धोद्धार के लिए आश्रम की स्थापना करते हैं और अपने शिष्यों के अपराधों तक के लिए स्वयं उपवास एवं प्रायश्चित तक करते हैं। वल्लभभाई अपनी सेना के किसी सिपाही के खराब निकलने पर उसे रुखसत दे देते हैं और निश्चिन्त भाव से दूसरा सिपाही ढूँढ लेते हैं। महात्माजी बालक, मूर्ख और शत्रु से भी गुण सीखने के लिए प्रस्तुत हैं, किन्तु वल्लभभाई उक्त तीनों का मूल्य विश्व के बाजार दर से अधिक नहीं कूतते। गरज यह कि यदि वल्लभभाई सिपहसालार से कुछ कम नहीं तो वह सिपहसालार से अधिक भी कुछ नहीं हैं, न अधिक होना ही चाहते हैं। महात्माजी की महान् क्षमा में आत्म निरीक्षण और आत्म चिन्तन होना ही चाहिए। वल्लभभाई की क्षमा वीरोचित क्षमा है, उसमें अपने योद्धा की सौ भूलें माफ हैं—यदि वे बहादुरी के पथ में न की गई हों।"*

इतनी बातें कर लेने पर यह कहने का अवसर आया है कि वल्लभ भाई वस्तुतः उन उपकरणों से बने हैं जिनसे एक शहीद का सृजन होता है। वह एक योद्धा हैं। बुद्धि विवेक, परिस्थिति, मौनावलम्बन और संगठन-शक्ति ने इस योद्धा को योद्धा से ऊपर उठाया है और तत्वतः योद्धा होते हुए भी उसे सेनापति—सरदार—के आसन पर ला खड़ा किया है। वल्लभभाई में वह कूट रहस्य

'सरदार'

* कर्मवीर।

ममता नहा, जो राजनीतिज्ञ की खास चीज है पर उनमें वह गभीरता और वह प्राणोन्मादकारी भावावेश दोनों उपयुक्त मात्रा में है जो एक सफल सरदार–सेनापति के निर्माण के लिए आवश्यक हैं। युद्ध म वह इस तरह स्वतत्रतापूर्वक खेलते है जैसे पानी म मछली तैरता है। उस समय कोइ कठिनाइ उनका दम नहीं तोड़ सकती। परन्तु राजनीतिज्ञता की वार्ता, समझौते की चर्चाओं में उनका वह भावावेश शिथिल पड जाता है और प्रतिभा कुण्ठित हो जाती है। वह स्वय कहते ह—" मुझे लड़ते लड़ते जो सकट और जो उलझन पड़ जाय, उसे मैं तड़ाक से सुलझा लूँगा। ऐसी उलझनें सुलझाने की सूझ मुझे कहाँ से मिलती है, मैं नहीं जानता। परन्तु, समझौते की ढीली चर्चाओं में मेरा जी नहीं लगता। ऐसी अकर्मण्य चर्चाओं मे कितनी ही बार तो मैं गड़बड में पड जाता हूं।" इनसे निष्कर्ष यह निकला कि वल्लभभाइ लोकमान्यत्व और गाधीत्व के मिश्रण से हैं।

और जब युद्ध चलता हो तो उनकी वाणी की आग देखिए। मैं दूसरे किसी भारतीय नेता को नहीं जानता जो युद्ध-काल में इतने सरल सीधे पर इतने शक्तिमान शब्दों की सृष्टि करने में समर्थ हो। उनकी वाणी आग उगलती है। और उसके यह नमूने ये हे—"शत्रु का लोहा गरम भले हो जाय पर हमारा हथोड़ा तो ठण्डा रहकर ही काम दे सकता है।" बारडोली के किसानों से कष्ट सहन की तैयारी के लिए कहते हुए—"किसान होकर यह बात मत भूल जाना कि वैशाख-जेठ की भयकर गर्मी के बिना आषाढ श्रावण की वर्षा नहा होने वाली है।" या "मरने मारने की तालीम सिपाहियों को देने में सरकार को छ महीने लगते ह। हमें तो सिर्फ मरना ही सीखना है, उसमें तीन महीने भी क्यों लगने चाहिएँ?' वल्लभभाई ने विद्वान् की परिभाषा भी खूब बनाइ हे—"विद्वान् वह जो सादी भाषा को अटपटी और कुढगी बना दे।" विद्यार्थियों के सामने भाषण देते हुए कहते ह—"अरे, क्या

वाणी मे आग है।

साँप को अपनी केंचुली उतार फेंकने मे दुःख होता है? या कोई मेहनत पड़ती है? इसी तरह हम भी एक दिन पराये शासन की केंचुली उतार देंगे। उसमें श्रम और कष्ट काहे का?" इसी प्रकार—"यदि राजसत्ता अत्याचारी हो तो किसान का सीधा उत्तर है—'जा,जा अरे ऐसे कितने ही राज्य मैंने मिट्टी मे मिलते देखे है।" इसी प्रकार बारडोली सत्याग्रह के समय बालोड में भाषण देते हुए—"सरकार जप्ती के मेहमान चाहती है। आप उन्हें मुँहमांगे मेहमान देना।" इसी प्रकार गिरफ्तारी के समय के ये वाक्य भारतीय वातावरण में गूंजते हैं—"सरकार यदि यह समझती हो कि मेरे पर काट देने से मैं बिना परोंवाला हो जाऊँगा तो मैं यह विश्वास दिला देना चाहता हूँ कि वह तो वर्षा की घास की तरह नित्य नये उगते आने वाले हैं!"

यह तो युद्ध के समय का बोलना है पर वैसे वल्लभभाई में बोलने की आदत बहुत कम है। वह बोलते कम हैं, करते अधिक है। वात-शूर उन्हें लुभा नहीं सकता। वह लेक्चर फटकारने वाले आदमी नहीं है। विज्ञापनबाजी उन्हें पसन्द नहीं, काम की भी नहीं, और हो भी तो बहुत थोड़ी, आवश्यकता भर, व्यक्तित्व की तो बिल्कुल ही नहीं। वह गरजनेवाला मेघ नहीं, बरसने वाला मूसलाधार है। वैसे—उसका मौन गजब का है। वह वह योद्धा है जो ठोस वीरता का पुजारी है, पोल के शब्द उसे आकर्षित नहीं कर सकते।

× × ×

फिर इन सबके अलावा वल्लभभाई ने किसान का दिल देखा है और भारत के सच्चे प्रतिनिधि के रूप में उसे अपना लिया है। वह किसान

किसान की आशा को खूब समझते हैं और किसान उन्हें खूब समझता है। काका कालेलकर ने ठीक ही लिखा था कि—"जब किसान व्याकुल होने लगता है, तब वल्लभभाई का भी खून खौलने लगता

है ।"* इस दर्द के कारण ही उन्होंने गाँवों को अपना क्षेत्र बनाया है और किसान को अपनाने के लिए स्वयं किसान बन गये हैं। खेड़ा, बोरसद, बारडोली सब इसके प्रमाण हैं। वर्तमान भारतीय नेताओं में कोई ऐसा नहीं है जिसने किसानों के लिए प्रत्यक्ष रूप से इतना किया है जितना वल्लभभाई ने किया है। वह भारतीय किसान की आशा हैं और उनके सम्बन्ध में जोना बेली (*Jonna Baillie*) की ये लाइनें चिर सत्य हैं—

Ev'n to the dullest peasant standing by
Who fasten'd still on him a wondering eye,
He seemed the master-spirit of the land

* 'हिन्दी-नवजीवन', १३ मार्च १९३० ई० ।

३१—राणा गोविन्दसिंह ॥=)
(अप्राप्य)
३३—श्रीरामचरित्र १)
३४—आश्रम हरिणी ।)
३५—हिन्दी-मराठी-कोष २)
३६—स्वाधीनता के सिद्धान्त ॥)
३७—महान् मातृत्व की ओर— ।॥=)
३८—शिवाजी की योग्यता ।=)
(अप्राप्य)
३९—तरंगित हृदय „ ॥)
४०—नरमेध ! १॥)
४१—दुखी दुनिया ॥)
४२—जिन्दा लाश ॥)
४३—आत्म-कथा (गांधीजी)
दो खण्ड सजिल्द १।)
४४—जब अंग्रेज आये
(जब्त) १।=)
४५—जीवन विकास
अजिल्द १।) सजिल्द १॥)
४६—किसानों का बिगुल =)।
(जब्त)
४७—फाँसी ! ॥)
४८—अनासक्तियोग तथा
गीताबोध (श्लोक-सहित) ।=)
अनासक्तियोग =)
गीताबोध— —)॥
४९—स्वर्ण विहान (नाटिका)
(जब्त) ।=)
५०—मराठों का उत्थान और पतन २॥)
५१—भाई के पत्र १॥)
सजिल्द २)
५२—स्व-गत— ।=)
५३—युग धर्म (जब्त) १=)
५४—स्त्री-समस्या १॥।)
सजिल्द २)
५५—विदेशी कपड़े का मुकाबला ॥=)
५६—चित्रपट ।=)।
५७—राष्ट्रवाणी ॥=)
५८—इंग्लैण्ड में महात्माजी १)
५९—रोटी का सवाल १)
६०—दैवी सम्पद् ।=)
६१—जीवन सूत्र ॥।)
६२—हमारा कलंक ॥=)
६३—बुद्बुद ॥)
६४—संघर्ष या सहयोग? १॥)
६५—गांधी विचार दोहन ॥)
६६—एशिया की क्रान्ति १॥।)
६७—हमारे राष्ट्रनिर्माता २॥)
सजिल्द ३)